गीता-दर्शन
अध्याय: १२
भगवान श्री रजनीश

गीता-दर्शन

भगवान् श्री रजनीश के कुछ हिन्दी प्रवचन संकलन

गीता-दर्शन गीता के अध्याय १ से १८ तक २२० प्रवचन/१२ खण्डों में
ताओ-उपनिषद् लाओत्से की ताओ-तेह-किंग पर १२७ प्रवचन/६ खण्डों में
महावीर-वाणी कुल ५४ प्रवचन/३ खण्डों में
जिन-सूत्र महावीर-वाणी पर ६२ प्रवचन/४ खण्डों में
एस धम्मो सनन्तनो धम्मपद पर १२३ प्रवचन/६ खण्डों में
महागीता अष्टावक्र-गीता पर ९१ प्रवचन/६ खण्डों में
भक्ति-सूत्र नारद-भक्ति-सूत्र पर २० प्रवचन/२ खण्डों में
एक ओंकार सतनाम नानक-वाणी (जपुजी) पर २१ प्रवचन
महावीर : मेरी दृष्टि में २७ प्रवचन
कृष्ण : मेरी दृष्टि में २० प्रवचन
दिया तले अँधेरा झेन और सूफी बोधकथाओं पर २१ प्रवचन
सहज समाधि भली कबीर-वाणी, झेन, सूफी व उपनिषद् की कथाओं पर २१ प्रवचन
साधना-सूत्र मेबॅल कॉलिन्स की 'लाइट ऑन द पाथ' पर १७ प्रवचन
शिव-सूत्र १० प्रवचन
सुनो भाई साधो / गूंगे केरी सरकारा
कस्तूरी कुण्डल बसै / मेरा मुझमें कुछ नहीं
कहै कबीर दिवाना
} कबीर के पदों पर दस-दस प्रवचन
पिव पिव लागी प्यास दादू-वाणी पर १० प्रवचन
सबै सयाने एक मत दादू-वाणी पर १० प्रवचन
अकथ कहानी प्रेम की फरीद-वाणी पर १० प्रवचन
बिन घन परत फुहार सहजोबाई के पदों पर १० प्रवचन
भज गोविन्दम् शंकराचार्य के पदों पर १० प्रवचन
जगत् तरैया भोर की दया-वाणी पर १० प्रवचन
कन थोरे कांकर घने मलूक-वाणी पर १० प्रवचन
तत्त्वमसि ५२० अमृत-पत्रों का संकलन
अध्यात्म उपनिषद् आबू-शिविर में १७ प्रवचन
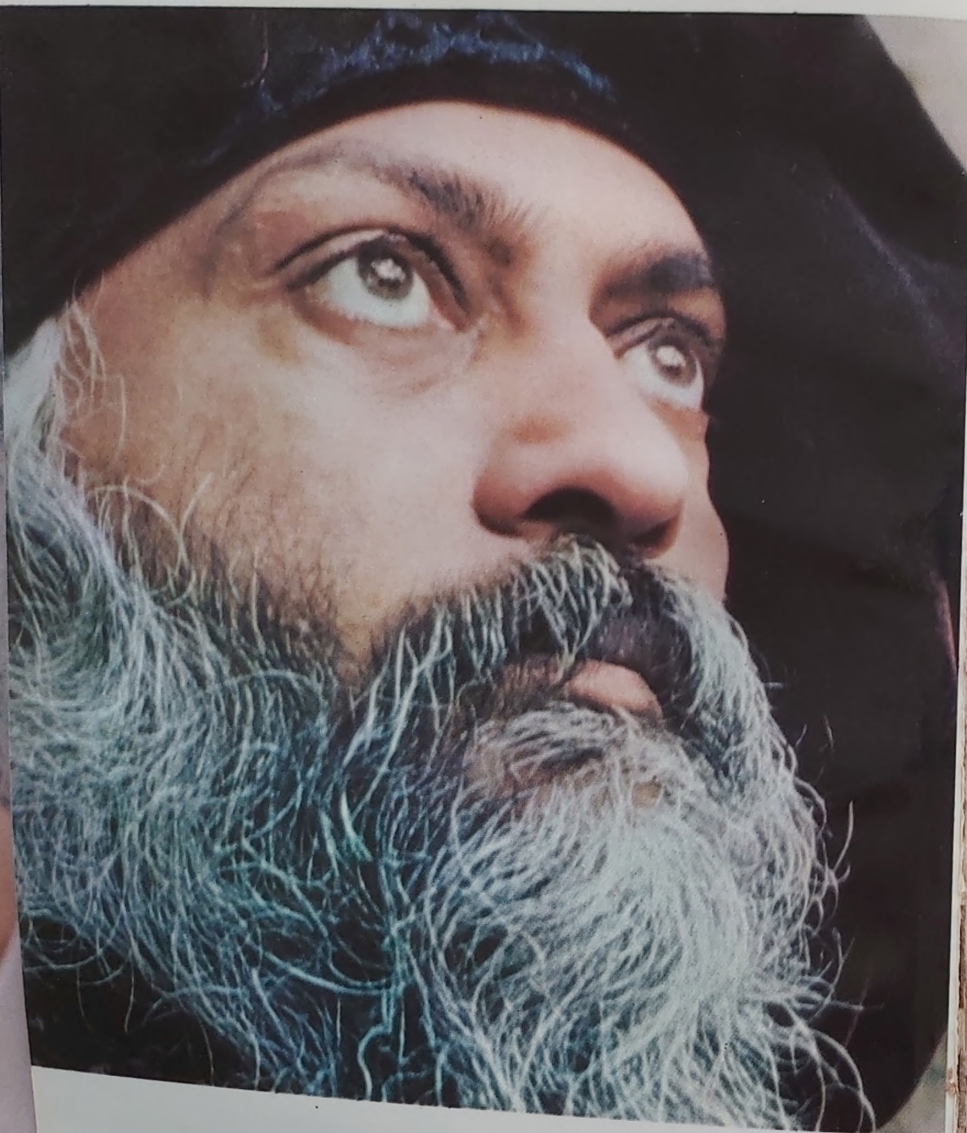
भगवान् श्री रजनीश के
दस प्रवचन

गीता-दर्शन

श्रीमद्भगवद्गीता

अध्याय–१२ : भक्तियोग

रजनीश फाउन्डेशन प्रकाशन, पूना, १९७७

प्रकाशक
मां योग लक्ष्मी
सचिव, रजनीश फाउन्डेशन
श्री रजनीश आश्रम, १७, कोरेगाँव पार्क, पूना–१, महाराष्ट्र

प्रथम संस्करण : गुरु पूर्णिमा, १ जुलाई, १९७७
प्रतियाँ : कुल तीन हजार

मूल्य
राज संस्करण : ५०.०० रुपये
सामान्य संस्करण : ३०.००

मुद्रक
ना. मु. उस्कैकर
श्री रजनीश आश्रम प्रेस
पुणे ४११ ००१

श्रीमद्भगवद्गीता
बारहवाँ अध्याय

भक्ति योग

(दस प्रवचन)

संकलन
मां योग विमल

सम्पादन
स्वामी योग चिन्मय

सज्जा
स्वामी आनन्द अर्हत

आमुख

हमारा सारा शिक्षण, सारा संस्कार बुद्धि का है।

भाव की न तो कोई शिक्षा है, न कोई संस्कार है।

भाव के विकसित होने का कोई उपाय भी दिखाई नहीं पड़ता।

सारी जीवन की व्यवस्था बुद्धि से चलती मालूम पड़ती है।

इस बुद्धि के शिखर पर बैठे हुए युग में, कैसे भाव की तरफ गति होगी, कैसे भक्ति की तरफ रास्ता खुलेगा?

जीवन का एक बहुत अनूठा नियम है, वह आप समझ लें।

वह नियम है कि जब भी हम एक अति पर चले जाते हैं, तो दूसरी अति पर जाना आसान हो जाता है।

जब भी हम एक छोर पर पहुँच जाते हैं, तो दूसरे छोर पर पहुँचना आसान हो जाता है--घड़ी के पेन्डुलम की तरह।

घड़ी का पेन्डुलम घूमता है बायीं तरफ और जब बायीं तरफ के आखिरी छोर को छू लेता है, तो दायीं तरफ घूमना शुरू हो जाता।

यह युग बुद्धि का युग है, इतना ही काफी नहीं है जानना।

यह युग बुद्धि से पीड़ित युग भी है।

इस युग की ऊँचाइयाँ भी बुद्धि की हैं; इस युग की परेशानियाँ भी बुद्धि की हैं; इस युग की पीड़ा भी बुद्धि की है।

मनुष्यता बुद्धि के शिखर को छू रही है।

और बुद्धि के शिखर को छूने से जो-जो आशाएँ हमने बाँधी थीं, वे सभी असफल हो गयी हैं।

जो भी हमने सोचा था--मिलेगा--बुद्धि से--वह नहीं मिला।

और जो मिला है, वह बहुत कष्टपूर्ण है।

आज का सारा चिंतनशील मस्तिष्क परेशान है, विक्षिप्त है।

और जैसे-जैसे सभ्यता बढ़ती है, वैसे-वैसे पागलखाने बढ़ाने पड़ते हैं।

जितना सभ्य मुल्क हो, उसकी जाँच का एक सीधा उपाय है कि वहाँ कितने ज्यादा लोग पागल हो रहे हैं।

बुद्धि पर ज्यादा जोर पड़ता है, तो तनाव सघन हो जाता है।

हृदय हलका करता है, बुद्धि भारी कर जाती है।

हृदय खेल है, बुद्धि एक तनाव है।

तो बुद्धि की इतनी पीड़ा के कारण और बुद्धि का इतना संताप जो पैदा हुआ है, उसके कारण, दूसरी तरफ घूमने की संभावना पैदा हो गयी है।

हम बुद्धि से परेशान हैं। इस परेशानी के कारण हम भाव की तरफ उन्मुख हो सकते हैं।

और मेरी अपनी समझ ऐसी है कि शीघ्र ही पृथ्वी पर वह समय आयेगा, जब पहली दफा मनुष्य भाव में इतना गहरा उतरेगा, जितना इसके पहले कभी भी नहीं उतरा है।

तो इस युग के लिये यह ध्यान में रख लेना जरूरी है कि यह युग एक शिखर अनुभव के पहुँच खड़ा है, जहाँ बुद्धि व्यर्थ हो जायेगी।

और जब बुद्धि व्यर्थ होती है, तो जीवन के लिये एक ही आयाम खुला रह जाता है; वह है--भाव का, वह है--हृदय का, वह है—प्रेम का, वह है--भक्ति का।

विषय अनुक्रम

जाता ? / वे मेरा ही काम कर रहे हैं / विरोध का आकर्षण / विरोध से सत्य निखरता है / दूसरी विरोधी : श्रीमती निर्मला देवी श्रीवास्तव / व्यर्थ से छुटकारा पाने का उपाय / गांधी की आलोचना––गाँधीवादियों से छुटकारे का उपाय / दो काम : गलत लोगों को हटाना और सही लोगों को बुलाना / सत्य सभी का उपयोग कर लेता है / ... निरहंकारी ही निन्दा-स्तुति के पार / निन्दा से अहंकार को चोट / दूसरों के मन्तव्य पर बनी हमारी प्रतिमा / अहंकार समाज का दान है / भक्त या साधक दूसरों के मन्तव्यों को आधार नहीं बनाता / हमारी दूसरों में उत्सुकता / झूठ को दूसरों के सहारे की जरूरत/मननशील––विधायक को खोज लेनेवाला / परमात्मा जैसा भी रखे / सभी परिस्थिति में राजी / पत्नी के मरने पर च्वांगत्जू का खंजरी बजाना और गाना / भक्ति निष्काम होनी चाहिये / भक्ति––भाव, प्रेम, हृदय का मार्ग / स्त्रैण चित्त जरूरी / अत्यन्त शान्त और निष्काम भाव-दशा चाहिये ।

प्रेम का द्वार : भक्ति में प्रवेश

पहला प्रवचन

क्रॉस मैदान, पारसी कुआँ, बम्बई, संध्या, दिनांक १२ मार्च, १९७३
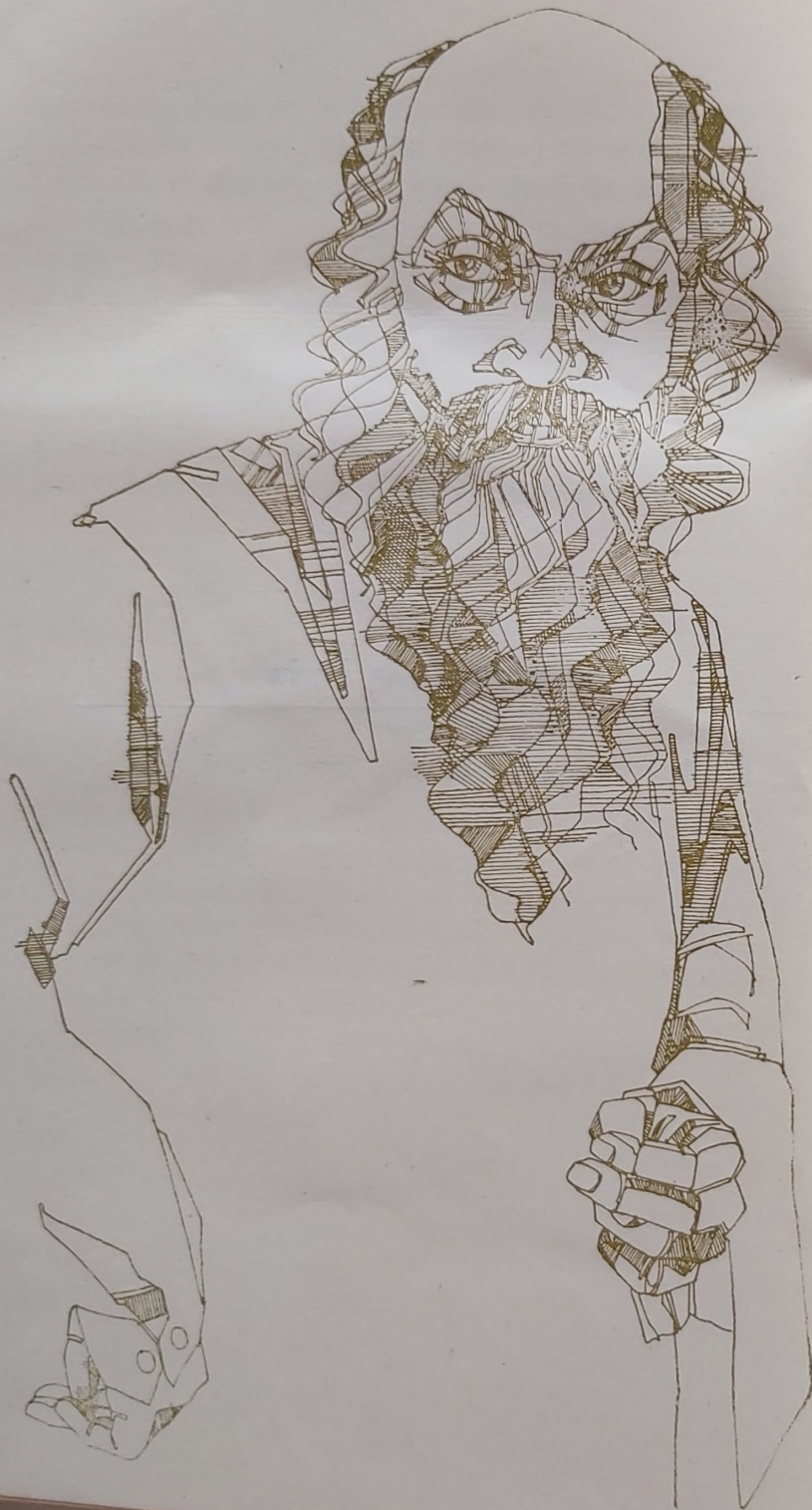
श्रीमद्भगवद्गीता

अथ द्वादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ।। १ ।।

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ।। २ ।।

इस प्रकार भगवान् के वचनों को सुन कर अर्जुन बोला, 'हे कृष्ण, जो अनन्य प्रेमी भक्तजन इस पूर्वोक्त प्रकार से निरन्तर आपके भजन व ध्यान में लगे हुए आप सगुणरूप परमेश्वर को अति श्रेष्ठ भाव से उपासते हैं और जो अविनाशी सच्चिदानन्दघन निराकार को ही उपासते हैं, उन दोनों प्रकार के भक्तों में अति उत्तम योगवेत्ता कौन हैं?'

इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्री भगवान् बोले, 'मेरे में मन को एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन-ध्यान लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त हुए मुझ सगुणरूप परमेश्वर को भजते हैं, वे मेरे को योगियों में भी अति उत्तम योगी मान्य हैं अर्थात् उनको मैं अति श्रेष्ठ मानता हूँ ।'

एक अतर्क्य यात्रा पर इस अध्याय का प्रारम्भ होता है ।

एक तो जगत् है, जो मनुष्य की बुद्धि समझ पाती है; सरल है । गणित और तर्क वहाँ काम करता है । समझ में आ सके, समझ के नियमों के अनुकूल समझ की व्यवस्था में बैठ सके, विवाद किया जा सके, निष्कर्ष निकाले जा सकें––ऐसा एक जगत् है । और एक ऐसा जगत् भी है, जो तर्क के नियमों को तोड़ देता है । बुद्धि वहाँ जाने की कोशिश करे, तो द्वार बन्द पाती है । वहाँ हृदय ही प्रवेश कर सकता है । वहाँ अंधा होना ही आँख वाला होना है; और वहाँ मूढ़ होना ही बुद्धिमत्ता है ।

ऐसे अतर्क्य के आयाम में भक्ति-योग के साथ प्रवेश होगा । बहुत सोचना पड़ेगा । क्योंकि जो सोचने की पकड़ में न आ सके, उसके लिए बड़ी चेष्टा करनी पड़ेगी । जो समझ के बाहर हो, उसके समझने के लिए स्वयं को पूरा ही दांव पर लगा देना होगा । और ऐसा साहस भी रखना होगा कि जहाँ हम चुक जाते है, जरूरी नहीं कि सत्य चुक जाता हो । और जहाँ हमारी सीमा आ जाती है, जरूरी नहीं है कि अस्तित्व की सीमा आ जाती हो ।

अपने से भी आगे जाने का साहस हो, तो ही भक्ति समझ में आ सकती है । जो अपने को ही पकड़ कर बैठ जाते हैं, भक्ति उनके समझ में नहीं आ सकेगी । जो अपनी बुद्धि को ही अंतिम मापदंड मान लेते हैं, उनके मापदंड मान लेते हैं, उनके मापदंड में भक्ति का सत्य नहीं बैठ सकेगा । इस बात को पहले समझ लें ।

कुछ जरूरी बातें इस बात को समझने के लिए खयाल में लेनी होंगी ।

एक तो जो हमें तर्क जैसा मालूम पड़ता है और उचित लगता है, सब भाँति बुद्धि को भाता है, जरूरी नहीं है कि बहुत गहरी खोज पर सही ही सिद्ध हो ।

जो हम जानते हैं, अगर वहाँ तक सत्य होता, तो हमें मिल गया होता । जो हमारी समझ है, अगर वहीं परमात्मा की अनुभूति होने वाली होती, तो हमें हो गयी होती । जो हम हैं, वैसे ही अगर हम उस परम रहस्य में प्रवेश कर पाते, तो हम प्रवेश ही कर गये होते ।

एक बात तो साफ है कि जैसे हम हैं, उससे परम सत्य का कोई संबंध नहीं जुड़ता । हमारी बुद्धि जैसी अभी है, आज है, उसका जो ढाँचा और व्यवस्था है, शायद उसके कारण ही जीवन का रहस्य खुल नहीं पाता । द्वार बंद रह जाते हैं ।

कभी आपने देखा हो...सूफी निरंतर कहते रहे हैं...। सूफी फकीर बायजीद बार-बार कहता था कि एक बार एक मसजिद में बैठा हुआ था और एक पक्षी खिड़की से भीतर घुस आया । बंद कमरा था, सिर्फ एक खिड़की ही खुली थी । पक्षी ने बड़ी कोशिश की, दीवालों से टकराया, बंद दरवाजों से टकराया, छप्पर से टकराया और जितना टकराया, उतना ही घबड़ा गया । जितना घबड़ा गया, उतनी बेचैनी से बाहर निकलने की कोशिश की ।

बायजीद बैठा ध्यान कर रहा था । बायजीद बहुत चकित हुआ । सिर्फ उस खिड़की को छोड़ कर पक्षी ने सारी कोशिश की––जो खिड़की खुली थी और जिससे वह भीतर आया था ।

बायजीद बहुत चिंतित हुआ कि इस पक्षी को कोई कैसे समझाये—कि जब तू भीतर आ गया है, तो बाहर जाने का मार्ग भी निश्चित ही है; क्योंकि जो मार्ग भीतर ले आता है, वह बाहर भी ले जाता है । सिर्फ दिशा बदल जाती है, द्वार तो वही होता है । और जब पक्षी भीतर आ सका है, तो बाहर भी जा ही सकेगा । अन्यथा भीतर आने का भी कोई उपाय न होता ।

लेकिन यह सब तरफ टकराता है––खुली खिड़की छोड़ कर । ऐसा नहीं कि उस पक्षी को बुद्धि न थी । उस पक्षी को भी बुद्धि रही होगी । लेकिन पक्षी का भी यही खयाल रहा होगा कि जिस खिड़की से भीतर आकर मैं फँस गया, उस खिड़की से बाहर कैसे निकल सकता हूँ ! जिसने भीतर लाकर मुझे फँसा दिया, वह बाहर ले जाने का द्वार कैसे हो सकता है ? यही तर्क उसका रहा होगा । जिससे हम झंझट में पड़ गये, उससे हम झंझट के बाहर कैसे निकलेंगे ? इसलिए उस खिड़की को छोड़-कर पक्षी ने सारी कोशिश की । बायजीद ने सहायता भी पहुँचानी चाही । लेकिन, जितनी सहायता करने की कोशिश की, पक्षी उतना बेचैन और परेशान हुआ । उसे लगा कि बायजीद भी उसको उलझाने की, फांसने की, गुलाम बनाने की, बंदी बनाने की कोशिश कर रहा है । और भी घबड़ा गया ।

बायजीद ने लिखा है कि उस दिन मुझे समझ में आया कि संसार में आकर हम भी ऐसे ही उलझ गये हैं; और जिस द्वार से हमने भीतर प्रवेश किया है, उस द्वार को छोड़ कर हम सब द्वारों की खोज करते हैं । और जब तक हम उसी द्वार पर नहीं पहुँच पाते, जहाँ से हम जीवन में प्रवेश करते हैं, तब तक हम बाहर भी नहीं निकल सकते ।

बुद्धि के कारण आप जगत् में नहीं उलझ गये हैं। विचार के कारण आप जगत् में नहीं उलझ गये हैं। आपके जगत् में आगमन का द्वार, प्रेम है। और प्रेम जब उलटा हो जाता है, तो भक्ति बन जाती है। जब प्रेम की दिशा बदल जाती है, तो भक्ति बन जाती है।

जब तक आप अपनी आँखों के आगे जो है उसे देख रहे हैं, जब तक उससे आपका मोह है, लगाव है, तब तक आप संसार में उतरते चले जाते हैं। और जब आप आँख बंद कर लेते हैं और जो आँख के आगे दिखायी पड़ता है वह नहीं, बल्कि आँख के पीछे जो छिपा है, उस पर लगाव और प्रेम को जोड़ देते हैं, तो भक्ति बन जाती है। द्वार वही है। द्वार दूसरा हो भी नहीं सकता।

जिससे हम भीतर जाते हैं, उससे ही हमें बाहर जाना होगा। जिस रास्ते से आप यहाँ तक आये हैं, घर लौटते वक्त भी उसी रास्ते से जाइएगा। सिर्फ एक ही फर्क होगा—कि यहाँ आते समय आपका ध्यान इस तरफ था, आँखें इस तरफ थीं, रुख इस तरफ था। लौटते वक्त इस तरफ पीठ होगी। आँखें वही होंगी, सिर्फ दिशा बदल जाएगी। आप वही होंगे, रास्ता वही होगा; सिर्फ दिशा बदल जाएगी।

प्रेम की दिशा के परिवर्तन का नाम भक्ति है।

और प्रेम से हम इस जगत् में प्रवेश करते हैं। प्रेम से ही हम इस जगत् के बाहर जा सकते हैं। लेकिन प्रेम के कुछ लक्षण समझ लेने जरूरी हैं।

प्रेम का पहला लक्षण तो है—उसका अंधापन। और जो भी प्रेम में नहीं होता, वह प्रेमी को अंधा और पागल मानता है। मानेगा। क्योंकि प्रेमी सोच-विचार नहीं करता, तर्क नहीं करता, हिसाब नहीं लगाता; क्या होगा परिणाम——इसकी चिन्ता नहीं करता। बस, छलांग लगा लेता है। प्रेम इतनी बड़ी घटना है कि उसमें डूब जाता है, और एक हो जाता है। वे, जो भी आसपास खड़े लोग हैं, वे सोचेंगे कि 'कुछ गलती हो रही है। प्रेम में भी विचार होना चाहिए। प्रेम में भी सूझ-बूझ होनी चाहिए। कहीं कोई गलत कदम न उठ जाय——इसकी पूर्व-धारणा होनी चाहिए।'

प्रेम अंधा दिखायी पड़ेगा—बुद्धिमानों को। लेकिन प्रेम की अपनी ही आँखें हैं और जिसको वे आँखें उपलब्ध हो जाती हैं, वह बुद्धि की आँखों को अंधा मानने लगता है।

जिसको प्रेम का रस आ जाता है, उसके लिए सारा तर्क-शास्त्र व्यर्थ हो जाता है। और जो प्रेम की धुन में नाच उठता है, जो उस संगीत को अनुभव कर लेता है, वह आपके सारे सोच-विचार को दो कौड़ी की तरह छोड़ दे सकता है। उसके हाथ में कोई हीरा लग गया। अब इस हीरे के लिए आपकी कौड़ियों को नहीं

सम्हाला जा सकता।

प्रेम अन्धा मालूम पड़ता है, क्योंकि प्रेम के पास वे ही आँखें नहीं हैं, जो बुद्धि के पास हैं। प्रेम के पास कोई दूसरी आँखें हैं। प्रेम के देखने का ढंग कोई और है। प्रेम हृदय से देखता है। और चूंकि हम इस जगत् में प्रेम के कारण ही प्रविष्ट होते हैं। ...अपने प्रेम के कारण, दूसरों के प्रेम के कारण हम इस जगत् में आते हैं। हमारा शरीर निर्मित होता है। हम अस्तित्ववान होते हैं। इसी प्रेम को उलटाना पड़ेगा। इसी अंधे प्रेम का नाम——जब यह जगत् की तरफ से हटता है, और भीतर चैतन्य की तरफ मुड़ता है——श्रद्धा है।

श्रद्धा, अंधा प्रेम है, लेकिन मूल-स्रोत की तरफ लौट गया। संसार की तरफ बहता हुआ वही प्रेम वासना बन जाता है। परमात्मा की तरफ लौटता हुआ वही प्रेम श्रद्धा और भक्ति बन जाती है।

जैसा प्रेम अंधा है, वैसी भक्ति भी अंधी है। इसलिए जो बहुत बुद्धिमान हैं, उनके लिए भक्ति का मार्ग, मार्ग ही मालूम नहीं पड़ेगा। जो बहुत सोच-विचार करते हैं, जो बहुत तर्क करते हैं, जो परमात्मा के पास भी बुद्धिमानीपूर्वक पहुँचना चाहते हैं, उनके लिए भक्ति का मार्ग नहीं है। उनके लिए और मार्ग है।

लेकिन, कृष्ण इस सूत्र में कहेंगे कि भक्ति से श्रेष्ठ उन मार्गों में कोई भी मार्ग नहीं है। किस कारण? क्योंकि बुद्धि कितना ही सोचे, अहंकार के पार जाना बहुत मुश्किल है। प्रेम छलांग लगाकर, अहंकार के बाहर हो जाता है। बुद्धि लाख प्रयत्न करके भी अहंकार के बाहर नहीं हो पाती। क्योंकि जब मैं सोचता हूँ, तो मैं तो बना ही रहता हूँ। जब मैं हिसाब लगाता हूँ, तो 'मैं' तो बना ही रहता हूँ। मैं कुछ भी करूँ——पूजा करूँ, ध्यान करूँ, योग साधूँ, लेकिन 'मैं' तो बना ही रहता हूँ।

भक्ति पहले ही क्षण में 'मैं' को पार कर जाती है। क्योंकि भक्ति का अर्थ है——समर्पण। भक्ति का अर्थ है कि अब 'मैं' नहीं, 'तू' ज्यादा महत्वपूर्ण है। और अब 'मैं' को छोड़ूँगा मिटाऊँगा, ताकि 'तुझे' पा सकूँ। यह मेरा मिटना ही, तेरे पाने का रास्ता बनेगा। और जब तक 'मैं' हूँ, तब तक 'तुझसे' दूरी बनी रहेगी। जितना मजबूत हूँ मैं, उतनी ही दूरी है, उतना ही फासला है। जितना पिघलूंगा, जितना मिटूंगा, उतनी ही दूरी मिट जाएगी।

भक्ति को कृष्ण श्रेष्ठतम योग कहते हैं—एक कारण और है जिस वजह से।

जहाँ दो हों, और फिर भी एक का अनुभव हो जाय, तो ही योग है। और जहाँ एक ही हो, और 'एक' का अनुभव हो, तो योग का कोई सवाल नहीं है।

अगर कोई ऐसा समझता हो कि केवल परमात्मा ही है और कुछ भी नहीं, तो योग का कोई सवाल नहीं है, मिलन का कोई सवाल नहीं है। जब एक ही है, तो

न मिलने वाला है, न कोई और है--जिससे मिलना है। मिलने की घटना तो तभी घट सकती है, जब दो हो।

एक शर्त खयाल रखनी जरूरी है। दो हो, और फिर भी 'दो' के बीच एक का अनुभव हो जाय, तभी मिलने की घटना घटती है।

मिलन, बड़ी आश्चर्यकारक घटना है। दो होते हैं, और फिर भी दो नहीं होते। दो लगते हैं, फिर भी दुई मिट गयी होती है। दो छोर मालूम पड़ते हैं, फिर भी बीच में 'एक' का ही प्रवाह अनुभव होता है। दो किनारे होते हैं, लेकिन सरिता बीच में बहने वाली--एक ही होती है।

जब दो के बीच 'एक' का अनुभव हो जाय--तो योग। इसलिए कृष्ण, भक्ति को सर्वश्रेष्ठ योग कहते हैं।

मजा ही क्या है, अगर एक ही हो, तो मिलने का कोई अर्थ भी नहीं है। और अगर दो हों, और दो ही बने रहें, तो मिलने का कोई उपाय नहीं है। दो हो और एक ही प्रतीति हो जाय; दो होना ऊपरी रह जाय, एक होना भीतरी अनुभव बन जाय...।

दो के बीच जब एक ही प्रतीति होती है, कृष्ण उसी को योग कहते हैं। वही मिलन है, वही परम समाधि है। इस मिलन में परमात्मा तो पहले से ही तैयार है, सदा तैयार है। हम बाधा हैं।

आमतौर से हम सोचते हैं: हम परमात्मा को खोज रहे हैं और परमात्मा नहीं मिल रहा है। इससे बड़ी भ्रांति की कोई और बात नहीं हो सकती। सचाई कुछ और हो सकती है। परमात्मा हमें निरंतर खोज रहा है। लेकिन हम ऐसे अड़े हुए हैं अपने पर, कि हम उसको भी सफल नहीं होने देते।

सुना है मैंने: एक सम्राट अपने बेटे पर नाराज हो गया, तो उसने उसे घर से निकाल दिया। फिर बाप था; साल छः महीने में पिघल गया वापस। खबर भेजी लड़के को कि लौट आओ। लेकिन लड़का भी जिद्दी था, और उसने लौटने से इनकार कर दिया कि एक बार निकाल ही दिया, तो अब...अब आना उचित नहीं है। अब मैं न हिलूंगा यहाँ से। वह राज्य की सीमा के बाहर जाकर बैठ गया। सम्राट ने मंत्री को भेजा और कहा, 'थोड़ा तो हिलो--एक कदम ही सही। तुम एक कदम चलो, बाकी कदम मैं चलूंगा।' बाप ने खबर भेजी कि तुम एक कदम ही चलो, तो भी ठीक, बाकी कदम मैं चल लूंगा। लेकिन, तुम्हारा एक कदम चलना जरूरी है। ऐसे तो मैं भी पूरा चलकर आ सकता हूँ। जब इतने कदम चल सकता हूँ, तो एक कदम और चल लूंगा। लेकिन, वह मेरा आना व्यर्थ होगा, क्योंकि तुम मिलने को तैयार ही नहीं हो। तुम्हारा एक कदम, तुम्हारी मिलने की तैयारी की

खबर देगा। बाकी मैं चल लूंगा।

आपका एक कदम चलना ही जरूरी है, बाकी तो परमात्मा चला ही हुआ है। लेकिन आपकी मिलने की तैयारी न हो, तो आप पर आक्रमण नहीं किया जा सकता।

परमात्मा अनाक्रमक है; वह प्रतीक्षा करेगा। फिर उसे समय की कोई जल्दी भी नहीं है। फिर आज ही हो जाय, ऐसा भी नहीं है। अनन्त तक प्रतीक्षा की जा सकती है। समय की कमी हमें है—उसे नहीं। समय की अड़चन हमें है। हमारा समय चुक रहा है, और हमारी शक्ति व्यय हो रही है। लेकिन, एक कदम हमारी तरफ से उठाया जाय, तो परमात्मा की तरफ से सारे कदम उठाये ही हुए हैं। वह एक कदम--भक्ति एक ही छलांग में उठा लेती है। और ज्ञान को उस एक कदम को उठाने के लिए हजारों कदम उठाने पड़ते हैं। क्योंकि ज्ञान कितने ही कदम उठाये, अन्त में उसे वह कदम तो उठाना ही पड़ता है, जो भक्ति पहले ही कदम पर उठाती है। और वह है--अहंकार विसर्जन।

ज्ञानी कोई कितना ही बड़ा हो जाय, एक दिन उसे ज्ञानी होने की अस्मिता भी छोड़नी पड़ती है। इसलिए सोक्रेटीज ने कहा है—कि ज्ञान का अंतिम चरण है--इस बात का अनुभव कि मैं ज्ञानी नहीं हूँ। ज्ञान की पूर्णता है इस प्रतीति में कि मुझसे बड़ा अज्ञानी और कोई भी नहीं है।

अगर ज्ञान की पूर्णता इस प्रतीति में है कि मैं अज्ञानी हूँ, तो इसका अर्थ क्या हुआ? इसका अर्थ हुआ कि भक्त जो कदम पहले ही उठा लेता है। ...भक्त पहले ही कदम पर अंधा हो जाता है, ज्ञानी अंतिम कदम पर अंधा होता है। बहुत यात्रा करके उसी द्वार पर आना होता है, जहाँ आदमी अपने को खोता है।

पर ज्ञानी बहुत चक्कर लेता है। बड़े शास्त्र हैं, बड़े सिद्धान्त हैं, बड़े वाद हैं--उन सबमें भटकता है। बड़े विचार हैं।...और जब तक ऊब नहीं जाता, और जब तक अपने ही विचारों से परेशान नहीं हो जाता, और जब तक उसे यह समझ में नहीं आ जाता कि मेरे विचार ही जाले की तरह मुझे बांधे हुए हैं, और मेरे विचार ही मेरी हथकड़ियाँ हैं, और मैंने अपने ही विचारों से अपना कारागृह निर्मित किया है, तब तक--तब तक--वह लम्बी भटकन से गुजरता है।

भक्त पहले ही कदम में अपने को छोड़ देता है। और जिस क्षण कोई अपने को छोड़ देता है, उसी क्षण परमात्मा उसे उठा लेता है।

भक्त का साहस अद्भुत है। साहस का एक ही अर्थ होता--अज्ञात में उतर जाना। साहस का एक ही अर्थ होता है--अनजान में उतर जाना।

ज्ञानी जान जानकर चलता है, सोच सोच कर कदम उठाता है। हिसाब रखता है। भक्त पागल की तरह कूद जाता है। इसलिए ज्ञानियों को भक्त सदा पागल

मालूम पड़े हैं। और उन भक्त पागलों ने हमेशा ज्ञानियों को व्यर्थ के उपद्रव में पड़ा हुआ समझा है।

ये जो भक्ति के सूत्र इस अध्याय में हम चर्चा करेंगे, इनमें ये बातें ध्यान रख लेनी जरूरी हैं।

ये प्रेम और पागलपन के सूत्र हैं। इनमें थोड़ा-सा आपको पिघलना पड़ेगा--अपनी बुद्धि की जगह से। थोड़ा आपका हृदय गतिमान हो और थोड़ी हृदय में तरंगें उठें, तो इन सूत्रों से सम्बध स्थापित हो जाएगा। आपके सिरों की बहुत जरूरत नहीं पड़ेगी, आपके हृदय की जरूरत होगी। आप अगर थोड़े से नीचे सरक आयेंगे--अपनी खोपड़ी से थोड़े हृदय की तरफ; सोच-विचार नहीं, थोड़े हृदय की धड़कन की तरफ निकट आ जाएँगे, तो इन सूत्रों से आपका सम्बंध और संवाद हो पायेगा।

और ऐसा नहीं है कि एक बार आपका हृदय समझ जाय, तो आपकी बुद्धि की कसौटी पर ये सूत्र नहीं उतरेंगे। उतरेंगे; लेकिन एक बार हृदय समझ जाय, एक बार आपके हृदय में इनके रस की थोड़ी-सी धारा बह जाय, तो फिर बुद्धि की भी समझ में आ जाएगी। लेकिन, सीधा अगर बुद्धि से प्रयोग करने की कोशिश की, तो बुद्धि बाधा बन जाएगी।

जैसा मैंने कहा, बहुत बार लगता है कि बुद्धि बिलकुल ठीक कह रही है। चूँकि हमें ठीक का कोई पता नहीं है--जो बुद्धि कहती है, उसी को हम ठीक मानते हैं।

सुना है मैंने : एक बहुत बड़ा तर्क-शास्त्री रात सोया हुआ था। उसकी पत्नी ने उसे उठाया और कहा कि 'जरा उठो, बाहर बहुत सरदी है और मैं गली जा रही हूँ। खिड़की बंद कर दो।' उसकी पत्नी ने कहा, 'देअर इज टू मच कोल्ड आउट साइड। गेट अप एण्ड क्लोज द विन्डो।' उस तर्क-शास्त्री ने कहा कि 'तू भी अजीब बातें कह रही है! क्या मैं खिड़की बन्द कर दूँ, तो बाहर गरमी हो जाएगी! इफ आइ क्लोज द विण्डो, विल आउट साइड गेट वार्म? क्या बाहर सरदी चली जाएगी--अगर मैं खिड़की बन्द कर दूँ?'

तर्क की लिहाज से बिलकुल ठीक बात है। उसकी पत्नी कह रही थी कि बाहर बहुत सरदी है, खिड़की बन्द कर दो। उस तर्क-शास्त्री ने कहा कि क्या खिड़की बन्द करने से बाहर गरमी हो जाएगी? खिड़की बन्द करने से बाहर गरमी नहीं होने वाली।' और पति सो गए।

तर्क की किताब में भूल खोजनी मुश्किल है। पत्नी ने जो कहा था, उसका जवाब दे दिया।...

हमारी जिंदगी में, हम अज्ञात के संबंध में जो तर्क उठाते है, वे करीब-करीब

ऐसे ही होते हैं। उनके जवाब दिये जा सकते हैं। और फिर भी जवाब व्यर्थ होते हैं। क्योंकि जिस संबंध में हम जवाब दे रहे हैं, उस संबंध में तर्कयुक्त हो जाना काफी नहीं है।

और तर्क की और एक असुविधा है कि तर्क कुछ भी सिद्ध कर सकता है। और तर्क कुछ भी असिद्ध कर सकता है। तर्क वेश्या की भाँति है। उसका कोई पति नहीं है। तर्क का कोई भी पति हो सकता है। जो भी तर्क को चुकाने को तैयार है पैसे, वही पति हो जाता है। इसलिए तर्क कोई भरोसे की नाव नहीं है।

आज तक दुनिया में ऐसा कोई तर्क नहीं दिया जा सका, जिसका खंडन न किया जा सके। और मजा यह है कि जो तर्क एक बात को सिद्ध करता है, वही तर्क उसी बात को असिद्ध भी कर सकता है।

मैंने सुना है : एक बड़ा तर्क-शास्त्री सुबह अपने बगीचे में बैठ कर नाश्ता कर रहा है। और जैसा कि अकसर होता है, तर्क-शास्त्री निराशावादी होता है। क्योंकि तर्क से कोई आशा की किरण तो निकलती नहीं। आशा की किरण तो निकलती है प्रेम से--जो अतर्क है। तर्क से तो केवल उदासी निकलती है। जिंदगी में क्या-क्या व्यर्थ है, वही दिखाई पड़ता है; और कहाँ-कहाँ काँटे हैं, वही अनुभव में आते हैं। फूलों को समझने के लिए तो हृदय चाहिए। काँटों को समझने के लिए बुद्धि काफी है--पर्याप्त है।

तर्क-शास्त्री निराशावादी था। वह चाय पी रहा था और अपने टोस्ट पर मक्खन लगा रहा था। तभी वह बोला कि 'दुनिया में इतना दुःख है, और दुनिया में सब चीजें गलत हैं--कि अगर मेरे हाथ से यह रोटी का टुकड़ा छूट जाय, तो मैं कितनी ही शर्त बद सकता हूँ...। अगर यह रोटी का टुकड़ा मेरे हाथ से छूटे, तो दुनिया इतनी बदतर है कि जिस तरफ मैंने मक्खन लगाया है, उसी तरफ से यह जमीन पर गिरेगा, ताकि धूल लग जाय और नष्ट हो जाय।

उसकी पत्नी ने कहा, ऐसा अनिवार्य नहीं है। दूसरी तरफ भी गिर सकता है!' तो उस तर्क-शास्त्री ने कहा, 'फिर तुझे पता नहीं कि जो संसार के ज्ञानी कहते रहे कि संसार दुःख है।

बात बढ़ गयी और शर्त भी लग गयी। तर्क-शास्त्री ने उठाया, रोटी का टुकड़ा। संयोग की बात, मक्खन की तरफ से नीचे नहीं गिरा। मक्खन की तरफ ऊपर रही और जिस तरफ मक्खन नहीं था, उस तरफ से फर्श पर गिरा। पत्नी ने कहा कि देखो, मैं शर्त जीत गयी।

तर्क-शास्त्री ने कहा कि 'तू तर्क...। न तो तू शर्त जीती और न मेरी बात गलत हुई। सिर्फ इससे इतना ही सिद्ध होता है कि मैंने गलत तरफ मक्खन लगाया।

टुकड़ा तो वहीं गिरा है--जैसा गिरना चाहिए। सिर्फ मक्खन मैंने दूसरी तरफ लगा लिया।'

तर्क का कोई भरोसा नहीं है। पर हम तर्क से जीते हैं और हम पूरी जिंदगी को तर्क के जाल से बुन लेते हैं। उसके बीच लगता है : हम बहुत बुद्धिमान हैं और अकसर उसी बुद्धिमानी में हम जीवन का वह सब खो देते हैं, जो हमें मिल सकता था।

भक्ति, तर्क के लिए अगम्य है। विचार के लिए सीमा के बाहर है। होशियारों का वहाँ काम नहीं। वहाँ नासमझ प्रवेश कर जाते हैं। तो नासमझ होने की थोड़ी तैयारी रखना।

अब हम सूत्र को लें।

'इस प्रकार भगवान् के वचनों को सुनकर अर्जुन बोला, 'हे कृष्ण, जो अनन्य प्रेमी, भक्त जन इस पूर्वोक्त प्रकार से निरंतर आपके भजन व ध्यान में लगे हुए आप सगुण रूप परमेश्वर को अति श्रेष्ठ भाव से उपासते हैं और जो अविनाशी सच्चिदानंदघन निराकार को ही उपासते हैं, उन दोनों प्रकार के भक्तों में अति उत्तम योगवेत्ता कौन है?'

अर्जुन ने पूछा : दो तरह के लोग देखता हूँ--दो तरह के साधक, दो तरह के खोजी। एक, वे जो देखते हैं कि आप निराकार हैं, आपका कोई रूप नहीं, कोई गुण नहीं, कोई सीमा नहीं, कोई आकृति नहीं। आपका कोई अवतार नहीं। आपको न देखा जा सकता, न छुआ जा सकता। वे, जो मानते हैं कि आप अदृश्य, विराट, असीम, निर्गुण, शक्तिरूप हैं, शक्ति मात्र हैं--ऐसे साधक, ऐसे योगी हैं। और वे भी हैं, जो आपको अनन्य प्रेम से भजते हैं, ध्यान करते हैं--आपके सगुण रूप का, आपके आकार का, आपके अवतरण का। इन दोनों में कौन श्रेष्ठ है?

अर्जुन यह पूछना चाह रहा है कि मैं किस राह से चलूँ। मैं खुद कौन-सी राह पकड़ूँ? मैं आपको निराकार की तरफ से स्पर्श करूँ कि साकार की तरफ से? मैं आपके प्रेम में पड़ जाऊँ और दीवाना हो जाऊँ या विचारपूर्वक आपके निराकार का ध्यान करूँ? मैं भक्ति में पड़ूँ--प्रार्थना-पूजा में, प्रेम में; या ध्यान में, मौन में, निर्विचार में? क्योंकि जो निराकार की तरफ जाय, उसे निर्विचार से चलना पड़ेगा।

सब विचार आकार वाले हैं और जहाँ तक विचार रह जाता है, वहाँ तक आकार भी रह जाएँगे। सभी विचार सगुण हैं। इसलिए विचार से निर्गुण तक नहीं पहुँचा जा सकता। तो सारे विचार छोड़ दूँ। खुद भी शून्य हो जाऊँ भीतर, ताकि आपके शून्य रूप का अनुभव हो सके।

और ध्यान रहे, जो भी अनुभव करना हो, वैसे ही हो जाना पड़ता है। समान

को ही समान का अनुभव होता है। जब तक मैं शून्य न हो जाऊँ, तब तक निराकार का कोई अनुभव न होगा। और जब तक मैं प्रेम ही न हो जाऊँ, तब तक साकार का कोई अनुभव न होगा। जो भी मुझे अनुभव करना है, वैसा ही मुझे बन जाना होगा।

इसलिए बुद्ध अगर कहते हैं : कोई ईश्वर नहीं है, तो उसका कारण है। क्योंकि बुद्ध का जोर है कि तुम शून्य हो जाओ। ईश्वर की धारणा भी बाधा बनेगी।

अगर तुम यह भी सोचोगे कि कोई ईश्वर है, तो यह भी विचार हो जाएगा और यह भी तुम्हारे मन के आकाश को घेर लेगा--एक बादल की भाँति। तुम इससे आच्छादित हो जाओगे। इतनी भी जगह मत रखो। तुम सीधे खाली आकाश हो जाओ--जहाँ कोई विचार का बादल न रह जाय--परमात्मा के विचार का भी नहीं।

बुद्ध कहते हैं, 'कोई मोक्ष नहीं है', क्योंकि मोक्ष की धारणा भी तुम्हारे मन में रह जाएगी, वह भी कामना बनेगी, इच्छा बनेगी; वह तुम्हारे मन को आच्छादित कर लेगी। तुम बिलकुल खाली, शून्य हो जाओ। तुम कोई धारणा, कोई विचार मत बनाओ। इसलिए बुद्ध ईश्वर को, मोक्ष को, आत्मा तक को इनकार कर देते हैं--इसलिए नहीं कि ईश्वर नहीं है; इसलिए नहीं कि आत्मा नहीं है; इसलिए भी नहीं कि मोक्ष नहीं है। बल्कि इसीलिए--ताकि तुम शून्य हो सको। और जिस दिन तुम शून्य हो जाओगे, तुमने जो पूछा था कि मोक्ष है या नहीं, पूछा था कि ईश्वर है या नहीं, वह तुम जान ही लोगे। इसलिए उसकी कोई चर्चा करनी बुद्ध ने जरूरी नहीं समझी। इस कारण बुद्ध को लोगों ने समझा--नास्तिक हैं।

असल में जो निराकार को मानता है, वह नास्तिक मालूम पड़ेगा ही। क्योंकि सभी आकार इनकार करने हैं। सभी आकार तोड़ डालने हैं। सारी मूर्तियाँ सारी प्रतिमाएँ चित्त से हटा देनी हैं। सारे मंदिर, मसजिद विदा कर देने हैं। कुछ भीतर न बचे। भीतर खालीपन रह जाय। उस खालीपन में ही निराकार का संस्पर्श होगा। क्योंकि जो मैं हो जाऊँ, उसको ही मैं जान सकूँगा। बुद्ध इनकार कर देंगे, ताकि आप शून्य ही जायँ।

अर्जुन पूछता है : ऐसे लोग हैं, ऐसे साधक, खोजी हैं, सिद्ध हैं, क्या वे उत्तम हैं? या वे लोग जो प्रेम से, अनन्य भक्ति से आपको खोजते हैं?

प्रेम की पकड़ बिलकुल दूसरी है। निर्विचार होना है, तो खाली होना पड़े। निराकार की तरफ जाना है, तो खाली होना पड़े--बिलकुल खाली। और अगर भक्ति से जाना है तो भर जाना पड़े--पूरा। उलटा है।

जो भी भीतर है, खाली कर दो, ताकि शून्य रह जाय--और शून्य में संस्पर्श

हो सके निराकार का।

भक्ति का मार्ग है उलटा। भक्ति कहती है : भर जाओ पूरे उसी से––परमात्मा से ही। वही तुम्हारे हृदय में धड़कने लगे; वही तुम्हारी श्वासों में हो; वही तुम्हारे विचारों में हो। निकालो कुछ भी मत; सभी को उसी में रूपान्तरित कर दो। तुम्हारा खून भी वही हो। तुम्हारी हड्डी और मांस, मज्जा भी वही हो। तुम्हारे भीतर रोआँ-रोआँ उसी का हो जाय। तुम उसी में श्वास लो, उसी में भोजन करो, उसी में उठो, उसी में बैठो। तुम में तुम जैसा कुछ भी न बचे। तुम उसी के रंग-रूप में हो जाओ। तुम उससे इतने भर जाओ कि तुम्हारे भीतर रत्ती भर जगह खाली न बचे।

ध्यान रखें, निराकार का साधक कहता है : तुम्हारे भीतर रत्ती भर जगह भरी न रहे; सब खाली हो जाय। जिस दिन तुम पूरे खाली हो जाओगे, उसी दिन वह घटना घट जाएगी, जिसकी तलाश है।

भक्ति का मार्ग कहता है : तुम्हारे भीतर जरा-सी भी जगह खाली न बचे। तुम इतने भर जाओ कि वही रह जाय, तुम न बचो। क्योंकि वह जो खाली जगह है–– उसी में तुम बच सकते हो। वह जो खाली जगह है, उसी में तुम छिप सकते हो। तो तुम्हारे विचार, तुम्हारे भाव, तुम्हारी धड़कनें––सब उसी की हो जायँ। अनन्य भक्ति का अर्थ यह होता है। जैसे प्रेमी अपनी प्रेयसी से भर जाता है या प्रेयसी अपने प्रेमी से भर जाती है, उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं बचता।

अगर आप प्रेम में हैं, तो यह सारा संसार खो जाता है, बस आपका प्रेमी बचता है। आप खाना भी खाते हैं, लेकिन खाते समय भी प्रेमी ही आपके भीतर होता है। आप रास्ते पर चलते भी हैं, बाजार में भी जाते हैं, दुकान पर भी बैठते हैं, काम भी करते हैं; सब होता रहता है; लेकिन भीतर चौबीस घंटे उसी की धुन बजती रहती है। प्रेमी मौजूद रहता है। उठने में, बैठने में, चलने में, सोते में, सपने में, वही छा जाता है। साधारण प्रेमी भी ..।

परमात्मा के प्रेम में पड़ना असाधारण प्रेम है। भक्त बचे ही न––इतना भर जाय।

अर्जुन पूछता है : ऐसे दो मार्ग हैं। बड़े उलटे मालूम पड़ते हैं। एक तरफ निराकार और निर्विचार होना है। और एक तरफ साकार आप हैं; और सब भाँति आपकी भक्ति से ही परिपूर्ण रूप से भर जाना है। घड़ा जरा भी खाली न रहे। कौन-सा मार्ग इनमें श्रेष्ठ है?

इस प्रश्न को पूछने में कई बातें छिपी हैं।

पहली बात : जरूरी नहीं है कि कृष्ण—अर्जुन के अलावा किसी और ने पूछा होता तो यही उत्तर देते। पहला तो आप यह खयाल में लें। जरूरी नहीं है कि अर्जुन के

अलावा किसी और ने पूछा होता, तो कृष्ण यही उत्तर देते। अगर बुद्ध जैसा व्यक्ति होता, तो कृष्ण यह कभी न कहते कि भक्ति का मार्ग ही श्रेष्ठ है। कृष्ण का उत्तर दूसरा होता।

अर्जुन सामने है। यह उत्तर वैयक्तिक है––ए पर्सनल कम्युनिकेशन। सामने खड़ा है अर्जुन। और जब कृष्ण उससे कहते हैं, तो इस उत्तर में अर्जुन समाविष्ट हो जाता है। इस कारण बड़ी अड़चन होती है। इस कारण गीता पर सैकड़ों टिकाएँ लिखी गयीं और बड़ा विवाद है कि कृष्ण ऐसा क्यों कहते हैं!

अगर शंकर लिखेंगे टीका, तो निश्चित ही उनको बड़ी अड़चन मालूम पड़ेगी कि भक्ति-योग श्रेष्ठ है। बहुत मुश्किल होगी। फिर तोड़-मरोड़ होगी। फिर कृष्ण के मुँह में ऐसे शब्द डालने पड़ेंगे, जो उनका प्रयोजन भी न हो। इस तोड़-मरोड़ के करने की कोई भी जरूरत नहीं है।

मेरी दृष्टि ऐसी है कि जब भी दो व्यक्तियों के बीच कोई संवाद होता है, तो उसमें बोलने वाला ही महत्त्वपूर्ण नहीं होता, सुनने वाला भी उतना ही महत्त्वपूर्ण होता है। क्योंकि जिससे बात कही गयी है, वह भी समाविष्ट है। जब कृष्ण कहते हैं कि भक्ति का मार्ग श्रेष्ठ है, तो पहली तो बात यह है कि अर्जुन के लिए भक्ति का मार्ग श्रेष्ठ है।

दूसरी बात यह जान लेनी चाहिए कि अर्जुन जैसे सभी लोगों के लिए भक्ति का मार्ग श्रेष्ठ है। और अर्जुन जैसे लोगों की संख्या बहुत बड़ी है। थोड़ी नहीं, सौ में निन्यानबे लोग ऐसे हैं, जिनके लिए भक्ति का मार्ग श्रेष्ठ है। क्योंकि निर्विचार होना अति दुरूह है। लेकिन प्रेम से भर जाना इतना दुरूह नहीं है। क्योंकि प्रेम एक नैसर्गिक उद्भावना है। और निर्विचार होने के लिए तो आपको बहुत सोचना पड़ेगा कि क्यों निर्विचार हों। लेकिन प्रेम से भरने के लिए बहुत सोचना न होगा। प्रेम एक स्वाभाविक भूख है।

निर्विचार कौन होना चाहता है? शायद ही कोई आदमी मिले। लेकिन प्रेम से कौन नहीं भर जाना चाहता है? शायद ही कोई आदमी मिले, जो प्रेम से न भर जाना चाहता हो।

जो आदमी प्रेम में जरा भी उत्सुक न हो—निराकार उसका रास्ता है। लेकिन आपकी अगर जरा-सी भी उत्सुकता प्रेम में हो, तो साकार आपका रास्ता है। क्योंकि जो आपके भीतर है, उसके ही रास्ते से चलना आसान है। और जो आपमें छिपा है, उसको ही रूपान्तरित करना सुगम है। और जो आपके भीतर अभी मौजूद ही है, उसी को सीढ़ी बना लेना उचित है।

प्रेम की गहन भूख है। आदमी बिना भोजन के रह जाय, बिना प्रेम के रहना

बहुत कठिन है। और जो लोग बिना प्रेम के रह जाते हैं, वे आदमी हो ही नहीं पाते।

अभी मनसविद् बहुत खोज करते हैं। और मनसविद् कहते हैं कि अब तक खयाल में भी नहीं था कि प्रेम के बिना आदमी जीवित न रह सकता है, न बढ़ सकता है न हो सकता है।

जिन बच्चों को माँ के पास न बड़ा किया जाय और बिलकुल प्रेमशून्य व्यवस्था में रखा जाय, वे बच्चे पनप नहीं पाते और शीघ्र ही मर जाते हैं। भोजन पूरा दिया जाय, चिकित्सा पूरी दी जाय, सिर्फ माँ की ऊष्मा, वह जो माँ की गरमी है प्रेम की, वह उनको न मिले। अगर उनको किसी और की गरमी और ऊष्मा और प्रेम दिया जाय, तो भी उनके भीतर कुछ कमी रह जाती है, जो जीवन भर उनका पीछा करती है।

मनसविद् कहते हैं कि जब तक हम इस जमीन पर और बेहतर माताएँ पैदा नहीं कर सकते, तब तक दुनिया को बेहतर नहीं किया जा सकता और प्रेमपूर्ण माताएँ जब तक हम पैदा नहीं करते, दुनिया में युद्ध बन्द नहीं किये जा सकते, घृणा बन्द नहीं की जा सकती, वैमनस्य बन्द नहीं किया जा सकता। क्योंकि आदमी के भीतर कुछ मौलिक तत्त्व, प्रेम के न मिलने से, अविकसित रह जाते हैं। और वह जो अविकसित तत्त्व भीतर रह जाता है, वही जीवन का सारा उपद्रव है। घृणा, हिंसा, क्रोध, हत्या, विध्वंस--सब उस अविकसित तत्त्व से पैदा होते हैं।

अगर आपके भीतर प्रेम की एक सहज स्वाभाविक भूख है...। जो कि है। आप प्रेम चाहते भी हैं, और आप प्रेम करना भी चाहते हैं। कोई आपको प्रेम करे--इसकी भी गहन कामना है। क्योंकि जैसे ही कोई आपको प्रेम करता है, आपके जीवन में मूल्य पैदा हो जाता है। लगता है: आप मूल्यवान हैं। जगत् आपको चाहता है। कम-से-कम एक व्यक्ति तो चाहता है। कम-से-कम एक व्यक्ति के लिए तो आप अपरिहार्य हैं। कम-से-कम कोई तो है, जो आपकी गैरमौजूदगी अनुभव करेगा; आपके बिना जो अधूरा हो जाएगा। आप न होंगे, तो इस जगत् में कहीं कुछ जगह खाली हो जाएगी--किसी हृदय में सही।

जैसे ही कोई आपको प्रेम करता है, आप मूल्यवान हो जाते हैं। अगर आपको कोई भी प्रेम नहीं करता, तो आपको कोई मूल्य नहीं मालूम पड़ता। आप कितने ही बड़े पद पर हों, और कितना ही धन इकट्ठा कर लें, और आपकी तिजोड़ी कितनी ही बड़ी होती जाय, लेकिन आप समझेंगे कि आप निर्मूल्य हैं; आपका कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि प्रेम के अतिरिक्त और कोई मूल्य का अनुभव होता ही नहीं।

लेकिन इतना ही काफी नहीं है कि कोई आपको प्रेम करे। इससे भी ज्यादा जरूरी है--कोई आपका प्रेम ले। ठीक जैसे आप श्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

सिर्फ आप श्वास लेते चले जायें, तो मर जायेंगे। आपको श्वास छोड़नी भी पड़ेगी। श्वास लेनी भी पड़ेगी, और श्वास छोड़नी भी पड़ेगी, तभी आप जिंदा और ताजे होंगे; और तभी आपकी श्वास नयी और जीवन्त होगी। प्रेम लेना भी पड़ेगा और प्रेम देना भी पड़ेगा। जो आदमी सिर्फ प्रेम लेता है, वह भी मर जाता है। उसने सिर्फ श्वास ली--श्वास छोड़ी नहीं।

इस दुनिया में दो तरह के मुरदे हैं: एक जो श्वास न लेने से मर गये हैं, और एक जो श्वास न देने से मर गये हैं। और जिंदा आदमी वही है, जो श्वास लेता भी उतने ही आनन्द से है, श्वास देता भी उतने आनन्द से है; तो जीवित रह पाते हैं।

प्रेम एक गहरी श्वास है; और प्रेम के बिना भीतर का जो गहन छिपा हुआ प्राण है, वह जीवित नहीं होता। इसकी भूख है। इसलिए प्रेम के बिना आप असुविधा अनुभव करेंगे।

यह प्रेम की भूख अध्यात्म बन सकती है--अगर यह प्रेम की भूख मूल की तरफ लौटा दी जाय; अगर यह प्रेम की भूख पदार्थ की तरफ से परमात्मा की तरफ लौटा दी जाय; अगर यह प्रेम की भूख परिवर्तनशील जगत् से शाश्वत की तरफ लौटा दी जाय, तो यह भक्ति बन जाती है।

इसलिए कृष्ण यह कहते हैं कि प्रेम का, भक्ति का मार्ग श्रेष्ठ है, तो उसके कारण हैं। एक तो, अर्जुन है और दूसरा, सारी मनुष्य जाति है। ऐसा व्यक्ति खोजना मुश्किल है, अतिमुश्किल है, जिसके लिए प्रेम का कोई भी मूल्य न हो।

जिसके लिए प्रेम का कोई भी मूल्य नहीं है, निर्विचार उसकी साधना होगी। वह अपने को शून्य कर सकता है। जिसका प्रेम माँग कर रहा है--पुष्पित पल्लवित होने की, बेहतर है कि वह भक्ति के द्वार से परमात्मा को, सत्य को खोजने निकले।

अर्जुन का यह पूछना अपने लिए ही है। लेकिन हम अकसर अपने को बीच में नहीं रखते--पूछते समय में। अर्जुन यह नहीं कह रहा है कि मेरे लिए कौन-सा मार्ग श्रेष्ठ है। अर्जुन कहता है: कौन-सा मार्ग श्रेष्ठ है। लेकिन उसकी गहन कामना अपने लिए ही है।

हमारे सारे प्रश्न अपने लिए ही होते हैं। आप जब भी कुछ पूछते हैं, तो आपका पूछना निर्वैयक्तिक नहीं होता; हो भी नहीं सकता। भला आप प्रश्न को कितना ही निर्वैयक्तिक बनायें, आप उसके भीतर खड़े होते हैं और आपका प्रश्न आपके संबंध में खबर देता है। आप जो भी पूछते हैं, उससे आपके संबंध में खबर मिलती है।

अर्जुन को यह सवाल उठा है कि कौन-सा है श्रेष्ठ मार्ग। यह सवाल इसलिए उठा है कि किस मार्ग पर मैं चलूँ। किस मार्ग से मैं प्रवेश करूँ। कौन से मार्ग से

मैं पहुँच सकूँगा? कृष्ण जो उत्तर दे रहे हैं, उसमें अर्जुन खयाल में है।

इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर कृष्ण ने कहा, 'अर्जुन, मेरे में मन को एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन व ध्यान में लगे हुए, जो भक्त जन अति श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त हुए मुझ सगुणरूप परमेश्वर को भजते हैं, वे मेरे को योगियों में भी अति उत्तम योगी मान्य हैं। अर्थात् उनको मैं अति श्रेष्ठ मानता हूँ।'

'मेरे में मन को एकाग्र करके, निरन्तर मेरे भजन व ध्यान में लगे हुए, जो भक्त जन अति श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त हुए, मुझ सगुण रूप परमेश्वर को भजते हैं ...।' इसमें बहुत-सी बातें समझ लेने जैसी हैं।

'मुझमें मन को एकाग्र करके ...।' क्या आपने कभी खयाल किया है कि एकाग्रता प्रेम की भूमि में सहज ही फलित हो जाती है? प्रेम की भूमि हो, तो एकाग्रता अपने आप अंकुरित हो जाती है।

असल में आप अपने मन को एकाग्र इसीलिए नहीं कर पाते, क्योंकि जिस विषय पर आप एकाग्र करना चाहते हैं, उससे आपका कोई प्रेम नहीं है। अगर एक विद्यार्थी मेरे पास आता है और कहता है, मैं पढ़ता हूँ--डॉक्टरी पढ़ता हूँ, इंजीनियरिंग पढ़ता हूँ, लेकिन मेरा मन नहीं लगता, मन एकाग्र नहीं होता; तो मैं पहली बात यही पूछता हूँ कि जो भी तू पढ़ता है, उससे तेरा प्रेम है? क्योंकि अगर प्रेम नहीं है, तो एकाग्रता असंभव है। और जहाँ प्रेम है, वहाँ एकाग्रता न हो--ऐसा असंभव है।

वही युवक कहता है कि उपन्यास पढ़ता हूँ, तो मन एकाग्र हो जाता है। फिल्म देखता हूँ, तो मन एकाग्र हो जाता है। तो जहाँ प्रेम है, वहाँ एकाग्रता हो जाती है। जहाँ लगाव है, वहाँ एकाग्रता हो जाती है। तो जब भी आप पायें कि किसी बात में आपकी एकाग्रता नहीं होती, तो एकाग्रता करने की कोशिश न करके इस बात को पहले समझने की कोशिश कर लेनी चाहिए कि मेरा प्रेम भी वहाँ है या नहीं है! प्रेम के लिए एकाग्रता का प्रश्न ही नहीं उठता।

अगर आइन्स्टीन अपने गणित को हल करता है, तो उसे एकाग्रता करनी नहीं पड़ती। गणित उसका प्रेम है। उसकी प्रेयसी भी बैठी रहे, तो वह प्रेयसी को भूल जाएगा और गणित को नहीं भूलेगा।

डॉक्टर राममनोहर लोहिया मिलने गये थे आइन्स्टीन को, तो छः घंटे उनको प्रतीक्षा करनी पड़ी। और आइन्स्टीन अपने बाथरूम में है और निकलता ही नहीं। आइन्स्टीन की पत्नी ने बार-बार उनको कहा कि आप चाहें तो जा सकते हैं; आपको बहुत देर हो गयी। और क्षमा याचना माँगी। लेकिन कोई उपाय नहीं है। यही संभावना है कि वह अपने टब बाथ में बैठकर गणित सुलझाने में लग गये हों।

छः घण्टे बाद आइन्स्टीन बाहर आया। वह बहुत प्रसन्न था, क्योंकि कोई पहेली हल हो गयी थी। खाना भूल जाएगा, पत्नी भूल जाएगी, लेकिन वह जो गणित की पहेली है, वह नहीं भूलेगी।

जहाँ प्रेम है, वहाँ एकाग्रता सहज फलित हो जाती है। एकाग्रता प्रेम की छाया है। आप चाहें भी तो फिर मन की एकाग्रता को तोड़ नहीं सकते। इसीलिए तो, जब आप किसी के प्रेम में होते हैं और उसे भुलाना चाहते हैं, तो बड़ी मुश्किल हो जाती है। जिससे प्रेम नहीं है, उसे याद करना जितना मुश्किल है, उससे ज्यादा मुश्किल है, जिससे प्रेम है उसे भुलाना।

जिससे प्रेम है, उसे भुलाइयेगा कैसे? कोई उपाय नहीं है। भुलाने की कोशिश भी बस, उसको याद करने की कोशिश बन कर रह जाती है। और भुलाने में भी उसकी याद ही आती है और कुछ भी नहीं होता। और भुलाने में भी याद मजबूत होती है, पुनरुक्त होती है।

जहाँ प्रेम है, वहाँ एकाग्रता छाया की तरह चली आती है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, 'मेरे में मन को एकाग्र कर के...।' एकाग्रता का अर्थ ही है, मुझमें अपने प्रेम को पूरी तरह डुबाकर, मुझमें अपने हृदय को पूरी तरह रखकर--या अपने को गंवाकर, अपने को खोकर; मैं ही बचूं; रोआँ-रोआँ मेरी ही याद करे। 'मेरे भजन और ध्यान में लगे हुए...।' मेरा ही गीत, मेरा ही नृत्य, उठते-बैठते जीवन की सारी क्रिया मेरी ही स्मृति बन जाय। जहाँ भी देखे मैं दिखायी पड़ूँ।

अगर आपने कभी किसी को प्रेम किया है...। 'अगर' इसलिए कहता हूँ, क्योंकि प्रेम की घटना कम होती है। प्रेम की चर्चा बहुत होती है, प्रेम की कहानियाँ बहुत चलती हैं, प्रेम की फिल्में बहुत बनती हैं। वे बनती ही इसलिए हैं कि प्रेम नहीं रहा है, वे सब्स्टिटयूट हैं।

भूखा आदमी भोजन की बात करता है। जिसके पास भोजन पर्याप्त है, वह भोजन की बात नहीं करता। नंगे आदमी कपड़े की चर्चा करते हैं और जब कोई आदमी कपड़े की चर्चा करते मिले, तो समझना कि नँगा है--भला कितने हो कपड़े पहने हो। क्योंकि हम जो नहीं पूरा कर पाते जीवन में, उसको हम विचार कर कर के पूरा करने की कोशिश करते हैं।

आज सारी जमीन पर प्रेम की इतनी चर्चा होती है, इतने गीत लिखे जाते हैं, इतनी किताबें लिखी जाती हैं, उसका कुल मात्र कारण इतना है कि जमीन पर प्रेम सूखता चला जा रहा है। अब चर्चा करके ही, फिल्म देखकर ही अपने को समझाना-सुलझाना पड़ा रहा है।

इसलिए कहता हूँ कि अगर आपने किसी को कभी प्रेम किया हो, तो एक बात

आपके खयाल में आयी होगी कि आप जहाँ भी देखें, आपको अपने प्रेमी की भनक अनुभव होगी : अगर प्रेमी आकाश में देखे, तो तारों में उसकी प्रेयसी की आँख उसे दिखायी पड़ेगी। सागर की लहरों को सुने, तो प्रेयसी की प्रतीति होगी। फूलों को खिलता देखे, कि कहीं कोई गीत सुने, कि कहीं कोई वीणा का स्वर सुने, कि सुबह पक्षी गीत गाये, कि सूरज निकले, कि कुछ भी, इससे फर्क नहीं पड़ेगा। सब तरफ से उसे एक ही खबर मिलती रहेगी और एक ही स्मरण पर चोट पड़ती रहेगी, और उसके हृदय में एक ही धुन बजती रहेगी।

जब कोई परमात्मा की तरफ इस भाँति झुक जाता है कि फूल में वही दिखायी पड़ने लगता है, आकाश में उड़ते पक्षी में वही दिखायी पड़ने लगता है, कि घास पर जमी हुई सुबह की ओस में वही दिखायी पड़ने लगता है, तब समझना--भजन पूरा हुआ।

भजन का मतलब है : वही दिखायी पड़ता हो सब जगह। ऐसा मुँह से राम-राम कहते रहने से भजन नहीं होता। वह भी सब्स्टिटयूट है। जब अस्तित्व में अनुभव नहीं होता, तो आदमी मुँह से कहकर परिपूर्ति कर लेता है।

एक आदमी सुबह से राम-राम कहता चला जा रहा है। पास में खिले फूल में उसे राम नहीं दिखायी पड़ता! आकाश में सूरज ऊग रहा है, उसे राम नहीं दिखायी पड़ता। वह अपने होठों से ही राम-राम किये चला जा रहा है। बुरा नहीं है; कुछ और कहने से बेहतर ही है। कुछ न कुछ तो वह कहेगा ही। होंठ कुछ न कुछ करेंगे ही। बेहतर है; कुछ बुरा नहीं है; लेकिन यह भजन नहीं है।

भजन तो यह है कि चारों तरफ जो भी हो रहा है, वह सभी राममय हो जाय और सभी में वही दिखायी पड़ने लगे।

जब तक आपको मन्दिर में ही भगवान् दिखायी पड़ता है, तब तक समझना कि अभी आपको भगवान् के मन्दिर का कोई पता नहीं है। जब तक आपको किसी बँधी हुई मूर्ति में ही उसकी प्रतीति होती है, तब तक समझना कि अभी आपको कोई पता ही नहीं है, अन्यथा सभी मूर्तियाँ उसकी हो जाएँगी। अनगढ़ पत्थर भी उसी की मूर्ति होगी। रास्ते के किनारे पड़ी हुई चट्टान भी उसी की मूर्ति होगी। क्योंकि भजन से भरे हुए हृदय को सब तरफ वही सुनायी पड़ने लगता है।

यह जगत् एक प्रतिध्वनि है। जो हमारे हृदय में होता है, वही हमें सुनायी पड़ने लगता है।

सुना है मैंने कि फ्रायड के पास, सिग्मन्ड फ्रायड के पास एक मरीज आया। उसके दिमाग में कुछ खराबी थी, और घर के लोग परेशान थे। तो फ्रायड सबसे पहले फिक्र करता था कि इस आदमी में कोई काम विकार, इसके सेक्स में कोई

ग्रन्थि, कोई उलझाव तो नहीं है। क्योंकि आमतौर से सौ मानसिक बीमारियों में नब्बे बीमारियाँ तो काम-ग्रंथि से पैदा होती हैं। कहीं न कहीं सेक्स एनर्जी, काम-ऊर्जा उलझ गयी होती है और उसकी वजह से मानसिक बीमारी पैदा होती है। तो फ्रायड पहले फिक्र करता था कि इसके संबंध में जाँच-पड़ताल कर ले।

सामने से एक घोड़े पर एक सवार जा रहा था। फ्रायड ने उससे पूछा...। फ्रायड के सिद्धान्तों का एक हिस्सा था--फ्री एसोसिएशन ऑफ थाट्स--विचार का स्वतंत्र प्रवाह; उससे अनुभव में आता है कि आदमी के भीतर क्या चल रहा है। उसने अचानक उस मरीज से पूछा कि 'देखो, वह घोड़े पर सवार जा रहा है। तुम्हें एकदम से घोड़े पर सवार को देखकर किस बात की याद आती है--एकदम। सोचकर नहीं—एकदम--जो भी याद आती हो, मुझे कह दो।' उसने कहा कि 'मुझे औरत की याद आती है। स्त्री दिखायी पड़ती है।' फ्रायड दूसरी बातों में लग गया।

एक पक्षी आकर खिड़की पर बैठकर आवाज करने लगा, तो फ्रायड ने फिर बातचीत तोड़कर कहा कि 'यह पक्षी आवाज कर रहा है, इसे सुनकर तुम्हें किस बात की याद आती है?' उसने कहा कि 'औरत की याद आती है।'

फ्रायड भी थोड़ा बेचैन हुआ। हालाँकि उसके सिद्धान्त के अनुसार ही चल रहा था यह आदमी। तभी फ्रायड ने अपनी पेंसिल जो हाथ में ले रखी थी, छोड़ दी, फर्श पर पटक दी और कहा : इस पेंसिल को गिरते देखकर तुम्हें किस चीज की याद आती है।' उस आदमी ने कहा, 'मुझे औरत की याद आती है।' फ्रायड ने कहा, 'क्या कारण है--तुम्हें औरत का हर चीज में याद आने का?' उस आदमी ने कहा, 'मुझे और किसी चीज की याद ही नहीं आती। ये सब बेकार की चीजें आप कर रहे हैं--घोड़ा, पक्षी—कि पेंसिल। इतना परेशान होने की जरूरत नहीं। मुझे और किसी चीज की याद ही नहीं आती।'

काम-वासना से भरे आदमी को ऐसा होगा। काम-वाससा भीतर हो, तो सारा जगत् स्त्री हो गया। जगत् प्रतिध्वनि है। अगर आप लोभ से भरे हैं, तो आपको चारों तरफ, बस अपने लोभ का विस्तार--धन ही दिखायी पड़ेगा।

ऐसा करें कि किसी दिन उपवास कर लें, फिर सड़क पर निकल जायें। आपको सिवाय होटलों और रेस्तराँ के बोर्ड के कुछ भी दिखायी न पड़ेगा। रास्ते से आप रोज निकले थे, जिस होटल पर बोर्ड आपने कभी नहीं पढ़ा था, आज उसको बड़े रस से पढ़ेंगे। आज भीतर उपवास है, भीतर भूख है और भोजन अतिशय महत्व-पूर्ण हो गया है; आपको भोजन ही दिखायी पड़ेगा।

जर्मन कवि हेनरिक हेन ने लिखा है कि एक दफा मैं जंगल में भटक गया और

तीन दिन तक भोजन न मिला। हमेशा जब भी पूर्णिमा का चाँद निकलता था, तो मुझे अपनी प्रेयसी की तस्वीर दिखायी पड़ती थी। उस दिन भी पूर्णिमा का चाँद निकला, मुझे लगा कि एक रोटी, सफेद रोटी आकाश में दिखायी पड़ती है। प्रेयसी वगैरह दिखायी नहीं पड़ी। सफेद रोटी!

जो भीतर है, वह चारों तरफ प्रतिध्वनित होने लगता है। यह जगत् आपकी प्रतिध्वनि है। इस जगत् में चारों तरफ दर्पण लगे हैं--जिनमें आपकी तस्वीर ही आपकी दिखायी पड़ती है।

भजन का अर्थ है: जब आपके भीतर भगवान् का प्रेम गहन होता है, तो सब तरफ उसकी प्रतिध्वनि सुनायी पड़ने लगती है। फिर आप जो भी करते हैं, वह भजन है। कबीर ने कहा है, उठूँ, बैठूँ, चलूँ--सब तेरा भजन है। इसलिए अब अलग से करने की कोई जरूरत न रही।

'मेरे में मन को एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन व ध्यान में लगे हुए जो भक्त-जन अतिश्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त हुए...।' अतिश्रेष्ठ श्रद्धा क्या है? एक तो श्रद्धा है, जो तर्क पर ही निर्भर होती है। वह श्रेष्ठ श्रद्धा नहीं है। क्योंकि उसका वास्तविक सहारा बुद्धि है। अभी भी छलाँग नहीं हुई। लोगों ने ईश्वर के होने के प्रमाण दिये हैं, जो उन प्रमाणों को मानकर श्रद्धा लाते हैं, उनकी श्रद्धा निकृष्ट श्रद्धा है।

जैसे पश्चिम में, पूर्व में अनेक दार्शनिक हुए, जिन्होंने प्रमाण दिये हैं कि ईश्वर क्यों हैं। अनेक प्रमाण दिये हैं। कोई कहता है, इसलिए ईश्वर को मानना जरूरी है, क्योंकि अगर वह न हो, तो जगत् को बनाया किसने? जब जगत् है, तो बनानेवाला होना चाहिए। जैसे कुम्हार घड़ा बनाता है, तो कुम्हार भी होना चाहिए, नहीं तो घड़ा कैसे होगा!

तर्क देनेवालों ने कहा है कि जगत् में प्रयोजन दिखायी पड़ता है। जगत् प्रयोजन हीन नहीं मालूम पड़ता। जगत् में एक्सिडेंट नहीं मालूम पड़ता; एक सिस्टम, एक व्यवस्था मालूम पड़ती है। जरूर कोई व्यवस्थापक होना चाहिए। जगत् चैतन्य मालूम पड़ता है। यहाँ मन है, विचार है, चेतना है। यह चेतना पदार्थ से पैदा नहीं हो सकती। तो जगत् के पीछे कोई चैतन्य हाथ होना चाहिए।

हजारों तर्क इस तरह के लोगों ने ईश्वर के होने के दिये हैं, और अगर आप इन तर्कों के कारण ईश्वर को मानते हैं, तो आपकी श्रद्धा निकृष्ट श्रद्धा है। निकृष्ट इसलिए कि सब तर्क कमजोर हैं और सब खण्डित किये जा सकते हैं। इनमें कोई भी तर्क ऐसा नहीं है, जिसका खण्डन न किया जा सके। और जिस तर्क से आप सिद्ध करते हैं ईश्वर को, उसी तर्क से ईश्वर को असिद्ध किया जा सकता है।

जैसे कि आस्तिक हमेशा कहते रहे हैं कि जब भी कोई चीज हो, तो उसका

बनाने वाला चाहिए--क्रिएटर, स्रष्टा चाहिए। तो चार्वाक ने कहा है कि अगर हर चीज का बनाने वाला चाहिए, तो तुम्हारे ईश्वर को बनाने वाला कौन है? वही तर्क है। आस्तिक नाराज हो जाता है--इस तर्क से। लेकिन इसी तर्क पर उसकी श्रद्धा खड़ी है। वह कहता है: बनाने वाला चाहिए, स्रष्टा चाहिए; सृष्टि है, तो स्रष्टा चाहिए। बिना स्रष्टा के यह सब बनेगा कैसे?

नास्तिक कहता है, 'हम मानते हैं आपके तर्क को, लेकिन ईश्वर को कौन बनायेगा?' वहाँ आस्तिक को बेचैनी शुरू हो जाती है। इस बात को वह कहता है--कुतर्क। अगर यह कुतर्क है, तो पहला तर्क कैसे हो सकता है! और नास्तिक कहता है, 'अगर ईश्वर बिना बनाये हो सकता है, तो फिर जगत् को भी बिना बनाये होने में कौन-सी अड़चन है। अगर ईश्वर बिना बनाया है, अनक्रिएटेड है, अस्रष्ट है, तो फिर फिजूल की बात में क्यों पड़ना; यह जगत् ही अस्रष्ट मान लेने में हर्ज क्या है? जब अस्रष्ट को मानना ही पड़ता है, तो फिर इस प्रत्यक्ष जगत् को ही मानना उचित है। इसके पीछे और छिपे हुए रहस्यमय को व्यर्थ बीच में लाने की क्या जरूरत है!

ऐसा कोई भी तर्क नहीं है, जो नास्तिक न तोड़ देते हों। इसलिए आस्तिक नास्तिकों से डरते हैं। इसलिए नहीं कि वे आस्तिक हैं; आस्तिक होते तो न डरते। निकृष्ट आस्तिक हैं। उनके जिन तर्कों पर आधार है ईश्वर आस्था का, वे सब तर्क तोड़े जा सकते हैं--और नास्तिक उन्हें तोड़ता है। इसलिए नास्तिक से बड़ा भय है।

और आज जो जमीन पर इतनी ज्यादा नास्तिकता दिखायी पड़ रही है, वह इसलिए नहीं कि दुनिया नास्तिक हो गयी है।

वह जो निकृष्ट आस्तिकता थी, वह मुश्किल में पड़ गयी है। दुनिया ज्यादा तर्कवान हो गयी है। जिन तर्कों से आप ईश्वर को सिद्ध करते थे, उन्हीं से अब लोग ईश्वर को असिद्ध कर रहे हैं।

दुनिया ज्यादा तर्कवान हो गयी है, ज्यादा विचारशील हो गयी है। इसलिए अब धोखा नहीं दिया जा सकता। अब आपको तर्क को उसकी पूरी अंतिम स्थिति तक ले जाना पड़ता है। अड़चन हो जाती है।

श्रेष्ठ श्रद्धा क्या है? जो तर्क पर खड़ी नहीं है--अनुभव पर खड़ी है। जो विचार पर खड़ी नहीं है--प्रतीति पर खड़ी है। जो यह नहीं कहती कि 'इस कारण' ईश्वर होना चाहिए। जो कहती है कि ऐसा अनुभव है--कि ईश्वर है। होना चाहिए नहीं--है।

अरविन्द को किसी ने पूछा कि 'क्या ईश्वर में आपका विश्वास है?' तो अरविन्द ने कहा, 'नहीं।' जिसने पूछा था, यह बहुत हैरान हुआ। उसने पूछा था, 'डू

यू बिलीव इन गॉड,' और अरविन्द में कहा, 'नो।' सोचकर आया था दूर से वह खोजी कि कम से कम एक अरविन्द तो ऐसा व्यक्ति है, जो मेरा ईश्वर में भरोसा बढ़ा देगा। और अरविन्द से यह सुनकर कि नहीं...। उसकी बेचैनी हम समझ सकते हैं। उसने कहा, 'आप क्या कह रहे हैं! ईश्वर नहीं है, विश्वास नहीं है ? तो क्या ईश्वर नहीं है ? तो अरविन्द ने कहा, 'नहीं; ईश्वर है। लेकिन मुझे उसमें विश्वास की जरूरत नहीं है। क्योंकि मैं जानता हूँ--वह है। एन्ड दिस इज नॉट ए बिलीव; आइ नो--ही इज।' यह थोड़ा सोचने जैसा है।

हम विश्वास ही उन चीजों में करते हैं, जिनका हमें भरोसा नहीं है। आप सूरज में विश्वास नहीं करते। पृथ्वी में विश्वास नहीं करते। मैं यहाँ बैठा हूँ। इसमें आप विश्वास नहीं करते। आप जानते हैं कि मैं यहाँ बैठा हूँ। आप ईश्वर में विश्वास करते हैं, क्योंकि आप जानते नहीं कि ईश्वर है--या नहीं है।

जहाँ भरोसा नहीं है, वहाँ विश्वास। यह जरा उलटा लगेगा, पैराडॉक्सिकल लगेगा। क्योंकि हम तो विश्वास का मतलब ही भरोसा समझते हैं। जब कोई आदमी आपसे आकर कहे कि मुझे आपमें पक्का विश्वास है, तब आप समझ लेना कि इस आदमी को आपमें विश्वास नहीं है। नहीं तो 'पक्का विश्वास' कहने की जरूरत न थी। भरोसा, विश्वास शब्द का उपयोग ही नहीं करता। और जब कोई आदमी बहुत ही ज्यादा जोर देने लगे कि नहीं, पक्का ही विश्वास है, तब आप अपनी जेब वगैरह से सावधान रहें। वह आदमी कुछ भी कर सकता है। और उस आदमी को घर में मत ठहरने देना, क्योंकि इतना ज्यादा विश्वास खतरनाक है। वह बता रहा है कि, वह भरोसा दिला रहा है आपको कि विश्वास है। उसे विश्वास नहीं है।

जिस दिन कोई प्रेमी बार-बार कहने लगे कि 'मुझे बहुत प्रेम है, मुझे बहुत प्रेम है,' उस दिन समझना कि प्रेम चुक गया। जब प्रेम होता है, तो कहने की जरूरत ही नहीं पड़ती; अनुभव में आता है। जब प्रेम होता है, तो उसकी तरंगें अनुभव होती हैं। जब प्रेम होता है, तो उसकी सुगन्ध अनुभव में आती है। जब प्रेम होता है, तो वाणी बहुत कचरा मालूम पड़ती है; कहने की जरूरत नहीं होती कि मुझे प्रेम है। जब प्रेम चुक जाता है...। इसलिए अकसर प्रेमी और प्रेयसी एक दूसरे से नहीं कहते कि मुझे बहुत प्रेम है। पति पत्नी अकसर कहते हैं : मुझे बहुत प्रेम है। रोज-रोज भरोसा दिलाना पड़ता है--अपने को भी, दूसरे को भी, क्योंकि है तो नहीं। अब भरोसा दिला-दिला कर ही अपने को समझाना पड़ता है और दूसरे को भी समझाना पड़ता है।

जिस बात की कमी होती है, उसको हम विश्वास से पूरा करते हैं। अरविन्द ने ठीक कहा कि मैं जानता हूँ, वह है। उसके होने के लिए कोई तर्क की जरूरत नहीं है। उसके होने के लिए अनुभव की जरूरत है।

क्या है अनुभव उसके होने का ? और आपको नहीं हो पाता अगर अनुभव, तो बाधा क्या है ? ऐसा ही समझें कि सागर के किनारे खड़े हैं; लहरें उठती हैं। हर लहर समझ सकती है कि मैं हूँ। लेकिन लहर है नहीं; है तो सिर्फ सागर। अभी लहर है, अभी नहीं होगी; अभी नहीं थी, अभी है, अभी नहीं हो जाएगी। लहर का होना क्षणभंगुर है। लेकिन लहर के भीतर वह जो सागर है, वह शाश्वत है। आप अभी नहीं थे, अभी हैं, अभी नहीं हो जाएँगे। आप एक लहर से ज्यादा नहीं हैं।

इस जगत् के सागर में, इस होने के सागर में, अस्तित्व के सागर में आप एक लहर हैं। लेकिन लहर अपने को मान लेती है कि मैं हूँ। और जब लहर अपने को मानती है : मैं हूँ, तभी इस सागर को भूल जाती है। स्वयं को मान लेने में परमात्मा विस्मरण हो जाता है, क्योंकि लहर अपने को मानेगी, वह सागर को कैसे याद रख सकती है ! इसे थोड़ा समझ लें।

लहर अगर अपने को मानती है कि मैं हूँ, तो उसे मानना ही पड़ेगा कि सागर नहीं है। क्योंकि अगर उसे सागर दिखायी पड़ जाय कि सागर है, तो उसे अपने भीतर भी सागर ही दिखायी पड़ेगा, फिर अपने को अलग मानने का उपाय न रह जाएगा। अपने अहंकार को बचाना चाहती हो, तो सागर को इनकार करना जरूरी है। उसे कहना चाहिए, 'सागर वगैरह सब बातचीत है; कहीं देखा तो नहीं।' और आप भी जानते हैं, सागर आपने भी नहीं देखा। दिखायी तो हमेशा लहरें ही पड़ती हैं। सागर तो हमेशा नीचे छिपा है; दिखायी कभी नहीं पड़ता। जब भी दिखायी पड़ती है, लहर दिखायी पड़ती है। तो लहर कहेगी, 'सागर को देखा किसने है ? किसी ने कभी नहीं देखा। सिर्फ बातचीत है। दिखती हमेशा लहर है। मैं हूँ--और सागर सिर्फ कल्पना है।'

लेकिन लहर अगर अपने भीतर भी प्रवेश कर जाय, तो सागर में प्रवेश कर जाएगी। क्योंकि उसके भीतर सागर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। लहर सागर की ही एक तरंग है। लहर होकर भी लहर सागर ही है। सिर्फ आकृति में थोड़ा-सा फर्क पड़ा है। सिर्फ आकार निर्मित हुआ है।

जब कोई व्यक्ति अपने अस्तित्व को ठीक से समझ पाता है, अपने को भी समझ पाता है ठीक से, तो लहर खो जाती है और सागर प्रकट हो जाता हैं। या अगर कोई व्यक्ति किसी दूसरे को भी ठीक से समझ पाता है, तो लहर खो जाती है और सागर प्रकट हो जाता है।

अगर आप किसी के गहरे प्रेम में हैं, तो जिस क्षण गहरा प्रेम होगा, उस क्षण

उस व्यक्ति की लहर खो जाएगी और उस लहर में आपको सागर दिखायी पड़ेगा। इसलिए अगर प्रेमियों को अपने प्रेमियों में परमात्मा दिखायी पड़ गया है, तो आश्चर्य नहीं है। दिखायी पड़ना ही चाहिए। और वह प्रेम, प्रेम ही नहीं है, जिसमें लहर न खो जाय और सागर का अनुभव न होने लगे।

दूसरें में भी दिखायी पड़ सकता है। स्वयं में भी दिखायी पड़ सकता है। जहाँ भी ध्यान गहरा हो जाय, वहीं दिखायी पड़ सकता है। ऐसी प्रतीति जब आपको हो जाय सागर की, तो उस प्रतीति से जो श्रद्धा का जन्म होता है, वह विश्वास नहीं है। दैट्स नाट ए बिलीव। श्रद्धा कोई विश्वास नहीं है। श्रद्धा एक अनुभव है। और तब यह सारी दुनिया के तर्क आपसे कहें कि परमात्मा नहीं है, तो भी आप हँसते रहेंगे। और सारे तर्क सुनने के बाद भी आप कहेंगे, 'ये सारे तर्क बड़े प्यारे हैं और मजेदार हैं, मनोरंजक हैं। लेकिन परमात्मा है, और इन तर्कों से वह खण्डित नहीं होता।

ध्यान रहे, न तो तर्कों से वह सिद्ध होता है और न तर्कों से वह खण्डित होता है। जो लोग समझते हैं कि तर्कों से वह सिद्ध होता है, वे हमेशा मुश्किल में पड़ेंगे; क्योंकि फिर तर्कों से मानना पड़ेगा कि वह खण्डित भी हो सकता है। जो चीज तर्क से सिद्ध होती है, उसे तर्क से टूटने को भी तैयारी रखनी चाहिए। और जिस चीज के लिए आपके प्रमाण की जरूरत है, वह आपके प्रमाण के हट जाने पर खो जाएगी।

परमात्मा को आपके प्रमाणों की कोई भी जरूरत नहीं है। परमात्मा का होना आपका निर्णय नहीं है, आपके गणित का निष्कर्ष नहीं है। परमात्मा का होना आपके होने से पूर्व है और परमात्मा का होना अभी, इस क्षण में भी आपके होने के भीतर वैसा ही छिपा है, जैसे लहर के भीतर सागर छिपा है।

आप जब नहीं थे, तब क्या था? जब आप नहीं थे, तो आपके भीतर जो आज है, वह कहाँ था? क्योंकि जो भी है, वह नष्ट नहीं होता। नष्ट होने का कोई उपाय नहीं है। विनाश असंभव है। विज्ञान भी स्वीकार करता है कि जगत् में कोई भी चीज विनष्ट नहीं हो सकती। क्योंकि विनष्ट होकर जाएगी कहाँ? भेजियेगा कहाँ उसे? पानी के एक बूंद को नष्ट नहीं कर सकते। भाप बन सकती है, लेकिन भाप बनकर रहेगी। भाप को भी तोड़ सकते हैं, तो हाइड्रोजन-ऑक्सीजन बनकर रहेगी। लेकिन आप नष्ट नहीं कर सकते। एक पानी की बूंद भी जहाँ नष्ट नहीं होती, वहाँ...। आप, जब कल नहीं थे, तो कहाँ थे?

झेन प्रणाली में, जापान में साधकों को वे एक पहेली देते हैं। उसे वे कहते हैं—कोआन। वे कहते हैं कि जब तुम नहीं थे, तो कहाँ थे, इसकी खोज करो। और

जब तुम पैदा नहीं हुए थे, तो तुम्हारा चेहरा कैसा था, इस पर ध्यान करो। और जब तुम मर जाओगे, तो तुम कहाँ पहुँचोगे, इसकी थोड़ी खोज करो। क्योंकि जब तक तुम्हें इसका पता न चल जाय कि जन्म के पहले तुम कहाँ थे और मरने के बाद तुम कहाँ रहोगे, तब तक तुम्हें यह भी पता नहीं चल सकता कि इसी क्षण अभी तुम कहाँ हो।

अभी भी तुम्हें पता नहीं है। हो भी नहीं सकता। क्योंकि लहर भर का तुम्हें पता है--जो अभी नहीं थी, अभी है, अभी नहीं हो जाएगी। उस सागर का कोई पता नहीं है, जो था--इस लहर के पहले थी, अभी भी है और लहर मिट जाएगी, तब भी होगा। सिर्फ आकार मिटते हैं जगत् में--अस्तित्व नहीं।

हम आकार हैं और आकार के भीतर छिपा हुआ जो अस्तित्व है, वह परमात्मा है।

श्रेष्ठ श्रद्धा उस श्रद्धा का नाम है जो इस प्रतीति, इस साक्षात से जन्म पाती है। यह किसी शास्त्र से पढ़ा हुआ, किसी गुरु का कहा मान लेने से नहीं होगा। यह आपके ही जीवन-अनुभव का हिस्सा बनना चाहिए। यह आपको ही प्रतीत होना चाहिए। अगर परमात्मा आपका निजी अनुभव नहीं है, तो आपकी आस्तिकता थोथी है। उसकी कोई कीमत नहीं है। वह कागज की नाव है, उससे भवसागर पार करने की कोशिश मत करना। उसमें बुरी तरह डूबेंगे। उससे तो किनारे भी बैठे रहना, वही अच्छा।

अनुभव की नाव ही वास्तविक नाव है।

'मेरे में मन को एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन व ध्यान में लगे हुए जो भक्तजन अतिश्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त मुझ सगुणरूप परमेश्वर को भजते हैं, वे मेरे को योगियों में भी अति उत्तम योगी मान्य हैं। अर्थात् उसको मैं अति श्रेष्ठ मानता हूँ।'

प्रेम परम योग है। प्रेम से श्रेष्ठ कोई अनुभव नहीं है। और इसलिए भक्ति श्रेष्ठतम मार्ग बन जाती है, क्योंकि वह प्रेम का ही रूपान्तरण है।

पाँच मिनट रुकेंगे। कीर्तन करेंगे और फिर जाएँगे। कोई भी बीच में उठे न। और जब तक कीर्तन पूरा न हो जाय, यहाँ धुन बंद न हो जाय, तब तक बैठे रहें। और सम्मिलित हों। कौन जाने कोई धुन आपके हृदय को भी पकड़ ले और भक्ति का जन्म हो जाय।

प्रार्थना है अहोभाव • भक्ति की प्रक्रिया • अनुभव की पात्रता
दो मार्ग : साकार और निराकार

दूसरा प्रवचन

क्रॉस मैदान, पारसी कुआँ, बम्बई, संध्या, दिनांक १३ मार्च, १९७३
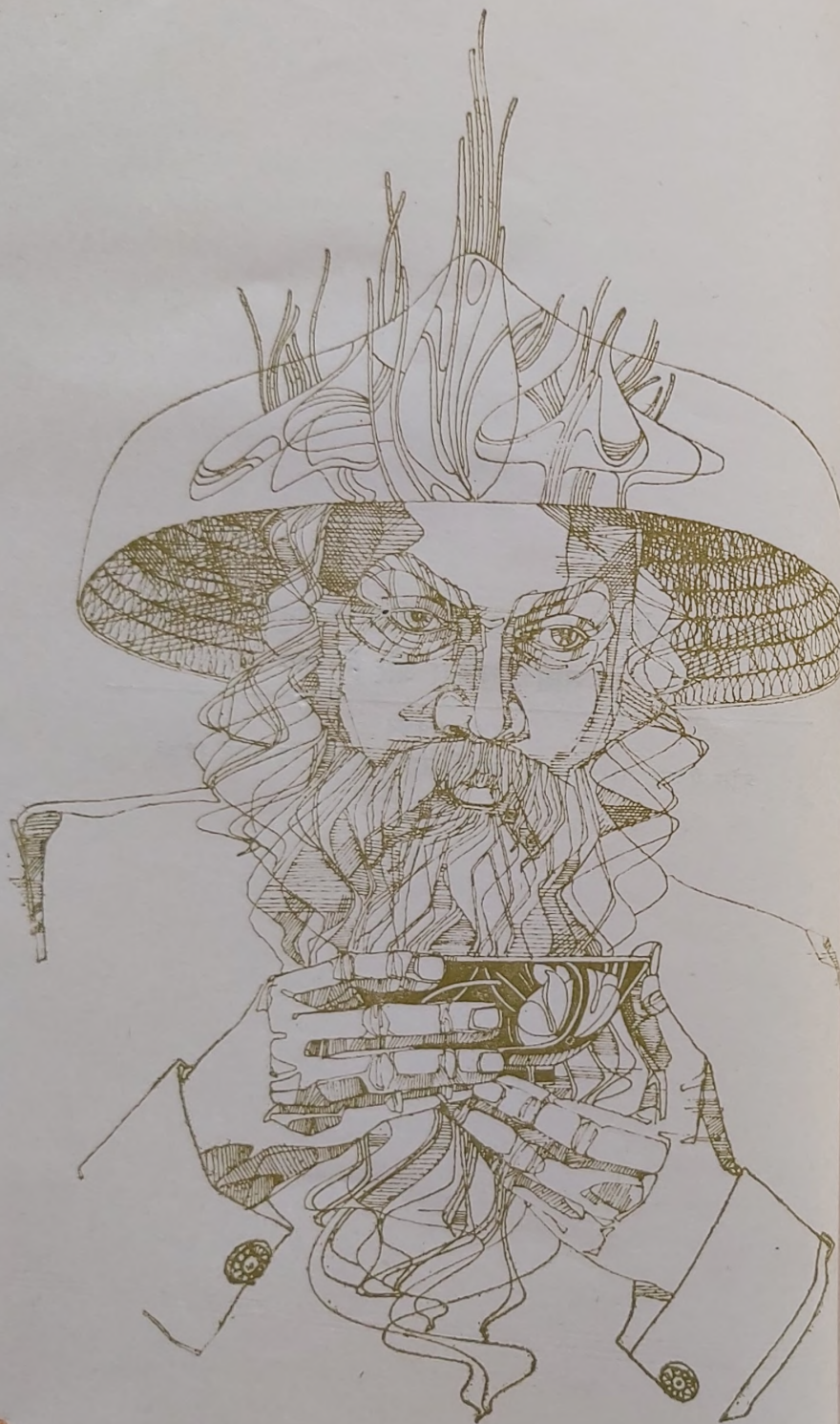
ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ ३ ॥

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ ४ ॥

और जो पुरुष इन्द्रियों के समुदाय को अच्छी प्रकार वश में करके मन, बुद्धि से परे सर्वव्यापी, अकथनीय स्वरूप और सदा एकरस रहनेवाले, नित्य, अचल, निराकार अविनाशी सच्चिदानन्दघन ब्रह्म को निरन्तर एकीभाव से ध्यान करते हुए उपासते हैं, वे सम्पूर्ण भूतों के हित में रत हुए और सब में समान भाव वाले योगी भी मेरे को ही प्राप्त होते हैं ।

पहले कुछ प्रश्न ।

● एक मित्र ने पूछा है कि भजन भी करते हैं, प्रभु का स्मरण भी करते हैं। लेकिन कोई इच्छा कभी पूरी नहीं होती !

जहाँ माँग है, वहाँ प्रार्थना नहीं है; और माँग ही प्रार्थना को असफल कर देती है। प्रार्थना इसलिए असफल गयी कि आपको प्राप्ति हुई, नहीं हुई--ऐसा नहीं। प्रार्थना तो उसी क्षण असफल हो गयी, जब आपने माँगा। जो परमात्मा के द्वार पर माँगता जाता है, वह खाली हाथ लौटेगा। जो वहाँ खाली हाथ खड़ा जो जाता है--बिना किसी माँग के, वही केवल भरा हुआ लौटता है ।

परमात्मा से कुछ माँगने का अर्थ क्या होता है? पहला तो अर्थ यह होता है कि शिकायत है हमें। शिकायत नास्तिकता है। शिकायत का अर्थ है कि जैसी स्थिति है, उससे हम नाराज हैं। जो परमात्मा ने दिया है, उससे हम अप्रसन्न हैं। जैसा हम चाहते हैं, वैसा नहीं है। और जैसा है, वैसा हम नहीं चाहते।

शिकायत का वह भी अर्थ है कि हम परमात्मा से स्वयं में को ज्यादा बुद्धिमान मानते हैं। वह जो कर रहा है, गलत कर रहा है। हमारी सलाह मानकर उसे करना चाहिए, वही ठीक होगा। जैसे कि हमें पता है कि क्या है--जो ठीक है हमारे लिए।

अगर हम बीमार हैं, तो हम स्वास्थ्य माँगते हैं। लेकिन जरूरी नहीं कि बीमारी गलत ही हो; और बहुत बार तो स्वास्थ्य भी वह नहीं दे पाता, जो बीमारी दे जाती है।

हम दुःखी हैं, तो सुख माँगते हैं। पर जरूरी नहीं कि सुख, सुख ही लाये। अकसर तो ऐसा होता है कि सुख और बड़े दुःख ले आता है। दुःख भी माँजता है, दुःख भी निखारता है, दुःख भी समझ देता है। हो सकता है, दुःख के मार्ग से निखर कर ही आप जीवन के सत्य को पा सकें--और सुख आपके लिए महँगा सौदा हो जाय।

इसलिए क्या ठीक है--यह जो परमात्मा पर छोड़ देता है, वही प्रार्थना कर रहा है। जो कहता है कि 'यह है ठीक और तू पूरा कर,' वह प्रार्थना नहीं कर रहा है; वह परमात्मा को सलाह दे रहा है।

आपकी सलाह का कितना मूल्य हो सकता है? काश, आपको यह पता होता कि क्या आपके हित में है! वह आपको बिलकुल पता नहीं है। आपको यह भी पता नहीं है कि वस्तुतः आप क्या चाहते हैं, क्योंकि जो आप सुबह चाहते हैं, दोपहर इनकार करने लगते हैं। और जो आपने आज साँझ चाहा है, जरूरी नहीं है कि कल सुबह भी आप वही चाहें। पीछे लौटकर अपनी चाहों को देखें। वे रोज बदल जाती हैं; प्रतिपल बदल जाती हैं। और यह भी देखें कि जो चाहें पूरी हो जाती हैं, उनके पूरे होने से क्या पूरा हुआ है? वे न भी पूरी होतीं, तो कौन-सी कमी रह जाती? ठीक हमें पता ही नहीं है: हम क्या माँग रहे हैं, क्यों माँग रहे हैं, क्या उसका परिणाम होगा?...

सुना है मैंने कि एक सिनागॉग में एक यहूदी प्रार्थना मंदिर में, एक बूढ़ा यहूदी प्रार्थना कर रहा था और वह परमात्मा से कह रहा था कि 'अन्याय की भी एक हद होती है। सत्तर साल से निरन्तर, जब से मैंने होश सम्हाला है...।' उस यहूदी की उम्र होगी कोई पचास वर्ष। 'जब से मैंने होश सम्हाला है, सत्तर वर्ष से तेरी प्रार्थना कर रहा हूँ। दिन में तीन बार प्रार्थना-गृह में आता हूँ। बच्चे का जन्म हो, कि लड़की की शादी हो, कि घर में सुख हो कि दुःख हो, कि यात्रा पर जाऊँ या वापस लौटूँ, कि नया धंधा शुरू करूँ, कि पुराना बन्द करूँ, ऐसा कोई भी एक काम जीवन में नहीं किया, जो मैंने तेरी प्रार्थना के साथ शुरू न किया हो। जैसा आदेश है धर्म-शास्त्रों में, वैसा जीवन जिया हूँ। पर-स्त्री को कभी बुरी नजर से नहीं देखा। दूसरे के धन पर लालच नहीं की। चोरी नहीं की, झूठ नहीं बोला, बेईमानी नहीं की। परिणाम क्या है? और मेरा साझीदार है: स्त्रियों के पीछे भटक कर जिन्दगी भर उसने खराब की है। तेरी प्रार्थना कभी उसे करते नहीं देखा। चोरी, बेईमानी, झूठ--सब उसे सरल हैं। जुआड़ी है, शराब पीता है, लेकिन दिन दूनी रात चौगुनी उसकी स्थिति अच्छी होती गयी है। अभी भी स्वस्थ है। मैं बीमार हूँ। धन का एक टुकड़ा हाथ में न रहा। सिवाय दुःख के मेरे पल्ले कुछ भी नहीं पड़ा है। कारण क्या है? और मैं यह नहीं कहता हूँ कि तू मेरे साथी-दार को दंड दे। सिर्फ इतना ही पूछता हूँ कि मेरा कसूर क्या है? इतना अन्याय मेरे साथ क्यों? यह कैसे न्याय की व्यवस्था है?'

सिनागॉग में परमात्मा की आवाज गूँजी कि 'सिर्फ छोटा-सा कारण है। बिकाज यू हैव बीन नैगिंग मी डे इन डे आउट लाइक एन आथेन्टिक वाइफ। एक प्रामा-

णिक पत्नी की तरह तुम मेरा सिर खा रहे हो जिन्दगी भर से--यही कारण है, और कुछ भी नहीं। तुम तीन दफे प्रार्थना क्या करते हो, तीन दफे मेरा सिर खाते हो।'

आपकी प्रार्थना से अगर परमात्मा तक को अशान्ति होती हो, तो आप ध्यान रखना कि आपको शान्ति न होगी।

आपकी प्रार्थनाएँ क्या हैं?--नैगिंग। आप सिर ही खा रहे हैं। ये प्रार्थनाएँ आपकी आस्तिकता का सबूत नहीं हैं और न ही आपकी प्रार्थना का। और न आपका का हार्दिक--इन माँगों से कोई संबंध है। ये सब आपकी वासनाएँ हैं। लेकिन हमारी तकलीफ ऐसी है।

बुद्ध हों, महावीर हों, कृष्ण हों, वे सभी कहते हैं; मुहम्मद हों या क्राइस्ट हों--वे सभी कहते हैं कि तुम्हारी सब माँगें पूरी हो जायेंगी, लेकिन तुम उसके द्वार पर छोड़ कर जाना। यही हमारी मुसीबत है। फिर हम उसके द्वार पर जायेंगे ही क्यों?

हमारी तकलीफ यह है कि हम उसके द्वार पर ही इसीलिए जाना चाहते हैं कि हमारी माँगें पूरी हो जायँ। और ये सब शिक्षक बड़ी उलटी शिक्षा देते हैं। वे कहते हैं, 'तुम अपनी माँगें छोड़ दो, तो ही उसके द्वार पर जा सकोगे और फिर तुम्हारी सब माँगें भी पूरी हो जायेंगी। कुछ माँगने को न बचेगा; सब तुम्हें मिल जायेगा।' लेकिन वह जो शर्त है, वह हमसे पूरी नहीं होती।

मुल्ला नसरुद्दीन एक छोटे से गाँव में शिक्षक था। लेकिन धीरे-धीरे लोगों ने अपने बच्चों को उसकी पाठशाला से हटा लिया, क्योंकि वह शराब पीकर स्कूल पहुँच जाता और दिन भर सोया रहता। आखिर उसकी पत्नी ने कहा कि 'तुम थोड़ा अपना चरित्र बदलो, अपना आचरण बदलो। यह तुम शराब पीना बन्द करो, नहीं तो तुमसे पढ़ने कोई भी नहीं आयेगा।'

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि 'तू बात ही उलटी कह रही है। हम तो उन बच्चों को पढ़ाने की झंझट ही इसीलिए लेते हैं कि शराब पीने के लिए पैसे मिल जायँ। और तू कह रही है कि शराब पीना छोड़ दो, तो बच्चे पढ़ने आयेंगे। लेकिन शराब पीना अगर मैं छोड़ दूँ तो बच्चों को पढ़ाऊँगा किस लिए!' हम तो बच्चों को पढ़ाते ही इसलिए हैं कि शराब के लिए कुछ पैसे मिल जायँ।' हमारी सारी हालत ऐसी है।

हम तो परमात्मा के द्वार पर इसलिए जाते हैं कि कोई क्षुद्र माँग पूरी हो जाय। और ये सारे शिक्षक हमसे कहते हैं कि तुम माँग छोड़कर वहाँ जाना, तो ही उसके द्वार मे प्रवेश पा सकोगे, तो ही उसके कान तक तुम्हारी आवाज पहुँचेगी। लेकिन हमारी दिक्कत यह कि तब हम आवाज ही क्यों पहुँचाना चाहेंगे! हम उसके द्वार

पर ही क्यों जायेंगे? हम उसके पर द्वार दस्तक ही क्यों देंगे? हम तो वहाँ जाते इसलिए हैं कि कोई माँग पूरी करना चाहते हैं।

लेकिन, जो माँग पूरी करना चाहता है, वह उसके द्वार पर जाता ही नहीं। वह मंदिर के द्वार पर जा सकता है, मसजिद के द्वार पर जा सकता है, 'उसके' द्वार पर नहीं जा सकता। क्योंकि उसका द्वार तो दिखायी ही तब पड़ता है, जब चित्त से माँग बिसर्जित हो जाय। उसका द्वार वहाँ किसी मकान में बना हुआ नहीं है। उसका द्वार तो उस चित्त में है, जहाँ माँग नहीं है; जहाँ कोई वासना नहीं है, जहाँ स्वीकार का भाव है। जहाँ परमात्मा जो कर रहा है, उसकी मरजी के प्रति पूरी स्वीकृति है, समर्पण है--उस हृदय में ही द्वार खुलता है।

मंदिर के द्वार को उसका द्वार नहीं समझ लेना, क्योंकि मंदिर के द्वार में तो वासना सहित आप जा सकते हैं। उसका द्वार तो आपके ही हृदय में है और उस हृदय पर वासना की ही दीवाल है। वह दीवाल हट जाय तो द्वार खुल जाय।

तो ऐसा मत पूछें कि आपकी प्रार्थनाएँ, आपका भजन, आपका ध्यान, आपकी माँग को पूरा क्यों नहीं कर पाता। आपकी माँग के कारण भजन ही नहीं होता, ध्यान ही नहीं होता, प्रार्थना ही नहीं होती। इसलिए पूरे होने का तो कोई सवाल ही नहीं है। जो चीज शुरू ही नहीं हुई, वह पूरी कैसे हो? आप यह मत सोचें कि आखिरी चीज खो रही है। पहली ही चीज खो रही है। पहला कदम ही वहाँ नहीं है। आखिरी कदम का तो कोई सवाल ही नहीं है।

प्रेम माँगशून्य है। प्रेम बेशर्त है। आप किसी को प्रेम करते हैं, तो आप कुछ माँगते हैं? आपकी कोई शर्त है? प्रेम ही आनन्द है। प्रार्थना परम प्रेम है। अगर प्रार्थना ही आपका आनन्द हो, आनन्द प्रार्थना के बाहर न जाता हो, कोई माँग न हो पीछे जो पूरी हो जाय तो आनन्द मिलेगा; प्रार्थना करने में ही आनन्द मिलता हो, तो ही प्रार्थना हो पाती है। तो जब प्रार्थना करने जायँ तो प्रार्थना को ही आनन्द समझें। उसके पार कोई और आनन्द नहीं है।

सुना है मैंने कि एक फकीर ने रात एक स्वप्न देखा कि वह स्वर्ग में पहुँच गया है और वहाँ उसने देखा मीरा को, कबीर को, चैतन्य को नाचते, गीत गाते, तो बहुत हैरान हुआ। उसने पास खड़े देवदूत से पूछा कि 'ये लोग यहाँ भी नाच रहे हैं और गीत गा रहे हैं! हम तो सोचे थे कि अब ये स्वर्ग पहुँच गये, तो अब यह उपद्रव बन्द हो गया होगा। ये तो जमीन पर भी यही कर रहे थे। इस चैतन्य को हमने जमीन पर भी ऐसे ही नाचते और गाते देखा। इस मीरा को हमने ऐसे ही कीर्तन करते देना। ये कबीर यही तो जमीन पर कर रहा था। और अगर स्वर्ग में भी यही हो रहा है! स्वर्ग में आकर भी अगर यही होना है, तो फिर जमीन में

और स्वर्ग में फर्क क्या है?'

तो, उस देवदूत ने कहा कि 'तुम थोड़ी-सी भूल कर रहे हो। तुम समझ रहे हो कि ये कबीर, चैतन्य और मीरा स्वर्ग में आ गये हैं। तुम समझ रहे हो कि सन्त स्वर्ग में आते हैं। बस, यहीं तुम्हारी भूल हो रही है। सन्त स्वर्ग में नहीं आते। स्वर्ग सन्तों में होता है। इसलिए सन्त जहाँ होंगे, वहीं स्वर्ग होगा। तुम यह मत समझो कि ये सन्त स्वर्ग में आ गये हैं। ये यहाँ गा रहे हैं और आनन्दित हो रहे हैं, इसलिए यहाँ स्वर्ग है। ये जहाँ भी होंगे, वहाँ स्वर्ग होगा। और स्वर्ग मिल जाय, इसलिए इन्होंने कभी नाचा नहीं था। इन्होंने तो नाचने में ही स्वर्ग पा लिया था। इसलिए अब इस नृत्य का, इस आनन्द का कहीं अन्त नहीं है। अब ये जहाँ भी होंगे, आनन्द वहीं होगा। इन सन्तों को नरक में डालने का कोई उपाय नहीं है।

आप आमतौर से सोचते होंगे कि सन्त स्वर्ग में जाते हैं। क्योंकि सन्तों को नरक में डालने का कोई उपाय नहीं है। सन्त जहाँ होंगे, स्वर्ग में होंगे। क्योंकि सन्त का हृदय स्वर्ग है।

प्रार्थना जब आ जायेगी आपको, तो आप यह पूछेंगे ही नहीं कि प्रार्थना पूरी नहीं हुई। प्रार्थना का आ जाना ही उसका पूरा हो जाना है। उसके बाहर कुछ बचता नहीं है। अगर प्रार्थना के बाद भी कुछ बच जाता है, तो फिर प्रार्थना से बड़ी चीज भी जमीन पर है। और अगर प्रार्थना के बाद भी कुछ पाने को शेष रह जाता है तो फिर आपको, प्रार्थना क्या है--इसका ही कोई पता नहीं है। प्रार्थना अन्त है; प्रार्थनापूर्ण हृदय इस जगत् का अन्तिम खिला हुआ फूल है। वह आखिरी ऊँचाई है जो मनुष्य पा सकता है। वह अन्तिम शिखर है। उसके पार--उसके पार कुछ है नहीं। पर आपकी प्रार्थना के पार तो बड़ी क्षुद्र चीजें होती हैं। आपकी प्रार्थना के पार कहीं नौकरी का पाना होता है। आपकी प्रार्थना के पार कहीं बच्चे का पैदा होना होता है। आपकी प्रार्थना के पार कहीं कोई मुकदमे का जीतना होता है।

इन प्रार्थनाओं को आप प्रार्थना मत समझना, अन्यथा असली प्रार्थना से आप वंचित ही रह जायेंगे। असली प्रार्थना का अर्थ है: अस्तित्व का उत्सव। असली प्रार्थना का अर्थ है: मैं हूँ--इसका धन्यवाद। मेरा होना परमात्मा की इतनी बड़ी कृपा है, इसलिए मैं धन्यवाद देता हूँ। एक श्वास भी आती है और जाती है।...

कभी आपने सोचा कि आपकी अस्तित्व को क्या जरूरत है! आप न होते तो क्या हर्ज हो जाता?

कभी आपने सोचा कि अस्तित्व को आपकी क्या आवश्यकता है? आप नहीं होंगे, तो क्या मिट जायेगा? और आप नहीं थे, तो कौन-सी कमी थी? आप अगर न होते--कभी न होते--तो क्या अस्तित्व की कोई जगह खाली रह जाती? आपके होने का कुछ भी अर्थ, कुछ भी तो आवश्यकता दिखायी नहीं पड़ती। फिर भी आप हैं।

जैसे ही कोई व्यक्ति यह अनुभव करता है कि मेरे होने का कोई भी तो कारण नहीं है; और परमात्मा मुझे सहे, इसकी कोई भी तो जरूरत नहीं है; फिर भी मैं हूँ, फिर भी मेरा होना है, फिर भी मेरा जीवन है। यह जो अहोभाव है, इस अहो-भाव से जो नृत्य पैदा हो जाता है, जो गीत पैदा हो जाता है; यह जो जीवन का उत्सव है, यह जो परमात्मा के प्रति कृतज्ञता का बोध है कि मैं बिलकुल भी तो किसी उपयोग का नहीं हूँ, फिर भी तेरा इतना प्रेम है कि मैं हूँ। फिर भी तू मुझे सहता है और झेलता है। शायद मैं तेरी पृथ्वी को थोड़ा गन्दा ही करता हूँ और शायद तेरे अस्तित्व को थोड़ा-सा उदास और रुग्ण करता हूँ। शायद मेरे होने से अड़चन ही होती हो और कुछ भी नहीं होता हो। तेरे संगीत में थोड़ी बाधा पड़ती है। तेरी बाधा में मैं एक पत्थर की तरह अवरोध हो जाता हूँ। फिर भी मैं हूँ और तू मुझे ऐसे सम्हाले हुए है, जैसे मेरे बिना यह अस्तित्व न हो सकेगा।

यह जो अहोभाव है, यह जो ग्रेटिट्यूड है, इस अहोभाव, इस धन्यता से जो गीत जनमता है, जो सिर झुक जाता है, वह जो नाच पैदा हो जाता है, वह जो आनन्द की एक लहर जग जाती है, उसका नाम प्रार्थना है। जरूरी नहीं है कि वह शब्दों में हो। शब्दों में तो जरूरत ही इसलिए पड़ती है कि जीवन से हमें कहने की कला नहीं आती। नहीं तो प्रार्थना मौन होगी। शब्द तो सिक्खड़ के लिए हैं। वह तो प्राथमिक, जिसको अभी कुछ पता नहीं है, उसके लिए है। जो जान लेगा कला, उसका तो पूरा अस्तित्व ही अहोभाव का नृत्य हो जाता है।

एक गरीब फकीर एक मसजिद में प्रार्थना कर रहा था। उसके पास ही एक बहुत बुद्धिमान, शास्त्रों का बड़ा जानकार, वह भी प्रार्थना कर रहा था। इस गरीब फकीर को देखकर ही उस पण्डित को लगा...। पण्डित को सदा ही लगता है कि दूसरा अज्ञानी है। पण्डित होने का मजा ही यही है कि दूसरे का अज्ञान दिखायी पड़ता है। और दूसरे के अज्ञान में अहंकार को तुष्टि मिलती है।

तो, पण्डित को देखकर लगा कि यह गरीब फकीर, कपड़े-लत्ते भी ठीक नहीं, शकल-सूरत से भी पढ़ा-लिखा, सुसंस्कृत नहीं मालूम पड़ता है, गँवार है; यह क्या प्रार्थना कर रहा होगा! और जब तक मेरी अभी प्रार्थना नहीं सुनी गयी, इसकी कौन सुन रहा होगा? ऐसे अशिष्ट, गँवार आदमी की--असंस्कृत--इसकी प्रार्थना कहाँ परमात्मा तक पहुँचती होगी! मैं परिष्कार कर करके हैरान हो गया हूँ और प्रार्थना को बारीक से बारीक कर लिया है, शुद्धतम कर लिया है--अभी मेरी आवाज नहीं पहुँची, इसकी क्या पहुँचती होगी!'

फिर भी उसे जिज्ञासा हुई कि यह कह क्या रहा है। वह धीरे-धीरे गुनगुना रहा था। वह फकीर कह रहा था, परमात्मा से कि 'मुझे भाषा नहीं आती; शब्दों का जमाना भी मुझे नहीं आता है। तो मैं पूरी अल्फाबेट बोले देता हूँ। ए बी सी डी --पूरी बोले देता हूँ। तू ही जमा ले, क्योंकि इन्हीं सब अक्षरों में तो सब प्रार्थनाएँ आ जाती हैं। तू ही जमा ले कि मेरे काम का क्या है और तू ही प्रार्थना बना ले।'

पण्डित तो बहुत घबड़ा गया कि हद्द की मूढता है। क्या कह रहा है--कि मैं तो सिर्फ अल्फाबेट जानता हूँ; ये बाराखड़ी जानता हूँ; यह मैं पूरी बोले देता हूँ। अब जमाने का काम तू ही कर ले, क्योंकि सभी शास्त्र इन्हीं में तो आ जाते हैं और सभी प्रार्थनाएँ इन्हीं से तो बनती हैं। और मुझसे भूल हो जायेगी। तू ठीक जमा लेगा। तेरी जो मरजी, वही मेरी मरजी।

वह पण्डित तो बहुत घबड़ा गया। उसने आँख बन्द की और परमात्मा से कहा कि 'हद हो गयी। मेरी प्रार्थना अभी तक तुझ तक नहीं पहुँची, क्योंकि मेरी कोई माँग पूरी नहीं हुई। (क्योंकि माँग पूरी हो तो ही हम समझें कि प्रार्थना पहुँची।) और यह आदमी--यह क्या कह रहा है!'

सुना उसने अपने ध्यान में कि उसकी प्रार्थना पहुँच गयी। क्योंकि न तो उसकी कोई माँग है, न पाण्डित्य का कोई दम्भ है। वह यह भी नहीं कह रहा है कि मेरी माँग क्या है। वह कह रहा है कि तू ही जमा ले। जो इतना परमात्मा पर छोड़ता है, उसकी प्रार्थना पहुँच गयी।

प्रार्थना है--उस पर छोड़ देना। खुद पकड़ कर रख लेना वासना है; उस पर छोड़ देना प्रार्थना है। अपने को समझदार मानना वासना है; सारी समझ उसकी और हम नासमझ--ऐसी भावदशा प्रार्थना है।

●एक दूसरे मित्र ने पूछा है: कल आपने कहा कि बाहर के व्यक्तियों और वस्तुओं की ओर बहता हुआ प्रेम वासना है और स्वयं के भीतर चैतन्य-केन्द्र की ओर वापस लौटकर बहता हुआ प्रेम श्रद्धा है, भक्ति है। किन्तु भक्ति-योग में तो बाहर स्वयं से भिन्न किसी इष्ट देव की ओर साधक की चेतना बहती है। तब तो आपके कथनानुसार यह भी वासना हो गयी--श्रद्धा व भक्ति नहीं। समझाएँ कि भक्ति-योग में साधक की चेतना बाहर, 'पर' की ओर बहती है या भीतर 'स्व' की जोर?

थोड़ा जटिल है, लेकिन समझने की कोशिश करें। जैसे ही साधक यात्रा शुरू करता है, उसे भीतर का तो कोई पता नहीं। बाहर को ही जानता है। उसे तो बाहर का ही अनुभव है। अगर उसे भीतर भी ले जाना है, तो भी बाहर के ही सहारे भीतर ले जाना होगा। और बाहर भी छुड़ाना है, तो धीरे-धीरे बाहर के

सहारे ही छुड़ाना होगा।

तो परमात्मा को बाहर रखा जाता है। यह सिर्फ उपाय है--एक डिवाइस--कि परमात्मा वहाँ ऊपर आकाश में है। परमात्मा सब जगह है। ऐसी कोई जगह नहीं, जहाँ वह नहीं है। बाहर भी वही है, भीतर भी वही है। सच तो यह है कि बाहर-भीतर हमारे फासले हैं। उसके लिए बाहर और भीतर कुछ भी नहीं है।

घर में आप कहते हैं कि कमरे के भीतर जो आकाश है वह भीतर है और कमरे के बाहर जो आकाश है, वह बाहर है। वह आकाश एक है। दीवालें गिर जायँ, तो न कुछ बाहर है, न भीतर है। जो हमें भीतर मालूम पड़ता है, और बाहर मालूम पड़ता है--वह भी एक है। सिर्फ हमारे अहंकार की पतली-सी दीवाल है, जो फासला खड़ा करती है। इसलिए लगता है कि भीतर मेरी आत्मा और बाहर आपकी आत्मा। लेकिन वह आत्मा आकाश की तरह है। जिस दिन मैं का भाव गिर जाता है, उस दिन बाहर भीतर भी गिर जाता है। उस दिन वह रह जाता है; बाहर भीतर नहीं होता। लेकिन साधक जब शुरू करेगा, तो बाहर की ही भाषा उससे बोलनी पड़ेगी। आप वही भाषा तो समझेंगे, जो आप जानते हैं।

यह बड़े मजे की बात है, अगर आपको कोई विदेशी भाषा भी सीखनी हो तो भी उसी भाषा के जरिये समझानी पड़ेगी, जो आप जानते हैं।

आप बाहर की भाषा जानते हैं। भीतर की भाषा को भी समझाने के लिए बाहर की भाषा से शुरू करना होता है।

तो परमात्मा को भक्त रखता है बाहर। और कहता है: संसार के प्रति सारी वासना छोड़ दो और सारी वासना को परमात्मा के प्रति लगा लो। यह भी इसी-लिए कि वासना ही हमारे पास है और तो हमारे पास कुछ भी नहीं है। लेकिन वासना की एक खूबी है कि वासना को अगर बचाना हो, तो अनेक वासनाएँ चाहिए। वासना को बचाना हो तो नित नयी वासना चाहिए। और जितनी ज्यादा वासनाएँ हों, उतनी ही वासना बचेगी। जैसे ही सारी वासना को परमात्मा पर लगा दिया जाय, वासना तिरोहित होने लगती है।

एक उदाहरण के लिए छोटा-सा प्रयोग आप करके देखें तो आपको पता चलेगा। एक दीये को रख लें रात अँधेरे में, अपने कमरे में। और अपनी आँखों को दीये पर एकटक लगा दें। दो तीन मिनट ही अपलक देखने पर आपको बीच-बीच में शक पैदा होगा कि दीया नदारद हो जाता है। दीये की ज्योति बीच-बीच में खो जायेगी। अगर आपकी आँख एक टक लगी रही, तो कई बार आप घबड़ा जायेंगे कि ज्योति कहाँ गयी। जब आप घबड़ायेंगे, तब फिर ज्योति आ जायेगी। ज्योति कहीं जाती नहीं। लेकिन अगर आँखों की देखने की क्षमता बचानी हो, तो बहुत-

सी चीजें देखना जरूरी है। अगर आप एक ही चीज पर लगा दें, तो थोड़ी ही देर में आँखें देखना बन्द कर देंगी। इसलिए ज्योति खो जाती है।

जिस चीज पर आप अपने को एकाग्र कर लेंगे और सब चीजें तो खो जायेंगी पहले, एक चीज रह जायेगी। थोड़ी देर में वह एक भी खो जायेगी। एकाग्रता--पहले और चीजों का विसर्जन बन जाती है, और फिर उसका भी--जिस पर आपने एकाग्रता की।

अगर सारी वासना को संसार से खींचकर परमात्मा पर लगा दिया, तो पहले संसार खो जायेगा। और एक दिन आप अचानक पायेंगे कि परमात्मा बाहर से खो गया। और जिस दिन परमात्मा भी बाहर से खो जाता है, आप अचानक भीतर पहुँच जाते हैं। क्योंकि अब बाहर होने का कोई उपाय न रहा। संसार पकड़ता था, उसे छोड़ दिया--परमात्मा के लिए। और जब एक बचता है, तो वह अचानक खो जाता है। आप अचानक भीतर आ जाते हैं।

फिर यह जो परमात्मा की धारणा हमने बाहर की है, यह हमारे भीतर जो छिपा है, उसकी ही श्रेष्ठतम धारणा है। वह जो आपका भविष्य है, वह जो आपकी संभावना है, उसकी ही हमने बाहर धारणा की है। वह बाहर है नहीं, वह हमारे भीतर है, लेकिन हम बाहर की भाषा समझते हैं। और बाहर की भाषा से ही भीतर की भाषा सीखनी पड़ेगी।

अभी मनोवैज्ञानिक इस पर बहुत प्रयोग करते हैं कि एकाग्रता में ऑब्जेक्ट क्यों खो जाता है। जहाँ भी एकाग्रता होती है, अन्त में जिस पर आप एकाग्रता करते हैं, वह विषय भी तिरोहित हो जाता है; वह भी बचता नहीं। उसके खो जाने का कारण यह है कि हमारे मन का अस्तित्व ही चंचलता है। मन को बहने के लिए जगह चाहिए, तो ही मन हो सकता है। मन एक बहाव है। एक नदी की धार है। अगर मन को बहाव न मिले, तो वह समाप्त हो जाता है। वह उसका स्वभाव है।

स्थिर मन जैसी कोई चीज नहीं होती। और जब हम कहते हैं: चंचल मन, तो हम पुनरुक्ति करते हैं। 'चंचल मन' नहीं कहना चाहिए, क्योंकि चंचलता ही मन है। जब हम 'चंचल मन' कहते हैं, तो हम दो शब्दों का उपयोग कर रहे हैं व्यर्थ ही, क्योंकि मन का अर्थ ही चंचलता है। और 'थिर मन' जैसी कोई चीज नहीं होती। जहाँ स्थिरता आती है, मन तिरोहित हो जाता है। जैसे 'स्वस्थ बीमारी' जैसी कोई बीमारी नहीं होती। जैसे ही स्वास्थ्य आता है, बीमारी खो जाती है। वैसे ही थिरता आती है--मन खो जाता है। मन के होने के लिए अथिरता जरूरी है।

ऐसा समझें कि सागर में लहरें हैं, या झील पर बहुत लहरें हैं। झील अशांत है, तो हम कहते हैं, 'लहरें बड़ी अशान्त हैं।' कहना नहीं चाहिए, क्योंकि अशान्ति ही

लहरें हैं। फिर जब शान्त हो जाती है झील, तब क्या आप ऐसा कहेंगे कि अब शान्त लहरें हैं। लहरें होतीं ही नहीं। जब लहरें नहीं होतीं, तभी शान्ति होती है। जब झील शान्त होती है, तो लहरें नहीं होतीं। लहरें तभी होती हैं, जब झील अशान्त होती है। तो अशान्ति ही लहर है। आपकी आत्मा झील है, आपका मन लहरें है। शान्त मन जैसी कोई चीज नहीं होती। अशान्ति ही मन है।

तो अगर हम किसी भी तरह से किसी एक चीज पर टिका लें अपने को, तो थोड़ी ही देर में मन खो जायेगा, क्योंकि मन एकाग्र हो ही नहीं सकता। जो एकाग्र होता है, वह मन नहीं है; वह भीतर का सागर है। वह भीतर की झील है। वही एकाग्र हो सकती है।

तो कोई भी ऑब्जेक्ट, चाहे परमात्मा की प्रतिमा हो, चाहे कोई यन्त्र हो, चाहे कोई मन्त्र हो, चाहे कोई शब्द हो, चाहे कोई आकार-रूप हो, कोई भी हो, इतना ही उसका उपयोग है बाहर रखने में कि आप पूरे संसार को भूल जायेंगे और एक रह जायेगा। जिस क्षण एक रहेगा--युगपत--उसी क्षण एक भी खो जायेगा और आप अपने भीतर फेंक दिये जायेंगे।

यह बाहर का जो विषय है, एक जम्पिंग बोर्ड है, जहाँ से भीतर छलाँग लग जाती है।

तो किसी भी चीज पर एकाग्र हो जायँ। इसलिए कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप उस एकाग्रता के बिन्दु को अल्लाह कहते हैं; कोई फर्क नहीं पड़ता; कि ईश्वर कहते हैं, कि राम कहते हैं, कि कृष्ण कहते हैं, कि बुद्ध कहते हैं। आप क्या कहते हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आप क्या करते हैं, इससे फर्क पड़ता है। राम, बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट का आप क्या करते हैं, इससे फर्क पड़ता है। क्या कहते हैं, इससे फर्क नहीं पड़ता।

करने का मतलब यह है कि क्या आप उनका उपयोग अपने को एकाग्र करने में करते हैं? क्या आपने उनको बाहर का बिन्दु बनाया है, जिससे आप भीतर छलाँग लगायेंगे? तो फिर क्या फर्क पड़ता है कि आपने क्राइस्ट से छलाँग लगायी, कि कृष्ण से, कि राम से। जिस दिन भीतर पहुँचेंगे, उस दिन उसका मिलन हो जायेगा, जो न क्राइस्ट है, न राम है, न बुद्ध है, न कृष्ण है, या फिर सभी है।

कहाँ से छलाँग लगायी, वह तो भूल जायेगा। कौन याद रखता है जम्पिंग बोर्ड को, जब सागर मिल जाय! सीढ़ियों को कौन याद रखता है, जब शिखर मिल जाय! रास्ते को कौन याद रखता है, जब मंजिल आ जाय? कौन-सा रास्ता था--इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। सभी रास्ते काम में लाये जा सकते हैं। काम में लाने वाले पर निर्भर करता है।

अभी आप बाहर हैं, इसलिए बाहर परमात्मा की धारणा करनी पड़ती है।—आपकी वजह से। परमात्मा की वजह से नहीं—आपकी वजह से। भीतर की भाषा आपकी समझ में ही न आयेगी।

इक्क्यु हुआ है एक जेन फकीर। किसी ने आकर इक्क्यु से पूछा कि 'सार—सारे धर्म का सार संक्षिप्त में कह दो। क्योंकि मेरे पास ज्यादा समय नहीं है। मैं काम-धंधे वाला आदमी हूँ। क्या है धर्म का मूल सार?' तो इक्क्यु बैठा था रेत पर, उसने अँगुली से लिख दिया, 'ध्यान'। उस आदमी ने कहा, 'ठीक। लेकिन थोड़ा और विस्तार करो। इतने से बात समझ में नहीं आयी।' तो इक्क्यु ने और बड़े अक्षरों में रेत पर लिख दिया—ध्यान। वह आदमी थोड़ा संदिग्ध हुआ। उसने कहा कि 'उसी शब्द को दोहराने से क्या होगा! थोड़ा और साफ करो।' तो इक्क्यु ने और बड़े अक्षरों में लिख दिया, 'ध्यान'।

उस आदमी ने कहा कि 'तुम पागल तो नहीं हो? मैं पूछता हूँ: इसको साफ करो।' तो इक्क्यु ने कहा, 'साफ तो तुम्हारे करने से होगा। साफ मेरे करने से नहीं होगा। अब साफ तुम करो। बात सार की मैंने कह दी। अब करना तुम्हारा काम है। इससे ज्यादा और मैं कुछ नहीं कह सकता हूँ। और इससे ज्यादा मैं कुछ भी कहूँगा तो गड़बड़ हो जायेगी।'

तो उस आदमी को कुछ भी समझ में न आया होगा। क्योंकि इक्क्यु जो भाषा बोल रहा है, वह भाषा उसके लिए जटिल पड़ी होगी। उसने शुद्धतम बात कह दी। लेकिन शुद्धतम बात समझने की सामर्थ्य भी चाहिए।

इसलिए जो बहुत करुणावान हैं, वे हमारी अशुद्ध भाषा में बोलते हैं। इसलिए नहीं कि अशुद्ध बोलने में कुछ रस है, बल्कि इसलिए कि हम अशुद्ध को ही समझ सकते हैं। और धीरे-धीरे ही हमें खींचा जा सकता है—उस भीतर की यात्रा पर। एक एक इंच भी हम बहुत मुश्किल से छोड़ते हैं। हम संसार को इस जोर से पकड़े हुए हैं कि एक एक इंच भी हम बहुत मुश्किल से छोड़ते हैं। और यह यात्रा है—सब छोड़ देने की, क्योंकि जब तक पकड़ न छूट जाय और हाथ खाली न हो जायँ, तब तक परमात्मा की तरफ नहीं उठते। भरे हुए हाथ उसके चरणों में नहीं झुकाये जा सकते। सिर्फ खाली हाथ उसके चरणों में झुकाये जा सकते हैं। क्योंकि भरे हुए हाथ वाला आदमी झुकता ही नहीं है।

इसीलिए जीसस ने कहा है कि चाहे सुई के छेद से ऊँट निकल जाय, लेकिन धनी आदमी मेरे स्वर्ग के राज्य में प्रवेश न कर सकेगा।

यह किस धनी आदमी की बात कही है? वे सभी धनी हैं, जिनके हाथ भरे हुए हैं; जिन्हें लगता है: कुछ हमारे पास है; जिन्हें लगता है कुछ पकड़ने योग्य है; जिन्हें लगता है कि कोई सम्पदा है। वे उस द्वार में प्रवेश न कर सकेंगे।

जिसके पास कुछ है, उसके लिए द्वार बहुत संकीर्ण मालूम पड़ेगा। उसमें से वह निकल न सकेगा। और जिसके पास कुछ नहीं है, उसके लिए वह द्वार इतना विराट् है, जितना विराट हो सकता है। यह पूरा संसार उससे निकल जाय, इतना बड़ा वह द्वार है। लेकिन जिसके पास कुछ है, उसके लिए सुई के छेद का द्वार भी बड़ा है। वह द्वार छोटा हो जायेगा।

जितना हमारे हाथ पकड़े होते हैं चीजों को, उतने हम भारी और वजनी—उड़ने में असमर्थ हो जाते हैं। जितने हमारे हाथ खाली हो जाते हैं...। इसलिए जीसस ने जो कहा है कि भीतर की दरिद्रता, उसका अर्थ इतना ही है कि जिसने सारी पकड़ छोड़ दी संसार पर, वही भीतर से दरिद्र है।

लेकिन आदमी बहुत उपद्रवी है, बहुत चालाक है। और सब चालाकी में अपने को ही फँसा लेता है, क्योंकि यहाँ कोई और नहीं है, जिसको आप फँसा सकें। आप खुद ही जाल बुनेंगे और फँस जायेंगे। खुद ही गड्ढा खोदेंगे और गिर जायेंगे। हम सब अपनी अपनी कब्रें खोदकर तैयार रखते हैं। कब मौका आ जाय गिरने का, तो गिर जायँ! गिराते दूसरे हैं, कब्रें हम ही खोद लें। और दूसरे भी हमारी सहायता इसलिए करते हैं, क्योंकि हम उनकी सहायता करते रहे हैं।

आदमी बहुत जटिल है और सोचता है कि बहुत होशियार है। तो कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि वह बाहर की, सँसार की संपत्ति छोड़ देता है, तो फिर कुछ भीतरी गुणों की संपत्ति को पकड़ लेता है।

सुना है मैंने, एक तथाकथित संत का परिचय दिया जा रहा था। और जो परिचय देने खड़ा था—जैसा कि भाषण में अकसर हो जाता है, उसकी गरमी बढ़ती गयी, जोश बढ़ता गया। और वह फकीर की बड़ी तारीफ करने लगा। और उसने कहा कि 'ऐसा फकीर पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। इन जैसा ज्ञानी लाखों वर्षों में कभी होता है। बड़े-बड़े पण्डित इनके चरणों में आकर बैठते हैं और सिर झुकाते हैं। इन जैसा प्रेम असंभव है दोबारा खोज लेना। सब तरह के लोग इनके प्रेम में नहाते हैं और पवित्र हो जाते हैं।' और वह ऐसा कहता चला गया।

जब सारी बात पूरी होने के करीब थी, तो उस फकीर ने उस भाषण करने-वाले का कोट धीरे से झटका और कहा कि 'मेरी विनम्रता के संबंध में मत भूल जाना। डोंट फरगेट माई ह्यूमैलिटी। मेरी विनम्रता के संबंध में भी कुछ कहो।'

'विनम्रता के संबंध में कुछ कहो...!' तो यह आदमी विनम्र रहा होगा कि नहीं? तब तो विनम्रता भी अहंकार हो गया और तब तो विनम्रता भी संपत्ति हो गयी। यह आदमी बाहर से हो सकता है, सब छोड़ दिया हो, लेकिन इसने भीतर

से सब पकड़ा हुआ है। इससे कुछ भी छूटा नहीं है, क्योंकि पकड़ नहीं छूटी है। और जो विनम्रता को पकड़े हुए है, वह उतना ही अहंकारी है, जितना कोई और अहंकारी है। और कई बार तो ऐसा होता है कि स्थूल अहंकार तो खुद भी दिखायी पड़ता है, सूक्ष्म अहंकार दिखायी नहीं पड़ता।

यह जो परमात्मा की यात्रा है, यह तो भीतर की ही यात्रा है। लेकिन बाहर से हम छोड़ें, तो हम भीतर की तरफ सरकने शुरू हो जायँ। बाहर से हम छोड़ सकें, इसलिए बाहर ही हमने परमात्मा को खड़ा किया है। हमारे सब मन्दिर, हमारी सब मसजिदें, गिरजे, गुरुद्वारे——सब प्रतीक हैं। बाहर कोई मन्दिर है नहीं। लेकिन बाहर मन्दिर बनाना पड़ा है, क्योंकि हम केवल बाहर के ही मन्दिर अभी समझ सकते हैं। लेकिन वह बाहर का मन्दिर एक जगह हो सकती है, जहाँ से हम संसार को छोड़कर उस मन्दिर में प्रवेश कर जायँ और फिर वह मन्दिर भी छूट जाय। क्योंकि जब इतना बड़ा संसार छूट गया, तो यह छोटा-सा मन्दिर ज्यादा देर नहीं रुक सकता। और जब संसार छूट गया तो संसार में बैठे हुए परमात्मा की प्रतिमा भी छूट जाएगी। वह केवल बहाना है।

संसार को छोड़ सकें, इसलिए परमात्मा को बाहर रखते हैं। फिर तो वह भी छूट जाता है। और जो संसार को ही छोड़ सका, वह अब इस एक को भी छोड़ देगा। जिसने अनेक को छोड़ दिया, वह एक को भी छोड़ देगा। और जब अनेक भी नहीं बचता, एक भी नहीं बचता, तभी वस्तुतः वह एक बचता है, जिसको हमने अद्वैत कहा है। इसलिए हमने उसको 'एक' नहीं कहा है।

क्योंकि अनेक बाहर हैं, इनको छोड़ने के लिए एक परमात्मा की धारणा काम में लानी पड़ती है। संसार को हम छोड़ते हैं उस 'एक' के लिए; फिर जब वह एक भी छूट जाता है, तब जो बचता है, उसको हम क्या कहें! उसको 'अनेक' नहीं कह सकते। अनेक संसार था——छूट गया। उसको एक भी नहीं कह सकते। क्योंकि वह एक भी जो हमने बाहर बनाया था, वह भी बहाना था। वह भी छूट गया। अब जो बचा, उसे हम क्या कहें! अनेक कह नहीं सकते; एक कह नहीं सकते। इसलिए बड़ी अद्‌भुत व्यवस्था हमने की। हमने उसको कहा——अद्वैत——न एक, न दो। हमने सिर्फ इतना कहा है : जो दो नहीं है। हमने केवल संख्या को इनकार कर दिया।

सब संख्याएँ बाहर हैं——एक भी, अनेक भी। वे दोनों छूट गयीं। अब हम उस जगह पहुँच गये हैं, जहाँ कोई संख्या नहीं है। लेकिन इस तक जाने के लिए बाहर के प्रतीक सहारे बन सकते हैं। खतरा जरूर है। खतरा आदमी में है——प्रतीकों में नहीं है। खतरा यह है कि कोई सीढ़ी को ही रास्ते की अड़चन बना ले सकता है।

और कोई समझदार हो तो रास्ते पर पड़े हुए पत्थर को भी सीढ़ी बना ले सकता है। यह आप पर निर्भर है——कि आप उसका उपयोग सीढ़ी की तरह करेंगे, उस पर चढ़ेंगे और आगे निकल जायेंगे——या उसी के किनारे रुक कर बैठ जायेंगे कि 'अब जाने का कोई उपाय न रहा। यह पत्थर पड़ा है। अब कोई उपाय आगे जाने का नहीं है।'

सीढ़ी अवरोध बन सकती है। अवरोध सीढ़ी बन सकता है। आप पर निर्भर है। प्रतीक खतरनाक हो जाते हैं, अगर उनको कोई जोर से पकड़ ले। प्रतीक छोड़ने के लिए हैं। प्रतीक सिर्फ बहाने हैं। उनका उपयोग कर लेना है और उन्हें भी फेंक देना है और जब कोई व्यक्ति फेंकता चला जाता है——उस समय तक, जब तक कि फेंकने को कुछ भी शेष रहता है, वही व्यक्ति उस अन्तिम बिन्दु तक पहुँच पाता है।

एक प्रश्न और फिर मैं सूत्र लूं।

● आपने कल कहा कि अनुभव पर आधारित श्रद्धा ही वास्तविक श्रद्धा है और यह भी कहा कि प्रेम और भक्ति की साधना सहज व सरल है। यह भी कहा कि आज तर्क व बुद्धि के अत्यधिक विकास के कारण झूठी आस्तिकता खतरे में पड़ गयी है। तो समझायें कि अनुभवशून्य साधक कैसे श्रद्धा की ओर बढ़े? और आज के बौद्धिक युग में भक्ति-योग अर्थात् भावुकता का मार्ग कैसे उपयुक्त है? श्रद्धा के अभाव में भक्ति-योग की साधना कैसे सम्भव है?

पहली बात : कैसे अनुभवशून्य साधक श्रद्धा की ओर बढ़े? पहली बात तो वह यह समझे कि अनुभवशून्य है। बड़ी कठिन है। सभी को ऐसा खयाल है कि अनुभव तो हमें है ही। अपने को अनुभवशून्य मानने में बड़ी कठिनाई होती है। लेकिन धर्म के सम्बन्ध में हम अनुभवशून्य हैं, ऐसी प्रतीति पहली जरूरत है। क्योंकि जो हमारे पास नहीं है, वही खोजा जा सकता है। जो हमारे पास है ही, उसकी खोज ही नहीं होती।

बीमार आदमी समझता हो कि मैं स्वस्थ हूँ, तो इलाज का कोई सवाल ही नहीं है। बीमार की पहली जरूरत है कि वह समझे कि वह बीमार है। कोई आदमी कारागृह में बन्द हो और समझता हो कि मैं मुक्त हूँ, तो कारागृह से छूटने का कोई सवाल ही नहीं है। और अगर कारागृह को अपना घर ही समझता हो और कारागृह की दीवालें उसने भीतर से और सजा ली हों तो अगर आप छुड़ाने भी जायँ तो इनकार करेगा——कि क्यों मेरे घर से मुझे बाहर निकाल रहे हो! और अगर उसने अपनी हथकड़ियों को, अपनी बेड़ियों को सोने के रंग में रंग लिया हो और चमकीले पत्थर लगा लिए हों, तो वह समझेगा कि ये आभूषण हैं। और अगर

आप तोड़ने लगें, तो वह आप पर चिल्लायेगा कि मुझे बचाओ, मैं लुटा जा रहा हूँ।

कारागृह में बन्दी आदमी बाहर आने लिए क्या करे? पहली बात तो यह समझे कि वह कारागृह में है। फिर कुछ बाहर आने की बात उठ सकती; फिर कुछ रास्ता खोजा जा सकता है। फिर उनकी बात सुनी जा सकती है, जो बाहर जा चुके हैं। फिर उनसे पूछा जा सकता है कि वे कैसे बाहर गये हैं। फिर कुछ भी हो सकता है। लेकिन पहली जरूरत है कि अनुभवशून्य व्यक्ति समझे कि मैं अनुभवशून्य हूँ। लेकिन बड़ी कठिनाई है। किताबें हम पढ़ लेते हैं। और शास्त्रों के शब्द हममें भर जाते हैं और ऐसी भ्रान्ति होती है कि हमें भी अनुभव है।

अभी एक वृद्ध सज्जन मेरे पास आये। आते ही से वे बोले कि 'ऐसे तो मुझे समाधि का अनुभव हो गया है, लेकिन फिर भी सोचा कि चलो आपसे भी पूछ आऊँ।' मैंने उनको कहा कि 'कुछ भी साफ कर लें। अगर अनुभव हो चुका है समाधि का, तो अब दूसरी बात करें। यह बात छोड़ ही दें। फिर पूछने को क्या बचा है?'

'नहीं,' उन्होंने कहा कि 'मैंने सोचा कि चलें पूछ लेने में हर्ज क्या है।' तो मैंने कहा, 'अनुभव हो गया हो, तो पूछने में समय खराब मेरा भी न करें, अपना भी खराब न करें। मेरा समय उनमें ही लगने दें, जिन्हें अनुभव नहीं हुआ है।' तो वे बोले, 'अच्छा, आप फिर ऐसा ही समझ लें कि मुझे अनुभव नहीं हुआ है। लेकिन बतायें तो कि ध्यान कैसे करूँ।' मैंने कहा, 'मै समझूँगा नहीं; क्योंकि आप समझें कि अनुभव नहीं हुआ है। मैं क्यों समझूँ कि आपको नहीं हुआ है। अगर हुआ है, तो बात खत्म हो गयी।'

कैसी अड़चन है! आदमी का अहंकार कैसी मुश्किल खड़ी करता है! वे जानना चाहते हैं कि ध्यान क्या है, लेकिन यह भी मानने का मन नहीं होता कि ध्यान का मुझे पता नहीं है। 'ध्यान का तो पता है ही। चलते रास्ते सोचा कि चलो आपसे भी पूछ लें।' तो मैंने कहा कि मैं चलते रास्ते लोगों को जवाब नहीं देता। आप सोचकर आयें, पक्का करके आयें। और 'यदि' वगैरह से काम नहीं चलेगा कि समझ लें। मैं नहीं समझूँगा; आप ही समझ कर आयें। हुआ हो तो कहें, हाँ। बात खत्म हो गयी। न हुआ हो, तो कहें--नहीं। फिर बात शुरू हो सकती है।'

सुन लेते हैं, पढ़ लेते हैं, शब्द मन में घिर जाते हैं। शब्द इकट्ठे हो जाते हैं, जम जाते हैं। उन्हीं शब्दों को हम दोहराये चले जाते हैं और सोचते हैं कि ठीक हमें पता तो है। थोड़ा कम पता होगा, किसी को थोड़ा ज्यादा होगा। लेकिन पता तो हमें है।

ध्यान रखना, उसका अनुभव थोड़ा और कम नहीं होता। या तो होता है या

नहीं होता। अगर आपको लगता हो कि थोड़ा-थोड़ा अनुभव हमें भी है, तो आप धोखा मत देना। परमात्मा को टुकड़ों में काटा नहीं जा सकता। या तो आपको अनुभव होता है पूरा, या नहीं होता। थोड़ा-थोड़ा का कोई उपाय नहीं है; डिग्रीज का कोई उपाय नहीं है। कोई यह नहीं कह सकता कि हम जरा अभी इंच भर परमात्मा को जानते हैं। आप चार इंच जानते होंगे। हम पाव भर जानते हैं, आप सेर भर जानते होंगे! बाकी जानते हम भी हैं। क्योंकि परमात्मा का कोई खण्ड नहीं है; वह अखण्ड अनुभव है।

अगर आपको लगता हो--थोड़ा-थोड़ा अनुभव है, तो समझ लेना कि अनुभव नहीं है। और जिसको अनुभव हो जाता है, उसकी तो सारी खोज समाप्त हो जाती है। अगर आपकी खोज जारी है, अगर थोड़ा-सा भी असंतोष भीतर कहीं है, अगर थोड़ा भी ऐसा लगता है कि जीवन में कुछ चूक रहा है, तो समझना कि अभी अनुभव नहीं है। क्योंकि उसके अनुभव के बाद जीवन में कोई कमी का अनुभव नहीं रह जाता; कोई अभाव नहीं रह जाता। फिर कोई असंतोष की जरा-सी भी चोट भीतर नहीं होती। फिर कुछ पाने के नहीं बचता।

अगर कुछ भी पाने को बचा हुआ लगता हो, और लगता हो कि अभी कुछ कमी है, अभी कुछ यात्रा पूरी होनी है, तो समझना कि उसका अनुभव नहीं हुआ।

परमात्मा अन्त है--समस्त अनुभव का, समस्त यात्रा का, समस्त खोज का।

तो पहली बात तो अनुभवशून्य साधक को समझ लेनी चाहिए कि मैं अनुभवशून्य हूँ। और ऐसा इसलिए नहीं कि मैं कहता हूँ। ऐसा उसको ही समझना चाहिए। उसकी ही प्रतीति--कि मैं अनुभवशून्य हूँ--रास्ता बनेगी। एक फर्क खयाल में रखें।

जो साधक नहीं है, वह पूछता है कि ईश्वर है या नहीं। जो साधक है, वह पूछता है कि मुझे उसका अनुभव हुआ या नहीं। इस फर्क को ठीक से समझ लें। जो साधक नहीं है, सिर्फ जिज्ञासु है, (दार्शनिक होगा।) वह पूछता है: ईश्वर है या नहीं। उसको अपने में उत्सुकता नहीं है; उसे ईश्वर का सवाल है कि ईश्वर है या नहीं। यह खोज व्यर्थ है, क्योंकि आप कैसे तय करेंगे कि ईश्वर है या नहीं? पूछने की सार्थक खोज तो यह है कि मुझे उसका अनुभव नहीं हुआ; कैसे उसका अनुभव हो? वह है या नहीं--यह बड़ा सवाल नहीं है। कैसे मुझे उसका अनुभव हो? और अगर मुझे अनुभव होगा, तो वह है। लेकिन अगर मुझे अनुभव न हो, तो जरूरी नहीं है कि वह न हो। क्योंकि हो सकता है, मेरी खोज में अभी कोई कमी हो।

तो साधक कभी इनकार नहीं करेगा। वह इतना ही कहेगा कि मुझे अभी अन-

भव नहीं हुआ है। वह यह नहीं कहेगा कि ईश्वर नहीं है; क्योंकि मुझे क्या हक है कहने का कि ईश्वर नहीं है। मुझे पता नहीं है--इतना कहना काफी है। लेकिन हमारी भाषा में बड़ी भूल होती है। हम निरन्तर अपने को भूलकर बातें करते हैं। अगर एक आदमी कुछ कहता है, और आपको अच्छा नहीं लगता, तो आप ऐसा नहीं कहते कि तुमने जो कहा, वह मुझे अच्छा नहीं लगा। आप ऐसा नहीं कहते हैं। आप ऐसा कहते हैं कि 'तुम गलत बात कह रहे हो।' आप सारा जिम्मा दूसरे पर डालते हैं।

सूरज उगता है, सुबह, आपको सुन्दर लगता है। तो आप ऐसा नहीं कहते कि यह सूरज का उगना मुझे सुन्दर लगता है। आप कहते हैं : सूरज बड़ा सुन्दर है। आप बड़ी गलती कर रहे हो। क्योंकि आपके पड़ोस में खड़ा हुआ कोई आदमी कह सकता है कि सूरज सुन्दर नहीं है। वह भी यही कह रहा है कि मुझे सुन्दर नहीं लगता है। सूरज की बात ही करनी फिजूल है। सूरज सुन्दर है या नहीं, इसे कैसे तय करियेगा? इतना ही तय हो सकता है कि आपको कैसा लगता है। किसी ने गाली दी, आपको बुरी लगती है, तो आप यह मत कहिये कि यह गाली बुरी है। आप इतना ही कहिये कि यह गाली मुझे बुरी लगती है। मैं जिस ढंग का आदमी हूँ, उसमें यह गाली जाकर बड़ी बुरी लगती है।

अपने को केन्द्र बनाकर रखेगा साधक। अगर उसे ईश्वर दिखायी नहीं पड़ता, तो वह यह नहीं कहेगा कि संसार में कोई ईश्वर नहीं है। यह तो बड़ी नासमझी की बात है। इतना ही कहेगा की मुझे संसार में ईश्वर का कोई अनुभव नहीं होता--मुझे।

साधक हमेशा स्वयं को केन्द्र में रखेगा। और तब सवाल उठेगा कि मुझे अनुभव नहीं होता, तो मैं क्या करूँ कि अनुभव हो सके? वह प्रमाण नहीं पूछेगा ईश्वर के लिए--कि प्रमाण क्या है। वह पूछेगा कि मार्ग क्या है। तो पहली बात कि मुझे अनुभव नहीं है--इसकी गहरी प्रतीति। फिर दूसरी बात कि अनुभव का मार्ग क्या है। क्योंकि मुझे अनुभव नहीं है, उसका अर्थ ही यह हुआ कि मैं उस जगह अभी नहीं हूँ, जहाँ से अनुभव हो सके। मैं उस द्वार पर नहीं खड़ा हूँ, जहाँ से वह दिखायी पड़ सके। मैं उस तल पर नहीं हूँ, जहाँ से उसकी झलक हो सके। मेरी वीणा तैयार नहीं है कि उसके हाथ उस पर संगीत को पैदा कर सकें। मेरे तार ढीले होंगे, तार टूटे होंगे। तो मुझे मेरी वीणा को तैयार कहना पड़ेगा। मुझे योग्य बनना पड़ेगा कि उसका अनुभव हो सके।

ईश्वर की तलाश स्वयं के रूपान्तरण की खोज है। ईश्वर की तलाश, ईश्वर की तलाश नहीं है--आत्म परिष्कार है। मुझे योग्य बनना पड़ेगा कि मैं उसे देख पाऊँ।

मुझे योग्य बनना पड़ेगा कि वह मुझे प्रतीत होने लगे--उसकी झलक, उसका स्पर्श।

आपको खयाल है कि जितनी चीजें आपके चारों तरफ हैं, क्या आपको उन सबका पता होता है? वैज्ञानिक कहते हैं कि सौ में से केवल दो प्रतिशत चीजों का आपको पता चलता है। और पता इसलिए चलता है कि आप उन पर ध्यान देते हैं--इसलिए पता चलता है। नहीं तो पता नहीं चलता।

अगर आप एक कार में बैठे हैं और कार का इन्जन थोड़ी-सी खट-खट की आवाज करने लगे, आपको पता नहीं चलेगा, ड्राइवर को फौरन पता चल जायेगा। आप भी वहीं बैठे हैं। आपको क्यों सुनायी नहीं पड़ता? आपका ध्यान नहीं है उस तरफ। सुनायी तो आपके भी कान को पड़ता ही होगा, क्योंकि आवाज हो रही है। लेकिन ड्राइवर को सुनायी पड़ता है, आपको सुनायी नहीं पड़ता। आपका ध्यान उस तरफ नहीं है, ड्राइवर का ध्यान उस तरफ है।

आप अपने कमरे में बैठे हैं। कभी आपने खयाल किया कि दीवाल की घड़ी टक-टक करती रहती है, आपको सुनायी नहीं पड़ती। आज लौटकर कमरे में आँख बन्द करके ध्यान करना, फौरन टक-टक सुनायी पड़ने लगेगी। और टक-टक धीमी आवाज है। बाहर का कितना ही शोरगुल हो है, अगर आप ध्यान देंगे, तो टक-टक सुनायी पड़ने लगेगी। अगर आप थोड़ा-सा शान्त होकर ध्यान दें, तो हृदय की धड़कन भी सुनाई पड़ने लगेगी। वह चौबीस घण्टे धड़क रहा है, आपको उसका पता नहीं चलता, क्योंकि उस तरफ ध्यान नहीं है।

जिस तरफ ध्यान होता है, उस तरफ अनुभव होता है। तो साधक पूछेगा कि परमात्मा के अनुभव के लिए कैसा ध्यान हो मेरा। किस तरफ मेरे ध्यान को मैं लगाऊँ कि वह मौजूद हो तो उसकी मुझे प्रतीति होने लगे?

उसकी प्रतीति आपके ध्यान के प्रवाह पर निर्भर करेगी। आपको वही दिखायी पड़ता है, जो आप देखते हैं। अगर आप चमार हैं, तो आपको लोगों के सिर नहीं दिखायी पड़ते, पैर दिखायी पड़ते हैं। दिखायी पड़ेंगे ही। क्योंकि ध्यान सदा जूते पर लगा हुआ है। और चमार दुकान पर आपकी शक्ल नहीं देखता; आपका जूता देखकर समझ जाता है कि जेब में पैसे हैं या नहीं। वह जूता ही सारी कहानी कह रहा है आपकी, जो उसकी गति आपने बना रखी है, उससे सब पता चल रहा है कि आपकी हालत क्या होगी। आपके जूते की हालत आपकी हालत है।

मैंने सुना है कि एक दर्जी घूमने गया रोम। लौटकर आया तो उसके पार्टनर ने, उसके साझीदार से पूछा कि क्या क्या देखा : तो सब बात उसने बतायी और उसने कहा कि पोप को भी देखने गया था। गजब का आदमी है। तो उसके साझीदार ने कहा कि पोप के संबंध में कुछ और विस्तार से कहो। उसने कहा कि आध्या-

त्मिक है, दुबला पतला है, ऊँचाई पाँच फीट दो इंच से ज्यादा नहीं और कमीज की साइज थर्टी सिक्स ..!

पोप का दर्शन करने गया था वह। मगर दर्जी है, तो पोप की कमीज पर खयाल जायेगा। अब वह अगर लौटकर पोप की कमीज की खबर दे, तो इसका यह मतलब नहीं कि पोप की कोई आत्मा नहीं थी वहाँ। मगर आत्मा देखने के लिए कोई और तरह का आदमी चाहिए।

ध्यान जहाँ हो, वही दिखायी पड़ता है। तो फिर साधक पूछेगा कि मुझे उसका अनुभव नहीं होता, तो कहीं कोई आयाम ऐसा है जिस तरफ मेरा ध्यान नहीं जाता है। तो उस तरफ मैं कैसे ध्यान ले जाऊँ?

फिर ध्यान की विधियाँ हैं, फिर प्रार्थना के मार्ग हैं, फिर उनमें से चुनकर लग जाना चाहिए। जो भी प्रीतिकर लगे, उस दिशा में पूरा अपने को डुबा देना चाहिए।

अगर आपको लगता है कि प्रार्थना, कीर्तन-भजन आपके हृदय को आनन्द और प्रफुल्लता से भर देते हैं, तो फिर--फिर आप फिक्र मत करें।

लेकिन हम बड़े अजीब लोग हैं! परमात्मा की खोज में भी हम पड़ोसी की फिक्र करते हैं कि पड़ोसी क्या सोचेगा। अगर मैं सुबह से उठकर कीर्तन कर दूँ, तो आसपास खबर हो जायेगी कि आदमी पागल हो गया। हम पड़ोसियों की इतनी फिक्र करते हैं कि मरते वक्त भी परमात्मा का ध्यान नहीं होता। मरते वक्त भी यह ध्यान होता है कि कौन-कौन लोग मरघट पहुँचाने जायेंगे। फलाँ आदमी जायेगा कि नहीं! मरते वक्त भी यह खयाल होता है कि कौन-कौन पड़ोसी पहुँचाने जायेंगे। क्या फर्क पड़ता है कि कौन पहुँचाने आपको गया। और न भी गया कोई पहुँचाने, तो कोई फर्क नहीं पड़ता। मर ही गये। लेकिन मरने के बाद भी पड़ोसियों का ध्यान रहता है। जिन्दा में भी पूरे वक्त पड़ोसी से परेशान हैं कि पड़ोसी क्या सोचेगा। और पड़ोसी सोच रहा है कि आप क्या सोचेंगे। वह आपकी वजह से रुका है और आप उसकी वजह से रुके हैं। यह भी हो सकता है कि आप नाचने लगें, तो शायद पड़ोसी भी नाच उठे। वह भी आपकी वजह से रुका है।

अगर प्रार्थना आपको प्रीतिकर लगती है, तो भय छोड़ दें, और उस तरफ पूरे हृदय को आनन्द से भरकर नाचने दें और लीन होने दें। अगर आपको प्रार्थना ठीक न समझ में आती हो, तो 'प्रार्थना ठीक नहीं है'--ऐसा कहकर बैठ मत जायें। तो फिर बिना प्रार्थना के भी मार्ग हैं; ध्यान--निर्विचार होने के उपाय हैं। तो फिर विचार के त्याग का प्रयोग शुरू करें।

लेकिन बड़े मजेदार लोग हैं। अगर उनसे कहो--प्रार्थना, तो वे कहते हैं: लोग

क्या कहेंगे! अगर उनसे कहो--ध्यान, तो वे कहते हैं: बड़ा कठिन है। हमसे न हो सकेगा। न करने का बहाना हम हजार तरह से निकाल लेते हैं। साधक हमेशा करने का बहाना खोजेगा--कि किस बहाने मैं कर सकूँ। कोई भी बहाना मिल जाय, तो मैं कर सकूँ--ऐसी जिसकी विधायक खोज है, वह आज नहीं कल अपने ध्यान को उस दिशा में लगा लेता है, जहाँ परमात्मा की प्रतीति है।

अब हम सूत्र को लें।

'और जो पुरुष इन्द्रियों के समुदाय को अच्छी प्रकार वश में करके मन, बुद्धि से परे सर्वव्यापी अकथनीय स्वरूप और सदा एक रस रहने वाले, नित्य अचल निराकार और अविनाशी सच्चिदानन्दघन ब्रह्म को निरन्तर एकीभाव से ध्यान करते हुए उपासते हैं, वे सम्पूर्ण भूतों के हित में रत हुए और सब में समान भाव वाले योगी भी मेरे को ही प्राप्त होते हैं।'

कोई ऐसा न समझे कि केवल भक्ति से ही पहुँचा जा सकता है। कोई ऐसा न समझे कि भक्ति के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। तो कृष्ण दूसरे सूत्र में तत्काल कहते हैं कि वे जो भक्त हैं, और मेरे में सब भाँति से डूबे हुए हैं, जिनका मन सब भाँति मुझमें लगा हुआ है और जो मुझ सगुण को, साकार को निरन्तर भजते हैं श्रद्धा से, वे श्रेष्ठतम योगी हैं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि केवल वे ही पहुँचते हैं। वे भी पहुँच जाते हैं, जो निराकार का ध्यान करते हैं। वे भी पहुँच जाते हैं, जो शून्य के साथ अपना एकीभाव रखते हैं। वे भी मुझको ही उपलब्ध होते हैं। उनका मार्ग होगा दूसरा, लेकिन उनकी मंजिल मैं ही हूँ। तो कोई सगुण से चले कि निर्गुण से, वह पहुँचता मुझ तक ही है। पहुँचने को और कोई जगह नहीं है।

कहाँ से आप चलते हैं—इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जहाँ आप पहुँचेंगे, वह जगह एक है। आपके यात्रा-पथ अनेक होंगे, आपके ढंग अलग-अलग होंगे। आप अलग-अलग विधियों का उपयोग करेंगे; अलग नाम लेंगे, अलग गुरुओं को चुनेंगे, अलग अवतारों को पूजेंगे, अलग मन्दिरों में प्रवेश करेंगे, लेकिन जिस दिन घटना घटेगी, आप अचानक पायेंगे : वे सब भेद खो गये, वे सब अनेकताएँ समाप्त हो गयीं और आप वहाँ पहुँच गये हैं, जहाँ कोई भेद नहीं है, जहाँ अभेद है।

बड़ा उलटा मालूम पड़ता है। जो तर्क, चिन्तन करते रहते हैं, उन्हें लगता है: दोनों बातें कैसे सही हो सकती हैं! क्योंकि निराकार और साकार तो विपरीत मालूम पड़ते हैं। सगुण और निर्गुण तो विपरीत मालूम पड़ते हैं। कितना विवाद चलता है! पण्डितों ने अपने सिर खाली कर डाले हैं। अपनी जिन्दगियाँ लगा दी हैं इस विवाद में कि सगुण ठीक है कि निर्गुण ठीक है। बड़े पंथ, बड़े सम्प्रदाय खड़े

हो गये हैं। बड़ी झंझट है। एक दूसरे को गलत सिद्ध करने की इतनी चेष्टा है कि करीब-करीब दोनों ही गलत हो गये हैं।

इस जमीन पर इतना जो अधर्म है, उसका कारण यह नहीं है कि नास्तिक हैं दुनिया में बहुत ज्यादा। नहीं। आस्तिकों ने एक दूसरे को गलत सिद्ध कर करके ऐसी हालत पैदा कर दी कि कोई भी सही नहीं रह गया। मन्दिर, मसजिद को गलत कह देता है; मसजिद मन्दिर को गलत कह देती है। मन्दिर इस खयाल से मसजिद को गलत कहता है कि अगर मसजिद गलत न हुई तो मैं सही कैसे होऊँगा! मसजिद इसलिए गलत कहती है कि अगर तुम भी सही तो हमारे सही होने में कमी हो जायेगी। लेकिन सुनने वाले पर परिणाम होता है, उसे लगता है कि 'मसजिद भी गलत और मन्दिर भी गलत। ये जो दोनों को गलत कह रहे हैं, ये दोनों गलत हैं।' और यह गलती की बात इतनी प्रचारित होती है, क्योंकि दुनिया में कोई तीन सौ धर्म हैं, और एक धर्म को दो सौ निन्यानबे गलत कह रहे हैं। तो आप सोच सकते हैं कि जनता पर किसका परिणाम ज्यादा होगा। एक कहता है कि हम ठीक, और दो सौ निन्यानबे उसके खिलाफ हैं कि गलत है। हरेक के खिलाफ दो सौ निन्यानबे हैं। इन तीन सौ ने मिलकर तीन सौ को ही गलत कर दिया है और जमीन अधार्मिक हो गयी है।

सुना है मैंने, दो विद्यार्थी परीक्षा के दिनों में बात कर रहे हैं। उनका दिल था कि जायें और आज ही फिल्म देख आयें। लेकिन दोनों को अपने पिताओं का डर था। मन तो पढ़ने में बिलकुल लग नहीं रहा था। फिर एक ने कहा कि छोड़ो भी, कब तक हम परतन्त्र रहेंगे? यह गुलामी बहुत हो गयी। अगर यही गुलामी है जिन्दगी, तो इससे तो बेहतर है : हम दोनों यहाँ से भाग खड़े हों। परीक्षा से भी छूटेंगे और यह बापों की झंझट भी मिट जायेगी।'

पर दूसरे ने कहा कि 'यह भूलकर मत करना। क्योंकि वे हमारे दोनों के बाप बड़े खतरनाक हैं। वे जल्दी देर-अबेर... उन्हें ज्यादा देर नहीं लगेगी, हमें पकड़ ही लेंगे और अच्छी पिटाई होगी।' तो दूसरे ने कहा कि 'कोई फिक्र नहीं; अगर पिटाई भी हो तो अब बहुत हो गया सहते। हम भी सिर खोल देंगे उन पिताओं के।' तो दूसरे ने कहा, 'यह जरा ज्यादा बात हो गयी। धर्म-शास्त्र में लिखा हुआ है कि माता और पिता का आदर परमात्मा की भाँति करना चाहिए।' तो उस दूसरे ने कहा, तो फिर ऐसा करना, तुम मेरे पिता का सिर खोल देना; मैं तुम्हारे पिता का। तो धर्म-शास्त्र की भी आज्ञा पूरी हो जायेगी ...।'

ये दुनिया में तीन सौ धर्मों ने यह हालत कर दी है। एक दूसरे ने एक दूसरे के परमात्मा का सिर खोल दिया है। लाशें पड़ी हैं परमात्माओं की। और वे सब इस

मजे में खोल रहे हैं कि 'हम तुम्हारे परमात्मा का सिर खोल रहे हैं, कोई अपने का तो नहीं!'

हिन्दुओं ने मुसलमानों को गलत कर दिया है; मुसलमानों ने हिन्दुओं को गलत कर दिया है। साकारवादियों ने निराकारवादियों को गलत कर दिया है; निराकारवादियों ने साकारवादियों को गलत कर दिया है। बाइबिल कुरान के खिलाफ है; कुरान वेद के खिलाफ है; वेद तालमुद के खिलाफ है। सब एक दूसरे के खिलाफ हैं और पूरी जमीन परमात्मा की लाशों से भर गयी है।

कृष्ण का यह तत्क्षण दूसरा सूत्र इस बात की खबर देता है कि कितने ही विपरीत दिखायी पड़ने वाले मार्ग हों, मंजिल एक है।

इसे थोड़ा समझें, क्योंकि तर्क के लिए बड़ी कठिनाई है। तर्क कहता है कि अगर आकार ठीक है तो निराकार कैसे ठीक होगा? क्योंकि तर्क को लगता है कि आकार के विपरीत है। निराकार। लेकिन निराकार आकार के विपरीत नहीं है। आकार में भी निराकार ही प्रकट हुआ है। और निराकार भी आकार के विपरीत नहीं है। जहाँ आकार लीन होता है, उस स्रोत का नाम निराकार है। लहर के विपरीत नहीं है सागर। क्योंकि लहर में भी सागर ही प्रकट हुआ है। लहर भी सागर के विपरीत नहीं है, क्योंकि सागर से ही पैदा होती है, तो विपरीत कैसे होगी; और सागर में ही लीन होती है, तो विपरीत कैसे होगी!

जो मूल है, उद्‌गम हैं और जो अन्त है, उसके विपरीत होने का क्या उपाय है? निराकार और आकार विपरीत नहीं हैं। विपरीत दिखायी पड़ते हैं, क्योंकि हमारे पास देखने की सीमित क्षमता है। वे विपरीत दिखायी पड़ते हैं, क्योंकि देखने की हमारे पास इतनी विस्तीर्ण क्षमता नहीं है कि दो विरोधों को हम एक साथ देख लें। हमारी देखने की क्षमता तो इतनी कम है, जिसका हिसाब नहीं।

अगर मैं आपको एक कंकड़ का छोटा-सा टुकड़ा हाथ में दे दूँ और आपसे कहूँ : इसको पूरा एक साथ देख लीजिये, तो आप पूरा नहीं देख सकते। एक तरफ एक दफा दिखायी पड़ेगी। फिर उसको उलटाइये तो दूसरी तरफ दिखायी पड़ेगी। और जब दूसरा हिस्सा दिखायी पड़ेगा, तो पहला दिखायी पड़ना बन्द हो जाएगा।

एक छोटे से कंकड़ को भी हम पूरा नहीं देख सकते, तो सत्य को हम पूरा कैसे देख सकते हैं? कंकड़ तो बड़ा है, एक छोटे से रेत के कण को भी आप पूरा नहीं देख सकते; आधा ही देख सकते हैं। आधा हमेशा ही छिपा रहेगा। और जब दूसरे आधे को देखियेगा, तो पहला आधा आँख से तिरोहित हो जाएगा। आज तक किसी आदमी ने कोई चीज पूरी नहीं देखी। बाकी आधे की हम सिर्फ कल्पना करते हैं कि होनी चाहिए। उलटा कर जब देखते हैं, तो मिलती है; लेकिन तब तक

पहला आधा खो जाता है। आदमी के देखने की क्षमता इतनी संकीर्ण है। तो हम सत्य को पूरा नहीं देख पाते।

सत्य के संबंध में हमारी हालत वही है, जो हाथी के पास पाँच अन्धों की हो गयी थी। उन सबने हाथी ही देखा था, लेकिन पूरा नहीं देखा था। किसी ने हाथी का पैर देखा था और किसी ने हाथी का कान देखा था और किसी ने हाथी की सूंड देखी थी और वे सब सही थे और फिर भी सब गलत थे। और जब वे गाँव में वापस लौटकर आये तो बड़ा उपद्रव और विवाद खड़ा हो गया, क्योंकि उन सबने हाथी देखा था और सभी का दावा था कि हम हाथी देखकर आ रहे हैं। लेकिन किसी ने कहा कि हाथी सूप की भाँति है; और किसी ने कहा कि हाथी मंदिर के खंभे की भाँति है; और बड़ी मुश्किल खड़ी हो गयी। और निर्णय कुछ भी नहीं हो सकता था, क्योंकि सभी की बातें इतनी विपरीत थीं।

लेकिन वे सारी विपरीत बातें इसलिए विपरीत मालूम पड़ती थीं कि उन सबने अधूरा-अधूरा देखा था और कोई हाथी से अगर पूछता, तो वह कहता : यह सब मैं हूँ।

यह अर्जुन हाथी के सामने खड़ा है, इसलिए अगर एक ने कहा हो कि निराकार है वह, और किसी दूसरे ने कहा हो, साकार है वह। .. यह अर्जुन हाथी के सामने खड़ा है और हाथी से पूछ रहा है कि क्या हो तुम। तो हाथी कहता है--सब हूँ मैं। और जिसने कहा है कि सूप की भाँति है--वह मैं ही हूँ; और जिसने कहा है : खम्भे की भाँति हूँ--वह मैं ही हूँ। उन सब की भूल इसमें नहीं है; वे जो कहते हैं, उसमें भूल नहीं है। उनकी भूल इसमें है कि वे इनकार करते हैं।

कोई भूल नहीं है अन्धे की, अगर वह कहता है कि हाथी मैंने देखा जैसा, वह खंभे की भाँति है। अगर वह इतना ही कहे कि जितना मैंने देखा है हाथी, वह खंभे कि भाँति है, तो जरा भी भूल नहीं है। लेकिन वह कहता है : हाथी खंभे की भाँति है। और जब कोई कहता है कि हाथी खंभे की भाँति नहीं है--सूप की भाँति है, तो झगड़ा शुरू हो जाता है। तब वह कहता है कि हाथी सूप की भांति हो नहीं सकता, क्योंकि खंभा कैसे सूप होगा!

हाथी से कोई भी नहीं पूछता है और हाथी से पूछने के लिए अन्धे समर्थ नहीं हो सकते। और अगर हाथी कह दे कि मैं सब हूँ, तो हम सोचेंगे कि हाथी पागल है। क्योंकि अन्धे तो देख ही नहीं सकते। सोचेंगे : हाथी पागल हो गया है। अन्यथा ऐसी व्यर्थ, बुद्धिहीन बात नहीं कहता।' कोई अन्धा उसकी मानता नहीं है। सब अंधे अपनी मानते हैं और जब अपनी मानते हैं, तो दूसरे के वक्तव्य को गलत करने की चेष्टा जरूरी हो जाती है। क्योंकि दूसरे का वक्तव्य स्वयं को

गलत करता मालूम पड़ता है।

कृष्ण का यह सूत्र कह रहा है कि वे भी पहुँच जाते हैं, जो प्रेम से चलते हैं। और वे भी पहुँच जाते हैं, जो ज्ञान से चलते हैं। मार्ग विपरीत हैं।

ज्ञान से चलने वाले को शून्य होना पड़ता है। और प्रेम से चलने वाले को पूर्ण होना पड़ता है। लेकिन शून्यता और पूर्णता एक ही घटना के दो नाम हैं। शून्य से ज्यादा पूर्ण कोई और चीज नहीं है। और पूर्ण से ज्यादा शून्य कोई और चीज नहीं है। हमारे लिए तकलीफ है, क्योंकि हमारे लिए शून्य का अर्थ है--कुछ भी नहीं। और हमारे लिए पूर्ण का अर्थ है--सब कुछ। ये हमारे देखने के ढंग हैं, दृष्टि है। हम जितना समझ सकते हैं, हमारी सीमा है, उसके कारण यह अड़चन है।

लेकिन जो शून्य हो जाता है, वह तत्क्षण पूर्ण का अनुभव कर लेता है। और जो पूर्ण हो जाता है, वह भी तत्क्षण शून्य का अनुभव कर लेता है। थोड़ा-सा फर्क होता है। वह फर्क आगे पीछे का होता है। जो शून्य होता हुआ चलता है, उसे पहले अनुभव शून्य का होता है। शून्य का अनुभव होते ही पूर्ण का द्वार खुल जाता है। जो पूर्ण की तरफ से चलता है, उसे पहले अनुभव पूर्ण का होता है; पूर्ण होते ही शून्य का द्वार खुल जाता है।

ऐसा समझ लें कि शून्यता और पूर्णता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जो सिक्के का हिस्सा आपको पहले दिखायी पड़ता है, जब आप उलटायेंगे, पूरा सिक्का आपके हाथ में आयेगा, तो दूसरा हिस्सा दिखायी पड़ेगा।

इसीलिए ज्ञानी पहले प्रेम से बिलकुल रिक्त होता चला जाता है और अपने को शून्य करता है। प्रेम से भी शून्य करता है, क्योंकि वह भी भरता है।

तो महावीर ने कहा है कि सब तरह के प्रेम से शून्य--सब तरह के मोह, सब तरह के राग--सबसे शून्य। इसलिए महावीर ने कह दिया कि ईश्वर भी नहीं है। क्योंकि उससे भी राग बन जायेगा, प्रेम बन जायेगा। कुछ भी नहीं है; जिससे राग बनाना है। सब संबंध तोड़ देने हैं। और प्रेम संबंध है। और अपने को बिलकुल खाली कर देना है।

जिस दिन खाली हो गये महावीर, उस दिन जो पहली घटना घटी, वह आप जानते हैं, वह क्या है! वह घटना घटी प्रेम की। इसलिए महावीर से बड़ा अहिंसक खोजना मुश्किल है, क्योंकि शून्य से चला था; जिस दिन पहुँचा मंजिल पर, उस दिन इससे बड़ा प्रेमी खोजना मुश्किल है। यह उलटी बात हो गयी।

इसलिए महावीर ने जितना जोर दिया फिर प्रेम पर--अहिंसा उनका नाम है--प्रेम के लिए। वह ज्ञानी का शब्द है--प्रेम के लिए। क्योंकि प्रेम से डर है कि कहीं आम आदमी अपने प्रेम को न समझ ले। इसलिए अहिंसा।

अहिंसा का मतलब इतना ही है कि दूसरे को जरा भी दुःख मत देना। और ध्यान रहे : जो आदमी 'दूसरे को जरा भी दुःख न दूँ'——इसका खयाल रखता है, उस आदमी से दूसरे को सुख मिल पाता है। और जो आदमी खयाल रखता है कि दूसरे को सुख दूँ, वह अकसर दुःख देता है।

भूलकर भी दूसरे को सुख देने की कोशिश मत करना। वह आपकी सामर्थ्य के बाहर है। आपकी सामर्थ्य इतनी है कि आप कृपा करना, और दुःख मत देना। आप दुःख से बच जायँ——दूसरे को देने से, तो काफी सुख देने की अपने व्यवस्था कर दी। क्योंकि जब आप कोई दुःख नहीं देते, तो आप दूसरे को सुखी होने का मौका देते हैं। सुखी तो वह खुद ही हो सकता है। आप सुख नहीं दे सकते हैं; सिर्फ अवसर जुटा सकते हैं।

सुख देने की कोशिश मत करना——किसी को भी——भूल कर, नहीं तो वह भी दुःखी होगा और आपको भी दुःखी करेगा। सुख कोई दे नहीं सकता, इसलिए महावीर ने नकार शब्द चुन लिया——अहिंसा। दुःख भर मत देना, यही तुम्हारे प्रेम की संभावना है। इससे तुम्हारा प्रेम फैल सकेगा।

महावीर शून्य होकर चले और प्रेम पर पहुँच गये। कृष्ण पूरे के पूरे प्रेम हैं। और उनसे शून्य आदमी खोजना मुश्किल है। सारा प्रेम है, लेकिन भीतर एक गहन शून्य खड़ा हुआ है। इसलिए इस प्रेम में कहीं भी कोई बंधन निर्मित नहीं होता।

इसलिए हमने कहानी कही है कि सोलह हजार प्रेयसियाँ, पत्नियाँ हैं उनकी। और फिर भी हमने कृष्ण को मुक्त कहा। सोलह हजार प्रेम के बन्धन के बीच जो आदमी मुक्त हो सके, वह भीतर शून्य होना चाहिए; नहीं तो मुक्त नहीं हो सकेगा।

पर जैन नहीं समझ सके——कृष्ण को। जैसा कि हिन्दू नहीं समझ सकते——महावीर को। जैन नहीं समझ सके, क्योंकि जैनों को लगा कि जिसके आसपास सोलह हजार स्त्रियाँ हों..! एक स्त्री नरक पहुँचा देने के लिए काफी है। सोलह हजार स्त्रियाँ जिसके पास हों, इसके लिए बिलकुल आखिरी नरक खोजना जरूरी है। इसलिए जैनों ने कृष्ण को सातवें नरक में डाला हुआ है, क्योंकि जहाँ इतना प्रेम घट रहा हो, वहाँ बंधन हो ही गया होगा। लेकिन उन्हें खयाल नहीं है कि यह आदमी बाँधा नहीं जा सकता, क्योंकि भीतर यह आदमी है ही नहीं। यह मौजूद नहीं है। जो मौजूद हो, वह बाँधा जा सकता है। अगर आप आकाश पर मुट्ठी बाँधेंगे, तो मुट्ठी रह जायेगी, आकाश बाहर हो जायेगा। आकाश को अगर बाँधना हो, तो हाथ खुला चाहिए। आपने बाँधा कि आकाश बाहर गया।

जो शून्य की भाँति है, वह बाँधा नहीं जा सकता। भीतर यह आदमी शून्य है,

लेकिन इसकी यात्रा प्रेम की है। इसलिए कृष्ण जैसा शून्य आदमी खोजना मुश्किल है।

आप दोनों तरफ से चल सकते हैं। अपनी-अपनी पात्रता, क्षमता, अपना निज स्वभाव पहचानना जरूरी है।

इसलिए कृष्ण ने कहा कि वे जो दूसरी तरफ से चलते हैं——निराकार, अद्वैत, निर्गुण, शून्य से——वे भी मुझ पर ही पहुँच जाते हैं। तब सवाल यह नहीं है कि आप कौन-सा मार्ग चुनें। सवाल यह है कि आप किस मार्ग के अनुकूल अपने को पाते हैं। आप कहाँ हैं, कैसे हैं। आपका व्यक्तित्व, आपका ढाँचा, आपकी बनावट, आपके निजी झुकाव कैसे हैं।

एक बड़ा खतरा है——और सभी साधकों को सामना करना पड़ता है और वह खतरा यह है कि अकसर आपको अपने से विपरीत स्वभाववाला व्यक्ति आकर्षक मालूम होता है। यह खतरा है। इसलिए गुरुओं के पास अकसर उनके विपरीत चेले इकट्ठे हो जाते हैं। क्योंकि जो विपरीत है, वह आकर्षित करता है। जैसे पुरुष को स्त्री आकर्षित करती है; स्त्री को पुरुष आकर्षित करता है।

आप ध्यान रखें कि यह विपरीत का आकर्षण सब जगह है। अगर आप लोभी हैं, तो किसी त्यागी गुरु से आकर्षित होंगे। फौरन आप कोई त्यागी गुरु को पकड़ लेंगे। क्यों? क्योंकि आपको लगेगा कि मैं एक पैसा नहीं छोड़ सकता और इसने सब छोड़ दिया! बस, चमत्कार है। आप इसके पैर पकड़ लेंगे। तो त्यागियों के पास अकसर लोभी इकट्ठे हो जायेंगे। यह बड़ी उलटी घटना है, लेकिन घटती है।

अगर आप क्रोधी हैं, तो आप किसी अक्रोधी गुरु की तलाश करेंगे। आपको जरा-सा भी उसमें क्रोध दिख जाय, आपका विश्वास खतम हो जायेगा। क्योंकि आपका अपने में तो विश्वास है नहीं; आप अपने दुश्मन हैं और यह आदमी भी क्रोध कर रहा है, तो आप ही जैसा है; बात खत्म हो गई।

जिस दिन आपको पता चलता है कि गुरु आप जैसा है——गुरु खतम। वह आपसे विपरीत होना चाहिए। अगर आप स्त्रियों के पीछे भागते रहते हैं, तो गुरु को बिलकुल स्त्री पास भी नहीं फड़कने देनी चाहिए; उसके शिष्य चिल्लाते रहना चाहिए कि छू मत लेना। कोई स्त्री छू न ले। तब आपको जँचेगा कि हाँ, यह गुरु ठीक है।

सब अपने दुश्मन हैं, इसलिए अपने से विपरीत को चुन लेते हैं। फिर बड़ा खतरा है। क्योंकि अपने से विपरीत को चुन तो लेते हैं, आप आकर्षित तो होते हैं, लेकिन उस मार्ग पर आप चल नहीं सकते हैं। क्योंकि जो आपके विपरीत है, वह आपको नहीं सकते। इसलिए अकसर चेले कहीं भी नहीं पहुँच पाते।

साधक को पहली बात ध्यान में रखनी चाहिए कि मेरी स्थिति क्या है; मैं किस ढंग का हूँ। मेरा ढंग ही मेरा मार्ग बनेगा।

तो बेहतर तो यह है कि अपनी स्थिति को ठीक से समझ कर और यात्रा पर चलना चाहिए। गुरु को समझकर यात्रा पर चलने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। अपने को समझ कर गुरु खोजना चाहिए। गुरु खोजकर पीछा नहीं करना चाहिए। जो अपने को समझकर गुरु खोज लेता है, मार्ग खोज लेता है, जो अपने स्व-धर्म को पहचान लेता है...।

समझ लें कि आपको प्रेम का कोई अनुभव ही नहीं होता। बहुत लोग हैं, जिनको अनुभव नहीं होता। मगर सबको यह खयाल रहता है कि मैं प्रेम करता हूँ। तब बड़ी कठिनाई हो जाती है। अगर आपको कोई प्रेम का अनुभव ही नहीं होता है, तो भक्ति का मार्ग आपके लिए नहीं है। अगर प्रेम करने वाले आपको पागल मालूम पड़ते हैं, तो भक्ति का मार्ग आपके लिए नहीं है।

कभी आपने सोचा कि अगर मीरा आपको बाजार में नाचती हुई मिल जाय, तो आपके मन पर क्या छाप पड़ेगी?

इसको ऐसा सोचिए कि अगर आप बाजार में नाच रहे हों––कृष्ण का नाम ले कर, तो आपको आनन्द आयेगा या आपको फिक्र लगेगी कि कोई अब पुलिस में खबर करता है! लोग क्या सोच रहे होंगे?' 'लोक लाज' मीरा ने कहा है, 'छोड़ी ––तेरे लिए।' वह लोक-लाज छोड़ सकेंगे आप?

प्रेम का कोई अनुभव आपको अगर हुआ हो और वह अनुभव आपको इतना कीमती मालूम पड़ता हो कि सब खोया जा सकता है, तो ही भक्ति का मार्ग आपके लिए है।

और कुनकुने भक्त होने से न होना अच्छा है। ल्यूक वार्म होने से कुछ नहीं होता दुनिया में। उबलना चाहिए––तो ही भाप बनता है पानी और जब तक आपकी भक्ति भी उबलती हुई न हो––कुनकुनी हो––तब तक फिर बुखार मालूम पड़ेगा। कोई फायदा नहीं होगा। बुखार से तो न-बुखार अच्छा। अपना नॉर्मल टेम्परेचर ठीक। क्योंकि बुखार गलत चीज है; उससे परिवर्तन भी नहीं होता, और उपद्रव भी होता है।

और ध्यान रहे : परिवर्तन हमेशा छोर पर होता है। जब पानी उबलता है–स सौ डिग्री पर, तब भाप बनता है। और जब प्रेम भी उबलता है––सौ डिग्री पर–– जब बिलकुल दीवाना हो जाता है, तो ही मार्ग खुलता है। उससे पहले नहीं।

अगर वह आपका झुकाव न हो, तो उस झंझट में पड़ना ही मत। तो फिर बेहतर है कि आप प्रेम का खयाल न करके, ध्यान का खयाल करना। फिर किसी पर-

मात्मा से अपने को भरना है––इसकी फिक्र छोड़ देना। फिर तो सब चीजों से अपने को खाली कर लेना है––इसकी आप चिन्ता करना। वही आपके लिए उचित होगा। फिर एक-एक विचार को धीरे-धीरे भीतर से बाहर फेंकना। और भीतर साक्षी भाव को जन्माना। और एक ही ध्यान रह जाय कि उस क्षण को मैं पा लूँ, जब मेरे भीतर कोई चिन्तन की धारा न हो, कोई विचार न हो। जब मेरे भीतर निर्विचार हो जायेगा, तो मेरा निराकार से मिलन हो जायेगा। और जब मेरे भीतर प्रेम ही प्रेम रह जाएगा––उन्मत्त प्रेम, विक्षिप्त प्रेम, उबलता हुआ प्रेम––तब मेरा सगुण से मिलन हो जायेगा।

अपना निज रुझान खोज कर जो चलता है, और उसको उसकी पूर्णता तक पहुँचा देता है...। आप ही हैं द्वार; आप ही हैं मार्ग; आप में ही छिपी है मंजिल। थोड़ी समझ अपने प्रति लगाएँ और थोड़ा अपना निरीक्षण करें और अपने को पहचानें, तो जो बहुत कठिन दिखाई पड़ता है, वह उतना ही सरल हो जाता है

पाँच मिनट रुकेंगे। कोई उठे नहीं। कीर्तन में भाव से भाग लें और फिर जायें।

भक्ति का युग • पाप और प्रार्थना • समर्पण और प्रभु-प्रसाद

तीसरा प्रवचन

क्रॉस मैदान, पारसी कुआँ, बम्बई, संध्या, दिनांक १४ मार्च, १९७३

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ ६ ॥

किन्तु उन सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्म में आसक्त हुए चित्तवाले पुरुषों के साधन में क्लेश अर्थात् परिश्रम विशेष है, क्योंकि देहाभिमानियों से अव्यक्तविषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है। अर्थात् जब तक शरीर में अभिमान रहता है, तब तक शुद्ध सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्म में स्थिति होनी कठिन है।

और जो मेरे परायण हुए भक्तजन सम्पूर्ण कर्मों को मेरे में अर्पण करके मुझ सगुणरूप परमेश्वर को ही तैलधारा के सदृश अनन्य भक्तियोग से निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं, उनका मैं शीघ्र ही उद्धार करता हूँ।

पहले कुछ प्रश्न।

● एक मित्र ने पूछा है कि आज के बौद्धिक युग में भक्ति, भाव-साधना का मार्ग कैसे उपयुक्त हो सकता है? श्रद्धा के अभाव में भक्ति-साधना में प्रवेश कैसे संभव है?

ऐसा प्रश्न बहुतों के मन में उठता है। युग तो बुद्धि का है, तो भाव की तरफ गति कैसे हो सके? दोनों में विपरीतता है; दोनों उलटे छोर मालूम पड़ते हैं।

हमारा सारा शिक्षण, सारा संस्कार बुद्धि का है। भाव की न तो कोई शिक्षा है, न कोई संस्कार है। भाव के विकसित होने का कोई उपाय भी दिखाई नहीं पड़ता। सारी जीवन की व्यवस्था बुद्धि से चलती मालूम पड़ती है। इस बुद्धि के शिखर पर बैठे हुए युग में, कैसे भाव की तरफ गति होगी, कैसे भक्ति की तरफ रास्ता खुलेगा?

जीवन का एक बहुत अनूठा नियम है, वह आप समझ लें। वह नियम है कि जब भी हम एक अति पर चले जाते हैं, तो दूसरी अति पर जाना आसान हो जाता है। जब भी हम एक छोर पर पहुँच जाते हैं, तो दूसरे छोर पर पहुँचना आसान हो जाता है—घड़ी के पेन्डुलम की तरह। घड़ी का पेन्डुलम घूमता है बायीं तरफ और जब बायीं तरफ के आखिरी छोर को छू लेता है, तो दायीं तरफ घूमना शुरू हो जाता है। यह युग बुद्धि का युग है, इतना ही काफी नहीं है जानना। यह युग बुद्धि से पीड़ित युग भी है। इस युग की ऊँचाइयाँ भी बुद्धि की हैं, इस युग की परेशानियाँ भी बुद्धि की हैं। इस युग की पीड़ा भी बुद्धि है।

यह सारा आज का चिंतनशील मस्तिष्क परेशान है, विक्षिप्त है। और जैसे-जैसे सभ्यता बढ़ती है, वैसे-वैसे हमें पागलखाने बढ़ाने पड़ते हैं। जितना सभ्य मुल्क हो, उस की जाँच का एक सीधा उपाय है कि वहाँ कितने ज्यादा लोग पागल हो रहे हैं।

बुद्धि पर ज्यादा जोर पड़ता है, तो तनाव सघन हो जाता है। हृदय हलका करता है, बुद्धि भारी कर जाती है। हृदय एक खेल है, बुद्धि एक तनाव है।

तो बुद्धि की इतनी पीड़ा के कारण और बुद्धि का इतना संताप जो पैदा हुआ है, उस के कारण, दूसरी तरफ घूमने की सम्भावना पैदा हो गयी है।

हम बुद्धि से परेशान हैं। इस परेशानी के कारण हम भाव की तरफ उन्मुख हो सकते हैं। और मेरी अपनी समझ ऐसी है कि शीघ्र ही पृथ्वी पर वह समय आयेगा, जब पहली दफा मनुष्य भाव में इतना गहरा उतरेगा, जितना इसके पहले कभी भी नहीं उतरा है।

गाँव का एक ग्रामीण है, तो गाँव का ग्रामीण भावपूर्ण होता है, लेकिन अगर कभी कोई शहर का बुद्धिमान भाव से भर जाय, तो गाँव का ग्रामीण उस के भाव का मुकाबला नहीं कर सकता। क्योंकि जिसने बुद्धि के शिखर को जाना हो और जब वह उस शिखर से भाव की खाई में गिरता है, तो उस खाई की गहराई उतनी ही होती है, जितनी शिखर की ऊँचाई। जितनी ऊँचाई से आप गिरते हैं, उतनी ही गहराई में गिरते हैं। अगर आप समतल जमीन पर गिरते हैं, तो आप कहीं गिरते ही नहीं।

तो गाँव के ग्रामीण की जो भावदशा है, वह बहुत गहरी नहीं हो सकती। लेकिन शहर के बुद्धिमान की, सुशिक्षित, सुसंस्कृत की जब भाव-दशा गहरी होती है, तो वह उतनी ही गहरी होती है—उतनी ही विपरीत गहरी है—जितने शिखर पर वह खड़ा है।

मनुष्यता बुद्धि के शिखर को छू रही है और बुद्धि के शिखर को छूने से जो-जो आशाएँ हमने बाँधी थीं, वे सभी असफल हो गयी हैं। जो भी हमने सोचा था, मिलेगा, बुद्धि से, वह नहीं मिला। और जो मिला है, वह बहुत कष्टपूर्ण है।

बर्ट्रेन्ड रसेल जैसे बुद्धिमान आदमी ने कहा है ...। और इस सदी में जिनकी बुद्धि का हम भरोसा कर सकें,उन थोड़े से लोगों में एक हैं रसेल। रसेल ने कहा है कि पहली बार आदिवासियों को एक जंगल में नाचते देखकर मुझे लगा कि अगर यह नाच मैं भी नाच सकूँ तो मैं अपनी सारी बुद्धि को दाँव पर लगाने को तैयार हूँ। अगर यही उन्मुक्त—चाँद की रात में यही उन्मुक्त गीत मैं भी गा सकूँ, तो महँगा सौदा नहीं है। लेकिन सौदा महँगा भला न हो, करना बहुत कठिन है।

बुद्धि के तनाव को छोड़कर भाव और हृदय की तरफ उतरना जटिल है। लेकिन पश्चिम में, जो निश्चित ही बुद्धि की दौड़ में हम से आगे है, बुद्धि की पीड़ा बहुत स्पष्ट हो रही है। हम स्कूल, कॉलेज युनिवर्सिटी बना रहे हैं, पश्चिम में उनके उजड़ने का वक्त करीब आ गया है।

आज अगर अमेरिका में विचारशील युवक है, तो वह पूछता है कि पढ़ कर क्या होगा? अगर मुझे एम्. ए. या डॉक्टरेट की उपाधि मिल गयी, तो क्या होगा?

मुझे क्या मिल जायेगा ? और पश्चिम के पिताओं के पास, गुरुओं के पास उत्तर नहीं है। क्योंकि जब बच्चे अपने बाप से पूछते हैं कि आप पढ़-लिख गये, आपको जीवन में क्या मिल गया है, जिसकी वजह से हम भी इस पढ़ने के चक्र से गुजारे जायें ? आपने क्या पा लिया ?

आज पश्चिम में अगर हिप्पी और बीटनिक और युवकों का बड़ा वर्ग विद्रोह कर रहा है शिक्षा से, संस्कृति से, समाज से तो उसका मौलिक कारण यही है कि बुद्धि ने जो जो आशाएँ दी थीं, वे पूरी नहीं हुईं। और बुद्धि का भ्रम-जाल टूट गया। एक डिस-इल्यूजनमेन्ट--सब भ्रम टूट गये।

भ्रम टूटते ही तब हैं, जब कोई चीज उपलब्ध होती है; उसके पहले नहीं टूटते। गरीब आदमी को भ्रम बना ही रहता है कि धन से सुख मिलता होगा। 'धन से सुख नहीं मिलता,'--इसके लिये धनी होना जरूरी है। इसके पहले यह अनुभव में नहीं आता। आयेगा भी कैसे ? अनुभव का अर्थ ही यह होता है कि जो हमारे पास है, उसका ही हम अनुभव कर सकते हैं। जो हमारे पास नहीं है, उसकी हम आशाएँ और सपने बाँध सकते हैं।

जमीन पर पहली दफा--इन पाँच हजार वर्षों में बुद्धि ने पूरा शिखर छुआ है। बुद्धि का भ्रम टूट गया है। और इस भ्रम के टूटने के कारण इस क्रान्ति की सम्भावना है कि मनुष्य पहली दफा भक्ति की तरफ मुड़ जाय। निश्चित ही इस आदमी की भक्ति गहरी होगी।

ऐसा समझें कि एक गरीब आदमी संन्यासी हो जाय, सब छोड़ दे। लेकिन सब था क्या उसके पास छोड़ने को ! उसके त्याग की कितनी गहराई होगी ? उसके त्याग की उतनी ही गहराई होगी, जितना उसने छोड़ा है। उससे ज्यादा नहीं हो सकती। उसके पास कुछ था ही नहीं। एक सम्राट् के त्याग की गहराई उतनी ही होगी, जितना उसने छोड़ा है।

ध्यान रहे : जब बुद्ध और महावीर सब छोड़ कर सड़क पर भिखारी की तरह खड़े हो जाते हैं, तब आप यह मत समझना कि ये वैसे ही भिखारी हैं, जैसे दूसरे भिखारी हैं। इनके भिखारीपन में एक तरह की शान है और इनके भिखारीपन में एक अमीरी है। और इनके भिखारीपन मे छिपा हुआ सम्राट् मौजूद है। कोई भिखारी इनका मुकाबला नही कर सकता। क्योंकि दूसरा भिखारी फिर भी भिखारी ही है। उसे सम्राट होने का कोई अनुभव नहीं है। इसलिए उसके संन्यास में कोई गहराई नहीं हो सकती। उसका संन्यास हो सकता है एक सान्त्वना हो; अपने को समझाना हो। उसने शायद इसलिए सब छोड़ दिया हो कि पहली तो बात कुछ था भी नहीं। पकड़ने योग्य भी कुछ नहीं था। और फिर दूसरी बात

कि सोचा हो कि अंगूर खट्टे हैं। जो नहीं मिलता, वह पाने योग्य भी नहीं है। शायद उसने अपने को समझा लिया हो कि मैं त्याग करके परमात्मा को पाने जा रहा हूँ। कुछ उसके पास था नहीं। उसके छोड़ने का कोई मूल्य नहीं है।

लेकिन जब कोई बुद्ध या महावीर सब छोड़कर जमीन पर भिखारी की तरह खड़ा हो जाता है, तो इस छोड़ने की शान और है। बुद्ध की शान और है। यह बुद्ध कितना ही बड़ा भिक्षापात्र अपने हाथ में ले लें, इनकी आँखों में सम्राट मौजूद रहेगा। और जब यह बुद्ध एक वृक्ष के नीचे सो जायेंगे..., इन्होंने महल जाने हैं और यह भी जान लिया है कि उन महलों में कोई सुख नहीं था। तो इनकी नींद वृक्ष के नीचे और है। और एक भिखारी जब वृक्ष के नीचे सोता है, जिसने महल नहीं जाने हैं, वह भी कहता है कि महलों में कुछ नहीं है, लेकिन उसकी नींद की गुणवत्ता और होगी। ये दोनों अलग तरह के लोग हैं।

हम जिस अनुभव से गुजर जाते हैं, और उसके विपरीत जब हम जाते हैं, तो उसकी गहराई उतनी ही बढ़ जाती है। इसलिए गरीब का जो आनन्द है, वह केवल अमीर को मिलता है। गरीब होने का जो मजा है, वह केवल अमीर को मिलता है। और जो अमीर अभी अमीरी से ऊबा नहीं है, उसे जिन्दगी के सब से बड़े मजे की अभी कमी है--वह है अमीरी के बाद गरीबी का मजा। और जो आदमी बुद्धि से अभी ऊबा नहीं है, समझ लेना कि अभी बुद्धि के शिखर पर नहीं पहुँचा है। जिस दिन शिखर पर पहुँचेगा, उस दिन ऊब कर छोड़ देगा; क्योंकि जो भी आशाएँ बँधी थीं, वे इन्द्रधनुष साबित होती हैं। दूर से दिखाई पड़ती हैं, पास पहुँच कर खो जाती हैं।

अगर आप अब भी बुद्धि को पकड़े हैं, तो समझना कि काफी बुद्धिमान नहीं हैं, क्योंकि बड़े बुद्धिमान बुद्धि को छोड़ दिये हैं। बड़े धनियों ने धन छोड़ दिया है। बड़े बुद्धिमानों ने बुद्धि छोड़ दी है। जिन्होंने संसार का अनुभव ठीक से लिया है, वे मोक्ष की तरफ चल पड़े हैं। अगर आप अभी भी संसार में चल रहे हैं, तो समझना कि अभी संसार का अनुभव नहीं मिला। और अगर अभी भी बुद्धि को पकड़े हैं और छोटे-छोटे तर्क लगाते रहते हैं, तो समझ लेना कि अभी बुद्धि के शिखर पर नहीं पहुँचे हैं। अभी भी आपको आशा है। और अगर अभी भी रुपये इकट्ठे करने में लगे लगे हैं, तो इसका मतलब है कि अभी रुपये से आपकी पहचान नहीं है। अभी भी आप गरीब हैं; अभी अमीर नहीं हुए हैं। अमीर तो जब भी कोई आदमी होता है, तो रुपये को छोड़ देता है। क्योंकि अमीर का भ्रम भंग हो जाता है। और जब तक भ्रम भंग न हो, तब तक समझना कि गरीब है।

गरीब सोच भी नहीं सकता कि अमीरी के बाद आने वाली गरीबी क्या होगी। गरीब तो अमीरी के संबंध में भी जो सोचता है, वह भी गरीबी की ही धारणा

होती है।

मैंने सुना है : एक भिखमंगा अपनी पत्नी से कह रहा था कि 'अगर मैं रॉकफेलर होता, तो रॉकफेलर से भी ज्यादा धनी होता।' उसकी पत्नी ने कहा कि 'हैरानी की बात है! क्या तुम्हारा मतलब है?' भिखमंगा कह रहा है कि अगर मैं रॉकफेलर होता, तो रॉकफेलर से भी ज्यादा धनी होता। उसकी पत्नी ने कहा, 'हैरानी है! क्या मतलब है तुम्हारा कि तुम रॉकफेलर होते तो रॉकफेलर से भी ज्यादा धनी होते?' उस भिखमंगे ने कहा कि 'तू समझी नहीं। रॉकफेलर अगर मैं होता, तो किनारे-किनारे भीख माँगने का धन्धा भी जारी रखता। वह जो अतिरिक्त कमाई होती, वह रॉकफेलर से ज्यादा होती। साइड बाय साइड वह मैं अपना धन्धा भीख माँगने का भी करता रहता। तो रॉकफेलर से निश्चित मैं ज्यादा धनी होता, क्योंकि मैं जो भिखमंगेपन से कमाता, वह रॉकफेलर के पास नहीं है।

अगर भिखमंगा रॉकफेलर होने का भी सपना देखे, तो भी भिखमंगा ही रहता है। सम्राट् अगर भिखारी होने का भी सपना देखे, तो भी सम्राट् ही रहता है।

अनुभव खोते नहीं। जो भी अनुभव आपको मिल गया है, वह आपके जीवन का अंग हो गया है।

तो जब कोई बुद्धि के शिखर पर पहुँच जाता है...। थोड़ा सोचें। अगर कभी आइन्स्टीन भक्त हो जाय, तो आप के साधारण भक्त टिकेंगे नहीं। ऐसा हुआ है। चैतन्य महाप्रभु आइन्स्टीन जैसी बुद्धि के आदमी थे। बंगाल में कोई मुकाबला न था उनकी प्रतिभा का। उनके तर्क के सामने कोई टिकता न था। उनसे जूझने की हिम्मत किसी की न थी। उनके शिक्षक भी उनसे भयभीत होते थे। दूर-दूर तक खबर पहुँच गयी कि उनकी बुद्धि का कोई मुकाबला नहीं है। और फिर जब यह चैतन्य इस बुद्धि को छोड़ कर, और झाँझ मंजीरा लेकर रास्तों पर नाचने लगा, तो फिर चैतन्य महाप्रभु का मुकाबला भी नहीं है--इस नृत्य, इस गीत, इस प्रार्थना, और इस भाव और इस भक्ति का। न होने का कारण है।

नाचे बहुत लोग हैं। गीत बहुत लोगों ने गाये हैं। प्रार्थना बहुत लोगों ने की है। भाव बहुत लोगों ने किया है, लेकिन चैतन्य की सीमा को छूना मुश्किल है। क्योंकि चैतन्य का एक और अनुभव भी है : वे बुद्धि के आखिरी शिखर से उतर कर लौटे हैं। उन्होंने ऊँचाइयां देखी हैं। उनकी नीचाईयों में भी ऊँचाइयाँ छिपी रहेंगी।

तो इस युग के लिये, यह ध्यान में रख लेना जरूरी है कि यह युग एक शिखर अनुभव के करीब पहुँच खड़ा है, जहाँ बुद्धि व्यर्थ हो जायेगी। और जब बुद्धि व्यर्थ होती है, तो जीवन के लिए एक ही आयाम खुला रह जाता है; वह है भाव का

वह है हृदय का, वह है प्रेम का, वह है भक्ति का।

आदमी अब पुराने अर्थों में भावपूर्ण नहीं हो सकता है। अब तो नये अर्थों में भावपूर्ण होगा। पुराना आदमी सरलता से भावपूर्ण था। उसकी भावना में सरलता थी, गहराई नहीं थी। नया आदमी जब भावपूर्ण होता है, आज का आदमी जब भावपूर्ण होता है, तो उसके भाव में सरलता नहीं होती, गहराई होती है। और गहराई बड़ी कीमत की चीज है।

इसे हम ऐसा समझें : एक छोटा बच्चा है। छोटा बच्चा सरल होता है, लेकिन गहरा नहीं होता। गहरा हो नहीं सकता। क्योंकि गहराई तो आती है अनुभव से। गहराई तो आती है हजार दरवाजों पर भटकने से। गहराई तो आती है हजारों भूल करने से। गहराई तो आती है प्रौढता से, अनुभव से। सार जब बच जाता है--सब अनुभव का, तब गहराई आती है।

एक बूढ़ा आदमी सरल नहीं हो सकता, लेकिन गहरा हो सकता है। एक बच्चा गहरा नहीं हो सकता, सरल हो सकता है। और जब कोई बूढ़ा आदमी अपनी गहराई के साथ सरल हो जाता है, तो संत का जन्म होता है। इसलिये जीसस ने कहा है कि वे लोग मेरे स्वर्ग के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे, जो बच्चों की भाँति भोले हैं। लेकिन ध्यान रहे : जीसस ने यह नहीं कहा है कि बच्चे मेरे स्वर्ग के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे। बच्चे नहीं; जो बच्चों की भाँति भोले हैं वे। इसका मतलब साफ है कि पहली तो बात बच्चे नहीं हैं। तभी तो कहा कि 'बच्चों की भाँति'। बच्चे नहीं हैं; जो बूढ़े हैं सब अर्थों में, लेकिन फिर भी बच्चों की भाँति भोले हैं, वे ही स्वर्ग के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे।

बच्चा सरल है, अज्ञानी है। उसकी जिन्दगी में जटिलता नहीं है, लेकिन जटिलता आयेगी। अभी जटिलता आने का वक्त करीब आ रहा है। जल्दी ही वह भटकेगा, उलझेगा; वासना से भरेगा। जमाने भर की आकाँक्षाएँ उसे घेर लेंगी। उसकी सरलता के नीचे ज्वालामुखी छिपा है।

गाँव का आदमी सरल दिखाई पड़ता है। वह भी बच्चे की तरह सरल है। उसके भीतर वह सारा ज्वालामुखी छिपा है, जो शहर के आदमी में प्रगट हो गया है। उसे शहर ले आओ, वह शहर के आदमी जैसा ही जटिल हो जायेगा। और यह भी हो सकता है कि ज्यादा जटिल हो जाय। जब गाँव के लोग चालाक होते हैं, तो शहर के लोगों से ज्यादा चालाक होते हैं। क्योंकि उनकी जमीन बहुत दिन सेबिना उपयोगी के पड़ी है। उसमें चालाकी के बीज पड़ जाते हैं, तो जो फसल आती है, वह आप में नहीं आ सकती। आपकी जमीन काफी फसल ला चुकी है चालाकी का।

गाँव का आदमी चालाक हो जाय, तो बहुत चालाक हो जाता है। गाँव का आदमी सरल है, लेकिन उसकी सरलता की कोई कीमत नहीं है। उसकी सरलता बच्चे की सरलता है। उसके भीतर ज्वालामुखी छिपा है। वह कभी भी भ्रष्ट हो सकता है। शायद उसे भ्रष्ट होना ही पड़ेगा। क्योंकि इस जगत् में भ्रष्ट हुए बिना कोई अनुभव नहीं है। उसे इस जगत् से गुजरना ही पड़ेगा। और अगर इस जगत् से गुजर कर यह जगत् उसे व्यर्थ हो जाय और वह वापस गाँव लौट जाय और वापस लौट जाय उसी ग्रामीण सरलता में, तो उसकी जो गहराई होगी, वह संत की गहराई है।

विपरीत का अनुभव उपयोगी है। बच्चे को जवान होना जरूरी है। जवान का अर्थ है : वासना। सभी बच्चे जवान हो जाते हैं, लेकिन सभी जवान बूढ़े नहीं हो पाते हैं! शरीर बूढ़े हो जाते हैं, चित्त बूढ़ा नहीं हो पाता है। और जिसका चित्त बूढ़ा होता है, वह संत हो गया। चित्त के बूढ़े होने का अर्थ यह है कि जवानी में जो तूफान उठे थे, वे समझ लिये और पाया कि व्यर्थ हैं।

बूढ़े भी कहते हैं कि सब बेकार है। कहते हैं; ऐसा उन्होंने पाया नहीं है। अगर कोई चमत्कारी उनसे कहे कि हम तुम्हें फिर जवान बनाये देते हैं, तो वे अभी तैयार हो जायेंगे। खो गया है--हाथ से ताकत खो गयी है--वासना नहीं खो गयी है। मरते दम तक वासना पीछा करती है।

सब बच्चे जवान हो जाते हैं, लेकिन सभी जवान बूढ़े नहीं हो पाते हैं। बूढ़े तो बहुत थोड़े से लोग होते हैं। बूढ़े से मतलब है : जिनके लिए जवानी--अनुभव से --व्यर्थ हो गयी। और जो बूढ़े होकर फिर वापस उस सरलता को पहुँच गये, जिस सरलता को लेकर पैदा हुए थे। लेकिन इस सरलता में एक गुणात्मक, क्वालिटेटिव फर्क है। इस सरलता के नीचे जो तूफान छिपा था--ज्वालामुखी--वह नहीं है। इस सरलता को भ्रष्ट नहीं किया जा सकता। यह सरलता बोधपूर्वक है।

बच्चे की सरलता भ्रष्ट की जा सकती है। भ्रष्ट होगी ही; होनी चाहिए। नहीं तो उसके जीवन में गहराई नहीं आयेगी। उसे भ्रष्ट भी होना पड़ेगा और उसे भ्रष्टता के ऊपर भी उठना पड़ेगा।

जीवन एक शिक्षण है। उसमें भूल कर के हम सीखते हैं।

बुद्धि की भूल हमने कर ली है अपने जीवन में। अब अगर हम सीख जायें, तो हम हृदय की तरफ वापस लौट सकते हैं।

पृथ्वी पर भक्ति के बड़े युग के आने की सम्भावना है। उलटा लगेगा, क्योंकि हमें तो लग रहा है कि सब नष्ट हुआ जा रहा है। लेकिन तूफान के बाद ही शान्ति आती है। और यह जो नष्ट होना दिखाई पड़ रहा है, यह तूफान का आखिरी

चरण है। और इसके पीछे एक गहन सरलता उत्पन्न हो सकती है।

मगर आप, सारी दुनिया कब सरल होगी इसकी प्रतीक्षा में मत रहें। आप होना चाहें तो आज ही हो सकते हैं। और सारी दुनिया होगी या नहीं होगी, यह प्रयोजन भी नहीं है। दुनिया हो भी जायेगी और आप नहीं हुए, तो उसका कोई अर्थ नहीं है। आप हो सकते हैं अभी, लेकिन शायद आप भी अभी बुद्धि से ऊबे नहीं हैं। अभी शायद आपको भी यह साफ नहीं हुआ है कि बुद्धि का जाल कुछ अर्थ नहीं रखता है।

आदमी की बुद्धि कितनी छोटी है! इस छोटी-सी बुद्धि से हम क्या हल कर रहे हैं?--इस जीवन की विराट् पहेली को! कितने दर्शन हैं, कितने शास्त्र हैं, कुछ भी हल नहीं हुआ। बुद्धि अब तक एक नतीजे पर नहीं पहुँची। अभी तक जीवन की पहेली, पहेली की पहेली बनी रही। अभी तक कोई जवाब नहीं है।

हजारों साल की निरन्तर हजारों मस्तिष्कों की मेहनत के बाद भी, जीवन क्या है, उसका कोई उत्तर नहीं है। मनुष्य इतने दिन से कोशिश कर के भी बुद्धि से कुछ पा नहीं सका है। जीवन के सभी प्रश्न अभी भी प्रश्न हैं। कुछ हल नहीं हुआ है।

धर्म या भक्ति केवल इसी बात की पहचान है कि बुद्धि से एक भी उत्तर मिल नहीं सका। शायद बुद्धि से उत्तर मिल ही नहीं सकता। हम गलत दिशा से खोज रहे हैं। लेकिन यह स्मरण आ जाय, यह खयाल में आ जाय तो आप दूसरी दिशा में खोज शुरू कर दें।

आपके पास बुद्धि है। अच्छा है होना; क्योंकि अगर बुद्धि न हो तो यह भी मुश्किल है समझ में आना कि बुद्धि से कुछ मिल नहीं सकता। इतना उसका उपयोग है।

बायजीद ने कहा है कि 'शास्त्रों को पढ़कर एक ही बात समझ में आयी कि शास्त्रों से सत्य नहीं मिलेगा।' लेकिन काफी बड़ी बात समझ में आयी।

झेन फकीर रिंझाई ने कहा है कि 'सोच-सोच कर इतना ही पाया कि सोचना फिजूल है।' लेकिन बहुत पाया। इतना भी मिल जाय बुद्धि से, तो बुद्धि का बड़ा दान है। लेकिन इसके लिए भी साहसपूर्वक बुद्धि का प्रयोग करना चाहिए।

हम तो बुद्धि का प्रयोग भी नहीं करते हैं। इसलिए हम 'बुद्धिमान' बने रहते हैं। अगर हम बुद्धि का प्रयोग कर लें तो आज नहीं कल हम उस जगह पहुँच जायेंगे, जहाँ खाई आ जाती है और रास्ता समाप्त हो जाता है; वहाँ से लौटना शुरू हो जाता है।

सभी बुद्धिमान बुद्धि के विपरीत हो गये हैं। चाहे बुद्ध हों, चाहे जीसस, चाहे

कृष्ण--सभी बुद्धिमानों ने एक बात एक स्वर से कही है कि बुद्धि से जीवन का रहस्य हल नहीं होता है। जीवन का रहस्य हृदय से हल होता है। हाँ, बुद्धि से संसार की उलझनें हल हो सकती हैं। क्योंकि संसार की सब उलझनें मृत हैं।

गणित का कोई सवाल हो, बुद्धि हल कर देगी। और ध्यान रखना, गणित का सवाल हृदय से हल करने की कोशिश ही मत करना। उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। विज्ञान की कोई उलझन हो, बुद्धि हल कर देगी। टेकनॉलॉजी का कोई सवाल हो, बुद्धि हल कर देगी।

जो भी मृत है, पदार्थ है, उसकी उलझन बुद्धि हल कर देती है। बुद्धि का उपयोग यही है। लेकिन जहाँ भी जीवित है, और जहाँ भी जीवन की धारा है और जहाँ अमृत का प्रश्न है, वहीं बुद्धि थक जाती है और व्यर्थ हो जाती है।

सुना है मैंने कि एक बहुत बड़े सूफी फकीर हसन के पास एक युवक आया। वह बहुत कुशल तार्किक था; पंडित था। शास्त्रों का ज्ञाता था। जल्दी ही उसकी खबर पहुँच गयी और हसन के शिष्यों में वह सब से ज्यादा प्रसिद्ध हो गया। दूर दूर से लोग उससे पूछने आने लगे। यहाँ तक हालत आ गयी कि लोग हसन की भी कम फिक्र करते और उसके शिष्य की ज्यादा फिक्र करते, क्योंकि हसन तो अकसर चुप रहता। और उसका शिष्य बड़ा कुशल था--सवालों को सुलझाने में।

एक दिन एक आदमी ने हसन से आकर कहा 'कितना अद्भुत शिष्य है तुम्हारा! इतना वह जानता है कि हमने तो दूसरा कोई ऐसा आदमी नहीं देखा। धन्यभागी हो तुम--ऐसे शिष्य को पाकर।' हसन ने कहा कि मैं उसके लिये रोता हूँ, क्योंकि वह केवल 'जानता' है और जानने में इतना समय लगा रहा है कि भावना कब कर पायेगा! भाव कब कर पायेगा? जानने में ही जिन्दगी उसकी खोयी जा रही है, तो भाव कब करेगा? मैं उसके लिए रोता हूँ। उसको अवसर भी नहीं है, समय भी नहीं है। वह बुद्धि से ही लगा हुआ है।

बुद्धि से सब कुछ मिल जाय, जीवन का स्रोत नहीं मिलता। वह वहाँ नहीं है। बुद्धि एक यूटिलिटि है; एक उपयोगिता है, एक यंत्र है, जिसकी जरूरत है। लेकिन वह आप नहीं हैं। जैसे हाथ है, ऐसे बुद्धि आपका एक यंत्र है। उसका उपयोग करें, लेकिन उसके साथ एक मत हो जायँ। उसका उपयोग करें और एक तरफ रख दें। लेकिन हम उससे एक हो गये हैं।

आप चलते हैं, तो पैर का उपयोग कर लेते हैं। फिर बैठते हैं, तब आप पैर नहीं चलाते रहते हैं। अगर चलायें तो लोग पागल समझेंगे। पैर चलने के लिए है, बैठकर चलाने के लिए नहीं है। बुद्धि, जब पदार्थ के जगत् में कोई उलझन हो, उसे सुलझाने के लिए है। लेकिन आप बैठे हैं, तो भी बुद्धि चल रही है। नहीं है कोई

सवाल, तो भी बुद्धि चल रही है!

आज एक मित्र मेरे पास आये थे। वे कह रहे थे : 'कोई तकलीफ नहीं है, कोई अड़चन नहीं है। सब सुविधा है, लेकिन बस सिर चलता रहता है।'

कोई तकलीफ नहीं है; कोई उलझन नहीं है; कोई समस्या नहीं है; फिर क्यों सिर चलता रहता है? उसका अर्थ हुआ कि बुद्धि के साथ आप एक हो गये हैं। अपने को अलग नहीं कर पा रहे हैं।

जो आदमी बुद्धि से अपने को अलग कर लेगा, वही भाव में प्रवेश कर पाता है। और बुद्धि ने अब इतनी पीड़ा दे दी है कि हम अपने को अलग कर पायेंगे; करना पड़ेगा। बुद्धि ने इतना दंश दे दिया है, बुद्धि के काँटे इतने चुभ गये हैं छाती पर कि अब ज्यादा दिन बुद्धि के साथ नहीं चला जा सकता। इसलिये मैं कहता हूँ कि इस बुद्धि के युग में ही, श्रद्धा की बड़ी क्रान्ति की सम्भावना है।

● एक मित्र ने पूछा है कि पाप और पुण्य का भेद क्या है? और जब तक मन पाप से भरा है, तब तक श्रद्धा, भक्ति, भाव कैसे होगा? प्रार्थना कैसे होगी, जब तक मन पाप से भरा है? पहले मन पुण्य से भरे, फिर प्रार्थना होगी!

ठीक लगता है। समझ में आता है। फिर भी ठीक नहीं है। और नासमझी से भरी हुई बात है।

ठीक लगता है कि जब तक मन पाप से भरा है, तो प्रार्थना कैसे हो सकेगी। यह तो ऐसे ही हुआ कि जैसे कोई चिकित्सक कहे कि जब तक तुम बीमार हो, मैं तुम्हें औषधि कैसे दूँगा! पहले तुम ठीक हो जाओ, स्वस्थ हो जाओ, फिर औषधि ले लेना। लेकिन जब ठीक हो जाओ तो औषधि की जरूरत क्या होगी?

अगर पाप छोड़ने पर आपने प्रार्थना करने का तय किया है, तो आपको कभी प्रार्थना करने का मौका नहीं आयेगा। जब तक पाप है, आप प्रार्थना न करोगे, और जब पाप ही न रह जायेगा, तो प्रार्थना किसलिए करोगे? तो प्रार्थना का अर्थ क्या है? प्रार्थना औषधि है। इसलिये पापी रह कर ही प्रार्थना करनी पड़ेगी।

और दूसरी बात कि पाप हट कैसे जायेगा? बिना प्रार्थना के हट न पायेगा। और बिना प्रार्थना के जो पाप को हटाते हैं, उनका पुण्य उनके अहंकार का आभूषण बन जाता है। और अहंकार से बड़ा पाप नहीं है।

प्रार्थनापूर्वक जो पाप से मुक्त होता है, वही मुक्त होता है। बिना प्रार्थना के पाप से मुक्त होने की बहुत लोग कोशिश करते हैं--कि प्रार्थना की क्या जरूरत? हम अपने को खुद ही पवित्र कर लेंगे। किसी परमात्मा के सहारे की कोई जरूरत नहीं है। हम खुद ही अपने को ठीक कर लेंगे। चोरी है तो चोरी छोड़ देंगे, ईमानदार हो जायेंगे।

लेकिन ध्यान रहे : कभी-कभी पापी भी परमात्मा को पहुँच जाते हैं, इस तरह के पुण्यात्मा कभी नहीं पहुँच पाते। क्योंकि जो कहता है कि मैं बेईमानी छोड़ दूंगा, वह बेईमानी छोड़ भी सकता है, लेकिन उसकी ईमानदारी के भीतर भी जो अहंकार होगा, वही उसका पाप हो जायेगा।

विनम्रता--ऐसी विनम्रता जो पुण्य का भी गर्व नहीं करती, प्रार्थना के बिना नहीं आयेगी।

और फिर आप अगर सच में ही इतने अलग होते जगत् से तो आप खुद ही अपना रूपांतरण कर लेते। लेकिन आप इस जगत् के हिस्से हैं। यह पूरा जगत् आप से जुड़ा है। यहाँ जो भी हो रहा है, उसमें आप सम्मिलित हैं। आप अलग-थलग नहीं हैं कि आप अपने को पुण्यात्मा कर लेंगे। इस समग्र अस्तित्व का सहारा माँगना पड़ेगा।

आदमी बहुत कमजोर भी है, असहाय भी है। वह जो भी करता है, वह सब असफल हो जाता है। अपने को अलग मानकर आदमी जो भी करता है, वह सब टूट जाता है। जब तक इस पूरे के साथ अपने को एक मान कर आदमी चलना शुरू नहीं करता, तब तक जीवन में कोई महत् घटना नहीं घटती। प्रार्थना का इतना ही अर्थ है।

प्रार्थना का अर्थ है कि मैं अकेला नहीं हूँ। प्रार्थना का अर्थ है कि अकेला होकर मैं बिलकुल असहाय हूँ। प्रार्थना का अर्थ है कि अगर इस पूरे अस्तित्व का सहारा न मिले, तो मुझ से कुछ भी न हो सकेगा। प्रार्थना इस हेल्पलेसनेस, इस असहाय अवस्था का बोध है। और प्रार्थना पुकार है अस्तित्व के प्रति कि तेरा सहारा चाहिए, तेरा हाथ चाहिए। तेरे बिना इस रास्ते पर चलना मुश्किल है।

तो प्रार्थनापूर्ण व्यक्ति में जब पुण्य आता है, तो वह पुण्य का भी धन्यवाद परमात्मा को देता है--अपने को नहीं। प्रार्थनाहीन व्यक्ति अगर पुण्य भी कर ले, तो अपनी ही पीठ ठोकने की कोशिश करता है; वह भी पाप हो जाता है। इसलिए तो कई बार तो ऐसा होता है कि निरहंकारी पापी भी परमात्मा के पास जल्दी पहुँच जाता है--बजाय अहंकारी पुण्यात्मा के।

सुना है मैंने : एक साधु, एक फकीर मरा। उसने जीवन में कोई पाप नहीं किया था। इंच-इंच सम्हाल कर चला था। जरा-सी भी भूल-चूक न हुई थी। वह बिलकुल निश्चित था कि स्वर्ग के द्वार पर परमात्मा मेरा स्वागत करने को तैयार होगा। निश्चितता स्वाभाविक थी। फिर जिन्दगी भर कष्ट झेला था उसने। और पुरस्कार की माँग थी। स्वभावतः अकड़ भी थी। जब वह स्वर्ग के दरवाजे पर पहुँचा तो सिर झुका कर प्रवेश करने का मन न था। बैंड बाजे से स्वागत होगा--

यही कहीं गहरे में धारणा थी। लेकिन दरवाजे पर जो दूत मिला, दरवाजा तो बन्द था और उस दूत ने कहा कि 'तुम एक अजीब आदमी हो। तुम पहले ही आदमी हो जो बिना पाप किये यहाँ आ गये हो। अब हम बड़ी मुश्किल में हैं। क्योंकि यहाँ के जो नियम हैं, उनमें तुम कहीं नहीं बैठते हो। किताब में लिखा है--स्वर्ग के दरवाजे के नियम की किताब में--कि जो पाप किया हो बहुत, उसे नरक भेज दो; जो पाप कर के प्रायश्चित्त किया हो, उसे स्वर्ग भेज दो। तुमने पाप ही नहीं किया। तुम्हें नरक भेजें, तो मुश्किल है। क्योंकि जिसने पाप नहीं किया, उसे नरक कैसे भेजें! और तुमने पाप किया ही नहीं है, इसलिए प्रायश्चित्त का कोई सवाल ही नहीं है। तुम्हें स्वर्ग कैसे भेजें! दरवाजे बन्द हैं दोनों--स्वर्ग का भी, नरक का भी। तो तुम्हारे साथ हम क्या करें? लीगल झंझट खड़ी हो गयी है। तुम्हारी बड़ी कृपा होगी, तुम जमीन पर लौट जाओ; बारह घण्टे का हम तुम्हें वक्त देते हैं; हमें झंझट में मत डालो। सदा का चला हुआ नियम है, उसे तोड़ो मत। बारह घण्टे के लिए लौट जाओ और छोटा-मोटा सही, एक पाप करके आ जाओ। फिर प्रायश्चित कर लेना। स्वर्ग का दरवाजा तुम्हारा स्वागत करेगा। फिर तुम इतने अकड़े हुए हो कि नरक जाने योग्य हो, लेकिन पाप तुमने किया नहीं। और स्वर्ग में तो वही प्रवेश करता है, जो विनम्र है और विनम्र तुम जरा भी नहीं हो। एक छोटा पाप कर आओ। थोड़ी विनम्रता भी आ जायेगी। थोड़ा झुकना भी सीख जाओगे। और तुमने एक भी पाप नहीं किया तो तुमने मनुष्य जन्म व्यर्थ गँवा दिया।'

वह फकीर बहुत घबड़ाया। उसने कहा 'क्या कहते हैं! मनुष्य जीवन व्यर्थ गँवा दिया?' उस देवदूत ने कहा कि 'थोड़ा-सा पाप कर ले, तो मनुष्य विनम्र होता है, झुकता है, अस्मिता टूटती है। और थोड़ा-सा पाप मानवीय है, ह्यूमन है। तुम इन-ह्यूमन मालूम होते हो, अमानवीय मालूम होते हो बिलकुल। तुम लौट जाओ।'

फकीर लौटा। रात उसे देवदूत जमीन पर छोड़ गये। बड़ी मुश्किल खड़ी हुई। उसने कभी कोई पाप न किया था। बारह घण्टे का तो समय था। सूझ में ही न आता था उसको कि कौन-सा पाप करूँ। फिर यह भी खयाल था कि छोटा ही हो, ज्यादा न हो जाय। और अनुभव न होने से पाप का, बड़ी अड़चन होने लगी। बहुत सोचा-विचारा, फिर भी उसको समझ नहीं आया कि क्या करूँ। फिर भी सोचा कि गाँव की तरफ चलूँ।

जैसे ही गाँव में प्रवेश करता था, एक बिलकुल काली-कलूटी बद्शकल स्त्री ने इशारा दिया झोपड़े के बाहर। घबड़ाया। स्त्रियों से सदा दूर रहा है। पर सोचा कि यही पाप सही। कोई तो पाप करना ही है और फिर स्त्री इतनी बद्शकल है कि पाप भी छोटा ही होगा। चला गया। स्त्री तो बड़ी आनन्दित हुई।

रात उस स्त्री के पास रहा, उसे प्रेम किया और सुबह भगवान् को धन्यवाद देता हुआ कि चलो, एक पाप हो गया, अब प्रायश्चित्त कर लूँगा और स्वर्ग में प्रवेश हो जायेगा। जैसे ही झोपड़े से विदा होने लगा, वह स्त्री उसके पैरों पर गिर पड़ी और उसने कहा कि 'फकीर, मुझे कभी किसी ने चाहा नहीं । किसी ने कभी प्रेम नहीं किया। तुम पहले आदमी हो जिसने मुझे इतने प्रेम और इतनी चाहत से देखा। इतने प्रेम से मुझे स्पर्श किया और अपने पास लिया। एक ही प्रार्थना है कि इस पुण्य का भगवान् तुम्हें खूब पुरस्कार दे।' फकीर की छाती बैठ गयी। 'इस पुण्य का भगवान् तुम्हें पुरस्कार दे !'

फकीर ने घड़ी देखी कि मुसीबत हो गयी--कि घण्टा भर ही बचा है ! ये ग्यारह घण्टे खराब हो गये।

आगे का मुझे पता नहीं कि उस घन्टे भर में क्या किया। स्वर्ग वह पहुँच पाया कि नहीं पहुँच पाया ! लेकिन मुश्किल है कि वह कोई पाप कर पाया हो। उसका कारण है।

इस कहानी से कई बातें खयाल में ले लेनी जरूरी है। पहली बात तो इतना आसान नहीं है तय करना कि क्या पाप है, क्या पुण्य है--जितना आसान हम सोचते हैं। हम कृत्यों पर लेबल लगा देते हैं कि यह पाप है और यह पुण्य है। कोई कृत्य न पाप है, न पुण्य है। बहुत कुछ करने वाले पर और करने की स्थिति पर निर्भर करता है।

निश्चत ही फिर से सोचिये। हँसिये मत इस कहानी में। जिस स्त्री को कभी किसी ने प्रेम न कियां हो, उसको किसी का प्रेम करना अगर पुण्य जैसा मालूम पड़ा हो, तो कुछ भूल है ? और अगर परमात्मा भी इसको पुण्य माने, तो क्या आप कहेंगे कि गलती हुई ? वह फकीर भी बाद में चिन्ता में पड़ गया, कि पुण्य क्या है, पाप क्या है ? अगर दूसरे को इतना सुख मिला हो तो पाप कहाँ है ? अगर दूसरा इतना आनन्दित हुआ हो कि उसके जीवन का फूल पहली दफा खिला हो, तो पाप कहाँ है ?

पाप कृत्य में नहीं है। कृत्य का क्या परिणाम होता है...। उसमें भी परिणामों का कोई अन्त नहीं है। आपने कृत्य आज किया है, परिणाम हजारों साल तक होते रहेंगे उस कृत्य के। क्योंकि परिणामों की श्रृंखला है।

अगर सारे परिणाम कृत्य में समाविष्ट किये, तो तय करना बहुत मुश्किल है कि क्या है पाप, क्या है पुण्य। कई बार आप पुण्य करते हैं और पाप हो जाता है। आप पुण्य ही करना चाहते थे और पाप हो जाता है। किस कृत्य को क्या नाम दें ; कृत्य सवाल नहीं है।

दूसरी बात इस कहानी से खयाल में ले लेनी जरूरी है कि वह फकीर तो पाप करना चाहता था जानबूझ कर, फिर भी पाप नहीं हो पाया। यह बहुत गहन है।

पश्चिम का एक बहुत बड़ा विचारक था पी. डी. आस्पेन्स्की। उसके शिष्य बेनेट ने लिखा है कि जब पहली दफा उसने हमें शिक्षा देनी शुरू की तो उसकी शिक्षाओं में एक खास बात थी : 'जानबूझ कर पाप करना।' और हम सब लोग बैठे थे और उसने कहा कि घण्टे भर का समय देता हूँ, तुम जानबूझ कर कोई ऐसा काम करो, जिसको तुम समझते हो कि वह एकदम बुरा है, और करने योग्य नहीं है।

बेनेट ने लिखा है कि घन्टे भर हम बैठकर सोचते रहे। बहुत उपाय किया कि किसी को गाली दे दें, धक्का मार दें, चाँटा लगा दें, लेकिन कुछ भी न हुआ। और घन्टा खाली निकल गया और आस्पेन्स्की हँसने लगा और उसने कहा कि तुम्हें पता होना चाहिये कि पाप को जानबूझ कर किया ही नहीं जा सकता। यू कैन नॉट ड्र ईविल कान्शशली। वह जो बुराई है, उसको सचेतन रूप से करने का उपाय ही नहीं है। बुराई का गुण ही है अचेतन होना। इसलिये फकीर मुश्किल में पड़ गया। वह कोशिश कर के पाप करने निकला था।

आप कोशिश कर के पाप करने नहीं निकलते हैं; पाप हो जाता है। आपको कोशिश नहीं करनी पड़ती। कोशिश तो आप करते हैं कि न करूँ, फिर भी हो जाता है। पाप होता है--कोशिश से नहीं, होशपूर्वक नहीं। पाप होता है--बेहोशी में, मूर्च्छा में।

इसलिये पाप का एक मौलिक लक्षण है--मूर्च्छित कृत्य। जो कृत्य मूर्च्छा में होता है, वह पाप है। और जो कृत्य होशपूर्वक हो सकता है, वही पुण्य है। इसको हम ऐसा भी समझ सकते हैं कि जिस काम को करने के लिये होश अनिवार्य हो, जोहोश के बिना हो ही न सके, होश में ही हो सके, तो समझना कि पुण्य है।

बुद्ध का शिष्य है आनन्द। कुछ साधु यात्रा पर जा रहे हैं, उनकी तरफ से बुद्ध से पूछने खड़ा हुआ कि 'ये साधु यात्रा पर जाते हैं उपदेश करने। इनकी कुछ उलझनें हैं। एक उलझन का आप जवाब दे दें; बाकी तो इन्हें मैंने समझा दिया है।

बुद्ध ने पूछा कि 'क्या उलझन है।' तो आनन्द ने कहा कि फकीर पूछते हैं--ये सब भिक्षु पूछते हैं कि स्त्री के पास अगर रहने का कोई अवसर आ जाये तो रुकना कि नहीं रुकना ?' तो बुद्ध ने कहा, मत रुकना। स्त्री से दूर रहना।' तो आनंद ने पूछा, 'और कहीं ऐसी मजबूरी ही हो जाय कि रुकना ही पड़े, तो क्या करना ?' तो बुद्ध ने कहा, 'स्त्री की तरफ देखना मत। आँख नीची रखना। यही बात पुरुष के लिये लागू हो जायेगी। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। स्त्री की तरफ देखना ही मत; आँख नीची रखना।' तब आनन्द ने कहा कि 'ऐसा कोई अवसर

आ जाय कि आँख उठानी ही पड़े और स्त्री को देखना ही पड़े?' तो बुद्ध ने कहा, 'स्पर्श मत करना।'

पर आनन्द भी जिद्दी था और इसलिये बहुत-सी बातें बुद्ध से निकलवा पाया। उसने कहा, 'यह भी मान लिया। पर कभी ऐसा अवसर आ जाय--बीमारी, कोई दुर्घटना —कि स्त्री को छूना ही पड़े, तो उस हालत में क्या करना?' तो बुद्ध ने कहा : 'अब आखिरी बात कहे देता हूँ--होश रखना छूते वक्त। और बाकी सब बातें फिजूल हैं। अगर होश रखा जा सके, तो बाकी सब बातें फिजूल हैं। बाकी उनके लिये हैं जो होश न रख सकते हों।'

जिस कृत्य को भी होशपूर्वक किया जा सके, वह पाप नहीं रह जाता। और अगर पाप होगा, तो किया ही न जा सकेगा। मूर्च्छा जरूरी है। इसलिए मैं पाप की व्याख्या करता हूँ : 'मूर्छित कृत्य'। पुण्य की व्याख्या करता हूँ :'होशपूर्ण कृत्य'।

लेकिन आप पुण्य भी करते हैं, तो मूर्च्छा में करते हैं। फिर समझ लेना कि वह पुण्य नहीं है। चार लोग आ जाते हैं और आपको काफी फुसलाते हैं कि आप जैसा दानी कोई भी नहीं है जगत् में; एक मंदिर बनवा दें। नाम रह जायेगा। वे आपकी मूर्च्छा को उकसा रहे हैं। वे आपके अहंकार को तेल दे रहे हैं। वे आपके अहंकार पर मक्खन लगा रहे हैं। आप फूले जा रहे हैं भीतर कि मेरे जैसा कोई पुण्यात्मा नहीं है। आपको मूर्च्छा पकड़ रही है। इस मूर्च्छा में आप चेक वगैरह मत दे देना। वह पाप होगा। भला उससे मन्दिर बने, लेकिन वह पाप होगा। क्योंकि मूर्च्छा में कोई पुण्य नहीं हो सकता।

और मैं आपसे कहता हूँ कि अगर आप चोरी भी करने जायँ, तो होशपूर्वक करने जाना। तो पहली तो बात यह कि आप चोरी न कर पायेंगे। जैसे ही होश से भरेंगे, हाथ वापस खिंच आयेगा। किसी की हत्या भी करने जायँ, तो मैं नहीं कहता कि हत्या मत करना। मैं इतना ही कहता हूँ कि होशपूर्वक करना। होश होगा, हत्या नहीं हो सकेगी। हत्या हो जाय, तो समझ लेना कि आप बेहोश हो गये थे। और आप बेहोश हो जायेंगे तो ही हो सकती है।

इस जगत् में कुछ भी बुरा करना हो, तो बेहोशी चाहिये, नींद चाहिये। जैसे आप नहीं कर रहे हैं; कोई शराब के नशे में आप से करवाये ले रहा है।

ऐसा हुआ कि अकबर निकल रहा था एक रास्ते से और एक नंगा फकीर सड़क के किनारे खड़ा होकर अकबर को गालियाँ देने लगा। अकबर ने बहुत सन्तुलन रखा। बहुत बुद्धिमान आदमी था। लेकिन अपने सिपाहियों को कहा कि इसको पकड़कर कल सुबह मेरे सामने हाजिर करो।

दूसरे दिन सुबह उस फकीर को हाजिर किया गया। और वह अकबर के चरणों में सिर झुका कर खड़ा हो गया। अकबर ने कहा कि 'कल तुमने गालियाँ दीं, उसका तुम्हें उत्तर देना पड़ेगा। क्या प्रयोजन था?' उस फकीर ने कहा कि 'आप जिससे उत्तर माँग रहे हैं, उसने गालियाँ नहीं दीं। जिसने दीं, वह शराब पीये हुए था। रात भर में मेरा नशा उतर गया। इसलिये आप मुझसे जवाब माँग कर अन्याय कर रहे हैं। जिसने गालियाँ दी थीं, वह अब मौजूद नहीं है। और मैं जो अब मौजूद हूँ, उस वक्त मौजूद नहीं था।'

अकबर ने अपने आत्म संस्मरणों में यह घटना लिखवायी है। उसने कहा है कि उस दिन मुझे खयाल आया कि निश्चित ही जो मूर्च्छा में किया गया हो, उसके लिये व्यक्ति को जिम्मेवार क्या ठहराना!

आप जो भी कर रहे हैं ..। यह आपको भी लगता है : कभी क्रोध में आप गाली दे देते हैं, या किसी को मान देते हैं, बाद में आपको लगता है कि मैं तो नहीं करना चाहता था। सोचा भी नहीं था कि करूँ, अब पछताता भी हूँ और खयाल आता है कि कैसे हो गया। आप होश में नहीं थे। निश्चित ही आपने कोई शराब बाहर से नहीं पी थी। लेकिन भीतर भी शराब के झरने हैं। और बाहर की शराब पीना जरूरी नहीं है। अगर आप शरीर-शास्त्री से पूछें, तो वह बता देगा कि आपके शरीर में ग्रन्थियाँ हैं, जहाँ से नशा, मादक द्रव्य छूटते हैं। जब आप क्रोध में होते हैं, तो तब आपका खून तेज चलता है और खून में जहर छूट जाता है। उस जहर की वजह से आप मूर्च्छित हो जाते है। उस मूर्च्छा में आप कुछ कर बैठते हैं, वह आपका किया हुआ कृत्य नहीं है। वह मूर्च्छा है, बेहोशी है।

इस जगत् में कोई भी बुराई बिना बेहोशी के नहीं होती। और इस जगत् में कोई भी भलाई बिना होश के नहीं होती। इसलिये एक ही भलाई है : होश से भरे हुए जीना और एक ही बुराई है; बेहोशी में होना।

और इस बात की प्रतीक्षा मत करें कि जब पुण्य से भर जायेंगे पूरे, तब प्रार्थना करेंगे। जैसे हैं, जहाँ हैं, वहीं प्रार्थना शुरू कर दें। आपकी प्रार्थना भी आपका होश बनेगी। आपकी प्रार्थना भी आपको जगायेगी। आपकी प्रार्थना भी आपकी मूर्च्छा और बेहोशी को तोड़ेगी। और आपकी प्रार्थना का अन्तिम परिणाम होगा कि आप एक सचेतन व्यक्ति हो जायेंगे। यह जो सचेतन, जागा हुआ बोध मनुष्य के भीतर है, वही उसे पाप से, छुड़ाता है।

पापों को काटने के लिये पुण्यों की जरूरत नहीं है। पापों को काटने के लिये होश की जरूरत है। और जहाँ होश है, वहाँ पाप होने बन्द ही जाते हैं। और जहाँ होश है, वहाँ पुण्य फलित होने लगते हैं। पुण्य ऐसे ही फलित होने लगते हैं, जैसे सूर्य के उगने पर फूल खिल जाते हैं। ऐसे ही होश के जगने पर पुण्य होने शुरू हो

जाते हैं। पुण्य करने नहीं पड़ते। आपकी छाया की तरह पुण्य आपके पीछे चलने लगते हैं। वे आपकी सुगंध हो जाते हैं। वे हो जाते हैं, तब आपको पता लगता है। जब दूसरे आपको कहते हैं, तब आपको पता लगता है।

लेकिन आदमी बेईमान है, आत्मवंचक है। और आदमी हजार तरकीबें निकाल लेता है अपने को समझाने की--कि मैं तो पापी हूँ; मुझसे क्या प्रार्थना होगी! यह आपकी होशियारी है। यह आप ये कह रहे हैं कि 'अभी क्या प्रार्थना करनी!' प्रार्थना आपको करनी नहीं है। करना आपको पाप ही है। लेकिन आप यह भी अपने मन में नहीं मानना चाहते कि मैं प्रार्थना नहीं करना चाहता हूँ। आप कहते हैं : 'मैं ठहरा पापी; मुझसे क्या प्रार्थना होगी?' तो किससे प्रार्थना होगी?

आपसे ही प्रार्थना होगी। और पाप प्रार्थना में बाधा नहीं है। यह ऐसा ही है, जैसे आपके घर में अँधेरा हो और आप कहें कि 'अँधेरा बहुत है, दीया कैसे जलायें! और अँधेरा इतना ज्यादा है कि दीया जलेगा कैसे? और अँधेरा हजारों साल पुराना है, दीये को बुझा कर रख देगा। नाहक मेहनत क्या करनी। जब अँधेरा नहीं होगा, तब दीया जला लेंगे।'

अँधेरा आपके दीये के जलने को रोक नहीं सकता। अँधेरे की ताकत क्या है? पाप से कमजोर दुनिया में कोई चीज नहीं है। पाप की ताकत क्या है? अँधेरा कमजोर है। अँधेरा है ही कहाँ? दीया जलते ही तिरोहित हो जायेगा। और चाहे हजारों वर्ष पुराना हो, तो भी एक क्षण टिक न सकेगा। उसे छोटा-सा दीया मिटा देगा। और दीये से अँधेरा यह नहीं कह सकता कि 'मैं हजारों साल से यहाँ रह रहा हूँ और तू अभी अतिथि की तरह आया और मुझ मेजबान को हटाये दे रहा है! मैं नहीं हटता।' नहीं, अँधेरा खड़ा होकर जवाब भी न दे सकेगा। अँधेरा पाया ही न जायेगा।

प्रार्थना के लिये पाप बाधा नहीं है। नहीं तो वाल्मीक जैसा पापी, राम में ऐसा नहीं डूब सकता था। कि अंगुलीमाल जैसा ठापी, बुद्ध में ऐसा लीन नहीं हो सकता था।

पाप बाधा नहीं है। और जब प्रार्थना कोई करता है, तो पाप वैसे ही टूट जाता है, जैसे दीया जलता है और अँधेरा हट जाता है। और जले हुए दीये में पाप नहीं होता। जैसे जले हुए दीये के साथ जो होता है, उसी का नाम पुण्य है।

तो प्रार्थना को रोकें मत, कल पर टालें मत, स्थगित मत करें। प्रार्थना को शुरू होने दें। और क्या फर्क पड़ता है।...

जब बच्चा पहली दफा चलता है, तो गिरता ही है। अगर कोई भी बच्चा यह तय कर ले कि मैं चलूँगा तभी, जब गिरूँगा नहीं, तो चलेगा ही नहीं कभी। और

जब पहली दफा कोई तैरना सीखता है, तो दो चार दफे मुँह में पानी भी भर जाता है और डुबकी भी लग जाती है। लेकिन अगर कोई यह तय कर ले कि तैरूँगा तभी, जब पूरी तरह सीख लूँगा, फिर वह कभी तैरेगा नहीं। तैरने के लिए भी बिना सीखे पानी में उतरना जरूरी है।

और बच्चा चल पाता है। पहले गिरता है; घुटने टूट जाते हैं। घसीटता है। बार-बार खड़ा होता है। फिर बैठ जाता है। एक दिन चलने लगता है। प्रार्थना भी ऐसे ही शुरू होगी--क ख ग से। आप कभी पूरी प्रार्थना पहले दिन नहीं कर पायेंगे। आप पहले ही दिन कोई चैतन्य और मीरा नहीं हो जानेवाले हैं। लेकिन होने की कोई जरूरत भी नहीं है।

और सन्तों का काम इतना ही है--जो माँ-बाप का काम है। बच्चा चलता है, तो माँ-बाप उसके भूल भरे चलने पर भी इतने प्रसन्न होते हैं! फिर जब वह ठीक चलने लगेगा, तो कोई प्रसन्न नहीं होगा। आपको पता है? ...जब पहली दफा बच्चा खड़ा हो जाता है, डगमगाता, तो घर भर में खुशी और उत्सव छा जाता है। ऐसी क्या बड़ी घटना हो रही है? दुनिया चल रही है। यह और एक सज्जन खड़े हो गये, तो कौन-सा फर्क पड़ा जा रहा है? लेकिन उसका यह खड़ा होना, उसका यह साहस, उसका जमीन पर झुके होने से खड़ा हो जाना, अपने पैरों पर, यह भरोसा, माँ-बाप खुश हो जाते हैं; बैंड-बाजे बजाते हैं। घर में गीत, फूल-झाड़ सजाते हैं। बच्चा उनका खड़ा हो गया!

जब पहली दफा बच्चा आवाज निकाल देता है--बेतुकी, बेमतलब की, कोई अर्थ नहीं होता, उसमें से माँ-बाप अर्थ निकालते हैं कि वह मामा कह रहा है, पापा कह रहा है। वह कुछ नहीं कह रहा है! वह केवल पहली दफा टटोल रहा है। कुछ नहीं कह रहा है। लेकिन बड़ी खुशी छा जाती है। फिर वह भाषा भी अच्छी बोलने लगेगा; बड़ा विद्वान भी हो जायेगा, तब भी यह खुशी नहीं होगी।

सन्तों का, गुरुओं का इतना काम है कि जब कोई पहली दफा तुतलाने लगे प्रार्थना, तो उसको सहारा दें। पहली दफा जब कोई प्रार्थना के जगत् में कदम रखे, तो उसको आसरा दें। इसको उत्सव की घड़ी बना लें।

तो जो आज डाँवाडोल है, कल थिर हो जायेगा। जो आज तुतला रहा है, कल ठीक से बोलने लगेगा। आज जो केवल आवाज है, कल गीत-संगीत भी बन सकती है। वे संभावनाएँ हैं।

लेकिन पहला कदम बिलकुल जरूरी है। पहले कदम में ही जो चूक करता है...। और चूक एक ही है, पहले कदम की। गिरना चूक नहीं है, गलत कदम का उठ जाना चूक नहीं है। गलत उठेगा ही; गिरना होगा ही। चूक एक ही है : स्थगित

करना--कि पहला कैसे उठाऊँ; कहीं गलती न हो जाय! तो जो रुक जाता है पहले को उठाने से, वही एकमात्र चूक है। बाकी कोई चूक नहीं है।

भूलें करना बुरा नहीं है। भूल करने के डर से रुक जाना बुरा है। भूल को दोहराना बुरा है : एक ही भूल को बार-बार करना नासमझी है। लेकिन पहली दफा ही भूल न हो, ऐसा जो परफेक्शनिस्ट हो, ऐसा जो पूर्णतावादी हो, वह इस दुनिया में मूढ़ की हालत में ही मरेगा। वह कुछ भी जीत नहीं पायेगा।

भूल करें--दिल खोल कर करें। एक ही भूल दुबारा भर न करें। हर भूल से सीखें और पार निकल जायँ और नयी भूल करने की हिम्मत रखें। संसार में भूलें करने से नहीं डरते, तो परमात्मा में भूलें करने से क्या डरना है! और जब संसार भी भूलों को क्षमा कर देता है और आप सफल हो जाते हैं, तो परमात्मा भी क्षमा कर ही देगा। क्षमा किया ही हुआ है।

और जब पहली दफा कोई तुतलाता है प्रार्थना, तो सारा अस्तित्व खुश होता है, प्रसन्न होता है।

कहा है हमने कि जब बुद्ध को पहली दफा ज्ञान हुआ, तो जिन वृक्षों पर फूल नहीं खिलने थे, खिल गये। झूठी लगती है यह बात। कहा है हमने कि महावीर जब रास्ते पर चलते थे, तो अगर कोई काँटा पड़ा हो, तो महावीर को देखकर उलटा हो जाता था। झूठी लगती है बात। काँटे को क्या मतलब होगा? और बेमौसम फूल खिलते हैं कहीं? कि बुद्ध को जब ज्ञान हुआ तो सारी दिशाएँ सुगंध से भर गयीं। भरोसा नहीं आता। लेकिन अभी रूस में एक प्रयोग हुआ है और रूस के वैज्ञानिक पुश्किन ने घोषणा की है कि पौधे भी आपकी खुशी से प्रभावित होते हैं और खुश होते हैं। और आपके दुःख से दुःखी होते हैं, पीड़ित होते हैं। पुश्किन की खोज मूल्यवान है और पुश्किन ने पौधों को सम्मोहित करने का, हिप्नोटाइज करने का प्रयोग किया है। और पुश्किन ने यह भी प्रयोग किया है कि पास में एक गुलाब का पौधा रखा है और एक व्यक्ति को पास में ही बेहोश किया, सम्मोहित किया। जब सम्मोहित होकर कोई बेहोश हो जाता है, फिर उससे जो भी कहा जाय, वह आज्ञा मानता है। पुश्किन ने उस बेहोश आदमी से कहा कि तू आनन्द से भर गया है। तेरा चित्त प्रफुल्लित है और सुख की धारा बह रही है। वह आदमी डोलने लगा आनन्द में। उस आदमी के मस्तिष्क में इलेक्ट्रोड लगाये गये, जो यंत्र पर खबर दे रहे हैं कि उसमें आनन्द की लहरें उठ रही हैं; उसका मस्तिष्क नयी तरंगों से भर गया है। उसके साथ ही उसी तरह के इलेक्ट्रोड गुलाब के पौधे पर भी लगाये गये। जैसे ही यह आदमी आनन्दित होकर भीतर प्रफुल्लित हो गया और यंत्र ने खबर दी कि वह आनन्द से भर रहा है; जिस तरह का ग्राफ

उसके मस्तिष्क की तरंगों का बना, ठीक उसी तरह का ग्राफ गुलाब के पौधे से भी बना। और पुश्किन ने लिखा है कि गुलाब के पौधे के भीतर भी वैसी ही आनन्द की तरंगें फैलने लगीं। और जब उस आदमी को कहा गया कि तू दुःख से परेशान है; तेरी पत्नी की मृत्यु हो गयी है; कि तेरे घर में आग लग गयी है और तेरा हृदय बैठा जा रहा है; वह दुःखी हो गया। उसके हृदय की पखुड़ियाँ बन्द हो गयीं। तरंगों में खबर आने लगी कि वह दुःख से भरा हुआ है। ठीक गुलाब के पौधे से भी तरंगें आने लगीं कि वह बहुत दुःखी है। उसकी पखुड़ियाँ मुरझा गयी हैं और बन्द हो गयी हैं।

अगर आप आनन्दित हैं, तो आपके पास रखा हुआ गुलाब का पौधा भी आन्दोलित होता है। तो फिर झूठ नहीं लगता, कुछ आश्चर्य नहीं है कि बुद्ध का भीतर का कमल खिला हो, तो बेमौसम फूल भी आ गये हों। क्योंकि साधारण आदमी के खुश होने से अगर फूल खुश होते हैं, तो बुद्ध तो कभी-कभी करोड़ वर्ष में कोई बुद्ध होता है, उस वक्त अगर बेमौसम फूल ले आते हों पौधे, तो कुछ आश्चर्य नहीं लगता।

पुश्किन की बात से तो ऐसा लगता है कि फूल जरूर खिले होंगे। बुद्ध के पास के पौधे इतने आनन्दित हो गये होंगे ...। ऐसा तो कभी होता है, करोड़ वर्ष में, तो अगर बेमौसम भी थोड़े से फूल खिला दिये हों, तो स्वाभाविक लगता है।

जब आप पहली दफा तुतलाते हैं प्रार्थना, तो यह सारा अस्तित्व खुश होता है। यह अस्तित्व की खुशी ही प्रभु का प्रसाद है।

तो डरें मत। हिम्मत करें। गिरेंगे ही ना, फिर उठ सकते हैं। नौ बार जो गिरता है, दसवीं बार उसके गिरने की सम्भावना समाप्त हो जाती है।

अब हम सूत्र को लें। 'किन्तु सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्म में आसक्त हुए चित्त वाले पुरुषों के साधन में क्लेश अर्थात् विशेष परिश्रम है। क्योंकि देह-अभिमानियों में अव्यक्त विषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है। अर्थात् जब तक शरीर में अभिमान है, तब तक शुद्ध सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्म में स्थिति होनी कठिन है। और जो मेरे परायण हुए भक्तजन सम्पूर्ण कर्मों को मेरे में अर्पण कर के, मुझ सगुणरूप परमेश्वर को ही अनन्य भक्ति-योग से निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं, उनका मैं शीघ्र ही उद्धार करता हूँ।'

इस सूत्र में दो बातें कही गयी हैं। एक--कि वे भी पहुँच जाते हैं, जो निराकार, निर्गुण, शून्य की उपासना करते हैं। 'वे भी मुझ तक ही पहुँच जाते हैं'--कृष्ण कहते हैं। वे भी परम सत्य को उपलब्ध हो जाते हैं। लेकिन उनका मार्ग कठिन है। उनका मार्ग दुर्गम है। और उनके मार्ग पर क्लेश है, पीड़ा है, कष्ट है। क्या क्लेश है उनके मार्ग पर?

जो निराकार की तरफ चलता है, उसे कुछ अनिवार्य कठिनाइयों से गुजरना पड़ता है। पहली तो यह कि वह अकेला है यात्रा पर। कोई उसका संगी-साथी नहीं। और आपको पता है : कभी आप अँधेरी गली से गुजरते हैं, तो खुद ही गीत गुनगुनाने लगते हैं, सीटी बजाने लगते हैं। कोई है नहीं वहाँ। अकेले में डर लगता है। लेकिन अपनी ही सीटी सुन कर डर कम हो जाता है। अपनी ही सीटी सुन कर डर कम हो जाता है। अपनी ही सीटी, अपना ही गीत !

उस अज्ञात के पथ पर जहाँ कि गहन अँधेरा है, क्योंकि कोई संगी-साथी नहीं है और इस जगत् का कोई प्रकाश काम नहीं आता है; निराकार का यात्री अकेले जाता है। कोई परमात्मा--कोई परमात्मा की धारणा--उसका सहारा नहीं है। तो पहली तो कठिनाई यह है कि अकेले की यात्रा है।

भरोसा भी हो कि परमात्मा है, तो दो हैं आप। अकेले नहीं हैं।

एक ईसाई फकीर औरत हुई। वह एक चर्च बनाना चाहती थी। कुल दो पैसे थे उसके पास और गाँव में जाकर उसने कहा कि 'घबड़ाओ मत। सम्पति कुछ मेरे पास है, कुछ और आ जायेगी। और जहाँ सम्पति हैं, वहाँ और सम्पति आ जाती है। दो पैसे मेरे पास हैं। चर्च हम बना लेंगे।'

गाँव के लोग बहुत हँसे कि 'तू पागल हो गयी है ! दो पैसे से कहीं चर्च बना है ? तू अकेली एक फकीर औरत और दो पैसे हैं। बस ! इससे हो जायेगा ? चर्च बन जायेगा ?' उस स्त्री ने कहा कि 'नहीं, एक और मेरे साथ है। एक मैं हूँ--मैं फकीर औरत हूँ। और ये दो पैसे हैं। ये भी काफी कम हैं। लेकिन परमात्मा भी मेरे साथ है। तीनों का जोड़ काफी से ज्यादा है। मगर तुम्हें वह तीसरा दिखाई नहीं पड़ता। मुझे वह दिखाई पड़ता है, इसलिये मुझे दो पैसे की भी फिक्र नहीं है। और मैं एक फकीर औरत हूँ, इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता। हम तीनों मिल कर जरूरत से ज्यादा हैं।

वह जो भक्त का रास्ता है, उस पर परमात्मा साथ है। भक्त कितना ही कमजोर हो, परमात्मा से जुड़ कर बहुत ज्यादा है। सारी कमजोरी खो जाती है।

निराकार का पथिक अकेला है; किसी का उसे साथ नहीं है। कठिनाई होगी। अकेले होने से और बड़ी कठिनाई भी क्या है !

जिन्दगी में कभी आप अकेले हुए हैं ? अकेला होने का आपको पता है ? जरा देर अकेले छूट जाते हैं, तो जल्दी से अखबार पढ़ने लगते हैं, रेडियो खोल लेते हैं, किताब उठा लेते हैं। कुछ न कुछ करने लगते हैं, ताकि अकेलापन पता न चले। हमारे जीवन का सारा जाल--परिवार, पति-पत्नी, मित्र, क्लब, होटल, समूह, संग, मंदिर, चर्च—अकेले होने से बचने की तरकीबें हैं। अकेले होने से घबड़ाहट होती है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर गयी, तो उसकी लाश के पास बैठ कर रो रहा था। नसरुद्दीन का मित्र भी था एक--फरीद, वह उससे भी ज्यादा छाती पीट कर रो रहा था। नसरुद्दीन को बड़ा अखर रहा है। पत्नी मेरी, और यह सज्जन इस तरह रो रहे हैं कि किसी को शक हो सकता है कि इनकी पत्नी मरी। नसरुद्दीन भी काफी ताकत लगा रहा था, लेकिन मित्र भी गजब का था--नसरुद्दीन से हमेशा आगे !

भीड़ बढ़ गयी थी। कई अजनबी लोग भी इकट्ठे हो गये थे। और नसरुद्दीन को बड़ी बेचैनी हो रही थी। पत्नी के मरने की इतनी नहीं, जितना यह आदमी बाजी मारे लिये जा रहा है। आखिर नसरुद्दीन से नहीं रहा गया, उसने कहा कि 'ठहर भी फरीद ! इतना दुःख मत मना; ज्यादा मत घबड़ा। मैं फिर दुबारा शादी कर लूँगा।'

लोग बहुत चकित हुए। किसी ने पूछा कि 'नसरुद्दीन, अभी पत्नी मरे देर नहीं हुई। लाश घर में रखी है; अभी लाश गरम है। और तुम कह रहे हो : दूसरी शादी कर लूँगा !' तो नसरुद्दीन ने कहा कि 'कोई शादी करने के लिये तो शादी की नहीं। अकेले होने की तकलीफ है। उसके मरते ही मैं फिर अकेला हो गया। और इतना अकेला तब भी नहीं था, जब पहली दफा शादी की थी। अब और ज्यादा अकेला हो गया, क्योंकि साथ का अनुभव हो गया।'

रास्ते पर जा रहे हैं। अँधेरे में एक कार निकल जाती है; कार के प्रकाश में आँखें चौंधिया जाती हैं। जब कार चली जाती है, तब अँधेरा और ज्यादा हो जाता है। पहले इतना नहीं था। पहले कुछ दिखाई भी पड़ता था, अब कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता।

नसरुद्दीन ने कहा कि 'इस पत्नी की वजह से तो अब और जल्दी दूसरी पत्नी की जरूरत है। यह खाली कर गयी; बहुत अकेले हो गये।'

आपकी पत्नी जब मर जाती है या पति जब मर जाता है, तो जो पीड़ा होती है, वह उसके मरने की कम है; अगर ठीक से खोज करेंगे, तो अकेले हो जाने की ज्यादा है। शायद नसरुद्दीन बहुत नासमझ है, इसलिये तत्काल उसने सच्ची बात कह दी। आप छह महीने बाद कहेंगे। और अगर जरा मन्द बुद्धि हुए, तो छह साल बाद कहेंगे। वह दूसरी बात है। लेकिन बात उसने ठीक ही कह दी।

अकेले होने की पीड़ा है। किसी का भी हाथ में हाथ लेकर भरोसा आ जाता है कि अकेले नहीं हैं। तो निराकार का रास्ता तो बिलकुल अकेला है। न पत्नी साथी होगी, न मित्र साथी होगा, न पति।

निराकार की जो ठीक साधना है, उसमें तो गुरु भी साथी नहीं होगा। उसमें

तो गुरु भी कह देगा कि मैं सिर्फ रास्ता बताता हूँ, चलना तुझे है। मैं तेरे साथ नहीं आ सकता हूँ। निराकार की आत्यंतिक साधना में तो गुरु कहेगा : तू मुझे छोड़, तभी तेरी यात्रा शुरू होगी। कहेगा कि मुझे पकड़ मत; कहेगा कि गुरु की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि अकेले होने की ही साधना है। गुरु का होना भी बाधा है।

इसलिये यह सूत्र कहता है, कृष्ण कहते हैं कि अति कठिन है।

पहली बात कि अकेला हो जाना होगा। दूसरी बात : अगर परमात्मा के प्रति समर्पण न हो, तो उस अकेलेपन में अहंकार के उठने की बहुत गुंजाइश है। बहुत ऐसा हो सकता है कि मैं हूँ। यह मैं की अकड़ बहुत तीव्र हो सकती है, क्योंकि इसको मिटाने के लिये कोई भी नहीं है।

निराकार और मेरा अहंकार--अगर कहीं ये दोनों मिल जायँ तो खतरा है; बड़े से बड़ा खतरा है। क्योंकि अगर मैं कहूँ कि मैं ब्रह्म हूँ, तो इसमें दोनों संभावनाएँ हैं। इसका एक मतलब तो यह होता है कि अब मैं नहीं रहा, ब्रह्म ही है--तब तो ठीक है। और अगर इसका यह मतलब हो कि मैं ही हूँ; अब कोई ब्रह्म वगैरह नहीं है--तो बहुत खतरा है।

इसलाम ने इस तरह की बात को बिलकुल बंद ही करवा दिया, ताकि कोई खतरा न हो। तो जब अल-हिल्लाज ने कहा कि अहं ब्रह्मास्मि--अनलहक--मैं ही हूँ ब्रह्म, तो इसलाम ने उसकी हत्या कर दी। हत्या करनी उचित नहीं है। लेकिन अभी मैं एक फकीर--सूफी फकीर की टिप्पणी पढ़ रहा था--अल-हिल्लाज की हत्या पर। तो उसने कहा कि यह बात ठीक नहीं है कि अल-हिल्लाज की हत्या की गयी। लेकिन एक लिहाज से ठीक है, क्योंकि अल-हिल्लाज की हत्या करने से क्या मिलता है! अल-हिल्लाज तो पा चुका, इसलिये हत्या करने से कोई हर्ज नहीं है। लेकिन इस हत्या करने से दूसरे लोग, जो कि अपने अहंकार को मजबूत कर लेते--अनलहक कह कर, उनके लिये रुकावट हो गयी। वह बात भी मुझे ठीक मालूम पड़ी।

अल-हिल्लाज की हत्या से कुछ मिटता ही नहीं, क्योंकि अल-हिल्लाज उसको पा चुका, जो अमृत है, इसलिये उसको मारने में कोई हर्जा नहीं। अगर उसको न मारा जाय, तो न मालूम कितने नासमझ लोग चिल्लाने लगेंगे। उनके अहंकार का खतरा हो सकता है। तो इसलाम ने वह दरवाजा बंद कर दिया।

भारत ने वह दरवाजा बंद नहीं किया, क्योंकि भारत की आकांक्षा यह रही कि कोई भी दरवाजा बंद न हो--चाहे एक दरवाजे से हजारों वर्ष में एक भी आदमी क्यों न निकलता हो। लेकिन दरवाजा खुला रहना चाहिये। एक आदमी को भी

बाधा नहीं होनी चाहिए।

निराकार के मार्ग से हजारों साल में एकाध आदमी निकलता है। लेकिन दरवाजा खुला रखा जाता है। क्योंकि वह जो निराकार के मार्ग से निकलता है, वह भक्ति के मार्ग से निकल ही न सकेगा। उसका कोई उपाय ही नहीं है। वह उसी मार्ग से निकल सकेगा।

बुद्ध को भक्ति के मार्ग से नहीं निकाला जा सकता। महावीर को भक्ति के मार्ग से नहीं निकाला जा सकता। कोई उपाय नहीं है! वह उनका स्वभाव नहीं है।

मीरा को निराकार के मार्ग से नहीं निकाला जा सकता; वह उसका स्वभाव नहीं है। सब मार्ग खुले और साफ होने चाहिए।

पर मार्ग कठिन है, क्योंकि अहंकार के उठने का डर है। देह-अभिमान मजबूत हो सकता है। खतरा है। इसलिए कृष्ण कहते हैं : 'पहुँच तो जाते हैं मुझ तक ही वे लोग भी, जो निराकार से चलते हैं। लेकिन वह स्थिति कठिन है। और जो मेरे परायण हुए भक्तजन सम्पूर्ण कर्मों को मेरे में अर्पण करके, मुझ सगुणरूप परमेश्वर को ही अनन्य भक्तियोग से, निरन्तर चिन्तन करते, भजते हैं, उनका मैं शीघ्र उद्धार करता हूँ।'

भक्त के लिए एक सुविधा है। वह पहले चरण पर ही मिट सकता है। यह उसकी सुविधा है। ज्ञानी की असुविधा है : आखिरी चरण पर मिट सकता है; बीच की यात्रा में रहेगा। वह रहना मजबूत भी हो सकता है। और ऐसा भी हो सकता है--वह इतना मजबूत हो जाये कि आखिरी चरण उठाने का मन ही न रहे, और अहंकार में ही ठहर कर रह जाये।

लेकिन भक्त को एक सुविधा है : वह पहले चरण पर ही मिट सकता है। सुविधा ही नहीं है; पहले चरण पर उसे मिटना ही होगा, क्योंकि वह साधना की शुरुआत ही वही है। रोग को साथ ले जाना नहीं है। ज्ञानी का रोग साथ चल सकता है आखिरी तक। आखिर में छूटेगा, क्योंकि मिलन के पहले तो रोग मिटना ही चाहिए, नहीं तो मिलन नहीं होगा। लेकिन भक्त के पथ पर वह पहले, प्रवेश पर ही बाहर रखवा लिया जाता है, छुड़वा लिया जाता है।

भक्त अपने कर्मों को समर्पण कर देता है। वह कहता है कि अब मैं नहीं कर रहा हूँ; तू ही कर रहा है। वह बुरे-भले का भी भाव छोड़ देता है। वह कहता है : जो प्रभु की मरजी। अब मेरी कोई मरजी नहीं है। अब तू जो मुझ से करवाये, मैं करता रहूँगा। तेरा उपकरण हो गया। तू सुख में रखे तो सुखी और तू दुःख में रखे तो दुःखी। न तो मैं सुख की आकांक्षा करूँगा और न दुःख न मिले--ऐसी वासना रखूँगा। अब मैं सब भाँति तेरे ऊपर छोड़ता हूँ। यह जो समर्पण है, इस समर्पण के साथ ही अहंकार गलना शुरू हो जाता है।

कृष्ण कहते हैं : उनका मैं जल्दी ही उद्धार कर लेता हू, क्योंकि वे पहले चरण में ही अपने को छोड़ देते हैं।

ज्ञानी का उद्धार भी होगा, लेकिन वह आखिरी चरण में होगा । घटना अन्त में वही हो जायेगी। लेकिन कोई अपनी यात्रा के पहले ही बोझ को रख देता है। कोई अपनी यात्रा की समाप्ति पर बोझ को छोड़ता है। और जहाँ बोझ छूट जाता है अस्मिता का, अहंकार का, वहीं उद्धार शुरू हो जाता है।

कृष्ण जब कहते हैं कि मैं उद्धार करता हूँ, तो ऐसा मत समझें कि कोई बैठा हुआ है, जो आपका उद्धार करेगा। कृष्ण का मतलब है : नियम। कृष्ण का मतलब है : शाश्वत धर्म, शाश्वत नियम। जैसे ही आप अपने को छोड़ देते हैं, वह नियम काम करना शुरू कर देता है। पानी है; नीचे की तरफ बहता है। फिर उसको गरम करें आग से; भाप बन जाता है। भाप बनते ही ऊपर की तरफ उठने लगता है।

एक नियम तो ग्रेव्हिटेशन का है कि पानी नीचे की तरफ बहता है। न्यूटन ने खोजी यह बात कि जमीन चीजों को अपनी तरफ खींचती है, इसलिए सब चीजें नीचे की तरफ गिरती हैं। लेकिन एक और नियम भी है जो ग्रेव्हिटेशन के विपरीत है। जिसको योगियों ने लेव्हिटेशन कहा है। नीचे की तरफ तो खींचने में कशिश है, गुरुत्वाकर्षण है; लेकिन ऊपर की तरफ भी एक खिचाव है, जिसको एक बहुत कीमती महिला सिमोनवेल ने ग्रेस कहा है। ग्रेस और ग्रेव्हिटेशन--नीचे की तरफ कशिश, ऊपर की तरफ प्रभु-प्रसाद--ग्रेस।

नियम है : जब आप गिर पड़ते हैं जमीन पर, केले के छिलके पर पैर फिसल जाता है, तो आप यह मत सोचना कि कोई भगवान् बैठा है जो आपकी टाँग तोड़ता है। कि खटाक से--आपने गड़बड़ की--केले के छिलके पर फिसले--कि उसने उठाया हथौड़ा और फ्रैक्चर कर दिया। कोई बैठा हुआ नहीं है कि आपका फ्रैक्चर करे। किस किस का फ्रैक्चर करने का हिसाब रखना पड़े। नियम है। आपने भूल की, नियम के अनुसार आपका पैर टूट गया। कोई तोड़ता नहीं है पैर। पैर टूट जाता है; नियम के विपरीत पड़ने से टूट जाता है।

ठीक ऐसे ही ग्रेस है। जैसे ही आपका अहंकार हटा, आप ऊपर की तरफ खींच लिये जाते हैं। कोई खींचता नहीं है। कोई ऐसा बैठा नहीं है कि आपके गले में फाँसी लगा कर और ऊपर खींचेगा। उद्धार का मतलब ऐसा मत समझना कि कोई आपको उठायेगा और खींचेगा। कोई नहीं उठा रहा है; कोई उठाने की जरूरत नहीं है। जैसे बोझ हलका हुआ, आप ऊपर उठ जाते हैं। जैसे आप एक कार्क की गेन्द ले लें; उसके चारों तरफ मिट्टी लपेट कर उसे पानी में डाल दें। वह जमीन मेंबैठ जायेगी नदी की, क्योंकि वह मिट्टी चारों तरफ लगी है, उस कार्क को भी

डुबा लेगी। लेकिन जैसे मिट्टी पिघलने लगेगी और पानी में बहने लगेगी, कार्क उठने लगेगा ऊपर की तरफ। कोई उठा नहीं रहा है। मिट्टी बिलकुल बह जायेगी पिघल कर, हट कर; कार्क जमीन से ऊपर उठ आयेगा। पानी की सतह पर तैरने लगेगा। किसी ने उठाया नहीं है। नियम...। कार्क जैसे ही बोझिल नहीं रहा, उठ जाता है। उद्धार का अर्थ है कि आप जैसे ही अपने को छोड़ देते हैं, उठ जाते हैं, खींच लिये जाते हैं।

कृष्ण कहते हैं : मैं उसको, जो सगुण रूप से, साकार को, एक परमात्मा की धारणा को, उसके चरणों में अपने को समर्पित करता करता है; अनन्य भाव से निरन्तर, सतत उसको स्मरण करता है; वही उसकी धुन, वही उसका स्वर श्वास-श्वास में समा जाता है; रोएँ-रोएँ में उसी की पुलक हो जाती है; उठता, बैठता, सोता--सब भाँति उसी को याद करता है; उसके ही प्रेम में लीन रहने लगता है--ऐसी जिसकी तल्लीनता बन जाती है, उसका मैं शीघ्र ही उद्धार कर लेता हूँ। शीघ्र इसलिये कि वह पहले ही चरण पर बोझ से हट जाता है।

ज्ञानी का भी उद्धार होता है, लेकिन आखिरी चरण पर।

तो जिन्हें यात्रा-पथ में अपने को बचा रखना हो और अन्त में ही छोड़ना हो, वे निराकार की तरफ जा सकते हैं। जिनको पहले ही चरण पर सब छोड़ देना हो, भक्ति उनके लिये है। निश्चित ही जो पहले चरण पर छोड़ता है, पहले चरण पर ही मिलन शुरू हो जाता है। जितनी देर आप अपने को खींचते हैं, उतनी ही देर होती है। जितने जल्दी अपने खो छोड़ देते हैं, उतने ही जल्दी घटना घट जाती है।

यह आत्मिक उत्थान आपके अहंकार के बोझ से ही रुका हैं। यह खयाल कि मैं हूँ--इसके अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है। और जब तक मैं हूँ, तब तक परमात्मा नहीं हो सकता। और जब मैं मिट जाऊँ, तभी वह हो सकता है।

जीसस ने कहा है : 'जो अपने को मिटायेंगे, केवल वे ही बचेंगे। जो अपने को बचायेंगे, वे व्यर्थ ही अपनें को मिटा रहे हैं।' हम अपने को बचा रहे हैं। कुछ है भी नहीं बचाने योग्य, फिर भी बचा रहे हैं!

कुछ ही दिन पहले एक युवक मेरे पास आया--अमेरिका से लम्बी यात्रा कर के, न मालूम किन-किन आश्रमों, किन-किन साधना स्थलों पर भटक कर। मुझसे कहने लगा कि गुरु की तलाश है। लेकिन अब तक गुरु मिला नहीं।' मैंने उससे पूछा, 'किस भाँति गुरु की तलाश करोगे? क्या उपाय है तुम्हारे पास? कैसे तुम जाँचोगे? क्या है कसौटी? क्या है तराजू? कोई निकस है, जिससे तुम कसोगे कि कौन गुरु है? तुम्हें पता है कि गुरु का क्या अर्थ है? क्या लक्षण है?' उसने कहा,

'नहीं, मुझे तो यह कुछ पता नहीं है।' 'फिर', मैंने कहा कि 'तुम भटकते रहो पूरी जमीन पर, गुरु कैसे मिलेगा? क्योंकि गुरु से मिलना हो, तो अपने को छोड़ना पड़ेगा। तुमने कहीं किसी के पास कभी अपने को छोड़ा?' उसने कहा कि कहीं छोड़ूँ अपने को और कोई नुकसान हो जाय! और आदमी गलत हो और सच्चा न हो और धोखेबाज हो। और गुरु तो हो, लेकिन मिथ्या हो, बनावटी हो और कुछ नुकसान हो जाय!'

तो मैंने उससे पूछा कि 'तेरे पास खोने को क्या है, यह पहले तू मुझे बता दे? नुकसान क्या होगा? तेरे पास कुछ खोने को है, जो कोई तुझसे छीन लेगा? तेरी हालत ऐसी है कि नंगा आदमी नहाता नहीं, क्योंकि वह सोचता है कि नहाऊँगा तो कपड़े कहाँ सुखाऊँगा? कि जिसके पास कुछ भी नहीं है, रात भर पहरा देता हैं कि कहीं चोरी न हो जाय? तू बचा क्या रहा है? तेरे पास है क्या? और जब तेरे पास कुछ है ही नहीं, तो क्या हानि तुझे पहुँचाई जा सकती है? क्या तुझसे छीना जा सकता है? तो तू हिम्मत कर और अपने को बचाना छोड़, क्योंकि जिस दिन तू अपने को बचाना छोड़ेगा, उसी दिन गुरु से मिलने की सम्भावना शुरू होती है। उसी दिन से तू योग्य बनना शुरू हुआ।'

और फिर अगर गलत गुरु भी मिल जायेगा, तो डर क्या है? जो अपने को छोड़ता है पूरी तरह, उससे गलत गुरु भी डरता है। और अकसर ऐसा हो जाता है कि अगर कोई अपने को ठीक से छोड़ दे––गलत गुरु के पास भी––तो गलत गुरु के भी ठीक होने का रास्ता खुल सकता है। क्योंकि गुरु तो केवल बहाना है। जब कोई अपने को पूरी तरह छोड़ता है, तो वह गुरु को परमात्मा मान कर ही छोड़ता है। और किसी को इतनी सरलता से, इतनी पूर्णता से किसी को परमात्मा मान लेना, अगर वह आदमी गलत हो...। अगर सही हो, तो इसका रूपान्तरण होगा ही।...अगर वह गलत हो, तो उसका भी रूपान्तरण होगा।

और छोड़ तो रहा है परमात्मा के लिए। वह गुरु तो प्रतीक है। उसके पीछे जो छिपा हुआ है––परमात्मा––उसके लिये छोड़ रहा है। लेकिन हम डरे हुए हैं कि कहीं कुछ खो न जाय! जिनके पास कुछ भी नहीं है...!

कार्ल मार्क्स ने सभी दुनिया के मजदूरों से कहा है कि सारी दुनिया के सर्वहारा मजदूरों इकट्ठे हो जाओ, क्योंकि तुम्हारे पास सिवाय हथकड़ियाँ––खोने को कुछ भी नहीं है। यूनाइट ऑल द प्रोलिटेरियन्स, बिकॉज यू हैव नथिंग टू लूज, एक्सेप्ट यूअर चैन्स। सिवाय जंजीरों को खोने के और है भी क्या, तो डरते किसलिए हो? इकट्ठे हो जाओ।

पता नहीं, यह बात कहाँ तक सच है, क्योंकि ऐसा गरीब आदमी खोजना

मुश्किल है, जिसके पास कुछ न हो। गरीब के पास भी कुछ होता है। कम होता है। भिखमंगे के पास भी कुछ होता है; कम होता है। बिलकुल ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसके पास कुछ भी न हो। सांसारिक अर्थों में तो कुछ न कुछ होता है, लेकिन आध्यात्मिक अर्थों में यह बात बिलकुल सही है कि आपके पास कुछ भी नहीं है; आप सर्वहारा हो। फिर भी डरे हुए हो कि कहीं कुछ चूक न जायँ।

परमात्मा के पास भी सम्हल कर जाते हो कि कहीं कुछ छिन न जाय। जो इतना डरा है, भक्ति का मार्ग उस के लिए नहीं है। भक्ति के मार्ग पर तो ट्रस्ट, भरोसा––उसका भरोसा––कि ठीक है, अगर वह मिटायेगा, तो इसमें ही कुछ लाभ होगा। वह छीनेगा, तो इसमें कुछ बात होगी, रहस्य होगा। कि वह नुकसान करेगा, तो उस नुकसान से जरूर कुछ लाभ होसे वाला होगा। इस भाँति जो अपने को छोड़ने को तैयार है, तो उद्धार इसी क्षण हो सकता है।

भक्त में लिये एक क्षण भी रुकने की जरूरत नहीं है। ज्ञानी के लिये जन्मों-जन्मों तक भी रुकना पड़ सकता है, क्योंकि अपनी ही चेष्टा से लगा है। भक्त तो अभी एव्हेलेबल (उपलब्ध) हो जाता है––इसी वक्त––अगर वह छोड़ दे। और तत्काल नियम काम करना शुरू कर देता है। कृष्ण उसे खींच लेते हैं।

कृष्ण शब्द बड़ा प्यारा है। इसका मतलब होता है : अट्रैक्शन, इसका मतलब होता है मैगनेट। कृष्ण का मतलब होता है : जो खींचता है, आकृष्ट करता है।

कृष्ण एक नियम हैं। अगर आप अपने को छोड़ने को तैयार हैं, तो नियम आपको खींच लेता है। आप जगत् के आत्यंतिक चुम्बक के निकट पहुँच जाते हैं। आप खींच लिये जाते हैं––दुःख से, पीड़ा से, अहंकार से। लेकिन स्वयं को गँवाने की हिम्मत चाहिये। स्वयं को मिटाने का साहस चाहिये। स्वयं को गला देने की तैयारी चाहिये।

पाँच मिनट रुकेंगे। कोई बीच से उठे ना। जब तक कीर्तन पूरा न हो जाय, बैठें और कीर्तन में सम्मिलित हों।

संदेह की आग • ईश्वर के लिए प्यास • ध्यान और प्रार्थना भाव और भक्ति

चौथा प्रवचन

क्रॉस मैदान, पारसी कुआँ, बम्बई, संध्या, दिनांक १५ मार्च, १९७३

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसार सागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥७॥

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धि निवेशम् ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥८॥

हे अर्जुन, उन मेरे में चित्त को लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्यु-रूप संसार समुद्र से उद्धार करनेवाला होता हूँ । इसलिये हे अर्जुन, मेरे में मन को लगा; मेरे में ही बुद्धि को लगा; इसके उपरान्त मेरे में ही निवास करेगा अर्थात् मेरे को ही प्राप्त होगा––इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।

पहले थोड़े से प्रश्न।

●एक मित्र ने पूछा है : शंका, अश्रद्धा, अनास्था, विद्रोह आदि से भरा हुआ व्यक्ति कैसे प्रार्थना करे, भक्ति करे, समर्पण करे?

जिसके मन में यह खयाल उठ आया हो कि कैसे समर्पण करूँ, कैसे प्रार्थना करूँ --वह व्यक्ति, और वह व्यक्ति जो अश्रद्धा से भरा हो, अनास्था से भरा हो, शंका से भरा हो, एक ही नहीं हो सकते। क्योंकि जो शंका से भरा है, प्रार्थना का सवाल ही उसके मन में नहीं उठेगा। जो शंका से भरा है, समर्पण का विचार ही उसके मन में नहीं उठेगा। और जिसके मन में समर्पण और प्रार्थना का विचार उठना शुरू हो गया है, उसे समझ लेना चाहिये कि उसकी शंकाएँ बीमारियाँ बन गयी हैं; उसकी अश्रद्धा उसे खा रही है। अपनी अनास्था से वह खुद ही सड़ रहा है। उसकी अनास्था उसके लिये कैंसर है। और जब तक यह दिखाई न पड़ जाय, तब तक प्रार्थना की यात्रा नहीं हो सकती।

कोई दूसरा आपको यात्रा नहीं करा सकेगा। आपको स्वयं ही जानना पड़ेगा कि अश्रद्धा की पीड़ा क्या है। अनास्था का काँटा आपको बुरी तरह चुभेगा, तो ही आप उसे निकालने के लिये तैयार होंगे।

इसलिये मुझसे अगर पूछते हैं कि क्या करें--अश्रद्धा से भरे हैं? तो पूरी तरह अश्रद्धा से भर जायँ। कुनकुनी अश्रद्धा ठीक नहीं है। अश्रद्धा से पूरी तरह भर जायँ, ताकि उससे कूद सकें और छुटकारा हो सके।

आम हालत ऐसी है कि न तो आप श्रद्धा से भरे हैं, और न अश्रद्धा से। आप दोनों की खिचड़ी हैं। वही तकलीफ है। उसकी वजह से न तो आप अश्रद्धा की यात्रा कर सकते हैं...। क्योंकि जब अश्रद्धा पर जाना चाहते हैं, तो श्रद्धा पैर को रोक लेती है और इसकी वजह से श्रद्धा की यात्रा भी नहीं कर सकते हैं, क्योंकि जब श्रद्धा की तरफ जाना चाहते हैं, तो अश्रद्धा पैर रोक लेती है।

कृपा करें और पूरी तरह अश्रद्धालु हो जायँ। डरें मत। भय भी न खायें। तर्क

ही करना है, तो पूरा कर लें। कुतर्क की सीमा का भी कुछ संकोच न करें। पूरी तरह उतर जायँ--अपनी अश्रद्धा में। वह पूरी तरह उतर जाना ही आपको नरक में ले जायेगा। और नरक में जाये बिना नरक से कोई छुटकारा नहीं है।

और दूसरों की बातें मत सुनें। क्योंकि अधकचरी दूसरों की बातें कोई सहायता न पहुँचाएँगी। जब आप नरक की तरफ जा रहे हों, तो स्वर्ग की बात ही भूल जायँ और पूरी तरह नरक में उतर जायँ। एक बार अनुभव कर लें ठीक से तो फिर किसी को कहना नहीं पड़ेगा कि श्रद्धा का अमृत क्या है।

अश्रद्धा का जहर जिसने देख लिया, वह अपने आप श्रद्धा के अमृत की ओर चलना शुरू हो जाता है।

इस युग की तकलीफ अश्रद्धा नहीं है। इस युग की तकलीफ अधूरापन है। आपका आधा हिस्सा श्रद्धा से भरा है और आधा अश्रद्धा से भरा है। कोई भी यात्रा पूरी नहीं हो पाती।

और ध्यान रहे : बुराई से भी छूटने का कोई उपाय नहीं है, जब तक बुराई पूरी न हो जाय। और पाप के भी बाहर उठने का कोई उपाय नहीं है, जब तक कि पाप में आप पूरी तरह डूब न जायँ।

जिसमें हम पूरी तरह डूबते हैं, जिसका हमें पूरा अनुभव हो जाता है, फिर किसी को कहने की जरूरत नहीं पड़ती कि आप उसके बाहर निकल आयें। आप स्वयं ही निकलना शुरू कर देते हैं।

अभी तो बहुत लोग आपको समझाते हैं कि श्रद्धा करें और श्रद्धा नहीं आती। क्योंकि जिसने अश्रद्धा ही ठीक से नहीं की है, उसे श्रद्धा कैसे आ सकेगी! श्रद्धा अश्रद्धा के बाद का चरण है।

आस्तिक वही हो सकता है, जो नास्तिक हो चुका है। नास्तिकता के पहले सारी आस्तिकता बचकानी, दो कौड़ी की होती है। जिसने नास्तिकता नहीं जानी, वह आस्तिक हो कैसे सकेगा? जिसने अभी इनकार करना नहीं सीखा, उसके 'हाँ' का भी कोई मूल्य नहीं है। उसके स्वीकार में भी कोई जान नहीं है। उसका स्वीकार नपुंसक है, इम्पोटेन्ट है।

कोई डर नहीं है। 'ना' कहें, परमात्मा नाराज नहीं होता है। लेकिन पूरे हृदय से ना कहें, तो ना भी उबारने वाली हो जाती है। और जिसने पूरी तरह से ना कह कर देख लिया और देख लिया कि ना कहने का दुःख और संताप क्या है और झेल ली चिन्ता और आग की लपटें, वह आज नहीं कल 'हाँ' कहने की तरफ बढ़ेगा। उसकी 'हाँ' में बल होगा। उसकी 'हाँ' में उसके जीवन का अनुभव होगा।

तो मुझसे यह मत पूछें कि आपका चित्त अश्रद्धा से भरा है, तो आप प्रार्थना

की तरफ कैसे जायँ। पूरी तरह अश्रद्धा से भर जायँ। आपके लिये प्रार्थना की तरफ जाने के अतिरिक्त कोई मार्ग न बचेगा। मगर अधूरे-अधूरे होना अच्छा नहीं है।

परमात्मा की प्रार्थना भी कर रहे हैं और भीतर सन्देह भी है, तो प्रार्थना क्यों कर रहे हैं? बन्द करें यह प्रार्थना। अभी सन्देह ही कर लें ठीक से। और जब सन्देह न बचे, तब प्रार्थना शुरू करें। कुछ भी पूरा करना सीखना चाहिये। क्योंकि पूरा करते ही व्यक्तित्व अखण्ड हो जाता है। आप टुकड़े-टुकड़े नहीं होते।

आपके भीतर पच्चीस तरह के आदमी हैं। आप एक भीड़ हैं। एक मन का हिस्सा कुछ कहता है; दूसरा मन का हिस्सा कुछ कहता है। तीसरा मन का हिस्सा कुछ कहता है।

एक देवी मेरे पास आज सुबह ही आयीं। कहती हैं: बीस साल से ईश्वर की खोज कर रही हूँ। मैंने उनसे कहा कि 'कल सुबह चौपाटी पर ध्यान के लिये पहुँच जायें—छः बजे।' तो उन्होंने कहा कि 'छः बजे तो बहुत मुश्किल होगा।' बीस साल से ईश्वर की खोज चल रही है! सुबह छः बजे चौपाटी पर आना मुश्किल है। यह ईश्वर की खोज है! इस तरह के अधूरे लोग कहीं भी नहीं पहुँचते। ये त्रिशंकु की भाँति अटके रह जाते हैं।

संकोच भी नहीं होता, सोचने में, खयाल भी नहीं आता कि मैं कह रही हूँ: बीस साल से ईश्वर की खोज कर रही हूँ और सुबह छः बजे पहुँचना मुश्किल है! यह खोज कितनी कीमत की है? बीस जन्म भी इस तरह खोजो, तो कहीं पहुँचना नहीं हो पायेगा। यह खोज है ही नहीं। यह सिर्फ धोखा है। ईश्वर से कुछ लेना-देना भी मालूम नहीं पड़ता है। यह भी ऐसे रास्ते चलते पूछ लिया है। यह भी ऐसे ही जैसे ईश्वर कहीं पड़ा हुआ मिल जाय और फुरसत का समय हो; जैसा ताश खेल लेते हैं, वैसा उसको भी उठा लेंगे।

ईश्वर अगर कहीं ऐसे ही मिलता हो—बिना कुछ खर्च किये, बिना कुछ श्रम किये, बिना कुछ छोड़े, बिना कुछ मेहनत उठाये—तो सोचेंगे; ले लेंगे। इस भाव से जो चलता है, उसकी श्रद्धा भी झूठी है, उसकी अश्रद्धा भी झूठी है। उसकी खोज भी झूठी है। उसका व्यक्तित्व ही पूरा झूठा है।

सच्चे होना सीखें। सच्चे होने के लिये धार्मिक होना जरूरी नहीं है। नास्तिक भी सच्चा हो सकता है। फिर नास्तिकता पूरी होनी चाहिये; फिर आप सच्चे नास्तिक हो गये। और मैंने अब तक नहीं सुना है कि कोई सच्चा नास्तिक, आस्तिक बनने से बच गया हो। सच्चे नास्तिक को आस्तिक बनना ही पड़ता है। क्योंकि जिसकी नास्तिकता तक में सच्चाई है, वह कितने देर तक अपने को आस्तिक

बनने से रोक सकता है!

लेकिन तुम्हारी आस्तिकता तक झूठी है। और जिसकी आस्तिकता तक झूठी है, वह कैसे परमात्मा तक पहुँच सकता है!

धार्मिकता भी झूठी है; ऊपर-ऊपर है। जरा-सा खोदें, तो हर आदमी के भीतर नास्तिक मिल जाता है। बस, ऊपर से एक पर्त है—आस्तिकता की; स्किन डीप। चमड़ी जरा-सी खरोच दो, नास्तिक बाहर आ जाता है। वह जो भीतर है, वही असली है। वह जो ऊपर-ऊपर है उसका कोई मूल्य नहीं है।

तो पहले तो ईमानदारी से इस बात की खोज करें कि अश्रद्धा है, शंका है, तो ठीक है। मेरे चित्त में जो स्वभाविक है, मैं उसका पीछा करूँ। तो मैं शंका पूरी करूँगा—जब तक कि हार न जाऊँ। और जब तक कि मेरी शंका टूट न जाय, तब तक जहाँ मेरी शंका मुझे ले जायेगी, मैं जाऊँगा।

थोड़ी हिम्मत करें और शंका के रास्ते पर चलें। ज्यादा आगे आप नहीं जा सकेंगे। क्योंकि शंका का रास्ता कहाँ ले जायेगा? शंका का अंतिम परिणाम क्या होगा? संदेह कर के कहाँ पहुँचेंगे? क्या मिलेगा? आज तक किसी ने भी नहीं कहा कि संदेह से उसे आनन्द मिला हो। और आज तक किसी ने भी नहीं कहा कि शंका से उसे जीवन की परम अनुभूति का अनुभव हुआ हो। आज तक किसी ने भी नहीं कहा कि इनकार करके उसने आस्तिकता की गहराई में प्रवेश कर लिया हो। आज नहीं कल आपको दिखाई पड़ने लगेगा कि आप अस्तित्व के बाहर-बाहर परिधि पर भटक रहे हैं। आज नहीं कल आपको खुद ही दिखाई पड़ने लगेगा।

आपकी शंका ईश्वर को नहीं मिटा रही है, आपको मिटा रही है। और आपका संदेह धर्म के खिलाफ नहीं है, आपके ही खिलाफ है: आपके ही पैरों को और जड़ों को काटे डाल रहा है।

जब तक आपको यह दिखाई न पड़ जाय कि आपकी शंका आपकी शत्रु है, तब तक—तब तक आप प्रार्थना की यात्रा पर नहीं निकल सकते हैं।

मेरे कहने से आप नहीं निकलेंगे। किसी के कहने से आप नहीं निकलेंगे। जब आपकी शंका आपको आग की तरह जलाने लगेगी, तभी...।

बुद्ध के पास एक आदमी आया और वह आदमी कहने लगा कि 'आपकी बातें सुनते हैं, अच्छा लगता है; लेकिन संसार से छूटने का मन नहीं होता अभी। और आप कहते हैं कि संसार दुःख है; यह भी समझ में आता है, लेकिन फिर भी अभी संसार में रस है?' तो बुद्ध ने कहा: मेरे कहने से कि संसार दुःख है, तुझे कैसे समझ में आ सकेगा। और जिस दिन तुझे समझ में आ जायेगा कि संसार में दुःख है, तू मेरे लिये रुकेगा? तू छलाँग लगाकर बाहर हो जायेगा।' बुद्ध ने कहा कि

तू ऐसा समझ कि तेरे घर में आग लग गयी है, तो तू मुझसे पूछने आयेगा कि घर से बाहर निकलूँ या न निकलूँ? तू किसी से पूछने रुकेगा? अगर मैं तेरे घर में मेहमान भी हूँ, तो भी तू मुझे भीतर ही छोड़ कर बाहर निकल जायेगा। पहले तू बाहर निकल जायेगा। लेकिन तुझे खुद ही अनुभव होना चाहिए कि घर में आग लगी है। तुझे तो लग रहा हो कि घर के चारों तरफ फूल खिले हैं, और आनन्द की वर्षा हो रही है...। मैं तुझसे कह रहा हूँ कि तेरे घर में आग लगी है, तो तू मुझसे कहता है कि आपकी बात तो समझ में आती है। क्योंकि तेरी इतनी हिम्मत भी नहीं है कहने कि कि आपकी बात मुझे समझ में नहीं आती है। तेरा यह भी साहस नहीं है कहने का कि तुम झूठ बोल रहे हो। यह घर तो बड़े आनन्द से भरा है। आग कहाँ लगी है! तू बिलकुल कमजोर है। तो तू कहता है कि बात समझ में आती है कि घर में आग लगी है, फिर भी छोड़ने का मन नहीं होता। ये दोनों बातें विरोधी हैं। अगर घर में आग लगी है, तो छोड़ने का मन होगा ही।' छोड़ने का मन' कहना भी ठीक नहीं है। घर में आग लगी हो, तो आपको पता भी नहीं चलता कि आग लगी है। जब आप घर के बाहर हो जाते हैं, ठीक से साँस लेते हैं, तब पता चलता है कि घर में आग लगी है। 'घर में आग लगी है'--यह सोचने के लिये भी समय नहीं गँवाते। भाग कर पहले बाहर हो जाते हो।

जिस दिन आपको शंका, संदेह, अनास्था आपके लिए अग्नि की लपटें बन जायेंगी, उसी दिन आप प्रार्थना की तरफ दौड़ेंगे--उसके पहले नहीं।

इसलिए मैं आपसे कहता हूँ : किसी की सुन कर प्रार्थना के रास्ते पर मत चले जाना। किसी की मान कर कि संसार दुःख है, परमात्मा को मत खोजने लगना। अपनी ही मानना, क्योंकि आपके अतिरिक्त, आप जब भी किसी और की मान लेंगे, आप झूठे हो जायेंगे।

तो अच्छा है; बुरा कुछ भी नहीं है। आपकी अश्रद्धा भी आपके जीवन में निखार लायेगी। आपकी नास्तिकता भी आपको तैयार करेगी—आस्तिकता के लिये। अ पका संदेह भी आपको छाँटेगा, काटेगा, तराशेगा--और आप योग्य बनेंगे कि परमात्मा के मन्दिर में प्रवेश कर सकें।

मेरी दृष्टि में परमात्मा के विपरीत कुछ भी नहीं है। हो भी नहीं सकता। इसलिये कोई अगर कहता है कि नास्तिक परमात्मा के विरोध में है, तो वह नासमझ है। उसे आस्तिकता की कोई खबर नहीं।

नास्तिक भी तैयारी रहा है--आस्तिक होने की। वह भी कह रहा है : नहीं है परमात्मा। उसके भीतर की खोज शुरू हो गयी है। नहीं तो क्या प्रयोजन है--यह कहने से भी--कि परमात्मा नहीं है? क्या प्रयोजन है सोचने से कि वह है या नहीं

है? क्या जरूरत है कि अश्रद्धा करके हम अपनी शक्ति नष्ट करें!

वह जो अश्रद्धा कर रहा है, वह असल में श्रद्धा की तलाश में है। वह चाहता है कि हो। लेकिन उसे मालूम नहीं पड़ता कि है। इसलिये इनकार करता है और इनकार करता है, तो पीड़ा अनुभव करता है।

इनकार पूरा होने दें। यह धार तलवार की गहरे उतर जाय और हृदय को काट डाले पूरा। आप प्रार्थना के रास्ते पर आ जायेंगे। प्रार्थना के रास्ते पर आना स्वाभाविक हो जाता है।

और जल्दी मत करें। बिना अनुभव के कहीं से भी निकल जाना खतरनाक है। बिना अनुभव के कहीं से भी भाग जाना खतरा है। क्योंकि जहाँ से भी आप बिना अनुभव के भाग जाते हैं, वह जगह आपका पीछा करेगी। और आपके मन में रस तो बना ही रहेगा। और आपके मन की दौड़ तो उसी तरफ होती ही रहेगी।

आप भाग सकते हैं कहीं से भी, लेकिन जिससे आप बिना अनुभव के भाग रहे हैं, वह आपका पीछा करेगा; वह छाया की तरह आपके साथ होगा। मेरी दृष्टि भागने की नहीं है। मेरी तृष्टि तो किसी चीज के अनुभव में परिपक्वता में उतर जाने की है।

जब पका हुआ पत्ता वृक्ष से गिरता है, तो उसका सौन्दर्य अनूठा है। न तो वृक्ष को पता चलता कि पत्ता कब गिर गया; न वृक्ष में कोई घाव होता है पत्ते के गिरने का। न कोई पीड़ा होती। न पत्ते को पता चलता कि मेंने वृक्ष को कब छोड़ दिया। हवा का एक हलका-सा झोका काफी हो जाता है। लेकिन कच्चे पत्ते को तोड़ना--वृक्ष में भी घाव छूट जाता है और कच्चे पत्ते की भी नस-नस तन जाती है। कच्चे पत्ते का टूटना दुर्घटना है। पके पत्ते का गिरना एक सुखद, शान्त, नैसर्गिक बात है।

आप जहाँ से भी हटें, पके पत्ते होकर हटना। कच्चे पत्ते की तरह मत टूट जाना। नहीं तो घाव रह जायेंगे। और पके पत्ते का जो सौन्दर्य है, उससे आप वंचित रह जायेंगे।

डरें मत। अभी सन्देह है, तो सन्देह को पकने दें। और किसी की मत सुनना। क्योंकि चारों तरफ सुनाने वाले लोग बहुत हैं। चारों तरफ आपको सुधारने वाले लोग बहुत हैं। उनसे सावधान रहना। चारों तरफ आपको बनाने वाले लोग बहुत हैं, उनसे जरा बचना। अपनी जीवन धारा को मौका देना कि वह स्वभावतः जो भी चाहती है, उसके पूरे अनुभव से गुजर जाय। नहीं तो बड़ा उपद्रव होता है। पूरे इतिहास में यह उपद्रव हुआ है।

हमारी तकलीफ क्या है? जिस मित्र ने पूछा है, सन्देह मन में होगा; प्रार्थना का लोभ भी नहीं छूटता। क्योंकि हमने देखा है उन लोगों को, जो प्रार्थना में

आनन्दित हैं। तकलीफ कहाँ खड़ी होती है?

मीरा नाच रही है। आपको लगता है कि काश! मैं भी ऐसा नाच सकता! यह नाच संक्रामक है। यह आपके हृदय में भी पुलक जगाता है; प्रलोभन पैदा करता है। यह मीरा की मुसकराहट, यह उसकी आँखों की ज्योति, यह उसके चेहरे से बरसती हुई अमृत की धारा--यह आपको भी लगती है कि मेरे जीवन में भी हो। लेकिन मीरा कहती है कि मैं कृष्ण को देख कर नाच रही हूँ। भीतर सन्देह खड़ा हो जाता है। कृष्ण आपको कहीं दिखायी नहीं पड़ते। मीरा पागल मालूम पड़ती है। इस कृष्ण का भरोसा करना मुश्किल है।

मीरा जिसके लिये नाच रही है, उसका भरोसा करना मुश्किल है और मीरा के नाच से बचना भी मुश्किल है। इससे तकलीफ खड़ी होती है। लगता है: काश! हम भी ऐसा नाच सकते। लेकिन जिस कारण मीरा नाच रही है, उसके लिये तर्कयुक्त प्रमाण नहीं मिलते। किस ईश्वर के लिये नाच रही है? वह ईश्वर कहीं दिखाई नहीं पड़ता। हजार शंकाएँ बुद्धि खड़ी करती है। तो हम कहते हैं: 'कोई ईश्वर वगैरह नहीं है। तो मीरा पागल है। दमाग इसका खराब है'--ऐसा कह कर अपने को समझा लेते हैं। फिर भी मीरा की वह धुन--वह नाच--पीछा करता है। वह आपके सपनों में आपके साथ जायेगा। आप उठेंगे और बैठेंगे और लगेगा--कहीं मन का कोई कोना कहेगा: काश! मीरा का ईश्वर सच होता, तो हम भी नाच सकते!

नाचना आप चाहते हैं; आनन्दित आप होना चाहते हैं। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसे कि आनन्द की आकांक्षा न हो। और सन्देह से आनन्द मिलता नहीं। अश्रद्धा से आनन्द मिलता नहीं। अनास्था से आनन्द मिलता नहीं। और आनन्द की आकांक्षा है और बुद्धि सन्देह खड़े कर देती है। जहाँ आनन्द मिल सकता हो, वहाँ बुद्धि सवाल खड़ा कर देती है और हृदय माँगता है आनन्द। और बुद्धि आनन्द दे नहीं सकती। इस दुविधा में प्राण उलझ जाते हैं।

तो आप भी नकली नाच नाच सकते हैं। आप भी मंजीरा उठा कर नाच सकते हैं। लेकिन वह ऊपर-ऊपर होगा। क्योंकि मीरा के नाच में मीरा के पाँव असली काम नहीं कर रहे हैं; मीरा की श्रद्धा असली काम कर रही है। मीरा से अच्छी नर्तकियाँ होंगी, जो ज्यादा नाच लेंगी। लेकिन मीरा के नाच का गुण और है। कितनी ही बड़ी कोई नर्तकी और नर्तक हो, मीरा के नाच में जो बात है, वह उसके नाच में नहीं हो सकती। मीरा के पैर अनगढ़ होंगे। ताल न हो; लय न हो; संगीत का अनुभव न हो; लेकिन कुछ और है--जो संगीत से भी बड़ा है। और कुछ और है--जो व्यवस्था से भी बड़ा है। और कुछ इतना गहन उतर गया है भीतर कि

उसके उतरने के कारण नाच हो रहा है। इस नाच के पीछे कुछ अलौकिक खड़ा है।

वह अलौकिक की श्रद्धा न हो, तो नाच तो आप भी सकते हैं, लेकिन आपकी आत्मा में आनन्द पैदा नहीं होगा। नाच बाहर-बाहर रह जायेगा। आप भीतर खाली के खाली--रिक्त, उदास--वैसे के वैसे रह जायेंगे।

मीरा की श्रद्धा ही केंद्र है। आप संदेह के केन्द्र पर नाच सकते हैं, लेकिन मीरा के सुख की अनुभूति आपको नहीं होगी।

और बड़ी कठिनाई इससे खड़ी होती है कि जाग्रत पुरुषों का बाहर का जीवन ही हमें दिखाई पड़ता है। उनके भीतर का तो हमें कुछ पता नहीं है।

हम महावीर को देखते हैं; उनकी शांत मुद्रा दिखाई पड़ती है। उनकी आँखों का मौन दिखाई पड़ता है। मन प्रलोभन से भर जाता है। काश! ऐसा हमें भी हो सके। फिर महावीर की बात सुनते हैं, उस पर श्रद्धा नहीं आती।

बुद्ध को देखते हैं। उसके आसपास जो हवा बहती है शांति की, वह हमें भी छूती है। उनके पास पहुँच कर जो स्नान हो जाता है--कि पोर-पोर जैसे किसी ताजगी से भर गये, वह हमें भी प्रतीत होता है। लेकिन बुद्ध की बात सुन कर श्रद्धा भी नहीं आती।

बुद्ध के भीतर जो है, उसका हमें पता नहीं। बाहर जो है--हमें पता है। एक बड़ी उलटी प्रक्रिया शुरू होती है कि हम सोचते हैं कि जिस भाँति बुद्ध बैठे हैं, वैसे हम भी बैठ जायँ, तो शायद जो उन्हें भीतर घटा है, वह हमें भी घट जायेगा। तो महावीर जैसा चलते हैं, हम भी चलने लगे। महावीर ने वस्त्र छोड़ दिये, तो हम भी वस्त्र छोड़ दें। तो अनेक लोग महावीर को देख कर नग्न खड़े हो गये हैं! वे सिर्फ नंगे हैं; दिगम्बर नहीं हैं। क्योंकि महावीर की नग्नता के पहले भीतर एक आकाश उत्पन्न हो गया है। उस आकाश में वस्त्र छोड़ दिये हैं। इनके भीतर वह आकाश उत्पन्न नहीं हुआ है। इन्होंने सिर्फ वस्त्र छोड़ दिये हैं। इनकी देह भर नंगी हो गयी है।

महावीर चींटी भी हो, तो पाँव फूंक-फूंक कर रखते हैं। इसलिये नहीं कि उन्हें डर है कि कहीं चींटी मर न जाय। उनके पीछे चलने वाला भी पाँव फूंक-फूंक कर रखने लगता है कि कहीं चींटी मर न जाय। लेकिन इसे अपनी ही आत्मा का पता नहीं है, तो चींटी की आत्मा का पता कैसे हो सकता है! इसे अपने ही भीतर के जीवन का कोई अनुभव नहीं है, चींटी के जीवन का अनुभव कैसे हो सकता है? इसकी अहिंसा थोथी, उथली, ऊपर-ऊपर हो जाती है। ऊपर से आचरण हो जाता है। भीतर का अंतस् वैसा का वैसा बना रहता है।

भीतर अंतस् बदले, तो ही जो बाहर क्रान्ति घटित होती है; वह वास्तविक होती

है। लेकिन यह भूल होती रही है।

मैंने सुना है : एक यहूदी फकीर हुआ बालशेम। थोड़े से जमीन पर हुए कीमती फकीरों में एक। बालशेम से किसी ने पूछा कि 'तुम जब भी बोलते हो, तो तुम ऐसी चोट करनेवाली मौजू कहानी कह देते हो। कहाँ से खोज लेते हो ये कहाँनियाँ?' तो बालशेम ने कहा कि 'एक कहानी से समझाता हूँ।'

और बालशेम ने कहा कि 'एक सेनापति एक छोटे से गाँव से गुजरता था। बड़ा कुशल निशानेबाज था। उस जमाने में उस जैसा निशानेबाज कोई भी न था। सौ में सौ निशाने उसके लगते थे। अचानक उसने देखा--गाँव से गुजरते वक्त अपने घोड़े पर--एक बगीचे की चार दीवारी पर--लकड़ी की चार दीवारी, फेंसिंग पर--कम से कम डेढ़ सौ गोली के निशान हैं। और हर निशान चाक के एक गोल घेरे के ठीक बीच केन्द्र पर है। डेढ़ सौ!

सेनापति चकित हो गया। इतना बड़ा निशानेबाज इस छोटे गाँव में कहाँ छिपा है! और जो चाक का गोल घेरा है, ठीक उसके केन्द्र पर गोली का निशाना है। गोली लकड़ी को आरपार करके निकल गयी है। और एकाध मामला नहीं है; डेढ़ सौ निशान हैं! उसे लगा कि कोई मुझ से भी निशानेबाज पैदा हो गया। पास से निकलते एक राहगीर से उसने पूछा कि 'भाई, यह कौन आदमी है? किसने ये निशान लगाये हैं? किसने ये गोलियाँ चलायी हैं? इसकी मुझे कुछ खबर दो। मैं इसके दर्शन करना चाहूँगा!' उस ग्रामीण ने कहा कि 'ज्यादा चिन्ता मत करो। गाँव का जो चमार है, उसका लड़का है। जरा दिमाग उसका खराब है। नट बोल्टस् थोड़े ढीले हैं!'

उस सेनापति ने कहा : 'मुझे उसके दिमाग की फिक्र नहीं है। जो आदमी डेढ़ सौ निशाने लगा सकता है--इस अचूक ढंग से, वर्तुल के ठीक मध्य में, उसके दिमाग की मुझे चिन्ता नहीं। वह महानतम निशानेबाज है। मैं उसके दर्शन करता चाहता हूँ।' उस ग्रामीण ने कहा, 'थोड़ा समझ लो पहले। वह गोली पहले मार देता है, चाक का निशान बाद में बनाता है।'

करीब-करीब धर्म के साथ ऐसा हुआ है। हम सब गोली पहले मार रहे हैं, चाक का निशान बाद में बना रहे हैं। लेकिन राहगीर को तो यही दिखाई पड़ेगा कि गजब हो नया। जिसे पता नहीं उसे तो दिखाई पड़ेगा कि गजब हो गया।

जिन्दगी बाहर से भीतर की तरफ उलटी नहीं चलती है। जिन्दगी की धारा भीतर से बाहर की तरफ है; वही सम्यक् धारा है। गंगोत्री भीतर है। गंगा बहती है सागर की तरफ। हम सागर से गंगोत्री की तरफ गंगा को बहाने की कोशिश में लगे रहते हैं। अगर आपके भीतर संदेह है, तो घबड़ाएँ मत। संदेह की गंगा को

सागर तक पहुँचने दें। और रुकावट मत डालें। आज नहीं कल आप पायेंगे कि संदेह ही आपको समर्पण तक ले आया। इससे उलटा कभी भी नहीं हुआ है।

सभी संदेह करने वाले--सम्यक् संदेह करनेवाले--राइट डाउट करनेवाले लोग समर्पण पर पहुँच गये हैं। अश्रद्धा ही श्रद्धा का द्वार बन जाती है। मगर पूरी अश्रद्धा। अनास्था--ईमानदार, प्रामाणिक अनास्था--आस्था की जननी है।

थोपें मत। ऊपर-ऊपर से थोपें मत। ऊपर की चिन्ता मत करें। मत पूछें कि मन अनास्था से भरा है, तो कैसे प्रार्थना करें। अनास्था से पूरा भर जाने दें। और मैं आपको कहता हूँ कि प्रार्थना का बीज आपके भीतर छिपा है। अनास्था को पूरी तरह बढ़ने दें, यह अनास्था ही उस बीज के लिये भूमि बन जायेगी। प्रार्थना का अंकुर आपके भीतर पैदा होगा।

नास्तिक होने से मत डरें--अगर आस्तिक होना है। और अगर किसी दिन ईश्वर के चरणों में पूरा सिर रख कर 'हाँ' भर देनी है, तो अभी, जब तक आपको लगे कि वह नहीं है, तब तक ईमानदारी से इनकार करना। जल्दी 'हाँ' मत भरना। जल्दी भरी हुई 'हाँ' गर्भपात है, एबॉर्शन है। उससे जो बच्चा पैदा होता है, वह मुरदा पैदा होता है।

अनास्था के गर्भ को कम से कम नौ महीने तक तो चलने दें। और अगर यह गर्भ पूरा हो गया हो, तो फिर मुझसे पूछने की जरूरत न रह जायेगी।

अगर आप सच में ही ऊब गये हों अपनी अश्रद्धा से, तो आप उसे छोड़ ही देंगे; फेंक ही देंगे। न ऊबे हों, तो थोड़ी प्रतीक्षा करें। थोड़ा ऊबें।

डर इसलिये नहीं है मुझे, क्योंकि अश्रद्धा से कभी आनन्द मिलता नहीं, इसलिये आप तृप्त नहीं हो सकते। आज नहीं कल आप उसे फेंक ही देंगे। श्रद्धा से ही आनन्द मिलता है और बिना आनन्द के कोई व्यक्ति कब तक जीवित रह सकता है?

धर्म को पृथ्वी से मिटाया नहीं जा सकता--तब तक--जब तक कि आदमी आनन्द की माँग कर रहा है। जिस दिन आदमी बिना आनन्द के जीने को राजी हो जायेगा, उस दिन धर्म को मिटाया जा सकता है--उसके पहले नहीं।

धर्म परमात्मा की खोज नहीं है--आनन्द की खोज है। और जिन्हें आनन्द खोजना है, उन्हें परमात्मा खोजना पड़ता है। और आनन्द की खोज हमारे भीतर का नैसर्गिक स्वर है।

● इससे ही सम्बन्धित एक प्रश्न और एक मित्र ने पूछा है कि ईश्वर की ओर श्रद्धा बढ़ाना बहुत कठिन लगता है, क्योंकि उसके अस्तित्व को मानने का कोई ठोस सबूत या कारण नहीं मिलता।

ईश्वर की श्रद्धा बढ़ाना बहुत ही कठिन मालूम पड़ता है। बढ़ाइये ही क्यों?

ऐसी झंझट करनी क्यों! कौन-सी अड़चन आ रही आपको कि ईश्वर पर श्रद्धा बढ़ानी है! मत बढ़ाइये। छोड़िए ईश्वर की बात ही।

बेचैनी क्या है? क्यों चाहते हैं कि ईश्वर की श्रद्धा बढ़े? तो अपने भीतर तलाश करिये। बिना ईश्वर के आपको शांति नहीं मालूम पड़ती। बिना ईश्वर के चैन नहीं मालूम पड़ता। इसलिये श्रद्धा बढ़ाना चाहते हैं। पहले अपने भीतर की इस बात को समझिये कि मेरे भीतर कोई बेचैनी है, जिसकी वजह से मैं ईश्वर की श्रद्धा बढ़ाना चाहता हूँ। और अगर बेचैनी ठीक से समझ में आ जाय, तो आप फिर प्रमाण नहीं पूछेंगे, सबूत नहीं पूछेंगे।

प्यासा आदमी यह नहीं पूछता कि पानी है या नहीं। प्यासा आदमी पूछता है: पानी कहाँ है। प्यास न लगी हो, तो आदमी पूछता है कि पता नहीं पानी है या नहीं। प्यासे आदमी ने अब तक नहीं पूछा है कि पानी है या नहीं। प्यासा आदमी पूछता है: पानी कहाँ है: कैसे खोजूँ?

ईश्वर के प्रमाण की जरूरत क्या है? आपके भीतर ईश्वर के बिना बेचैनी है--यह काफी प्यास है। और यही उसका प्रमाण है। इस बात के फर्क को समझ लें।

एक आदमी पूछता है: ईश्वर है या नहीं--इसका प्रमाण चाहिये। मैं प्रमाण नहीं देता। मैं कहता हूँ: छोड़ो फिक्र। जिसका प्रमाण नहीं, उसकी फिक्र क्यों करनी? ईश्वर को जाने दो; उसकी बला। तुम अपने रास्ते पर जाओ। ईश्वर तुमसे कभी कहने आता नहीं कि मेरा प्रमाण तुमने अभी तक पता लगाया कि नहीं।

तो झंझट में पड़ते क्यों हो? क्यों अपने मन को खराब करते हो? शांति से सोओ। क्यों नींद खराब करनी; अनिद्रा मोल लेनी? क्या बात है?

चैन नहीं है भीतर। कहीं भीतर कोई प्यास है--जो बिना ईश्वर के नहीं बुझ सकती। बिना ईश्वर के प्यास नहीं बुझ सकती। वह प्यास भीतर से धक्के देती है कि पता लगाओ ईश्वर का।

अपनी प्यास को समझो; ईश्वर को छोड़ो। पानी उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितनी प्यास महत्त्वपूर्ण है। पानी तो गौण है। अगर प्यास न हो, तो पानी का करियेगा भी क्या। और अगर प्यास हो, तो हम पानी खोज ही लेंगे।

एक नियम जीवन का है कि उसी चीज की प्यास होती है--जो है। जो नहीं है--उसकी प्यास भी नहीं होती। जो नहीं है--उसका कोई अनुभव भी नहीं होता; प्यास का भी अनुभव नहीं होता। उसके अभाव का भी अनुभव नहीं होता।

आदमी की प्यास ही प्रमाण है। इसका मतलब यह हुआ कि आपको सब कुछ मिल जाय, तो भी तृप्ति न होगी, जब तक कि आपको ईश्वर न मिल जाय। अगर आपको तृप्ति हो सकती है--बिना उसके--तो आप तृप्त हो जायँ; ईश्वर को कोई

ऐतराज नहीं। आप मजेसे तृप्त हो जायँ। वह आपकी तृप्ति में बाधा डालने को नहीं आयेगा। लेकिन आप तृप्त हो नहीं सकते।

यह कठिनाई ईश्वर की नहीं है। यह आदमी के होने के ढंग की कठिनाई है। आदमी इस ढंग का है कि बिना ईश्वर के तृप्त हो नहीं सकता। और इसलिए जब हम आदमी से ईश्वर छीन लेते हैं, तो वह न मालूम किस-किस तरह के ईश्वर गढ़ लेता है।

रूस में एक बड़ा प्रयोग हुआ कि कम्युनिस्टों ने ईश्वर छीन लिया। तो आपको पता है क्या हुआ? जैसे ही ईश्वर छिन गया, लोगों ने राज्य को ईश्वर मानना शुरू कर दिया। चर्च से जीसस की मूर्ति तो हट गयी, लेकिन क्रेमलिन के चौराहे पर लेनिन की लाश रख दी गयी। लोग उसको ही फूल चढ़ाने लगे; उसके ही चरणों में सिर रखने लगे!

यह बड़े मजे की बात है। लेनिन तो नास्तिक था। मानता नहीं है कि मृत्यु के बाद कुछ भी बचता है। लेकिन उसकी लाश रखी है क्रेमलिन में। लाखों लोग प्रतिवर्ष चरण छू रहे हैं! किसके चरण छू रहे हैं? जो अब नहीं है उसका। और जो अब नहीं है, वह कभी भी नहीं था। इस मुरदे को क्यों छू रहे हैं?

गहरी प्यास है। कहीं किसी चरण में सिर रखने की आकांक्षा है। किसी अज्ञात के सामने झुकने का मन है। तृप्ति न होगी; तो लेनिन के ही चरणों में सिर रखेगा आदमी। ईश्वर को हमने छीन लिया, तो हमने फिर कुछ भी गढ़ लिया है। लेकिन आदमी बिना श्रद्धा के नहीं रह पाता। ईश्वर की श्रद्धा छीनो, राज्य की श्रद्धा करेगा, नेता की श्रद्धा करेगा। यहाँ तक की अभिनेता की श्रद्धा करेगा। कुछ चाहिये, जो उसके श्रद्धा का आश्रय बन जाय। कुछ चाहिये, जिसके लिये वह समझे कि जो सकता हूँ। लेकिन आदमी बिना ईश्वर के नहीं रह सकता।

आदमी ईश्वर के बिना बेचैन ही रहता है। एक परम आश्रय चाहिये।

तो मैं आपसे नहीं कहता कि कोई प्रमाण है उसका। कोई प्रमाण नहीं है--आपकी प्यास के अतिरिक्त। अपनी प्यास को मिटा लो, आपने ईश्वर को मिटा दिया। ईश्वर को मिटाने की फिक्र मत करो। वह आपके वश की बात नहीं है। अपनी प्यास को मिटा लो; ईश्वर मिट गया। और आपकी प्यास को मिटाने का कोई उपाय नहीं। आप ही हो वह प्यास।

अगर प्यास आपसे कोई अलग चीज होती, तो हम उसे मिटा भी लेते। आप ही हो प्यास। आदमी परमात्मा की एक प्यास है। आदमी अलग होता, तो प्यास को हम काट देते। कोई सर्जरी कर लेते। और आदमी को अलग कर लेते। आदमी खुद ही प्यास है।

नीत्से ने कहा है, 'जिस दिन आदमी अपने से ऊपर जाना बंद कर देगा, उस दिन मर जायेगा।' यह अपने से ऊपर जाने की एक प्यास है आदमी के भीतर। जैसे बीज टूटता है, आकाश की तरफ उठना शुरू होता है। वह आकाश की तरफ उठने की आकाँक्षा ही वृक्ष बन जाती है। आदमी भी निरन्तर अपने से ऊपर उठकर आकाश की तरफ जाना चाहता है। वह आकाश की तरफ जाने की आकांक्षा ही ईश्वर है।

आप तब तक बीज ही रहेंगे, जब तक ईश्वर का वृक्ष आप में न लग जाय। जब तक आप ईश्वर न हो जायँ, तब तक कोई सन्तोष सम्भव नहीं है। ईश्वर से कम में कोई तृप्ति नहीं है। यही प्रमाण है कि आपके भीतर प्यास है। इसके अतिरिक्त और कोई प्रमाण नहीं है।

कोई गणित नहीं है ईश्वर का--कि सिद्ध किया जा सके कि दो और दो चार होते हैं--ऐसा कोई गणित हो। कोई तर्क नहीं है, जिससे साबित किया जा सके कि वह है। और अच्छा है कि कोई तर्क नहीं है। क्योंकि तर्कों से जो सिद्ध होता है, वह और कुछ भी हो, गणित की थ्योरम हो, विज्ञान का फार्मूला हो— धर्म की अनुभूति नहीं होगी। और अच्छा है कि तर्क से वह सिद्ध नहीं होता, क्योंकि तर्क से कोई चीज कितनी ही सिद्ध हो जाय, उससे प्यास नहीं बुझती। समझें।

प्यास तो पानी से बुझती है। लेकिन एच-टू-ओ का फार्मूला कागज पर लिखा रखा हो, बिलकुल गणित से, व्यवस्थित, उससे नहीं बुझती। एच-टू-ओ के फार्मूला को आप पी जाना घोल कर, प्यास नहीं बुझेगी। प्यास तो पानी से बुझेगी। क्योंकि प्यास एक अनुभव माँगती है; एक ठण्डक माँगती है, जो आपके प्राणों में उतर जाय। एक रस माँगती है, जो आपके भीतर जाय और आपको रूपान्तरित कर दे।

फार्मूला तो किताब पर होता है। ईश्वर का कोई फार्मूला नहीं है। और जितनी किताबें ईश्वर के लिये लिखी गयी हैं, वे केवल इशारे हैं; उनमें ईश्वर का कोई फार्मूला नहीं है।

सब शास्त्र हार गये हैं; अब तक उसे कह नहीं पाये हैं। कभी उसे कहा भी नहीं जा सकेगा। लेकिन शास्त्रों ने कोशिश की है। कोशिश इशारे की तरह है; मील के पत्थर की तरह है कि--और आगे--और आगे। हिम्मत देने के लिये है कि बढ़े जाओ। दो कदम और; ज्यादा दूर नहीं है; पास ही है।

हिम्मत से कोई बढ़ा चला जाय तो एक दिन उस अनुभव में उतर जाय। लेकिन प्रमाण मत खोजना आप। प्रमाण कोई है नहीं। और या फिर हर चीज प्रमाण है। फिर ऐसी कौन-सी चीज है, जो उसका प्रमाण नहीं है? फिर चारों तरफ आँखें डालें। आकाश में सूरज का उगना, और रात आकाश में तारों का भर जाना, और

एक बीज का फूट कर वृक्ष बनना, और एक झरने का सागर की तरफ बहना; और एक पक्षी के कण्ठ से गीत का निकलना; एक बच्चे की आँखों में झाँकें; और एक काई जमे हुए पत्थर को देखें; और सागर के किनारे की रेत को और सागर की लहरों को देखें--तो फिर हर जगह उसका प्रमाण है। फिर वही वही है।

एक दफा खयाल में आ जाय कि वह है, तो फिर सब जगह उसका प्रमाण है। और जब तक उसका खयाल न आये, तब तक उसका कोई प्रमाण नहीं है।

और कहाँ आयेगा उसका खयाल? पहले सागर में नहीं आयेगा। पहले फूलों में नहीं आयेगा। पहले आकाश के तारों में नहीं आयेगा। पहले तो अपने में ही लाना पड़ेगा उसका खयाल। क्योंकि मैं ही अपने निकटतम हूँ। अगर वहाँ भी उसकी भनक मुझे सुनाई नहीं पड़ती, तो पत्थर में कैसे सुनाई पड़ेगी!

अब लोग मजेदार हैं। लोग मूर्तियों के सामने सिर टेक रहे हैं। वे मूर्तियाँ उनके लिये भगवान् कैसे हो पायेंगी? वे कितना ही मानें कि भगवान् हैं, वे हो न पायेंगी। क्योंकि जिनको अपने भीतर के चैतन्य में भी भगवत्ता का कोई स्पर्श नहीं हुआ है, उनको पत्थर में छिपी भगवत्ता बहुत दूर हैं। वहाँ भी है; पर फासला बहुत ज्यादा है। और पत्थर की भाषा अलग है; आदमी की भाषा अच्छा है।

आदमी में भगवान् नहीं दिखता और पत्थर में दिखता है! आदमी--जिसको हम समझ सकते हैं, छू सकते हैं, जिसके भीतर उतर सकते हैं; जिसकी चेतना का संस्पर्श हो सकता है, उसमें दिखाई नहीं पड़ता और पत्थर में दिखाई पड़ जाता हैं! तो आप अपने को धोखा दे रहे होंगे। क्योंकि पत्थर तो बहुत दूर है; अभी आदमी में तो दिखाई पड़े, तो फिर किसी दिन पत्थर में भी दिखाई पड़ेगा। और फिर तो ऐसा हो जाता है कि ऐसी कोई चीज नहीं दिखाई पड़ती, जिसमें वह न हो। फिर तो सारा जगत् उसका प्रमाण है।

तो दो बातें: या तो उसका कोई प्रमाण नहीं है। अगर आप किताबों, शब्दों, तर्कों में सोचें--तो उसका कोई प्रमाण नहीं है। और या अगर अस्तित्व में सोचें, तो सभी कुछ उसका प्रमाण है। फिर ऐसी कोई चीज नहीं है, जहाँ उसका हस्ताक्षर न हो। रेत के दाने-दाने पर उसका हस्ताक्षर है। लेकिन वह है अस्तित्व की भाषा--एग्जिस्टेन्स की।

आपको अपने ही अस्तित्व का कोई पता नहीं है। आप ऐसे जीये चले जाते हैं कि पक्का करना मुश्किल है कि आप जी रहे हैं कि मर गये हैं; कि...।

मैंने सुना है कि अनेक लोगों को तो तभी पता चलता है कि वे जिन्दा थे, जब वे मर जाते हैं। मर कर उनको पता चलता है कि अरे! यह क्या हो गया? मर गये!

जिन्दगी का ही हमें कोई खयाल नहीं आ पाता। अस्तित्व भीतर बहा चला जाता है और हम चीजें बटोरने में, फर्नीचर इकट्ठा करने में, मकान बनाने में, क्षुद्र में व्यस्त होते हैं। वह क्षुद्र की व्यस्तता इतनी ज्यादा है कि भीतर की यह जो धारा बह रही है, इसका हमें अवसर ही नहीं मिलता, मौका ही नहीं मिलता है।

मेरे पास लोग आते हैं। एक बूढ़े मित्र एक कॉलेज के प्रिन्सिपल हैं, वे कुछ दिन पहले मेरे पास आये। कम से कम साठ के करीब उम्र हो गयी होगी। ये कहने लगे कि 'अब तो ऊब गया संसार से। अब तो मेरा मन परमात्मा की तरफ लगा दें।' तो मैंने उनसे कहा कि 'अगर सच में ही ऊब गये हों, तो एक छलाँग लें। अब सारा जीवन ध्यानपूर्ण करने में लग जायँ।' उन्होंने कहा, 'सारा जीवन! घन्टा, आधा घन्टा रोज दे सकता हूँ। क्योंकि अभी नौकरी जारी रखनी है। वैसे तो कोई जरूरत नहीं है अब नौकरी की। सब है। लेकिन वक्त-बेवक्त कब जरूरत पड़ जाये इसलिए। ऐसे तो सब लड़के कामकाज में लग गये हैं। लड़कियों की शादी हो गयी है। लेकिन प्रतिष्ठा है; बंगला है, कार है, तो उस सब को तो सम्हालना पड़ता है। तो ऐसी कुछ तरकीब बतायें कि आधा घण्टा रोज ध्यान कर लूँ और दो साल बाद... । पक्का आपको विश्वास दिलाता हूँ कि दो साल बाद पूरा जीवन ध्यान में लगा दूँगा।'

मैंने कहा, माना; मुझे तो आप विश्वास दिलाते हैं कि दो साल बाद। दो साल बाद आप बचेंगे--इसका कोई पक्का भरोसा है? और कहते है : संसार से मन ऊब गया, लेकिन बंगले की प्रतिष्ठा है, वह नहीं छोड़ी जाती! और कहते हैं कि अब संसार में कुछ लेना-देना नहीं रहा; लेकिन नौकरी को खींचे जा रहे हैं जबरदस्ती!

कठिनाई क्या है आदमी की? और दो साल बाद टाल रहे हैं--कि दो साल बाद। दो साल बाद भी पक्का मानिये कि अगर वे बचे रहे, तो वे और आगे सरका देंगे बात को। क्योंकि यह सरकाने वाला मन दो साल बाद भी तो साथ ही रहेगा। यह पोस्टपोन करता जाता है। यह तब तक हटाता जाता है, जब तक कि मौत आकर इसको काट ही नहीं डालती। और कह देती कि अब हटाने की कोई जगह न बची। समय समाप्त हो गया।

यह जो हमारी क्षुद्र में उलझी हुई चित्त की दशा है, इसके कारण उसका प्रमाण नहीं मिलता। क्षुद्र में जब चित्त लगा होगा, तो क्षुद्र का ही प्रमाण मिलता रहता है। क्षुद्र से थोड़ा हटें भीतर की तरफ और विराट् को थोड़ा मौका दें। उसकी आवाज आपको सुनायी पड़ सके, इसलिये थोड़ा चुप हों। अपनी आवाज थोड़ी बंद करें। क्योंकि उसकी आवाज बहुत धीमी है। और अपनी दौड़-धूप जरा रोकें और रुकें; ठहरें; क्योंकि ठहरेंगे, तो उसका पता चलेगा, जो भीतर सदा से ठहरा

हुआ है। जब तक आप दौड़ रहे हैं, तब तक भीतर जो ठहरा हुआ है, उससे सम्बन्ध नहीं हो पाता। थोड़े रुक जायँ। परमात्मा को खोजने के लिये कोई दौड़ने की जरूरत नहीं है।

संसार खोजना हो, तो दौड़ना पड़ता है। परमात्मा को खोजना हो तो रुकना पड़ता है। परमात्मा को खोजने के लिये कोई शोरगुल मचाने की जरूरत नहीं है। उसे खोजना हो तो चुप और मौन होने की जरूरत है। तो प्रमाण मिलना शुरू हो जायेगा।

और कोई दूसरा आपको प्रमाण नहीं दे सकता है। आप ही अपने को प्रमाण दे सकेंगे।

अपनी प्यास को समझें और अपने भीतर झाँकने की कला सीखें।

प्रमाण बहुत से हैं। उसी-उसी का प्रमाण है। लेकिन देखने वाली आँखें और सुनने वाले कान चाहिये। जीसस ने बार-बार कहा है : 'अगर आँखें हों, तो देख लो; अगर कान हो, तो सुन लो। अगर समझ हो, तो समझ लो।' जिनसे कहा है, वे आप ही जैसे कान वाले थे, आँख वाले थे, समझ वाले थे।

यह जीसस की बात ठीक नहीं मालूम पड़ती। यह आँख वाले लोगों से ऐसा कहना कि आँख हो तो देख लो; कान हो तो सुन लो; समझ हो तो समझ लो--अपमान-जनक मालूम पड़ता है। क्योंकि इतने अन्धे, इतने बहरे, इतने बुद्धिहीन कहाँ खोजे होंगे जीसस ने! क्योंकि जिन्दगी भर जीसस यही कहते हैं। वे किन्हीं और आँखों की बात कर रहे हैं। इन आँखों से आप परमात्मा का प्रमाण न पा सकेंगे। इन आँखों से पदार्थ का ही प्रमाण मिलेगा। इन कानों से आप उसकी आवाज न सुन सकेंगे। इन कानों से तो आपको जगत् का शोरगुल ही सुनायी पड़ेगा। इस बुद्धि से आप उसको न समझ पायेंगे। इस बुद्धि से तो आप हिसाब-किताब की दुनिया में ही हैं। रुपये पैसे की दुनिया में ही हैं। बैंक बैलन्स को बढ़ा पायेंगे।

और भी एक आँख है। उसी आँख को कृष्ण श्रद्धा कह रहे हैं। उसी आँख को बुद्ध ध्यान कहते हैं। उसी आँख को मीरा कीर्तन कहती है, भजन कहती है, प्रार्थना कहती है।

एक और कान है--मौन का, चुप हो जाने का। जब बाहर की आवाजें सब छोड़ दी जाती हैं, तब भीतर की सतत् ध्वनि सुनायी पड़ने लगती है।

नाद भीतर बज रहा है, पर आप खाली नहीं हैं। आप उन्मुख नहीं हैं। आप उस नाद की तरफ बेमुख हैं, पीठ किये खड़े हैं। वहाँ सतत् धीमी-धीमी चोट पड़ रही है। वहाँ कोई निरन्तर तारों को छेड़ रहा है। और आप कहते हैं : प्रमाण कहाँ है। हमारी हालत ऐसी है...।

मैंने सुना है कि एक संगीतज्ञ अपनी पत्नी के साथ एक चर्च के पास से गुजरता था। और साँझ को चर्च की घंटियाँ बज रही थीं। बड़ी प्यारी और मधुर थीं। और साँझ के सन्नाटे में रास्ता सुनसान हो गया था और चर्च के वृक्षों के पक्षी भी आकर शांति से सो गये थे, साँझ के सन्नाटे में उन घंटियों का बजना उस संगीत के हृदय में लहरें लेने लगा। उसने अपनी पत्नी से कहा, धीरे से कहा; संगीतज्ञ था, जोर से बोलने में उसे लगा होगा--हिंसा होगी। इतनी मधुर आवाज में बाधा पड़ेगी। उसने धीरे से कहा, 'सुनती हो; कितनी प्यारी आवाज है! घंटियाँ कितनी मधुर हैं!'

उसकी पत्नी ने क्या कहा पता है? उसने कहा, 'ये चर्च के मूर्ख लोग घंटा बजाना बन्द करें, तो तुम्हारी बात सुन सकूँ--कि तुम क्या कह रहे हो।' संगीतज्ञ ने दुबारा कहा नहीं होगा उसे; कुछ कहने का उपाय नहीं रहा।

बाहर घंटा बज रही है, उसमें शोरगुल भी सुनायी पड़ सकता है--और संगीत भी। अगर संगीत को पकड़ने वाला हृदय है, तो संगीत सुनाई पड़ सकता है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक शास्त्रीय संगीतज्ञ को सुनने चला गया। थोड़ी ही देर में मुल्ला की पत्नी ने देखा कि मुल्ला बहुत बेचैन हो रहा है। करवट बदल रहा है अपनी कुर्सी पर। उसकी पत्नी ने कहा, 'तुम इतने परेशान क्यों हो रहे हो?' उसके माथे पर पसीना भी बह रहा है। उसने कहा कि मैं 'मैं इसलिये परेशान हो रहा हूँ, क्योंकि यह आदमी जैसी आवाजें कर रहा है, ऐसे ही अपना बकरा भी आवाजें करके मर गया था। इसकी हालत खराब है। यह सन्निपात में मालूम होता है। अब यह जल्दी ही मरने वाला है। अपन यहाँ से जल्दी ही निकल भागें। कहीं हम भी न फँसे--इस उपद्रव में कि यह कैसे मर गया। और यह मरेगा पक्का। यही हालत अपने बकरे की हो गई थी। जब वह इसी तरह की आवाजें कर कर के मरा था।'

संगीत की समझ कान से नहीं होती। कान से तो सुनाई पड़ रहा है उसे भी। संगीत की समझ भीतर एक हारमनी, एक समस्वरता पैदा हो, तो पकड़ में आती है।

ईश्वर तो विराटतम समस्वरता है; वह तो महानतम संगीत है। उसके योग्य हृदय बनाना होगा, तो उसका प्रमाण मिलेगा। उसका प्रमाण खोज कर आप सोचते हैं कि हम अपने को बदलेंगे, तो आपको जन्मों-जन्मों तक उसकी कोई खबर न मिलेगी। आप अपने को बदलें, तो उसका प्रमाण आपको आज भी मिल सकता है। जन्मों तक रुकने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन हम उलटे हैं। हम कहते हैं: पहले प्रमाण चाहिये, तभी तो हम उसको खोजने निकलेंगे! और उसकी खोज ही

शुरू होती है, जब आप अपने हृदय को उसके प्रमाण को पाने योग्य बनाते हैं। यह अड़चन है।

अगर आपकी तैयारी हो--कि बिना इसकी फिक्र किये कि वह है या नहीं, हम अपने हृदय को शांत करने को तैयार हैं। और हर्ज क्या हो जायेगा, अगर वह न भी हुआ और आपका हृदय शान्त हो गया, तो क्या हर्ज हो जाएगा? फायदा ही होगा। और अगर वह न भी हुआ और अगर आपका हृदय प्रेम से भर गया; तो नुकसान क्या है? फायदा ही होगा। और अगर वह न भी हुआ और आप मौन हो गये और ध्यान में उतर गये, तो क्या खो देंगे आप? कुछ पा ही लेंगे।

लेकिन जो भी उस ध्यान में गये हैं, जो भी उस मौन में गये हैं, उन्होंने तत्क्षण कहा--कि मिल गया प्रमाण उसका। वह है। लेकिन वे भी हमें प्रमाण नहीं दिला सकते। उनको ही प्रमाण मिला है।

धर्म की सभी अभिव्यक्तियाँ निजी और वैयक्तिक हैं। और धर्म के सभी गवाह निजी और वैयक्तिक हैं। वे दूसरे के लिये गवाही नहीं दे सकते हैं।

मैं अपने लिये गवाही दे सकता सकता हूँ कि मिल गया। पर मेरी गवाही आपके लिये क्या मतलब की होगी? आप फिर भी कहेंगे--'प्रमाण?' तो फिर मैं आप से भी कहूँगा: स्वाद लेना पड़ेगा, चखना पड़ेगा।

तो तैयार हों--चखने के लिये, स्वाद लेने के लिये। लेकिन अगर आप कहें कि 'जब तक हम जानें न कि वह है, तब तक हम चखें कैसे? स्वाद तो हम पीछे लेंगे, पहले पक्का प्रमाण हो जाये कि वह है।' तो फिर आपको रुकना पड़ेगा। फिर किसी के वश के बाहर हैं आप। फिर आप इम्पासिबल--असम्भव हैं। फिर आपके साथ कुछ किया नहीं जा सकता।

तो रुकें। धीरे-धीरे थक जायेंगे अपने से किसी दिन, तो शायद आप राजी हो जायँ कि ठीक; चखेंगे पहले--प्रमाण बाद में खोज लेंगे। और जो चखने को राजी हो जाता है, उसे प्रमाण मिल जाता है।

● आखिरी प्रश्न। आपने कहा है कि दो विपरीत मार्ग हैं: ध्यान और प्रेम। बुद्धि या भाव। तो बताये कि ध्यान साधना और प्रेम साधना में क्या फर्क है? क्या ध्यानी व्यक्ति समाधि के पहले प्रेमपूर्ण नहीं होता?

ध्यान और प्रार्थना में तो बहुत फर्क है; भाषाकोश में चाहे फर्क न भी मिले। जो लोग प्रयोग करते हैं, उनके लिये बहुत फर्क है। दोनों की प्रक्रियाएँ विपरीत हैं। परिणाम जब आता है, तो फर्क नहीं रह जाता। लेकिन मार्ग पर बहुत फर्क हैं।

ऐसा समझें कि आप एक बड़ा वर्तुल बनायें, एक सर्कल बनायें। और वर्तुल का एक केन्द्र हो और वर्तुल की परिधि से आप लकीरें खींचें--केन्द्र की तरफ।

तो परिधि से जब आप दो लकीरें केन्द्र की तरफ खींचेंगे, तो दोनों में फासला होगा। पर जैसे-जैसे वे केन्द्र के करीब पहुँचने लगेंगी, फासला कम होता जायेगा और जब वे बिलकुल केन्द्र पर पहुँचेंगी, तो फासला समाप्त हो जायेगा। एक ही बिन्दु पर दोनों मिल जायेंगी।

परिधि पर फासला होगा; केद्र पर फासला समाप्त हो जायेगा।

सभी मार्ग संसार की परिधि से परमात्मा के केन्द्र की तरफ जाते हैं। मार्गों में बड़ा फर्क है। विपरीतता भी हो सकती है। लेकिन केन्द्र पर पहुँच कर सारी विपरीतता खो जाती है, और वे एक हो जाते हैं।

प्रेम के मार्ग का अर्थ है: दूसरा महत्त्वपूर्ण है--मुझ से। पहली बात। मुझे अपने को समाप्त करना है और दूसरे को बढ़ाना है। यह दूसरा कोई भी हो। वह क्राइस्ट हों, कृष्ण हों--कोई भी प्रतीक हो। गुरु हो, कोई धारणा हो--कोई भी भाव हो। दूसरा महत्त्वपूर्ण है; मैं महत्त्वपूर्ण नहीं हूँ। मुझे अपने को काटना है और दूसरे को बड़ा करना है। और एक ऐसी जगह आ जाना है, जहाँ मैं बिलकुल शून्य हो जाऊँ और वह दूसरा ही सिर्फ शेष रह जाय। मुझे मेरी कोई खबर न रहे। मैं मिट जाऊँ। मैं बचूँ ना। मैं ऐसा पुछ जाऊँ, जैसे कहीं था ही नहीं। जैसे पानी में खींची लकीर मिट जाती है, ऐसे ही मैं मिट जाऊँ और दूसरा रह जाय। और दूसरा ही रह जाय। बस, दूसरे का ही मुझे पता हो। दूसरे की ही प्रतीति मुझे हो कि वह है--और मैं न रहूँ। तू बचे और मैं खो जाय। यह तो प्रेम की प्रक्रिया है। प्रार्थना का यही रूप है।

ध्यान की प्रक्रिया बिलकुल उलटी है। ध्यान की प्रक्रिया है कि सारा जगत् खो जाय और मैं ही बचूँ। सब खो जाय--मेरे चित्त से। जिन्हें मैं प्रेम करता हूँ, वे भूल जायें। जिन्हें मैंने चाहा है--वे भूल जायँ। ईश्वर भी मेरे खयाल में न रह जाय। दूसरा न बचे। दूसरे का कोई बोध ही न बचे। दि अदर--वह जो दूसरा है, उसको मैं पोंछ डालूँ, बिलकुल समाप्त कर डालूँ। वह रहे ही न। बस, एक मैं ही रह जाऊँ--अकेला। कोई विचार न हो; कोई भाव न हो; कोई विषय न हो। कुछ भी न बचे। खाली अकेला मैं बचूँ; सारा संसार खो जाय। यह ध्यान की प्रक्रिया है।

तू बिलकुल मिट जाय और शुद्ध मैं बचे--यह ध्यान है। मैं बिलकुल मिट जाऊँ, सिर्फ तू ही तू बचे--यह प्रेम है।

ये उलटे चलते हैं। इसलिये रास्ता बिलकुल अलग-अलग है। इसलिए ध्यानी मजाक उड़ायेगा प्रेमी की--कि क्या पागलपन में क्या पड़ा है! दूसरे को छोड़, क्योंकि दूसरा बंधन है।

और प्रेमी मजाक उड़ायेगा ध्यानी की--कि क्या कर रहे हो! खुद को बचा रहे हो? यह खुद का बचाना ही तो उपद्रव है। खुद को मिटाना है। यह 'मैं' ही तो रोग है। और तुम इसी को बचा रहे हो! इसको समर्पित कर दो। तू के चरणों में डाल दो।

तो प्रेमी और ध्यानी मार्ग पर जब होते हैं, तब एक दूसरे को गलत ही समझेंगे --क्योंकि 'उलटे जा रहे हो! इससे तो और भटक जाओगे।' लेकिन जब दोनों पहुँच जाते हैं केन्द्र पर, तो बड़ी अद्‌भुत घटना घटती है।

वह घटना यह है कि चाहे मैं तू को मिटा कर चलूँ और मैं को बचाऊँ--ध्यान का मार्ग; या मैं को मिटाऊँ और तू को बचाऊँ--प्रार्थना का मार्ग; जिस क्षण मैं मिट जाता है, उस क्षण तू नहीं बच सकता। और जिस क्षण तू मिट जाता है, उस क्षण मैं नहीं बच सकता। क्योंकि दोनों साथ-साथ बचते हैं। इसे थोड़ा समझ लें। यह आखिरी बिन्दु की बात है।

जब मैं अपने 'मैं' को मिटाता चला जाता हूँ और सिर्फ 'तू' ही बचता है, तो ध्यान रहे: मुझे तू का पता तभी तक होगा, जब तक मुझे सूक्ष्म में मेरा भी पता चलता है। नहीं तो तू का पता नहीं होगा। तू कहियेगा उसे कैसे? किसके खिलाफ? किसके विरोध में? अगर सफेद लकीर दिखाई पड़ती है, तो काली पृष्ठ-भूमि चाहिये।

अगर मैं बिलकुल ही मिट गया हूँ, तो तू कैसे बचेगा? थोड़ा मुझे बचना चाहिए --थोड़ा; तो मुझे तू का पता चलेगा। मैं होना चाहिए। मैं को ही तो पता चलेगा कि तू है। तो मैं को भुला सकता हूँ, लेकिन मिट नहीं सकता। अगर मैं बिलकुल मिट जाऊँगा, जिस क्षण मेरा मैं बिलकुल तिरोहित हो जायेगा, उसी क्षण तू भी खो जायेगा। 'एक' बचेगा--जो न मैं है और न तू।

और ठीक ऐसा ही घटेगा ध्यान के मार्ग पर। जब मैं--बिलकुल अकेला मैं बचूँगा--तब भी मुझे कैसे पता चलेगा कि मैं हूँ? मेरे होने का बोध भी, दूसरे के बोध के कारण होता है। दूसरा चाहिए परिधि पर, तभी मुझे पता लगा है कि मैं हूँ। और जब दूसरा बिलकुल खो गया, पूरा संसार खो गया, तो मैं भी नहीं बच सकता। मैं भी उसी संसार के साथ खो जाऊँगा।

जैसे ही तू पूरा मिट जाता है, मैं भी तिरोहित हो जाता है। और जो बचता है--वह न मैं है, न तू है।

ये मार्ग विपरीत हैं। इन मार्गों से जहाँ पहुँचा जाता है, वह एक ही है।

और अब आप समझ सकते हैं कि दोनों तरफ से पहुँचा जा सकता है। दो में से एक को मिटा दो, दूसरा अपने आप मिट जाता है। अब आप किसको चुनते हैं

मिटाना, यह व्यक्ति की निजी रुझान पर है।

दो में से एक को मिटा देने की कला है। दूसरा मिटेगा, क्योंकि दूसरा उस एक का ही अनिवार्य हिस्सा था। अगर हम दुनिया से प्रकाश को मिटा दें, तो अँधेरा मिट जायेगा। लगेगा मुश्किल है। क्योंकि घर में आप दीया बुझा देते हैं, अँधेरा तो नहीं मिटता। अँधेरा और प्रगट हो जाता है। लेकिन दुनिया से नहीं मिटता है प्रकाश। अस्तित्व से अगर प्रकाश मिट जाय, तो अँधेरा मिट जायेगा। अगर अँधेरा मिट जाय, तो प्रकाश मिट जायेगा।

अगर दुनिया से हम मृत्यु को मिटा दें, तो जीवन उसी दिन मिट जायेगा। अभी हमको उलटा लगता है। अभी तो हमको लगता है कि मृत्यु जीवन को मिटाती है। आपको पता नहीं है फिर। वे एक ही चीज के दो हिस्से हैं। अगर मृत्यु न हो, तो जीवन नहीं हो सकता। और अगर जीवन न हो, तो मृत्यु होगी ही कैसे? एक चीज को मिटा दें, दूसरी तत्क्षण मिट जायेगी। बहुत मजे की बात है।

अगर हम दुनिया से दुःख को मिटा दें, तो सुख मिट जायेंगे। अगर हम दुनिया से शत्रु मिटा दें, तो मित्र मिट जायेंगे। अगर हम दुनिया से घृणा मिटा दें, तो प्रेम मिट जायेगा। आप दूसरे को नहीं बचा सकते हैं; वह अनिवार्य जोड़ा है। वे एक साथ ही होते हैं।

ध्यान और प्रार्थना इसी का प्रयोग है कि आप एक को मिटा दें, दूसरा अपने आप मिट जायेगा। उसकी फिक्र न करें। आप एक को मिटाने में लगें। फिर आपका रुझान है--जो आपको करना हो।

अपने को मिटाने की तैयारी हो, तो प्रार्थना में चल पड़ें। डर लगता हो--अपने को मिटाने में, तो फिर समस्त को मिटा दें--जो भी पर है। भाव से, विचार से--सब को हटा दें। फिर अकेले रह जायँ। दोनों से ही पहुँच जायेंगे वहाँ--जहाँ दोनों नहीं बचते हैं।

अब हम सूत्र को लें।

'हे अर्जुन, उन मेरे में चित्त को लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्यु रूप संसार समुद्र से उद्धार करने वाला होता हूँ : इसलिये हे अर्जुन, तू मेरे में मन को लगा, मेरे में ही बुद्धि को लगा। इसके उपरांत तू मेरे में ही निवास करेगा अर्थात् मेरे को ही प्राप्त होगा। इसमें कुछ भी संशय नहीं है।'

'मुझ में चित्त लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्यु रूपी समुद्र से उद्धार करने वाला होता हूँ ..।'

जैसा मैंने कहा : प्रार्थना के मार्ग पर स्वयं को मिटाना शुरू करना होता है। तो वह जो तू है, प्रार्थना के साधक के लिये परमात्मा जो है, भगवान् जो है, जो

भी उसकी धारणा है परम् सत्ता की, वह अपने को गलाता है, मिटाता है, उसके चरणों में समर्पित करता है। और जैसे-जैसे वह अपने को गलाता है, मिटाता है, वैसे-वैसे परमात्मा शक्तिशाली होता जाता है।

परमात्मा की शक्ति का अर्थ ही यह है कि मैं अब कोई बाधा नहीं डाल रहा हूँ। मैं अपने को मिटा रहा हूँ। अब मैं कोई अड़चन खड़ी नहीं कर रहा हूँ। मैं अपने को हटा रहा हूँ। मैं रास्ते से मिट रहा हूँ। और मैं उसे कह रहा हूँ कि अब तू जो भी करना चाहे--कर।

ऐसा समझें कि आप द्वार-दरवाजे बन्द करके अपने घर में बैठे हैं। बाहर सूरज निकला है। सारा जगत् आलोक से भरा है। और आप अपने द्वार-दरवाजे बन्द करके घर के अन्दर अँधेरे में बैठे हैं!

भक्त कहता है कि प्रकाश को तो भीतर लाना मुश्किल है। क्योंकि मेरी सामर्थ्य क्या? उस सूरज के प्रकाश को मैं भीतर लाऊँगा भी कैसे? कोई पोटलियाँ बाँध कर उसे लाया भी नहीं जा सकता है। और अगर आप पोटलियाँ बाँध कर प्रकाश को भीतर लायेंगे तो पोटलियाँ भीतर आ जायेंगी, प्रकाश बाहर ही रह जायेगा।

प्रकाश को लाने का, भक्त कहता है एक ही उपाय है कि मैं अपने द्वार-दरवाजे खोल दूँ। मैं कोई बाधा न डालूँ। मैं किसी तरह का अवरोध खड़ा न करूँ। तो प्रकाश तो अपने से आ जायेगा। प्रकाश तो आ रहा है। मेरे ही कारण रुका है।

भक्त की साधना का भाव यह है कि परमात्मा तो प्रतिपल उपलब्ध है। मेरे ही कारण रुका है। उसे खोजने नहीं जाना है। मैं ही उसे जगह-जगह से दीवालें बना कर रोके हूँ--कि वह भीतर नहीं आ पाता। मैं ही इतना होशियार, इतना कुशल, इतना चालाक हूँ कि मैं उसको भी सम्हाल-सम्हाल कर भीतर आने देता हूँ। जहाँ तक तो मैं उसे भीतर प्रवेश करने नहीं देता। चारों तरफ मैंने सुरक्षा की दीवाल बना रखी है। भक्त कहता है : इस दीवाल को गिरा देना है।

कृष्ण कह रहे हैं कि जैसे ही कोई अपनी चारों तरफ की अस्मिता की, अहंकार की दीवाल कोगिरा देता है, मैं तत्क्षण उसका उद्धार करने में लग जाता हूँ। क्योंकि प्रकाश भीतर प्रवेश करने लगता है। और उस प्रकाश की किरणें आकर आपको रूपान्तरित करने लगती हैं। और जब आपको मिटने में मजा आ जाता है, तो फिर मिटने में दिक्कत नहीं रहती।

पहले ही चरण की कठिनाई है। हमें लगता है कि अगर मिट गये तो ...! कहीं मिट न जायँ। तो डरे हुए हैं। एक दफा आपको मिटने का जरा-सा भी मजा आ जाय, जरा-सा भी स्वाद आ जाय तो आप कहेंगे कि अब...! अब बचना नहीं--मिटना है।

रामानुज के पास एक आदमी आया। और उस आदमी ने कहा कि 'तुम जैसे आनंद में डूब गये हो, मुझे भी डुबा दो। मुझे परमात्मा की बड़ी तलाश है। मुझे भी सिखाओ यह परमात्मा का प्रेम।' तो रामानुज ने कहा कि 'तूने कभी किसी को प्रेम किया है?' उस आदमी ने कहा कि 'मैं हमेशा परमात्मा की खोज करता रहा और प्रेम वगैरह से मैं हमेशा दूर रहा। इस झंझट में मैं पड़ा नहीं।'

रामानुज ने कहा कि 'फिर भी तू सोच।' थोड़ा बहुत--किसी को भी कभी प्रेम किया हो। किसी मित्र को, किसी स्त्री को, किसी बच्चे को, किसी पशु को, पक्षी को--किसी को भी, कभी थोड़ा प्रेम किया हो।' उसने कहा कि 'मैं संसार की झंझट में नहीं पड़ा: मैं तो अपने को रोके हुए हूँ। परमात्मा को प्रेम करना है। आप मुझे रास्ता बताओ। ये बातें आप क्यों पूछ रहे हो!'

रामानुज ने तीसरी बार पूछा कि 'मैं तुझसे फिर पूछता हूँ: थोड़ा खोज; अपने अतीत में कभी कोई थोड़ी-सी झलक भी प्रेभ की तुझे मिली है?' उस आदमी ने कहा कि मैं आया हूँ परमात्मा को खोजने और तुम कहाँ की बातों में मुझे लगा रहे हो! सीधा ही रास्ता बता दो।' तो रामानुज ने कहा कि 'फिर मुश्किल है। क्योंकि अगर तूने थोड़ा-सा भी मिटना जाना होता--किसी के भी प्रेम में, तो तुझे रस होता। थोड़ा-सा ही मिटना जाना होता--किसी के भी प्रेम में...।'

छोटा-सा भी प्रेम करो, तो थोड़ा तो मिटना ही पड़ता है। चाहे एक स्त्री से प्रेम हो, चाहे एक पुरुष से प्रेम हो। एक छोटे-से बच्चे से भी प्रेम करो, तो थोड़ा तो मिटना ही होता है, अपने को थोड़ा तो खोना ही होता है, तभी तो वह दूसरा आप में प्रवेश कर पाता है। नहीं तो प्रवेश ही नहीं कर पाता।

तो रामानुज ने कहा कि 'फिर मेरे वश के बाहर है तू। तेरी बीमारी जरा कठिन है। अगर तूने किसी को प्रेम किया होता, तो मैं तुझे यह बड़े प्रेम का मार्ग भी बता देता। क्योंकि थोड़ा तुझे स्वाद होता, तो तू समझ जाता कि मिटने का मतलब क्या है। तू कहता है कभी तूने किया ही नहीं, तो तुझे मिटने का कोई अनुभव नहीं है।'

संसार का प्रेम ही परमात्मा के रास्ते पर सबक है। इसलिये संसार के प्रेम से भी घबड़ाना मत। उस प्रेम के भी अनुभव को ले लेना।

थोड़ा ही सही, क्षण भर को ही सही, क्षणभंगुर ही सही, थोड़ा-सा भी मिटने का अनुभव इतनी तो खबर दे जायेगा कि मिटने में दुःख नहीं है. मिटने में सुख है। इतनी तो प्रतीति हो जायेगी कि मिटने में एक मजा है। क्षण भर सही; वह स्वाद क्षण भर रहा हो। एक बून्द ही मिली हो उसकी, लेकिन इतना तो समझ में आ जायेगा कि मिटने में घबड़ाने की जरूरत नहीं है। मिटने में रस है, सुख है।

मिटने में मजा है, एक मस्ती है। तो फिर हम परमात्मा की तरफ मिटने की बात भी सीख सकते हैं।

परमात्मा की तरफ तो पूरा मिटना होगा--रत्ती-रत्ती। कुछ भी बचाना नहीं होगा, लेकिन जैसे ही हम मिटना शुरू हो जाते हैं कि परमात्मा प्रवेश करने लगता है।

कृष्ण का यह कहना कि 'उन मेरे में चित्त को लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्यु रूप संसार समुद्र से उद्धार करने वाला हूँ।' इसमें दूसरा शब्द है--'मृत्यु रूप संसार।' यह सोचने जैसा है।

इस जगत् में प्रेम के अतिरिक्त मृत्यु के बाहर का कोई अनुभव नहीं है। जिसने प्रेम को नहीं जाना, उसने सिर्फ मृत्यु को ही जाना है।

इसलिए एक बड़ी मजेदार घटना घटती है कि प्रेमी मरने को तैयार होता है। लेकिन जिसने प्रेम नहीं किया, वह मरने से बहुत डरता है।

प्रेमी मरने को हमेशा तैयार है। प्रेमी मजे से मर सकता है। प्रेमी को मरने में जरा भी भय नहीं है। तो अगर मजनू को मरना हो, तो मर सकता है। फरिहाद को मरना हो, तो मर सकता है। कोई अड़चन नहीं है। क्या बात है? आखिर प्रेमी मरने से क्यों नहीं डरता!

जरूर प्रेमी ने कुछ जान लिया है, जो मृत्यु के आगे जाता है और मृत्यु जिसे नहीं मिटा पाती। इसलिए जिसके जीवन में प्रेम की अनुभूति हुई, वह मरने से नहीं डरेगा।

मरने से तो वे ही डरते हैं, जिन्होंने जाना ही नहीं कि मृत्यु के आगे कुछ और भी है।

कृष्ण कहते हैं: जो मुझ में पूरी तरह मिटने को तैयार है, मिटने को अर्थात् मुझ में पूरी तरह मरने को तैयार है, उसे मैं मृत्यु रूपी संसार से ऊपर उठा लेता हूँ। वैसे तो जैसे ही कोई मिटने को तैयार होता है--प्रेम में--वैसे ही मृत्यु के पार उठ जाता है।

प्रेम मृत्यु पर विजय है। आपका क्षुद्र प्रेम भी मृत्यु पर छोटी-सी विजय है। और अगर आपके जीवन में कोई भी प्रेम नहीं है, तो आप सिर्फ मरे हुए जी रहे हो। आपको जीवन का कोई अनुभव नहीं है। इसलिए जीवन इतना तड़पता है--प्रेम को पाने के लिये। जीवन की यह तड़प, मृत्यु के ऊपर कोई अनुभव पाने की आकांक्षा है। यह तड़प इतनी जोर से है--कि प्रेम--कहीं से प्रेम। किसी को मैं प्रेम कर सकूँ और कोई मुझे प्रेम कर सके। यह असल में किसी भाँति मैं जान सकूँ--एक क्षण ही सही--जो मृत्यु के बाहर है, अतीत है, पार है, अतिक्रमण कर गया हो मृत्यु का। तो प्रभु का प्रेम तो पूरा मिटा डालता है।

प्रेमियों का प्रेम पूरा नहीं मिटाता है। क्षणभर को मिटाता है। कभी-कभी मिटाता है। क्षण भर बाद हम वापस अपनी जगह खड़े हो जाते है। द्वार-दरवाजे मिटते नहीं। जैसे हवा का तेज झोंका आता है, जरा से खुलते हैं और फिर बंद हो जाते हैं। जरा-सी झलक--बाहर की रोशनी की--और द्वार फिर बंद हो जाते हैं। ऐसा साधारण प्रेम है।

लेकिन परमात्मा का प्रेम तो सारे द्वार-दरवाजे गिरा देने का है। सब जला कर राख कर देने का है। अपने को उसमें ही खत्म कर देने का है। फिर जो अनुभूति होती है, वह अमृत की है।

इसलिये कृष्ण कहते हैं : मृत्यु के पार उद्धार करने वाला हूँ। इसलिये हे अर्जुन, तू मेरे में मन को लगा; मेरे में ही बुद्धि को लगा। इसके उपरान्त तू मुझ में ही निवास करेगा। मुझको ही प्राप्त होगा--इस में कुछ भी संशय नहीं है।

'मुझ में मन को लगा और मुझ में ही बुद्धि को लगा।' दो बातें कही हैं। मुझ में मन को लगा, मुझ में ही बुद्धि को लगा। लेकिन पहले कहा कि मुझ में मन को लगा।

हम सब कोशिश करते हैं : पहले बुद्धि को लगाने की। प्रमाण चाहिये, तर्क चाहिये, तब हम भाव करेंगे। यह नहीं हो सकता है। यह उलटा है। पहले भाव। तो कृष्ण कहते हैं : 'मुझ में मन को लगा। बुद्धि को भी लगा।'

एक दफा मन लग जाय, तो फिर बुद्धि भी लग जाती है। तर्क तो हमेशा भाव का अनुसरण करता है। क्योंकि भाव गहरा है और तर्क उथला है। बच्चा भाव के साथ पैदा होता है; तर्क तो बाद में सीखता है। तर्क तो दूसरों से सीखता है; भाव तो वह अपना लाता है। बुद्धि तो उधार है; भाव तो अपना है—निजी है। यह निजी भाव अगर एक दफा चल पड़े, तो बुद्धि इसके पीछे चलती है। इसलिये देखें, हमारी तर्कों में बड़ा फर्क होता है, अगर हमारे भाव में फर्क हो। अगर हमारा भाव अलग हो, तो वही स्थिति हमें दूसरा तर्क सुझाती है।

सुना है मैंने कि एक सूफी फकीर शराब पीकर और प्रार्थना कर रहा था। उसके गुरु को खबर दी गयी। जिन्होंने खबर दी, वे शिकायत लाये थे, और उन्होंने कहा कि 'निकाल बाहर करो अपने शिष्य को। यह शराब पीकर प्रार्थना कर रहा है! और अगर लोग देख लेंगे कि प्रार्थना करने वाले लोग शराब पीते हैं, तब कैसी बदनामी न होगी!'

गुरु सुनकर नाचने लगा और उसने कहा कि 'धन्यवाद तेरा, कि मेरे शिष्य शराब भी पी लें तो भी प्रार्थना करना नहीं भूलते हैं! और गजब हो जायेगा, अगर दुनिया यह जान लेगी कि अब शराबी भी प्रार्थना करने लगे हैं!'

स्थिति एक सी है। तर्क अलग हो गये। वे खबर लाये थे कि अलग करो इसको आश्रम से। और गुरु ने कहा कि मैं जाऊँगा और स्वागत से उसे वापस लाऊँगा कि तूने तो गजब कर दिया। हम तो बिना शराब पीये भी कभी-कभी प्रार्थना करना भूल जाते हैं। तू तो हद कर दिया कि शराब पीये है, तो भी प्रार्थना करने गया है! तेरी यादाशत, तेरा स्मरण शराब भी नहीं मिटा पाती!'

स्थिति एक है, भाव अलग हैं, तो तर्क बदल जाते हैं। तर्क भाव के पीछे चलें, तो ही कोई परमात्मा की खोज में जा सकता है। अगर तर्क के पीछे आप भावों को घसीटेंगे, तो आपने बैलगाड़ी के पीछे बैल बाँध रखे हैं। फिर आप कितनी ही कोशिश करें, बैलगाड़ी कहीं जा नहीं सकती। और अगर जायेगी भी, तो किसी गड्ढे में जायेगी। सीधा करें व्यवस्था को।

भाव से बहें, क्योंकि भाव स्वभाव है, निसर्ग है। बुद्धि को पीछे चलने दें। बुद्धि हिसाबी-किताबी है। अच्छा है; उसकी जरूरत है। इसलिये कृष्ण कहते हैं : मुझ में मन को लगा। पहले अपने भाव को मुझ से जोड़ दे। फिर कोई हरजा नहीं तेरी बुद्धि का।

इसलिये ऐसा मत सोचना कि आस्तिक जो हैं, वे कोई तर्कहीन हैं। अतर्क्य हैं--तर्कहीन नहीं हैं। आस्तिक जो हैं, वे भी तर्क करते हैं, और खूब गहरा तर्क करते हैं। लेकिन भाव के ऊपर तर्क को नहीं रखते हैं। कोई तार्किकों की कमी नहीं है आस्तिकों के पास। लेकिन भाव पहले है। और जो उन्होंने भाव से जाना है उसे ही वे तर्क की भाषा में कहते हैं।

अब कोई शंकर से बड़ा तार्किक खोजना आसान थोड़े ही है। लेकिन शंकर का तर्क है--भाव से बँधा। भाव पहले घट गया और अब तर्क केवल उस भाव को प्रस्थापित करने के लिये, उस भाव को समझाने के लिये, उस भाव को पुष्ट करने के लिये है।

जब कोई आदमी तर्क को पहले रखता है, तो वह अपने को पहले रखता है। जब कोई आदमी भाव को पहले रखता है, तो वह निसर्ग को पहले रखता है। निसर्ग आप से बड़ा है, विराट है।

बड़े को पीछे मत बाँधिये—छोटे के। छोटे को बड़े के पीछे चलने दीजिये।

तो कृष्ण कहते हैं : मुझ में मन को लगा; मुझ में बुद्धि को लगा। इसके उपरान्त तू मुझ में ही निवास करेगा।' तू फिर मेरे हृदय में आ जाएगा। तो ऐसा मत सोचना कि भगवान् ही भक्त के हृदय तक आता है। जिस दिन भक्त राजी हो जाता है कि भगवान् उसके हृदय में आ जायँ, उस दिन भक्त भी भगवान् के हृदय में पहुँच जाता है।

तो ऐसा ही नहीं है कि भक्त ही याद कर कर के भगवान् को अपने हृदय में रखता है। शुरुआत भक्त को ऐसे ही करनी पड़ती है। जिस दिन यह घटना घट जाती है... । कबीर ने कहा है कि बड़ी उलटी हालत हो गयी है। 'हरि लागे पाछे फिरैं, कहत कबीर कबीर।' पहले हम चिल्लाते फिरते थे कि हे प्रभु, कहाँ हो! और अब हालत ऐसी हो गयी है कि हम कहीं भी भागें--हरि लागे पाछे फिरैं, कहत कबीर कबीर।' अब हरि पीछे-पीछे भागते हैं और कहते हैं : कबीर! कबीर! --कहाँ जाते हो कबीर?'

भक्त शुरू करता है भगवान् को अपने भीतर लेने से और आखिर में पाता है कि भगवान् ने उसे अपने भीतर ले लिया है।

कृष्ण कहते हैं : 'उसके उपरान्त तू मुझमें ही निवास करेगा, मुझको ही प्राप्त होगा। इस में कुछ भी संशय नहीं है।' अगर भाव से शुरू करें, तो कुछ भी संशय नहीं है। अगर बुद्धि से शुरू करें, तो संशय ही संशय हैं।

जरा-सा फर्क कि आप बुद्धि को पहले रख लें, फिर संशय ही संशय है। भाव को पहले रख लें, फिर कोई संशय नहीं है।

अपने भीतर खोज करनी चाहिये कि मैंने किस चीज को प्राथमिकता दे रखी है। हमारा अहंकार अपने को ही प्राथमिकता दिये हुए है। और हम को तो ऐसा लगता है कि हमारे ही ऊपर तो सारा--सब कुछ टिका है। अगर हम ही जरा डाँवाडोल हो गये--अपने अहंकार से, तो सारा जगत् न गिर जाय! सब को ऐसा लगता है।

सुना है मैंने कि छिपकलियाँ मकानों को सम्हाले रहती हैं। छिपकलियाँ सोचती हैं कि अगर वे हट गयीं, तो कहीं मकान की छत न गिर जाय। हम सब को भी ऐसा लगता है कि अगर हमने अपना तर्क छोड़ दिया, बुद्धि छोड़ दी, तो यह सारा जगत् अभी भूमिसात हो जाय! सब गिर न जाय।

एक छोटी-सी कहानी से मैं अपनी बात पूरी करूँ। नाजी जर्मनी में जब हिटलर की हुकूमत थी, एक दिन एक अखबार में एक विज्ञापन निकला। किसी पुलिस के बड़े आफिसर की जगह खाली थी। और कोई बड़ा महत्त्वपूर्ण पद था। जिस आफिसर को इन्टरव्यू लेना था, उस जगह के लिये, सुबह ही उसने देखा कि एक यहूदी बूढ़ा अखबार हाथ में लिये है और जहाँ विज्ञापन निकला था अखबार में, एडव्हर्टाइजमेन्ट निकला था, उस पर लाल स्याही से गोल घेरा बनाये हुए अन्दर आया।

वह आफिसर थोड़ा चकित हुआ कि यह बूढ़ा यहूदी क्या इस विज्ञापन के लिये आया हुआ है! उसने पूछा कि क्या आप इस विज्ञापन के लिये आये हुए हैं? बूढ़े ने कहा, 'जी हाँ।' तो आफिसर और भी चकित हुआ। उसने कहा, 'थोड़ा देखिये तो इस विज्ञापन में क्या लिखा है--कि आदमी जवान चाहिए। और आपकी उम्र कम से कम सत्तर पार कर चुकी है। आदमी स्वस्थ सुडौल चाहिए और आपकी हालत ऐसी है कि आप जिन्दा कैसे हैं, इस पर आश्चर्य होता है। इसमें लिखा हुआ है कि आँखें बिलकुल स्वस्थ और ठीक होनी चाहिए और आप इतना मोटा चश्मा लगाये हुए हैं कि मुझे शक है कि आपने यह विज्ञापन पढ़ा कैसे! और फिर इसमें लिखा हुआ है कि आदमी आर्यन जाति का चाहिए और स्पष्टतः आप यहूदी हैं। तो आप किस लिये आये हैं?'

तो उस यहूदी बूढ़े ने कहा, 'टु टेल यू जस्ट दिस दैट डोन्ट डिपेन्ड ऑन मी--सिर्फ यही खबर करने आया हूँ कि मुझ पर निर्भर मत रहना। कोई और आदमी खोज लो। इतना भर सूचन करने आया हूँ कि मुझ पर निर्भर मत रहना।' हँसी आती है, लेकिन थोड़ा खोजेंगे, तो उस यहूदी को अपने भीतर पायेंगे।

सारी दुनिया जैसे आपकी ही सोच समझ, आपकी बुद्धि, आपके तर्क पर निर्भर है! और अगर आप जरा डाँवाडोल हुए वहाँ से तो यह सारी व्यवस्था टूट जायेगी।

कुछ नहीं है वहाँ भीतर सम्हालने को, लेकिन बस, सम्हाले हुए हैं। और कोई आप पर निर्भर नहीं है। लेकिन बड़ी जिम्मेदारी उठाये हुए हैं! सारा भार--सारे संसार का भार--आपकी ही समझ पर है! अगर आप नासमझ हो गये, तो सारा जगत् रास्ते से विचलित हो जायेगा।

यह जो तर्क की दृष्टि है, यह जो अहंकार का बोध है, इसकी वजह से हम भाव को कभी भी आगे रखने में डरते हैं, क्योंकि भाव अराजक है। और भाव कहाँ ले जायेगा, नहीं कहा जा सकता। इसलिए हम सदा भाव को दबाये रखते हैं, क्योंकि भाव क्या करेगा, वह भी अनजान, अपरिचित, अज्ञात है।

तो भाव से हम भयभीत हैं। न तो कभी हम हँसते हैं--खुल कर, क्योंकि डर लगता है कि कहीं हम सीमा के बाहर न हँसें। न हम कभी रोते हैं हृदयपूर्वक, क्योंकि लगता है कि लोग क्या कहेंगे कि अभी बच्चों जैसा काम कर रहे हो! नहीं, हम कुछ भी भाव से नहीं करने देते। सब पर बुद्धि को अड़ा देते हैं। तो भीतर आँसू भी इकट्ठे हो जाते हैं। सागर में भी इतना खारापन नहीं है, जितना आपके भीतर एक जिन्दगी में इकट्ठा हो जाता है। आँसू ही आँसू इकट्ठे हो जाते हैं। हँसे भी कभी नहीं, तो मुरदा हँसियाँ इकट्ठी हो जाती हैं, उनकी लाशें सड़ जाती हैं। सब जहर हो जाता है भीतर।

भाव कहीं बाहर निकल न जाय, तो बुद्धि को सम्हाल सम्हाल कर चलते हैं।

इस दुनिया में इतने लोगों को ज्यादा शराब पीने की जरूरत पड़ती है, क्योंकि शराब पीकर थोड़ी देर को बुद्धि एक तरफ हट जाती है, और भाव बाहर आ जाता

है। और जब तक हम भाव को आगे नहीं रखते, तब तक दुनिया से शराब मिट नहीं सकती।

अब यह बड़े मजे का और उलझा हुआ मामला है। अकसर जो लोग दुनिया से शराब मिटाना चाहते हैं, वे ही इस दुनिया में शराब के जिम्मेवार हैं, क्योंकि वे ही लोग बुद्धि को थोपते हैं—कि शराब में यह खराबी है, यह खराबी है, इसलिये मत पीओ। इससे यह नुकसान है; यह नुकसान है, इसलिये मत पीओ। ये ही लोग हैं, जिन्होंने नुकसान और खराबियाँ बता-बता कर भाव के जगत् को भीतर बिलकुल कुंठित कर दिया है। और इन्हीं की कृपा है कि उस कुंठित आदमी को थोड़ी देर को तो राहत चाहिए, तो वह पीकर राहत ले लेता है। थोड़ी देर को वह खुल जाता है।

आप देखें, एक आदमी शराब पीता है, जैसे-जैसे शराब पकड़ने लगती है उसको, उसके चेहरे पर रौनक आने लगती है। मुसकराने लगता है। जिन्दगी में गति मालूम पड़ने लगती है।

क्या हो रहा है? यह आदमी अभी मरा-मरा क्यों था? इस आदमी में यह ताजगी कहाँ से चली आ रही है? यह शराब से नहीं आ रही है। शराब तो जहर है; उससे क्या ताजगी आयेगी? यह ताजगी इसलिये आ रही है कि ताजगी तो सदा से भाव में भरी थी, लेकिन दबा के बैठता है। और वह जो दबाने वाली थी बुद्धि, शराब उसको बेहोश कर रही है। वह पहरेदार बेहोश हो रहा है। तो भीतर के दबे हुए भाव बाहर आ जाते हैं।

इसलिये शराब पीकर आदमी ज्यादा आदमी मालूम पड़ता है—जिन्दा मालूम पड़ता है; अच्छा मालूम पड़ता है; भला मालूम पड़ता है। शराब यह सब कुछ नहीं कर रही है। लेकिन शराब पहरे को हटा रही है। वह जो तर्क का और बुद्धि का झंडा गड़ा हुआ था और बन्दूक लिये पहरेदार खड़ा था, वह पी रहा है शराब, वह बेहोश हो जायेगा।

यही काम नींद कर रही है। सुबह आप ताजे मालूम पड़ते हैं, क्योंकि रात सपनों में तर्क से नहीं चलते, भाव चलते हैं। रात सपने में तर्क सो जाता है और भाव की दुनिया मुक्त हो जाती है। आकाश में उड़ना हो, तो उड़ते हैं। उस वक्त यह नहीं कहते कि मैं सन्देह करता हूँ। कि आकाश में उड़ना कैसे हो सकता है! हम उड़ते हैं। सुबह भला सन्देह करें। लेकिन रात मजे से उड़ते हैं। और जिससे प्रेम करना है, उससे सपने में प्रेम कर लेते हैं। उस वक्त यह नहीं कहते कि यह मैं क्या कर रहा हूँ! यह अनैतिक है।

सपने में आप भाव से जीने लगते हैं; बुद्धि हट जाती है। इसलिये रात ताजगी

देती है। सुबह आप ताजे उठते हैं। आप सोचते होंगे कि सपनों की वजह से आपको नुकसान होता है, तो आप गलती में हैं।

वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर सपना न आये, तो सुबह आप ताजे होकर न उठ सकेंगे। सपना आपको ताजा कर रहा है, क्योंकि सपना छुटकारा दे रहा है—बुद्धि से।

अभी वैज्ञानिकों ने प्रयोग किये हैं कि अगर नींद में बाधा डाली जाय, तो ज्यादा नुकसान होता है। रात में कुछ घड़ी आप सपना देखते हैं, कुछ घड़ी सोते हैं। तो वैज्ञानिकों ने ऐसे प्रयोग किये हैं, अब तो जाँचने का उपाय है कि कब आप सपना ले रहे हैं, तब जगा दिया—हड़बड़ा कर। जब भी सपना लिया, तब जगा दिया। और शान्ति से सोये रहे, तो सोने दिया। तो वैज्ञानिकों ने पाया कि आदमी तीन दिन से ज्यादा बिना सपनों के नहीं रह सकता। बिलकुल टूट जाता है।

दूसरा प्रयोग भी किया गया है कि जब नींद आयी, तब जगा दिया। और जब सपना आया, तब सोने दिया। कोई तकलीफ नहीं होती। सुबह आदमी उतना ही ताजा उठता है।

इसलिये पहले खयाल था कि नींद से ताजगी मिलती है। अब वैज्ञानिक कहते हैं कि सपने से ताजगी मिलती है। बड़ी हैरानी की बात है।

सपने से ताजगी क्यों मिलती होगी? सपने से ताजगी इसीलिये मिलती है कि बुद्धि का बोझ हट जाता है। और जब बुद्धि का बोझ हट जाता है, तो आप जिंदगी का रस लेकर वापस लौट आते हैं।

भक्त जागते जिन्दगी का बोझ फेंक देता है और एक आध्यात्मिक स्वप्न में लीन हो जाता है। उस स्वप्न में वह सब कुछ न्यौछायर कर देता है। और कृष्ण कहते हैं कि तब उसे मैं उठा लेता हूँ।

तुम्हारी बुद्धि से जो सत्य दिखाई पड़ रहा है, वह इतना सत्य नहीं है, जितना प्रेम और भाव से दिखाई पड़ने वाला स्वप्न भी सत्य होता है।

अब पाँच मिनट कीर्तन करें। लेकिन कोई बीच में न उठे। कीर्तन पूरा करें और फिर जायें।

रूपान्तरण की कला • भाव की बेहोशी • समर्पण और सुख-दुःख
बुद्धि और भाव • अहंकार घाव है
भक्ति, योग और कर्म

पाँचवाँ प्रवचन

क्रॉस मैदान, पारसी कुआँ, बम्बई, संध्या, दिनांक १६ मार्च, १९७३
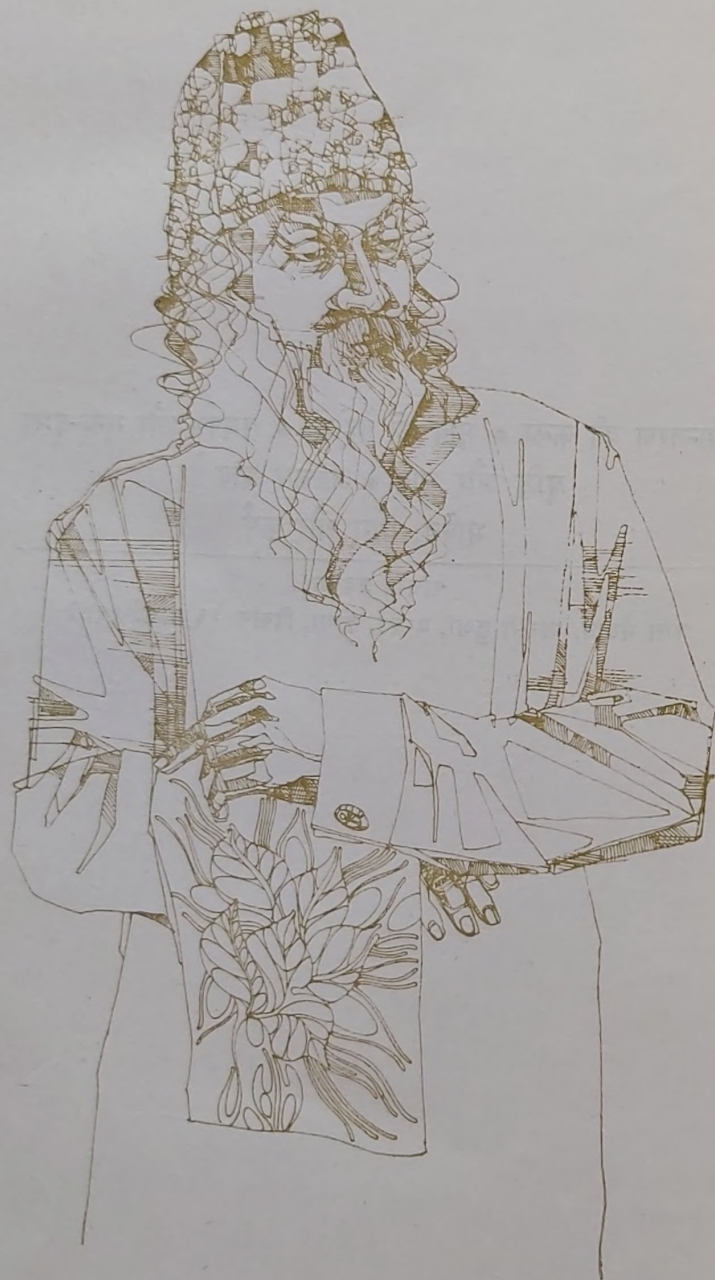
अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोति मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय ॥ ९ ॥

अभ्यासेऽप्य समर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १० ॥

और तू यदि मन को मेरे में अचल स्थापन करने के लिये समर्थ नहीं है, तो हे अर्जुन, अभ्यासरूप योग के द्वारा मेरे को प्राप्त होने के लिये इच्छा कर ।

और यदि तू ऊपर कहे अभ्यास में भी असमर्थ है, तो केवल मेरे लिये कर्म करने के ही परायण हो । इसप्रकार मेरे अर्थ कर्मों को करता हुआ भी मेरी प्राप्तिरूप सिद्धि को उपलब्ध होगा ।

पहले कुछ प्रश्न।

● एक मित्र ने पूछा है : क्या संसारी ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता? घर-बार और स्त्री ही क्या ईश्वर को पाने में बाधा है? संसारी के लिये क्या ईश्वर को पाने का कोई उपाय नहीं है?

ऐसी भ्रांति प्रचलित है कि संसारी परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता है। इससे बड़ी और भ्रान्ति की बात नहीं हो सकती, क्योंकि होने का अर्थ ही संसार में होना है। आप संसार में किस ढंग से होते हैं, इससे फर्क नहीं पड़ता। संसार में होना ही पड़ता है--अगर आप हैं। होने का अर्थ ही संसार में होना है। फिर आप घर में बैठते हैं कि आश्रम में इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। घर भी उतना ही संसार में है, जितना आश्रम है। और आप पत्नी-बच्चों के साथ रहते हैं या उसको छोड़कर भागते हैं, जहाँ आप रहते हैं, वह भी संसार है; जहाँ आप भागते हैं, वह भी संसार है।

होना है संसार में ही। और जब परमात्मा भी संसार से भयभीत नहीं है, तो आप इतने क्यों भयभीत हैं? और जब हम परमात्मा को मानते हैं--कि वही कण-कण में समाया हुआ है; इस संसार में भी वही है। संसार भी वही है...।

संसार से भागकर वह नहीं मिलेगा, क्योंकि गहरे में तो जो भाग रहा है, वह उसे पा ही नहीं सकेगा। उसे तो पाता वह है, जो ठहर गया है। भगोड़े के लिये नहीं है परमात्मा। ठहर जाने वाले लोगों के लिये है, थिर हो जाने वाले लोगों के लिये है।

आप कहाँ हैं, इससे फर्क नहीं पड़ता। अगर आप शांत हैं और ठहरे हुए हैं, तो वहीं परमात्मा से मिलन हो जायेगा।

अगर आप दुकान पर बैठे हुए भी शान्त हैं और आपके मन में कोई दुविधा, कोई अड़चन, कोई द्वन्द्व, कोई संघर्ष, कोई तनाव नहीं है, तो उस दुकान पर ही परमात्मा उतर आयेगा। और आप आश्रम में भी बैठे हो सकते हैं और मन में द्वन्द्व और दुविधा और परेशानी हो, तो वहाँ भी परमात्मा से कोई सम्पर्क न हो पायेगा।

न तो पत्नी रोकती है, न बच्चे रोकते हैं। आपके मन को ही द्वन्द्वग्रस्त स्थिति रोकती है। संसार नहीं रोकता, आपके ही मन की विक्षिप्तता रोकती है।

संसार से भागने से कुछ भी न होगा, क्योंकि संसार से भागना एक तो असम्भव है। जहाँ भी जायेंगे, पायेंगे संसार है। और फिर आप तो अपने साथ ही चले जायेंगे--कहीं भी भागें। घर छूट सकता है, पत्नी छूट सकती है, बच्चे छूट सकते हैं। आप अपने को छोड़कर कहाँ भागियेगा? और पत्नी वहाँ आपके कारण थी और बच्चे आपके कारण थे। आप जहाँ भी जायेंगे वहाँ पत्नी पैदा कर लेंगे। आप बच नहीं सकते। वह घर आपने बनाया था और जिसने बनाया था, वह साथ ही रहेगा। वह फिर बना लेगा। आप असली कारीगर को तो साथ ले जा रहे हैं। वह आप हैं।

आप यहाँ धन को पकड़ते थे, तो वहाँ भी कुछ न कुछ आप पकड़ लेंगे। वह पकड़ने वाला भीतर है। अगर यहाँ मुकदमा लड़ते थे अपने मकान के लिए, तो वहाँ आश्रम के लिए लड़ियेगा। लेकिन मुकदमा आप लड़ियेगा। यहाँ कहते थे : यह मेरा मकान है; वहाँ आप कहियेगा : यह मेरा आश्रम है। लेकिन वह 'मेरा' आपके साथ होगा।

आप भाग नहीं सकते। अपने से कैसे भाग सकते हैं? और आप हैं रोग।

यह तो ऐसा हुआ कि टी. बी. का मरीज भाग खड़ा हो। सोचे कि भागने से टी. बी. से छुटकारा हो जायेगा। मगर वह टी. बी. आपके साथ ही भाग रही है? और भागने में और हालत खराब हो जायेगी।

भागना बचकाना है। भागना नहीं है--जागना है। संसार से भागने से परमात्मा नहीं मिलता, और न संसार में रहने से मिलता है। संसार में जागने से मिलता है। संसार एक परिस्थिति है। इस परिस्थिति में आप सोये हुए हों, तो परमात्मा को खोये रहेंगे। उस परिस्थिति में आप जाग जायें, तो परमात्मा मिल जायेगा।

ऐसा समझें कि एक आदमी सुबह एक बगीचे में सो रहा है। सूरज निकल आया है और पक्षी गीत गा रहे हैं और फूल खिल रहे हैं और हवाएँ सुगंध से भरी हैं और वह सो रहा है। उसे कुछ भी पता नहीं कि क्या मौजूद। आँख खोले, जागे, तो उसे पता चले कि क्या मौजूद है। जब तक सो रहा है, तब तक अपने ही सपनों में है।

हो सकता है : यह फूलों से भरा बगीचा, यह आकाश, ये हवाएँ, यह सूरज, ये पक्षियों के गीत तो उसके लिए हैं ही नहीं। हो सकता है : वह एक दुःख-स्वप्न देख रहा हो, एक नरक में पड़ा हो। इस बगीचे के बीच, इस सौन्दर्य के बीच वह एक सपना देख रहा हो कि मैं नरक में सड़ रहा हूँ और आग की लपटों में जल रहा हूँ।

जिसे हम संसार कह रहे हैं, वह संसार नहीं है। हमारा सपना, हमारा सोया हुआ होना ही संसार है। परमात्मा तो चारों तरफ मौजूद है, पर हम सोये हुए हैं। वह अभी और यहाँ भी मौजूद है। वही आपका निकटतम पड़ोसी है। वही आपकी धड़कन में है; वही आपके भीतर है; वही आप हैं। उससे ज्यादा निकट और कुछ भी नहीं है। उसे पाने के लिए कहीं भी जाने की जरूरत नहीं है। वह यहाँ है, अभी है। लेकिन हम सोये हुए हैं। इस नींद को तोड़ें।

भागने से कुछ भी न होगा। इस नींद को हटायें। यह मन होश से भरे, इस मन के सपने विदा हो जायें, इस मन में विचारों की तरंगें न रहें, यह मन शान्त और मौन हो जाये, तो आपको अभी उसका स्पर्श शुरू हो जायेगा; उसके फूल खिलने लगेंगे। उसकी सुगंध आने लगेगी; उसका गीत सुनायी पड़ने लगेगा; उसका सूरज अभी-अभी आपके अँधेरे को काट देगा और आप प्रकाश से भर जायेंगे।

इसलिए मेरी दृष्टि में जो भाग रहा है, उसे तो कुछ भी पता नहीं है। यह हो सकता है कि आप संसार से पीड़ित हो गये हैं, इसलिये भागते हों। लेकिन संसार की पीड़ा भी आपका सृजन है। तो आप भागकर जहाँ भी जाइयेगा, वहाँ आप नयी पीड़ा के स्रोत तैयार कर लेंगे। यह ऊपर से दिखायी नहीं पड़ता, तो आप जाकर देखें। आश्रमों में बैठे हुए लोगों को देखें, संन्यासियों को देखें। अगर वे जागे नहीं हैं, तो आप उनको पायेंगे वे ऐसी ही गृहस्थी में उलझे हैं--जैसे आप। और उनकी उलझनें भी ऐसी ही हैं, जैसी आपकी। उनकी परेशानी भी यही है। वे भी इतने ही चिन्तित और दुःखी हैं।

इतना आसान नहीं परमात्मा को पाना कि आप घर से निकाल कर मन्दिर में आ गये और परमात्मा मिल गया! कि आप जंगल में चले गये और परमात्मा मिल गया। परमात्मा को पाने के लिए आपकी जो चित्त अवस्था है, इससे निकलना पड़ेगा और एक नयी चित्त अवस्था में प्रवेश करना पड़ेगा;

ये ध्यान और प्रार्थनाएँ उसके ही मार्ग हैं--कि आप कैसे बदलें। आम हमारी मन की यही तर्कना है कि परिस्थिति को बदल लें, तो सब हो जायेगा। हम जिन्दगी भर इसी ढंग से सोचते हैं। लेकिन परिस्थिति हमारी उत्पन्न की हुई है। मनःस्थिति असली चीज है--परिस्थिति नहीं।

एक आदमी गाली देता है, तो आप सोचते हैं: इसके देने से दुःख होता है, पीड़ा होती है, क्रोध होता है। इस आदमी से हट जायँ तो न क्रोध होगा, न पीड़ा होगी, न अपमान होगा, न मन में सन्ताप होगा। लेकिन जो आदमी गाली देता है, वह क्रोध पैदा नहीं करता। क्रोध तो आपके भीतर है; वह तो केवल हिलाता है। आप भाग जायँ; क्रोध को आप भीतर ले जा रहे हैं। अगर कोई आदमी न होगा, तो

आप चीजों पर क्रोध करने लगेंगे। लोग दरवाजे इस तरह लगाते हैं, जैसे किसी दुश्मन को धक्का मार रहे हों! लोग तो जूतों को गाली देते हैं और फेंकते हैं। लोग लिखते हुए--कलम को जमीन पर, फर्श पर पटक देते हैं। क्रोध में... चीजें हैं...। एक कलम क्या क्रोध पैदा करेगी? एक दरवाजा क्या क्रोध पैदा करेगा?

लेकिन यह क्रोध भीतर भरा है। उसे आप निकालेंगे; कोई न कोई बहाना आप खोजेंगे। और बहाने मिल जायेंगे। बहानों की कमी नहीं है। तब फिर आप सोचेंगे इस परिस्थिति से हटूँ, तो शायद किसी दिन शान्त हो जाऊँ। तो आप जन्मों-जन्मों से यही कर रहे हैं--परिस्थिति को बदलो--और अपने को जैसे हो वैसे ही सम्हाले रहो।

आप अगर रहे, तो आप ऐसा ही संसार बनाते चले जायेंगे। आप स्रष्टा हैं संसार के। मन को बदलें; वह जो भीतर चित्त है--उसको बदलें। अगर कोई गाली देता है, तो उससे यह अर्थ नहीं है कि उसकी गाली आप में क्रोध पैदा करती है। उसका केवल इतना ही अर्थ है: क्रोध तो भीतर भरा पड़ा था, गाली चोट मार देती है, और क्रोध बाहर आ जाता है। ऐसे ही जैसे कोई कुएँ में बालटी डाले और पानी भर कर बालटी में आ जाये। बालटी पानी नहीं पैदा करती, वह कुएँ में भरा हुआ था। खाली कुएँ में डालिये बालटी, खाली वापस लौट आयेगी।

बुद्ध में, महावीर में गाली डालिये, खाली वापस लौट आयेगी। कोई प्रत्युत्तर नहीं आयेगा। वहाँ क्रोध नहीं है। और आपको जो आदमी गाली देता है, अगर समझ हो, तो आपको उसका धन्यवाद करना चाहिए कि आपके भीतर जो छिपा था, उसने बाहर निकालकर बता दिया। उसकी बड़ी कृपा है। वह न मिलता, तो शायद आप इसी खयाल में रहते कि आप अक्रोधी हैं, बड़े शान्त आदमी हैं। उसने मिलकर आपकी असली हालत बता दी कि भीतर आप क्रोधी हैं; बाहर-बाहर, ऊपर-ऊपर से रंग-रोगन किया हुआ है, सब व्हाइट वाश है; भीतर आग जल रही है। यह आदमी मित्र है, क्योंकि इसने आपके रोग की खबर दी। यह आदमी डॉक्टर है, इसने आपका निदान कर दिया। इसकी डायग्नोसिस से पता चल गया कि आपके भीतर क्या छिपा है। इसे धन्यवाद दें और अपने को बदलने में लग जायँ।

पत्नी आपको नहीं बाँधे हुए है। स्त्री के प्रति आपका आकर्षण है--वह बाँधेगा। पत्नी से क्या तकलीफ है--या पति से क्या तकलीफ है?

आप भाग सकते हैं। लेकिन आकर्षण तो भीतर भरा है। कोई दूसरी स्त्री उसे छू लेगी और वह आकर्षण फिर फैलना शुरू हो जायेगा। फिर आप संसार खड़ा कर लेंगे।

वह जो बेटा है आपका, वह आपको बाँधे हुए नहीं है। बेटे से आप बँधे हैं, क्योंकि आप अपने को चलाना चाहते हैं--मृत्यु के बाद भी। बेटे के कंधे से आप जीना चाहते हैं। आप तो मर जायेंगे; यह पता है, कि यह शरीर गिरेगा, तो आप अब बेटे के सहारे इस जगत् में रहना चाहते हैं। कम से कम नाम तो रहेगा मेरा --मेरे बेटे के साथ। वह आपको बाँधे हुए है। बेटे को छोड़कर भाग जाइयेगा; शिष्य मिल जायेगा। फिर आप उसके सहारे संसार में बचने की कोशिश में लग जायेंगे। बाकी कोशिश वही रहेगी--जो आप भीतर हैं। नाम बदल जायेंगे, रंग बदल जायेंगे, लेबल बदल जायेंगे, लेकिन आप इतनी आसानी से नहीं बदलते।

तो ध्यान रखें : क्षुद्र-धर्म, परिस्थिति बदलने की कोशिश करता है। सत्य-धर्म मनःस्थिति बदलने की कोशिश करता है।

आप बदल जायँ--जहाँ भी हैं--और आप पायेंगे : संसार मिट गया। आप बदले कि संसार खो जाता है और जो बचता है--वही परमात्मा है। यहीं--संसार की हर पर्त के पीछे वह छिपा है।

आपको संसार दिखायी पड़ता है, क्योंकि आप संसार को ही देखने वाला मन लिये बैठे हैं। जो आपको दिखायी पड़ रहा है, वह आपके कारण दिखायी पड़ रहा है। जैसे ही आप बदले, आपकी दृष्टि बदली, देखने का ढंग बदला, संसार तिरोहित हो जाता है और आप पाते हैं कि चारों तरफ वही है। फिर वृक्ष में वही दिखायी पड़ता है और पत्थर में भी वही दिखायी पड़ता है। फिर जीवन का सारा विस्तार उसका ही विस्तार है।

संसार आपकी दृष्टि के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं है। और परमात्मा भी आपकी दृष्टि के ही अनुभव में उतरेगा; आपके दृष्टि के परिवर्तन में उतरेगा।

क्रान्ति चाहिये आन्तरिक, भीतरी, स्वयं को बदलने वाली। भागने में समय खराब करने की कोई भी जरूरत नहीं है। भागने में व्यर्थ उलझने की कोई भी जरूरत नहीं है। संसार परमात्मा को पाने का अवसर है; एक मौका है। उस मौके का उपयोग करना आना चाहिये।

सुना है मैंने कि एक घर में एक बहुत पुराना वाद्य रखा था, लेकिन घर के लोग पीढ़ियों से भूल गये थे--उसको बजाने की कला। वह कोने में रखा था। बड़ा वाद्य था। जगह भी घिरती थी, घर में भीड़ भी बढ़ गयी थी और आखिर एक दिन घर के लोगों ने तय किया कि यह उपप्रव यहाँ से हटा दें। वह उपद्रव हो गया था। क्योंकि जब संगीत बजाना न आता हो और उसके तारों को छेड़ना न आता हो...। तो कहीं बच्चे छेड़ देते थे, तो घर में शोरगुल मचता था। कभी कोई चूहा कूद जाता, कभी कोई बिल्ली कूद जाती, आवाज होती, रात में नींद टूटती। वह उपद्रव हो गया था। तो उन्होंने एक दिन उसे उठा कर घर के बाहर कचरे घर में डाल दिया। लेकिन वे लौट भी नहीं पाये थे कि कचरे भर के पास से अनूठा संगीत उठने लगा। देखा : राह चलते भिखारी ने उसे उठा लिया है और बजा रहा है। भागे हुए वापस पहुँचे और कहा कि 'लौटा दो, यह वाद्य हमारा है।' पर उस भिखारी ने कहा, 'तुम इसे फेंक चुके हो कचरे घर में। अगर यह वाद्य ही था, तो तुमने फेंका क्यों?' और उस भिखारी ने कहा कि 'वाद्य उसका है, जो बजाना जानता है। तुम्हारा वाद्य कैसे होगा?

जीवन एक अवसर है। उससे संगीत भी पैदा हो सकता है। वही संगीत परमात्मा है। लेकिन बजाने की कला आनी चाहिए। अभी तो सिर्फ उपद्रव पैदा हो रहा है, पागलपन पैदा हो रहा है। आप गुस्सा होते हैं कि इस वाद्य को छोड़कर भाग जाओ, क्योंकि यह उपद्रव है। वह वाद्य उपद्रव नहीं है।

एक ही है जगत् का अस्तित्व। जब बजाना आता है, तो वह परमात्मा मालूम पड़ता है। जब बजाना नहीं आता, तो वह संसार मालूम पड़ता है।

अपने को बदलें। वह कला सीखें कि कैसे इसी वाद्य से संगीत उठ आये। और कैसे ये पत्थर प्राणवान् हो जायँ और कैसे यह एक एक फूल प्रभु की मुसकराहट बन जाय।

धर्म उसकी ही कला है। तो जो धर्म भागना सिखाता है, समझना कि वह धर्म ही नहीं है। कहीं कोई भूल-चूक हो रही है। जो धर्म रूपान्तरण, आन्तरिक क्रान्ति सिखाता है, वही वास्तविक विज्ञान है।

● एक मित्र ने पूछा है कि आपने बताया कि बेहोशी में किया हुआ कृत्य पाप है। लेकिन भाव से भी तो बेहोशी होती है। कृपया समाधान कीजिये।

बेहोशी, बेहोशी में बड़ा फर्क है। एक बेहोशी नींद में होती है, तब आपको कुछ भी पता नहीं होता। एक बेहोशी शराब पीने से भी होती है, तब भी आपको कुछ पता नहीं होता। एक बेहोशी भाव से भी होती है। आप पूरे बेहोश भी होते हैं और आपको पूरा पता भी होता है। जब आप मग्न होकर गीत में नाच रहे होते हैं, तो यह नृत्य भी होता है, इस नृत्य में पूरा डूबा हुआ होना भी होता है और भीतर दीये की तरह चेतना भी जलती है जो जानती है, जो देखती है, जो साक्षी होती है।

अगर आपके भाव में बेहोशी शराब जैसी आ जाय, तो आप समझना कि चूक गये। तो समझना कि यह भाव भी फिर शराब ही हो गयी।

प्रार्थना में बेहोशी का मतलब इतना है कि आप इतने लीन हो गये हैं कि मैं हूँ, इसका कोई पता नहीं है। मैं हूँ--इसका कोई शब्द निर्मित नहीं होता। लेकिन जो

भी हो रहा है, उसके आप साक्षी हैं। जो साक्षी है, उसमें कोई मैं का भाव नहीं है। और वह जो साक्षी है, वह आप नहीं हैं; आप तो लीन हो गये हैं और आपके लीन होने के बाद जो भीतर असली आपका स्वरूप है, वह भर देखता है। उस दर्शन में, उस द्रष्टा के होने में, जरा भी बेहोशी नहीं है।

भाव की बेहोशी में आपके जो-जो रोग हैं, वे सो गये होते हैं और आपके भीतर जो शुद्ध चेतन है, वह जाग गया होता है।

जब चैतन्य नाच रहे हैं सड़कों पर, तो आप यह मत सोचना कि वे बेहोश हैं। हालाँकि वे कहते हैं कि मैं बेहोश हूँ और हालाँकि वे कहते हैं कि हमने शराब पी परमात्मा की। वे सिर्फ इसलिये कहते हैं कि आप इन्हीं प्रतीकों को समझ सकते हैं।

उमर खैयाम ने कहा है कि अब हमने ऐसी शराब पी ली है, जिसका नशा कभी न उतरेगा। और अब बार-बार पीने की कोई जरूरत न रहेगी। अब तो पीकर हम सदा के लिए खो गए हैं।

शराब का उपयोग किया है--प्रतीक की तरह, क्योंकि आप एक ही तरह का खोना जानते हैं, जिसमें आपकी सारी चेतना ही शून्य हो जाती है।

भाव में शराब का थोड़ा-सा हिस्सा है। उनमें आपकी सब बीमारियाँ सो जाती हैं--आपका अहंकार सो जाता है, आपका मन सो जाता है, आपके विचार सो जाते हैं। लेकिन आप?--आप पूरी तरह से जाग गये होते हैं और भीतर पूरा होश होता है। लेकिन यह तो अनुभव से ही होगा, तो ही खयाल में आयेगा। यह तो बात जटिल है। यह तो आपको कैसे खयाल में आयेगी? भाव में डूबकर देखें।

लेकिन हम डरते हैं। डर यही होता है कि कहीं अगर भाव में पूरे डूब गये, तो जो जो हमने दबा रखा है, अगर वह बाहर निकल पड़ा, तो लोग क्या कहेंगे!

डरते हैं हम, क्योंकि हमने बहुत कुछ छिपा रखा है। और हमने चारों तरफ से अपने को बाँध रखा है--नियंत्रण में। तो कहीं नियंत्रण ढीला हो गया और जरा-सा भी कहीं छिद्र हो गया और हमने जो रोक रखा है, वह बाहर निकल पड़ा तो? उस भय के कारण हम अपने को कभी छोड़ते नहीं, समर्पण नहीं करते।

हम कहीं भी अपने को शिथिल नहीं करते। हम चौबीस घंटे डरे हुए हैं और अपने को सम्हाले हुए हैं। तब यह जिन्दगी नरक जैसी हो जाती है। इसमें सिवाय संताप के और विष के कुछ भी नहीं बचता। यह रोग ही रोग का विस्तार हो जाता है।

खुलें; फूल की तरह खिल जायें। माना कि बहुत-सी बीमारियाँ आपके भीतर पड़ी हैं, लेकिन आप उनको जितना सम्हाले रखेंगे, उतनी ही ये आपके भीतर बढ़ती जायेंगी। उनको भी गिर जाने दें। उनको भी परमात्मा के चरणों में समर्पित कर

दें और आप जल्दी ही पायेंगे कि बीमारियाँ हट गयीं और आपके भीतर फूल का खिलना शुरू हो गया। आपके भीतर का कमल खिलने लगा।

जिस दिन यह भीतर का कमल खिलना शुरू होता है, उसी दिन पता चलता है कि बेहोशी भी है और होश भी है। एक तल पर हम बिलकुल बेहोश हो गये हैं और एक तल पर हम पूरी तरह होशवान हो गये हैं। ये घटनाएँ एक साथ घटती हैं।

शराब में हम केवल बेहोश होते हैं, कोई होश नहीं होता। इसलिये कुछ साधकों ने तो इस भाव की जागरूकता को पाने के बाद शराबें पीकर भी देखी हैं कि क्या हमारी इस भाव की जागरूकता को शराब डुबा सकती है?

आपको पता हो या न हो, योग और तन्त्र के ऐसे सम्प्रदाय रहे हैं, जहाँ कि शराब भी पिलायी जायेगी, जब भाव की पूरी अवस्था आ जायेगी और साधक कहेगा कि अब मैं बाहर से तो बिलकुल बेहोश हो जाता हूँ, लेकिन मेरा भीतर होश पूरा बना रहता है, तो फिर गुरु उसको शराब भी पिलायेगा, अफीम भी खिलायेगा और धीरे-धीरे बेहोशी की, मादकता की मात्रा बढ़ायी जायेगी और उससे कहा जायेगा कि यहाँ बाहर बेहोशी घेरने लगे, शरीर बेहोश होने लगे, तो भी तू भीतर अपने होश को मत खोना। और यह बात यहाँ तक प्रयोग की गयी है कि जब सब तरह की शराब और सब तरह के मादक द्रव्य पीकर भी साधक भीतर होश से भरा रहता है, तब फिर साँप को भी कटवाते हैं उसकी जीभ पर, ताकि जब साँप काट ले, उसका जहर भी पूरे शरीर में फैल जाय, तो भी भीतर का होश जरा भी न डिगे, तभी वे मानते हैं कि अब साधक ने उस होश को पा लिया, जिसको मौत भी न हिला सकेगी।

पर अनुभव के बिना कुछ खयाल न आ सकेगा। थोड़ा भाव में डूबना सीखें। भाव में जो डूबता है, वह उबर जाता है। और भाव से जो बचता है, वह डूब ही जाता है, नष्ट ही हो जाता है।

लेकिन कुछ चीजें हैं, जो समझ से नहीं समझायी जा सकतीं। कोई उपाय नहीं है, और जितनी भीतरी बात होगी, उतना ही अनुभव पर निर्भर रहना पड़ेगा।

अगर मेरे पैर में दर्द है, तो आपको मानना पड़ेगा कि दर्द है। और दूसरा क्या उपाय है उसे सिद्ध करने का! और अगर मैं आपको समझाने जाऊँ और आपके पैर में कभी दर्द न हुआ हो, तो बड़ी मुश्किल हो जायेगी। मैं कितना ही कहूँ कि पैर में दर्द है, लेकिन आपको अगर दर्द का कोई अनुभव नहीं है, तो शब्द ही सुनायी पड़ेगा; अर्थ कुछ भी समझ में न आयेगा। आपको भी दर्द हो तो ही...। अनुभव को शब्द से हस्तान्तरित करने की कोई भी सुगमता नहीं है।

बुद्ध के पास कोई आया और उसने कहा कि जो आपको हुआ है, वह थोड़ा

मुझे भी समझायें। तो बुद्ध ने कहा कि 'समझा मैं न सकूँगा। तुम रुको और वर्ष भर जो मैं कहूँ, वह करो। सम्भवतः समझ में आ जायेगा।'

जब तक भीतर प्रतीति न हो इस बात की, कि सब बेहोशी हो गयी है और फिर भी भीतर कोई जागा है, दीया जल रहा है, तब तक कैसे समझेंगे? तब तक आप बाहर से ही देखेंगे। तो आप बाहर से नाचते हुए देखेंगे मीरा को, तो आपको लगेगा कि बेहोश है, होश नहीं है। लगेगा ही। कपड़ा गिर गया। अगर होश होता तो मीरा अपना पल्लू सम्हालती, कपड़ा सम्हालती। होश में नहीं है, बेहोश है। निश्चित ही शरीर के तल पर बेहोश ही हैं। कपड़े के तल से होश हट गया हैं। वहाँ भी मीरा अब नहीं है। न कपड़े में है, न शरीर में है। भीतर कहीं सरक गयी है। लेकिन वहाँ होश है।

पर यह तो आप भी मीरा हो जायँ, तभी खयाल में आये, अन्यथा कैसे खयाल में आये। मीरा के भीतर झाँकने का कोई ही उपाय नहीं है। कोई खिड़की दरवाजा नहीं, जिससे हम भीतर झाँक सकें। अगर मीरा के भीतर झाँकना है, तो अपने भी भीतर झाँकना पड़े, और कोई उपाय नहीं।

बुद्ध को समझना हो, तो बुद्ध हुए बिना कोई रास्ता नहीं है। इसलिए शिष्य जब तक गुरु ही नहीं हो जाता, तब तक गुरु को नहीं समझ पाता। कैसे समझेगा? अलग-अलग तल पर खड़े हुए लोग हैं। वे अलग भाषाएँ बोल रहे हैं। अलग अनुभवों की बातें कर रहे हैं। तब तक मिस-अण्डरस्टैंण्डिग ज्यादा होगी, नासमझी ज्यादा होगी, समझ कम होगी। अगर सच में ही समझना चाहते हैं, तो प्रयोग की हिम्मत जुटानी चाहिए।

विज्ञान भी प्रयोग पर निर्भर करता है--और धर्म भी। दोनों एक्सपेरिमेन्टल हैं। विज्ञान भी कहता है कि जाओ प्रयोगशाला में और प्रयोग करो और जब तुम भी पाओ कि 'ऐसा होता है' तो ही मानना, अन्यथा मत मानना। धर्म भी कहता है कि जाओ प्रयोग शाला में--प्रयोग करो। हालाँकि प्रयोगशालाएँ दोनों की अलग हैं। विज्ञान की प्रयोग शाला बाहर है, धर्म की प्रयोगशाला भीतर है। आप ही हो धर्म की प्रयोगशाला।

इसलिए विज्ञान की प्रयोगशाला तो निर्मित करनी पड़ती है और आप अपनी प्रयोगशाला अपने साथ लिये चल रहे हो। नाहक ढो रहे हो वजन। बड़ा अद्‌भुत यंत्र आपको मिला है, उसमें आप प्रयोग कर लो, तो अभी आपको खयाल में आ जाये कि क्या हो सकता है।

भाव की बेहोशी बहुत गहन होश का नाम है। वह किसी दूसरे तल पर होश है; जागरूकता है।

● एक मित्र ने पूछा है कि अपने आपको भगवान् के चरणों में समर्पित कर देने के बाद क्या सुख-दुःख के भाव हममें नहीं उठेंगे? उन्हें उठने देने से रोकने का क्या उपाय है?

फिर आपको रोकने की जरूरत नहीं--जब भगवान् के चरणों में समर्पित कर दिया। तो समर्पण पूरा नहीं कर रहे हैं। पीछे आप भी इन्तजाम रखेंगे अपना--जारी!

हमें खयाल नहीं कि हम क्या सोचते हैं, किस ढंग से सोचते हैं! अगर अपने को भगवान् के हाथ में समर्पण कर दिया, तो फिर सुख-दुःख के भाव उठेंगे या नहीं, यह भी भगवान् पर छोड़ दें। क्या पहले तय कर लेंगे, फिर समर्पण करेंगे? तब तो समर्पण झूठा हो जायेगा--सशर्त, कण्डीशनल हो जायेगा।

क्या भगवान् से यह कहकर समर्पण करेंगे कि समर्पण करता हूँ, लेकिन ध्यान रहे : अब सुख-दुःख का भाव नहीं उठना चाहिए! अगर उठा तो समर्पण वापस ले लूँगा। रद्द कर दूँगा कॉन्ट्रेक्ट। यह कोई समझौता तो नहीं है कि आप इसमें शर्त रखेंगे। समर्पण का मतलब है : बेशर्त। आप कहते हैं : छोड़ता हूँ तुम्हारे हाथ में। अब दुःख देना हो तो दुःख देना--मैं राजी रहूँगा। समर्पण का मतलब यह है : सुख देना तो सुख देना--मैं राजी रहूँगा। दोनों छीन लेना--राजी रहूँगा। दोनों जारी रखना--राजी रहूँगा। मेरी तरफ से--तुम कुछ भी करो--राजीपन रहेगा। समर्पण का यह अर्थ है। तुम क्या करोगे, अब मैं उस पर कोई विचार नहीं करूँगा। मैं सिर्फ राजी रहूँगा।

यह जो राजीपन है ...। स्वीकार कर लूँगा कि तुम्हारी मरजी है; जरूर कुछ बात होगी, जरूर कुछ लाभ होगा। सुख-दुःख कैसे बचेंगे! जिस आदमी ने अपने को छोड़ दिया, उसके सुख-दुःख बच सकते हैं?

सुख-दुःख है क्या? आपकी अपने आप पर पकड़ ही तो जड़ में है। और समर्पण में आप अपनी पकड़ छोड़ते हैं। जो आदमी कहता है कि सुख होगा तो राजी, दुःख होगा तो राजी, क्या उसको सुख-दुःख हो सकते हैं?--सवाल यह है। कैसे हो सकते हैं! क्योंकि सुख का मतलब ही होता है कि चाहता हूँ। दुःख का मतलब होता है--नहीं चाहता हूँ। सुख का मतलब होता है : कहीं छिन न जाय--यह भय। दुःख का मतलब होता है--कहीं टिक न जाय--यह भय।

समर्पण का अर्थ है : सुख तो राजी, दुःख तो राजी। सुख छिन जाय तो राजी, दुःख बना रहे तो राजी। सुख-दुःख बचेंगे कैसे? सुख-दुःख के बचने की आधारशिला खो गयी।

सुख है क्या?--जिसको आप चाहते हैं। दुःख है क्या?--जिसको आप नहीं

चाहते। और कभी आपने खयाल किया कि कैसा चमत्कार है कि आज जिसे आप चाहते हैं, वह सुख है और कल अगर न चाहें, तो वही दुःख हो जाता है। और आज जिसे आप नहीं चाहते थे, वह दुःख था और कल अगर आप उसी को चाहने लगें, तो सुख हो जाता है।

एक प्रेमी कहता है कि इस स्त्री के बिना मैं जी न सकूँगा। यही मेरा सुख है। और लगता है उसे कि इसके बिना मैं नहीं जी सकूँगा और कल शादी हो जाय और परसों वह अदालतों में घूम रहा है कि तलाक कैसे दें! स्त्री वही है। पहले कहता था: इसके बिना न जी सकूँगा। अब कहता है: इसके साथ न जी सकूँगा! वह कल सुख था, आज दुःख हो गया। और आप ऐसा मत सोचना...। कुछ हैरानी की बातें हैं। ऐसी घटनाएँ घटती हैं।

मेरे एक परिचित हैं। स्पेन में रहते हैं। उन्होंने अपनी पत्नी को तलाक दिया और दो साल बाद उसी स्त्री से दुबारा शादी कर ली। पहले सुख पाया, फिर दुःख पाया। दो साल उसके बिना रहे और फिर लगा कि वह सुख है। जब उन्होंने मुझे खबर की, तो मैंने कहा कि 'तुम पहले अनुभव से कुछ भी सीखे नहीं मालूम पड़ते। यह स्त्री कभी सुख थी, फिर दुःख हो गयी थी। अभी फिर सुख हो गयी! कितनी देर चलेगा? और कब दुःख हो जाये? ज्यादा देर नहीं चलेगा मामला। क्योंकि व्यक्ति वे वही के वही हैं। फिर दुःख हो जायेगा।

इतने दूर जाने की जरूरत नहीं है। आपकी पत्नी ही थोड़े दिन मायके चली जाती है, तो सुखद मालूम पड़ने लगता है। लौट आती है, तो देखते ही से फिर तबीयत घबड़ाती है कि वापस आ गयी!

दूरी सुख के भावों को जन्म देने लगती है, निकटता उबाने लगती है। जो भी हमारे पास है, उससे हम ऊब जाते हैं। तो ऐसा कुछ नहीं है कि कोई चीज सुख है और कोई चीज दुःख है। भाव है। आपका भाव अगर चाह का है, तो सुख है और अगर बेचाह का हो गया तो दुःख है। चीज वही हो, इससे कोई भी अन्तर नहीं पड़ता है।

समर्पण करने वाले ने अपनी चाह छोड़ दी, अपना भाव छोड़ दिया। अब उसे दुःख देना मुश्किल है। अब उसे सुख देना भी मुश्किल है। और जिस व्यक्ति को सुख और दुःख दोनों देना मुश्किल हो जाता है, वही आनन्द को उपलब्ध होता है।

आनन्द सुख नहीं है। शब्दकोश में ऐसा ही लगता है, भाषा में ऐसा ही लगता है कि महासुख का नाम आनन्द है। भूलकर भी ऐसा मत सोचना। आनन्द का सुख से उतना ही सम्बन्ध है, जितना दुःख से। या उतना ही संबंध नहीं है। आनन्द का अर्थ है: जहाँ सुख-दुःख दोनों व्यर्थ हो गये--वह चित्त की दशा है।

समर्पण के बाद आनन्द है। लेकिन अगर न हो, तो समझना कि समर्पण नहीं है। यह मत समझना कि समर्पण के बाद आनन्द नहीं है। समर्पण के बाद आनन्द न हो, तो समझना कि समर्पण नहीं है। समर्पण के बाद आनन्द है ही। समर्पण शरीर है और आनन्द उसकी आत्मा है। लेकिन समर्पण पूरा होना चाहिए।

पूरे समर्पण का अर्थ है कि अब मेरा कोई चुनाव नहीं है। अब मैं नहीं कहता: यह मिले; अब मैं नहीं कहता: यह मिले; अब मैं नहीं कहता: यह न मिले। अब मैं हूँ ही नहीं। अब मेरा कोई निर्णय नहीं। अब मैंने अपनी बागडोर उसके हाथ में डाल दी है। वह पूरब ले जाय तो ठीक, पश्चिम ले जाय तो ठीक; कहीं न ले जाय तो ठीक। जो भी वह करे--ठीक है। मेरी 'हाँ' बेशर्त है। वह जो भी कहेगा, मैं कहूँगा--हाँ।

फिर चिन्ता आपको नहीं रह जायेगी कि सुख-दुःख के भाव उठेंगे, तो हम उनको कैसे रोकेंगे। आप ही न बचेंगे, उनको रोकने की आपको कोई भी जरूरत न रह जायेगी। वे भी न बचेंगे। आपके साथ ही समाप्त हो जायेंगे। वे आपके ही संगी-साथी हैं।

अहंकार का ही पहलू है एक--सुख और एक--दुःख। अहंकार को जो बात रुचती है वह सुख, जो बात नहीं रुचती है वह दुःख। अहंकार खो जाता है, दोनों ही खो जाते हैं। जो शेष रह जाता है, उसको नियंत्रण करने की जरूरत ही नहीं है।

और जिसने परमात्मा के हाथ में अपनी नाव छोड़ दी, अब उसको अपने साथ नियंत्रण की समझदारी ले जाने की जरूरत नहीं है। उसकी समझदारी अब काम भी नहीं पड़ेगी।

● एक मित्र ने पूछा है, आपकी बातों को समझने के लिए तो बुद्धि की ही आवश्यकता पड़ती है, तो इस अवसर पर बुद्धि को ही प्राथमिकता देना चाहिए या भाव को? क्या सिर्फ भाव को प्रधानता देने से आपकी बातें समझ में आ जायेंगी?

निश्चित ही, मेरी 'बात' समझनी है तो बुद्धि से समझनी पड़ती है। लेकिन अगर मेरी बात अनुभव करनी है, तो भाव से करनी पड़ेगी। समझ के लिए बुद्धि जरूरी है। लेकिन समझ अनुभव नहीं है। अगर समझ पर ही रुक गये और समझदार होकर ही रुक गये, तो आप बड़े नासमझ हैं।

मैं जो कह रहा हूँ, उसे समझने के लिए बुद्धि की जरूरत है। लेकिन मैं जो कह रहा हूँ, उसका अनुभव करने के लिए भाव की जरूरत है। तो बुद्धि से समझ लेना --और फिर भाव से करने में उतर जाना। अगर बुद्धि पर ही रुक गये और भाव तक न गये, तो वह समझ बेकार हो गयी और मैं आपका दुश्मन साबित हुआ। आप वैसे ही काफी बोझ से भरे थे और मैंने थोड़ा बोझ बढ़ा दिया। आपके मस्तिष्क

पर ऐसे ही काफी कूड़ा-करकट इकट्ठा है, उसमें मैंने और थोड़ा उपद्रव जोड़ दिया।

बुद्धि का काम है--समझ लेना। लेकिन वहीं रुक जाना बुद्धिमानी का लक्षण नहीं है। समझ कर उसे प्रयोग में ले आना और भाव में उतार देना, अनुभव बना लेना।

और जब तक कोई चीज अनुभव न बन जाय, तब तक ऐसी ही हालत होती है कि आप कोई चीज पेट में गटक लें और पचा न पायें। तो वह बीमारी पैदा करेगी, विजातीय हो जायेगी, जहर बन जायेगी और उसे शरीर से बाहर निकालने का उपाय करना पड़ेगा। लेकिन आप कोई चीज चबायें, ठीक से पचाएँ तो खून बनती है, मांस-मज्जा बनती है। बीमारी नहीं होती; फिर उससे स्वास्थ्य पैदा होता है।

बुद्धि का काम है कि आपके भीतर ले जाय, लेकिन भाव का काम है कि पचाये। और जब तक आप भाव से पचा न सकें, डायजेस्ट न कर सकें, तब तक सब ज्ञान जहर हो जाता है। तो अच्छा हो कि अपने कान बन्द कर लेना चाहिए।

जो बात भाव में न उतारनी हो, उसे न सुनना ही बेहतर है। क्या सार है? हम खाने में उन्हीं चीजों को खाते हैं, जिन्हें हमें पचाना है। जिन्हें नहीं पचाना है, उन्हें नहीं खाते। नहीं खाना चाहिए, क्योंकि उन्हें खाने का अर्थ है कि हम पेट पर व्यर्थ का बोझ डाल रहे हैं और शरीर की व्यवस्था को रुग्ण कर रहे हैं। और अगर इस तरह की चीजें हम खाते ही चले जायँ, तो हम शरीर को पूरी तरह नष्ट कर डालेंगे; तो भोजन हमारा जीवन नहीं बनेगा, मृत्यु बन जायेगी।

शब्द भी भोजन है। आप ऐसा मत सोचना कि सुन लिया। सुन लिया नहीं; आपके भीतर चली गयी बात। अब आप इससे बच नहीं सकते। कुछ करना पड़ेगा। या तो इसे पचाना पड़ेगा और या फिर यह आपके भीतर बीमारी पैदा करेगी।

बहुत लोग ज्ञान से बीमार हैं। उनको ज्ञान का अपच हो गया है। काफी सुन लिया है, पढ़ लिया है, चारों तरफ से इकट्ठा कर लिया है और पचाने की उन्हें कोई सुध-बुध नहीं है। वे भूल ही गये कि पचाना भी है। अब वह सब पत्थर की तरह उनकी छाती पर बैठ गया है।

उससे तो बेहतर है सुनना ही मत, पढ़ना ही मत। जब लगे कि पचाने की तैयारी है, तो ही सुनना।

बुद्धि भीतर ले जाने का द्वार है। भाव पचाने की व्यवस्था है।

सुनें; बुद्धि से समझें--और भाव तक पहुँचने दें।

निश्चित ही बुद्धि दो तरह के काम कर सकती है। या तो भाव तक पहुँचने दे और या बाहर रोकने की कोशिश करे, भीतर न आने दे। अगर आप सिर्फ तर्क का ही भरोसा करते हों, तो आपकी बुद्धि चीजों को बाहर धक्का देना शुरू कर

देगी। क्योंकि जो बात तर्क की पकड़ में नहीं आयेगी, बुद्धि कहेगी : भीतर मत लाओ। और जितनी कीमती बातें हैं, वे कोई भी तर्क की पकड़ में नहीं आतीं। क्योंकि तर्क की पकड़ में वही बात आ सकती है, जो केवल तर्क हो। अनुभव की कोई भी बात तर्क की पकड़ में नहीं आ सकती। तर्क और अनुभव का कहीं मेल नहीं होता।

एक अंधा आदमी है; उसको प्रकाश नहीं दिखायी पड़ता। आप उसको कितना हो तर्क करिये, समझ में नहीं आ सकता। वह इनकार करता चला जायेगा। वह तर्क देगा; आपको गलत सिद्ध करेगा। उसकी बुद्धि अगर तर्क से ही चले ...।

हम सब भी ऐसा ही कर रहे हैं--परमात्मा के सम्बन्ध में। तर्क से ही चलते हैं, इनकार करते चले जाते हैं। इनकार का एक अवरोध खड़ा हो जाता है। फिर कोई चीज प्रवेश नहीं करती। तर्क पहले ही कह देता है : बेकार है। गणित में नहीं आती। अनुभव की बात--रहस्य मालूम पड़ती है। यह अपनी सीमा नहीं। तर्क कह देता है : इसे बाहर छोड़ो।।

बुद्धि दूसरा काम कर सकती है कि द्वार बन जाय। जो अनुभव में आने योग्य हो, चाहे तर्क की समझ में न भी आता हो, उस पर भी प्रयोग करने की हिम्मत, सद्‌बुद्धि हो। नहीं तो बुद्धि दुर्बुद्धि हो जाती है। तर्क, कुतर्क हो जाता है। कहें कि मुझे अनुभव में नहीं है, लेकिन मैं प्रयोग करके देखूँगा।

हजार चीजें हैं, जो आपके अनुभव नहीं हैं। लेकिन आप प्रयोग करके देखें, तो आपका अनुभव बढ़ सकता है। और अनुभव में चीजें आ सकती हैं। और न आयें अनुभव में, तो मत मानना। लेकिन अनुभव के पहले इनकार कर देना अज्ञान है।

तो ईश्वर को, आत्मा को, मुक्ति को, आनन्द को, अद्वैत को बिना अनुभव के इनकार कर देना अज्ञान है। अनुभव का एक मौका अपने को दें। अब तक जिसने भी अनुभव किया, वह इनकार नहीं कर पाया। और जिन्होंने इनकार किया, उन्होंने अनुभव नहीं किया, सिर्फ तर्क से ही बात चलायी। तर्क बड़े खतरनाक हो सकते हैं और गलत चीजों के पक्ष में भी दिये जा सकते हैं। सही चीजों के विपरीत भी दिये जा सकते हैं।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने लड़के का विवाह करना चाहता था। एक धनी लड़की थी—कुरूप, बेडौल, बदशक्ल। मुल्ला का इरादा धन पर था। तो अपने लड़के को कहा कि 'सुना तूने, सुलताना से तेरे विवाह की बात चलायी है।

लड़के ने कहा, सुलताना! क्या मतलब? गाँव के नगरसेठ की लड़की, उससे? लेकिन उसे तो कम दिखायी पड़ता है!'

मुल्ला ने कहा, 'अभागे, अपने को भाग्यवान समझ। पत्नी को कम दिखायी पड़ता हो, इससे ज्यादा अच्छी बात पति के लिए और क्या हो सकती है! तू सदा

स्वतंत्र रहेगा। जो भी करना हो कर। पत्नी को कुछ दिखायी ही नहीं पड़ेगा।'

लड़का थोड़ा चौंका। उसने कहा, 'लेकिन मैंने सुना है कि यह तुतलाती भी है, हकलाती भी है!'

मुल्ला ने कहा, 'अगर मुझे शादी करनी होती दोबारा, तो मैं ऐसी ही स्त्री से शादी करता। यह तो भगवान् का वरदान समझ। क्योंकि स्त्री अगर तुतलाये, इकलाये तो ज्यादा बोलने की हिम्मत नहीं जुटाती। पति शान्ति से जीता है।'

उसके लड़के ने कहा, 'लेकिन मैंने तो सुना है कि वह बहरी भी है! उसे ठीक सुनायी भी नहीं पड़ता।'

नसरुद्दीन ने कहा कि 'नालायक, मैं तो सोचता था--तुझमें थोड़ी बुद्धि है। अरे, पत्नी बहरी हो, इससे बेहतर और क्या। तू गाली दे, चिल्ला, नाराज हो, वह कुछ भी नहीं समझ पायेगी।'

लड़के ने आखिरी बार हिम्मत जुटायी। उसने कहा, 'यह भी सब ठीक। लेकिन उसकी उम्र मुझसे बीस साल ज्यादा है!'

मुल्ला ने कहा, 'एक छोटे से दोष के लिये--कि वह बीस साल पहले पैदा हुई --इतना महान अवसर चूकता है! इतनी-सी छोटी-सी बात के लिये नाहक शोर-गुल मचाता है! ऐसी सुंदर स्त्री तेरे लिये ढूँढ रहा हूँ--और तू छोटी-सी बात--कि बीस साल ज्यादा है...! तो दुनिया में पूर्णता तो कहीं भी नहीं होती।

आदमी किस किस बात के लिए क्या क्या तर्क नहीं खोज सकता है! ऐसी कोई बात आपने सुनी, जिसके विपरीत तर्क न खोजा जा सके? या ऐसी कोई बात सुनी, जिसके पक्ष में तर्क न खोजा जा सके? तर्क का अपना कोई पता नहीं है, न कोई विक्षप है। तर्क तो नंगी तलवार है। उससे मित्र को भी काट सकते हैं, शत्रु को भी काट सकते हैं। और चाहें तो अपने को भी काट सकते हैं। तलवार का कोई आग्रह नहीं है कि किसको काटें। इसलिए जरा तलवार सम्हाल कर हाथ में लेना। तुम उससे क्या काट रहे हो, थोड़ा सोच लेना। बहुत से लोग अपने ही तर्क से खुद को काट डालते हैं।

तर्क का उपयोग करना--अगर वह अनुभव की तरफ ले जाय। तर्क का उपयोग करना अगर यह जीवन की गहराई की तरफ ले जाय। तर्क का उपयोग करना--अगर वह शिखरों का दर्शन कराये। तर्क का उपयोग करना--अगर वह गहराइयों में उतरे। अगर तर्क गहराइयों में उतरने से रोकता हो, तो ऐसे तर्क को कुतर्क समझना, और छोड़ देना, क्योंकि वह आत्महत्या है।

मेरी बात बुद्धि से समझें। लेकिन वह बात केवल बुद्धि की नहीं है। बुद्धि का हम उपयोग कर रहे हैं--एक माध्यम की तरह--एक साधन की तरह। वह बात

भाव की है और जब तक वह आपके भाव में न आ जाय, तब तक यात्रा अधूरी है। और यात्रा शुरू ही करनी हो, तो मंजिल तक जाने की चेष्टा करनी चाहिए। क्योंकि तभी रहस्य खुलता है

आखिरी प्रश्न।

● एक मित्र ने पूछा है कि क्या यह सम्भव है कि अहंकार से भरे हुए जगत् में कोई व्यक्ति निरहंकारी होकर जी सके, और सफल भी हो सके? क्या जहाँ सारे लोग अहंकार से भरे हैं, वहाँ निरहंकारी होकर जीना धारा के विपरीत तैरना न होगा? क्या इससे अड़चन, कठिनाइयाँ, असफलताएँ न आयेंगी?

थोड़ा समझें। पहली तो बात कि 'क्या अहंकार से भरे हुए इस जगत् में कोई व्यक्ति निरहंकारी होकर सफल हो सकता है?' निरहंकार सफलता की माँग नहीं करता। अहंकार सफलता की माँग करता है। निरहंकार सफलता को माँग नहीं करता।

सफलता का मतलब क्या है? सफलता का मतलब है कि मैं दूसरों से आगे। सफलता का मतलब है कि क्या मैं दूसरों को असफल कर सकूँगा। सफलता का मतलब है: क्या मैं दूसरों को पीछे छोड़कर उनके आगे खड़ा हो सकूँगा। सफलता का अर्थ है--महत्त्वाकांक्षा, एम्बीशन। यह सब तो अहंकार के लक्षण हैं।

अहंकार कहता है कि मुझे आगे खड़े होना है, नम्बर एक होना है। नम्बर दो में बड़ी पीड़ा है। पंक्ति में पीछे खड़ा हूँ--क्यू में, तो भारी दु:ख है। जितना पीछे हूँ--उतनी पीड़ा है। नम्बर एक होना है।

अहंकार की खोज महत्त्वाकांक्षा की खोज है। और जब मुझे नम्बर एक होना है, तो दूसरों को मुझे हटाना पड़ेगा; और दूसरों को मुझे रौंदना पड़ेगा; और दूसरों के सिरों का मुझे सीढ़ियों की तरह उपयोग करना पड़ेगा; और दूसरों के ऊपर --छाती पर--चढ़कर मुझे आगे आना पड़ेगा। सिंहासनों के रास्ते लोगों की लाशों से पटे हैं।

तो अहंकार की तो खोज ही यही है कि मैं सफल हो जाऊँ।

तो आपको खयाल में नहीं है। जब आप पूछते हैं कि 'अगर मैं निरहंकारी हो जाऊँ, तो क्या मैं सफल हो सकूँगा?'--इसका मतलब हुआ कि आप निरहंकारी भी सफल होने के लिए होना चाहते हैं! तो आप चूक गये बात।

निरहंकारी होने का अर्थ यह है कि सफलता का मूल्य नहीं है। मैं कहाँ खड़ा हूँ, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं पंक्ति में सबसे पीछे खड़ा हूँ, तो भी उतना ही आनन्दित हूँ, जितना प्रथम खड़ा हो जाऊँ तो।

जीसस ने कहा है, 'इस जगत् में जो सबसे पीछे खड़े हैं, मेरे प्रभु के राज्य में वे सबसे प्रथम होंगे।' लेकिन इस जगत् में जो सबसे पीछे खड़े हैं...।

निरहंकार का मतलब है कि पीछे खड़े होने में मुझे उतना ही मजा है। मेरे मजे में कोई फर्क नहीं पड़ता। वह मेरे खड़े होने में है। मेरे होने में मेरा मजा है।

लाओत्से ने कहा है: मुझे कभी कोई हरा नहीं सका, क्योंकि मैं लड़ने के पहले ही हारा हुआ हूँ। मेरा कोई कभी अपमान न कर सका, क्योंकि मैंने अपने मान की कोई चेष्टा नहीं की। और सभाओं में जहाँ लोग जूते उतारते हैं, वहाँ मैं बैठ जाता हूँ, ताकि कभी किसी को उठाने का मौका न आये।' तो लाओत्से ने कहा है कि 'मेरी विजय असन्दिग्ध है। मुझे कोई हरा नहीं सकता, क्योंकि मैं लड़ने के पहले ही हार जाता हूँ। मैं हारा ही हुआ हूँ।

निरहंकार का अर्थ है कि जो कहता है: हमने तुम्हारे लड़ने की नासमझी, विजय की मूढ़ता, तुम्हारा संघर्ष, तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा--इसका पागलपन अच्छी तरह समझ लिया और अब हम इसमें सम्मिलित नहीं हैं।

निर-अहंकार सफल नहीं होना चाहता। इसका यह मतलब नहीं है कि वह सफल होगा नहीं। बारीक फासले हैं। निर-अहंकार सफल नहीं होना चाहता, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि वह सफल नहीं होगा। वही सफल होता है। लेकिन उसकी सफलता की यात्रा का पथ बिलकुल दूसरा है। लोग धन इकट्ठा कर लेते हैं--बाहर। निरहंकारी भीतर के धन को उपलब्ध हो जाता है। लोग बाहर की विजय इकट्ठी कर लेते है। निरहंकारी भीतर उस जगह पहुँच जाता है, जहाँ कोई हार सम्भव नहीं है। लोग जीवन के लिए सामान जुटा लेते हैं, निरहंकारी जीवन को ही पा लेता है। लोग क्षुद्र को इकट्ठा करने में समय को व्यतीत कर देते हैं, लड़ते हैं, झगड़ते हैं, निरहंकारी विराट् से जुड़ जाता है।

निर-अहंकार की सफलता अद्भुत है। लेकिन वह सफलता का आयाम दूसरा है। उसे कौड़ियों में, रुपये-पैसे में नहीं तौला जा सकता। इस संसार की सफलता का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। लेकिन इस संसार में भी निरहंकारी से ज्यादा और आनन्दित आदमी नहीं पाया जा सकता।

तो अगर आप सफल होना चाहते हैं, तो कृपा करके अहंकार के रास्ते पर ही चलें। अगर आपको सफलता की मूढ़ता दिखायी पड़ गयी है--कि सफल होकर भी कौन सफल हुआ है? कौन नेपोलियन, कौन सिकन्दर, कहाँ हैं? किसने क्या पा लिया है? अगर आपको यह समझ में आ गया हो तो सफलता शब्द को छोड़ दें। वह अज्ञानपूर्ण है। बच्चों के लिए शोभा देता है। आप सफलता की बात ही छोड़ दें। किसी से आगे होने का मतलब भी क्या है? और आगे होकर भी क्या करियेगा? आगे ही क्यू में खड़े हो गये, तो वहाँ है क्या!

जो आगे खड़े हो जाते हैं, बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं, क्योंकि फिर उनको

तकलीफ यह होती है कि अब क्या करें! सिकन्दर से किसी ने कहा था कि 'अगर तू सारी दुनिया जीत लेगा, तो तूने कभी सोचा है कि फिर क्या करेगा!' तो सिकन्दर एकदम उदास हो गया और उसने कहा कि 'नहीं, मुझे यह खयाल नहीं आया। लेकिन तुम ऐसी बात मत करो। इससे मन बड़ा उदास होता है। फिर मैं सारी दुनिया जीत लूँगा, तो कोई दूसरी दुनिया तो है नहीं। तो फिर मैं क्या करूँगा!'

पूछें राष्ट्रपतियों से, प्रधानमंत्रियों से कि जब वे क्यू के आगे पहुँच जाते हैं, तो वहाँ कोई बस भी नहीं जिस पर सवार हो जायँ। वहाँ कुछ भी नहीं है। बस, क्यू के आगे खड़े हैं और पीछे से लोग धक्का दे रहे हैं, क्योंकि वे आगे आने की कोशिश कर रहे हैं। और वह जो आगे आ गया है, उसकी हालत ऐसी हो जाती है कि अब वह यह भी नहीं कह सकता कि अपनी पूँछ कट गयी; यहाँ आकर कुछ मिला नहीं। और अब पीछे लौटने में भी बेचैनी मालूम पड़ती है कि अब क्यू में कहीं भी खड़ा होना बहुत कष्टपूर्ण होगा। इसलिये वह कोशिश करता है कि जमा रहे वहीं। लेकिन वह अकेला ही तो नहीं। सारी दुनिया वहीं पहुँचने की कोशिश कर रही है। तो पीछे धक्के ...। लोग टाँग खींच रहे हैं। सब उतारने की कोशिश में लगे हैं। सब मित्र भी शत्रु हैं वहाँ। क्योंकि वे जो आसपास खड़े हैं; वे सब वहीं पहुँचना चाह रहे हैं। इसलिये राजनीतिज्ञ का कोई दोस्त नहीं होता। हो नहीं सकता। सब मित्र शत्रु होते हैं। मित्रता ऊपर-ऊपर होती है, भीतर शत्रुता होती है; क्योंकि वे भी उसी जगह के लिए--क्यू में नम्बर एक आने की काशिश में लगे हैं।

इसलिये राजनीतिज्ञ को जितना अपने शत्रुओं से सावधान रहना पड़ता है, उससे ज्यादा अपने मित्रों से। क्योंकि शत्रु तो काफी दूर रहते हैं, उनके आने में काफी वक्त लगता है। उतनी देर में कुछ तैयारी हो सकती है। मित्र बिलकुल करीब रहते हैं। जरा-सा धक्का और उसकी छाती पर सवार हो जायेंगे। तो उनको ठिकाने पर रखना पड़ता है चोबीस घण्टे। तो प्राइम मिनिस्टर का काम इतना है कि अपने कैबिनेट के मित्रों को ठिकाने पर रखे। कोई भी जरा ज्यादा न हो जाय। और जरा ज्यादा अकड़ न दिखाने लगे और जरा तेजी में न आ जाय। तेजी में आया तो उसको दुरुस्त करना एकदम जरूरी है, क्योंकि वह वही कर रहा है, जो पहले इन सज्जन ने किया था।

यह जो मूढ़ता है, जिसको दिखायी पड़ जाय--चाहे धन का हो, चाहे पद का हो, चाहे यश का हो--जिसको यह मूढ़ता दिखायी पड़ जाय--कि यह विक्षिप्तता है कि पहले पहुँचकर करियेगा क्या? तो आदमी निरहंकार की यात्रा पर चलता है।

निर-अहंकार सफलता असफलता की व्यर्थता की बोध है। लेकिन तब सफलता होती, पर वह आन्तरिक है। हो सकता है: इस जगत् में उसका कोई मूल्यांकन

भी न हो। बुद्ध को कितनी सफलता मिली, हम कैसे आँकें? क्योंकि बैंक बैलेंस तो कुछ है नहीं। बुद्ध को कुछ मिला कि नहीं मिला, हम कैसे पहचानें? क्योंकि इतिहास में कहीं कोई मूल्यांकन नहीं हो सकता। जो मिला है, वह कुछ दूसरे आयाम, किसी दूसरे डायमेन्शन का है। इस जगत् में उसकी कोई पहचान नहीं है।

लेकिन फिर भी हमको उसकी सुगन्ध लगती है। बुद्ध के उठने में, बैठने में हमें लगता है कि कुछ मिल गया। उनका मौन, उनकी शान्ति, उनका आनन्द, जीवन में उनका अभय, जीवन के प्रति उनकी गहन आस्था...। मृत्यु से भी जरा-सा संकोच नहीं। खो जाने की सदा तैयारी। जैसे वह पा लिया हो, जो खोता ही नहीं है। अमृत का कोई अनुभव उन्हें हुआ है। उसकी हमें सुगंध, उसकी थोड़ी झलक, उसकी झलक, उनके स्पर्श से, उनकी मौजूदगी से लगती है। लेकिन संसार की भाषा में उसे तौलने का कोई उपाय नहीं, कोई तराजू नहीं, कोई कशिश नहीं कि नाप लें जाँच लें --क्या मिला है।

सफलता तो निरहंकार की है। सच तो यह है कि सिर्फ निरहंकार ही सफल होता है। लेकिन वे फल जो निरहंकार की सफलता में लगते हैं, आन्तरिक हैं, भीतरी हैं। संसार की सफलता निरहंकार की सफलता नहीं है। लेकिन संसार की कोई सफलता, सफलता ही नहीं है।

तो यह मत पूछें। और यह भी मत पूछें कि इतने जहाँ लोग अहंकार से भरे हैं, अगर हम इन सबके विपरीत बहने लगें, तो बड़ी अड़चन होगी। आप गलती में हैं। अहंकार का मतलब होता है कि नदी से विपरीत बहना। नदी की धार बह रही है पश्चिम की तरफ, तो आप बह रहे हैं पूरब की तरफ। अहंकार का मतलब ही होता है उलटे जाना। क्योंकि लड़ने में अहंकार का रस है। जब धारा से कोई विपरीत लड़ता है, तभी तो पता चलता है कि मैं हूँ। जब आप नदी में धारा के साथ बहते हैं, तो कैसे पता चलेगा कि आप हैं। जब आप लड़ते है धारा से, तब पता चलता है कि मैं हूँ।

अहंकार है--जीवन की धारा के विपरीत। निरहंकार है--धारा के साथ। माना कि और सब लोग जो ऊपर की तरफ जा रहे हैं धारा में, आप उनसे नीचे की तरफ जायेंगे। लेकिन आप यह मत सोचिये कि इससे वे दुःखी होंगे। इससे वे प्रसन्न होंगे, क्योंकि एक कम्पिटीटर कम हुआ, एक प्रतियोगी अलग हटा। इसलिए आप जरा देखें: अहंकारी भी निरहंकारियों को सम्मान देते हैं। राजनीतिज्ञ कभी साधु के चरणों में आकर बैठता है। यह आदमी अलग हट गया मैदान से। एक दुश्मन कम हुआ। इसने लड़ाई छोड़ दी। यह बहने लगा धारा में।

तो आपको लगता है कि आप विपरीत धारा में बहेंगे निरहंकारी होकर, तो

गलत लगता है। आप अहंकारी होकर धारा के विपरीत बह रहे हैं--जीवन की धारा के विपरीत। निरहंकारी हो कर आप जीवन की धारा में बहेंगे। हाँ और अहंकारियों के विपरीत आप जायेंगे, लेकिन इससे कोई अड़चन न होगी। अड़चन हो सकती है, अगर आप निरहंकार से भी संसार का धन, संसार की प्रतिष्ठा और पद पाना चाहते हों। तो अड़चन हो सकती है।

सुना है मैंने, एक सम्राट् प्रार्थना कर रहा था एक मन्दिर में। वर्ष का पहला दिन था और सम्राट् वर्ष के पहले दिन मन्दिर में प्रार्थना करने आया। वह प्रार्थना कर रहा था और परमात्मा से कह रहा था कि 'मैं क्या हूँ--धूल हूँ तेरे चरणों की। धूल से भी गया-बीता हूँ। पापी हूँ। मेरे पापों का कोई अन्त नहीं है। दुष्ट हूँ, क्रूर हूँ, कठोर हूँ। मैं कुछ भी नहीं हूँ। आइ एम जस्ट ए नो-बडी, ए नथिंग।' बड़े भाव से कह रहा था। और तभी पास में बैठा एक फकीर भी परमात्मा से प्रार्थना कर रहा था और वह भी वह था कि 'मैं भी कुछ नहीं हूँ। आइ एम नो-बडी--नथिंग।' सम्राट् को क्रोध आ गया। उसने कहा, 'लिसन, हू इज नथिंग? एण्ड बिफोर मी! सुन, कौन कह रहा हैं कि मैं कुछ भी नहीं हूँ? और मेरे सामने! जब कि मैं कह रहा हूँ कि मैं कुछ भी नहीं हूँ, तो कौन प्रतियोगिता कर रहा है?'

जो आदमी कह रहा है कि मैं कुछ भी नहीं हूँ, वह भी इस फिक्र में लगा हुआ है कि कोई दूसरा न कह दे कि मैं कुछ भी नहीं हूँ। कोई प्रतियोगिता न करे। अब, जब तुम कुछ भी नहीं हो, तो अब क्या दिक्कत है, अब क्या डर है! लेकिन कहीं दूसरा इसमें भी आगे न निकल जाय!

अहंकार के खेल बहुत सूक्ष्म हैं। अगर आप किसी निरहंकारी से कहें कि तुमसे भी बड़े निरहंकारी को मैंने खोज लिया है, तो उसको भी दुःख होता है--कि 'अच्छा, मुझसे बड़ा...? मुझसे बड़ा भी कोई विनम्र है? तुम गलती में हो। मैं आखिरी हूँ। मुझसे आगे, मुझसे बड़ा विनम्र कोई भी नहीं है।' उसको पीड़ा होती है। निरहंकारी को भी लगता है कि मुझसे आगे कोई न निकल जाय। तो फिर यह अहंकार की ही यात्रा रही। फिर यह निरहंकार झूठा है, थोथा है।

निरहंकार का मतलब है: हम प्रतियोगिता के बाहर हट गये। अब हमसे कोई आगे-पीछे कहीं भी हो, इससे कोई प्रयोजन नहीं है। हम अपने होने से राजी हो गये। अब हमारी दूसरे से कोई स्पर्धा नहीं है।

निरहंकार का मतलब है: मैं जैसा हूँ--हूँ। अब मैं किसी के आगे और पीछे अपने को रखकर नहीं सोचता। अब मैं अपनी तुलना नहीं करता हूँ। और मेरा मूल्य मैं तुलना से नहीं आँकता हूँ।

जिस दिन कोई व्यक्ति अपना मूल्य तुलना से नहीं आँकता, उसने संसार के

तराजू से अपने को हटा लिया। लेकिन ऐसा व्यक्ति परमात्मा की आँखों में मूल्यवान हो जाता है। जो व्यक्ति पड़ोसियों की आँखों का मूल्य खोने को राजी है, वह परमात्मा की आँखों में मूल्यवान हो जाता है। और जो व्यक्ति पड़ोसियों की आँखों में ही अपने मूल्य को थिर करने में लगा है, उसका कोई मूल्य परमात्मा की आँखों में नहीं है।

यहाँ से जो हटता है--प्रतियोगिता से, तत्क्षण परमात्मा के हाथों में उसका गौरव हो जाता है। इसलिए जीसस ने कहा है कि जो यहाँ अन्तिम हैं, वे मेरे प्रभु के राज्य में प्रथम हो जायेंगे।

लेकिन आप अन्तिम होने की कोशिश इसलिये मत करना कि प्रभु के राज्य में प्रथम होना है। नहीं तो अन्तिम हो ही नहीं रहे हैं।

जीसस जिस दिन पकड़े गये और जिसके दूसरे दिन उनकी मौत हुई, रात जब उनके शिष्य उन्हें छोड़ने लगे, तो एक शिष्य ने उन्हें पूछा कि 'जाते-जाते यह तो बता दें...। माना कि तुम्हारे प्रभु के राज्य में हम प्रथम होंगे, लेकिन हम भी बारह हैं। सबसे प्रथम कौन होगा? माना कि तुम तो प्रभु के पुत्र हो, तो तुम तो सिंहासन के बिलकुल बगल में बैठोगे। लेकिन तुम्हारे बगल में कौन बैठेगा?'

वे बारह जो शिष्य हैं, उनको भी चिन्ता है कि वहाँ बारह की पोजिशन...! कौन कहाँ बैठेगा?

तो बात ही चूक गयी। जीसस को खो गये। फिर जीसस को समझे ही नहीं। प्रभु के राज्य में प्रथम होंगे, यह परिणाम है--अगर आप अन्तिम होने को राजी हैं। लेकिन अगर यह आपकी वासना है, तो यह कभी भी नहीं होगा। क्योंकि तब आप अन्तिम होने को राजी ही नहीं हैं। तब तो आप प्रथम ही होने को राजी हैं। यह संसार हो कि वह संसार हो--कहीं भी हो--लेकिन होना प्रथम है। आप लगे हैं--उपद्रव में, प्रतियोगिता में।

निरहंकार का अर्थ है कि परमात्मा की आँखों में जैसा भी मैं हूँ--मैं आनन्दित हूँ। और अब मैं किसी से तुलना नहीं करता हूँ। और मैं छोड़ता हूँ--प्रतियोगिता। यह समझ—यह बोध—जिसे आ जाय, फिर वह इसकी फिक्र नहीं करेगा कि क्या तकलीफें होंगी। कोई तकलीफ हो। सब तकलीफें अहंकार से होती हैं। निरहंकारी को कोई भी तकलीफ नहीं है।

चुभता ही काँटा--अहंकार के घाव में है। एक आदमी निकला और उसने नमस्कार नहीं किया। रोज करता था। तकलीफ शुरू हो गई। कुछ भी नहीं करता था। हाथ जोड़ लेता था, तो क्या मिलता था! और आज नहीं जोड़े, तो क्या तकलीफ हो रही है!

किसी ने गाली दे दी, तो तकलीफ हो गयी। किसी ने जरा ढंग से न देखा, तो तकलीफ हो गयी! रास्ते से जा रहे थे, कोई हँसने लगा, तो तकलीफ हो गयी! कहाँ--यह घाव है कहाँ? यह आपका अहंकार है--इसमें ही घाव है। तो आप सोचते हैं कि कोई हँस रहा है, तो बस, मुझे ही सोचकर हँस रहा है। कोई गाली दे रहा है, तो मुझे नीचे उतार रहा है। आप ऊपर चढ़े क्यों हैं? कोई गाली भी देकर कितना नीचे उतारेगा? आप उससे पहले ही नीचे खड़े हो जायँ।

कोई सम्मान नहीं कर रहा है, तो पीड़ा हो रही है। क्योंकि सम्मान की माँग है। दुःख दूसरा नहीं दे रहा है। दुःख का घाव आप पहले बनाये हैं; दूसरा तो घाव को छू रहा है केवल।

अहंकार छूटते ही पीड़ा का विसर्जन हो जाता है। आपका घाव ही समाप्त हो गया।

आपने खयाल किया है: अगर पैर में चोट लग जाय किसी दिन, तो फिर दिन भर उसी जगह चोट लगती है। लेकिन अपने खयाल किया कि सारी जमीन आपके घाव की इतनी फिक्र कर रही है! दरवाजे से निकलें, तो दरवाजा उसी में चोट मारता है; कुर्सी के पास जायँ, तो कुर्सी उसे चोट मारती है। बच्चे से बात करने लगें, तो बच्चा उस पर पैर रख देता है। यह मामला क्या है--कि सारी दुनिया को पता हो गया है कि आपके पैर में चोट लगी है!--और सब उसी को चोट मार रहे हैं! किसी को पता नहीं है। लेकिन आज आपको चोट लगती है, क्योंकि घाव है। कल भी लगती थी, लेकिन पता नहीं चलता ता, क्योंकि घाव नहीं था। कल भी इस बच्चे ने यहीं पैर रखा था। और यह कुर्सी कल भी यहीं छू गयी थी। लेकिन तब आपको पता भी नहीं चला था, क्योंकि घाव नहीं था।

अहंकार घाव है। फिर हर चीज उसी में लगती है। आप तैयार ही खड़े हैं कि आओ और लगो! और जब तक कुछ न लगे, तब तक आपको बेचैनी लगती है कि आज बात क्या है; कुछ लग नहीं रहा है! और हर आदमी सम्हला चल रहा है कि कोई न कोई लगाने आ रहा है। इतनी भीड़ है, इतनी बड़ी दुनिया है, किसी को मतलब है आपसे! कोई आपको चोट पहुँचाने को उत्सुक नहीं है। और अगर कोई धक्का भी देता है, तो चोट आपको इसलिए पहुँचती है कि आप घाव तैयार रखे हैं। नहीं तो पता भी नहीं चलता। ठीक था: किसी ने गाली दी और आप अपने रास्ते पर चले गये।

बुद्ध को लोगों ने गालियाँ दी हैं, तो बुद्ध ने कहा है: जब तुम गाली देते हो, तो मैं सोचता हूँ कि तुम किसको गाली दे रहे हो! इस शरीर को?--तो यह तो मिट ही जायेगा। और जो मिट ही जाने वाला है, उसके साथ गाली का क्या

लेना-देना। तुम मुझको गाली दे रहे हो?--तुम्हें मेरा क्या पता हो? तुम्हें अपना ही पता नहीं है। तो मैं सोचता हूँ और हँसता हूँ कि क्या हो गया है!

स्वामी राम कहते थे कि कोई उन्हें गाली दे दे, तो वे हँसते हुए आते वे और कहते थे: आज बाजार में बड़ा मजा आ गया। 'राम' को लोग गालियाँ देने लगे। और हम खड़े होकर हँसने लगे कि अच्छे फँके राम! और चाहो नाम, उपद्रव होगा!

जब वे पहली दफा अमेरिका गये, तो लोग समझे नहीं कि वे किसको 'राम' कहते हैं। वे खुद को ही राम कहते—खुद के ही शरीर को। वे कहते कि राम को आज बड़ी भूख लगी; हम बड़े हँसने लगे। या राम को लोगों ने गालियाँ दीं, और हम हँसने लगे। तो लोग पूछते कि आप किसकी बात कर रहे हैं! तो वे कहते: इस राम की। इसको जब गाली पड़ती है, तो पीछे हम खड़े हो कर हँसते हैं--कि देखो, अब क्या होता है! अब यह राम क्या करता है? यह अहंकार अब क्या करता है?

अगर आप पीछे खड़े हो कर हँसने लगें, तो फिर यह कुछ भी नहीं कर सकेगा। यह गिर ही जायेगा। यह करता ही तब तक है, जब तक आप मानते हैं कि यही मैं हूँ। जब तक यह आइडेन्टिफिकेशन है, यह तादात्म्य है, तभी तक इसकी पीड़ा है।

अहंकार से हट कर देखें। अहंकार से हटते ही आप नरक से हट गये। अहंकार से हटते ही स्वर्ग का द्वार खुल गया। अहंकार के हटते ही इस जगत् में आपका न संघर्ष है, न कोई प्रतिस्पर्धा है। अहंकार से हटते ही यह जगत् आपको स्वीकार कर लेगा--जैसे आप हैं। अहंकार से हटते ही आप परमात्मा की आँखों में ऊपर उठ गये।

अब हम सूत्र को लें।

'और यदि तू मन को मेरे में अचल स्थापन करने के लिए समर्थ नहीं है, तो हे अर्जुन, अभ्यासरूप योग के द्वारा मेरे को प्राप्त होने के लिए इच्छा कर।'

कृष्ण ने कहा कि और अगर तू पाये कि एकदम से भाव कैसे करूँ, और मन को एकदम से कैसे लगा दूँ प्रभु में, और एकदम से कैसे डूब जाऊँ--लीन हो जाऊँ; अगर तुझे ऐसा प्रश्न उठे कि--'कैसे', तो फिर अभ्यासरूप योग के द्वारा मुझको प्राप्त करने की इच्छा कर। यह बात समझ लेने जैसी है।

दो तरह के लोग हैं। एक तो वे लोग हैं, जिनको यह कहने से ही कि--डूब जाओ, डूब जायेंगे। वे नहीं पूछेंगे--कैसे।

छोटे बच्चे हैं। उनसे कहो कि नाचो--और नाच में डूब जाओ। तो वे नहीं पूछेंगे--कैसे। नाचने लगेंगे और डूब जायेंगे। और अगर कोई बच्चा पूछे--कैसे, तो समझना कि बूढ़ा उसमें पैदा हो गया; वह अब बच्चा है नहीं। 'कैसे' का

मतलब ही यह है कि पहले कोई तरकीब बताओ, तब हम डूबेंगे। डूब सीधा नहीं सकते। इसका मतलब यह हुआ कि डूबने और हमारे बीच में कोई बाधा है, जिसको तोड़ने के लिए तरकीब की जरूरत होगी।

बच्चा डूब जायेगा; नाँचने लगेगा। बच्चा जानता ही है। खेल में डूब जाता है। बच्चे को खेल से निकालना पड़ता है--डुबाना नहीं पड़ता। बच्चा डूबा होता है; माँ-बाप को खींच-खींच कर बाहर निकालना पड़ता है--कि निकल आओ। अब चलो। और यह है कि खिचा जा रहा है। खेल में डूबा हुआ है। ये माँ-बाप कहाँ उसे खाने की, पीने की, सोने की--व्यर्थ की बातें कर रहे हैं! वह लीन था। उन लीनता में वह अस्तित्व के साथ एक था। चाहे वह कोई गुड्डी हो, चाहे वह कोई खिलौना हो; चाहे कोई खेल हो। वह जानता है।

बच्चे कभी नहीं पूछते कि खेल में कैसे डूबें! आपने किसी बच्चे को सुना है पूछते--कि खेल में कैसे डूबें? वह डूबना जानता है। वह पूछता नहीं।

जो लोग बच्चों की तरह ताजे होते हैं... थोड़े से लोग...। और उनकी संख्या रोज कम होती जाती है। वे लोग सीधे डूब सकते हैं।

पुरानी कहानियाँ हैं साधकों की। तिलोपा ने अपने शिष्य नारोपा को कहा कि तू आँख बन्द कर और डूब जा। और नारोपा ने आँखें बन्द कर लीं और डूब गया। और ज्ञान को उपलब्ध हो गया।

बड़ा मुश्किल मालूम पड़ता है! इतना मामला आसान है! इस भी आँख बन्द करते हैं। और कोई कितना ही कहे--डूब जाओ, आँख बन्द हो जाती है, विचार चलते रहते हैं। डूबने का कुछ पता नहीं चलता। बल्कि आँख बन्द करके और ज्यादा चलने लगते हैं। आँख खुली रहती है--थोड़े कम चलते हैं। बाहर उलझे रहते हैं, तो थोड़ा खयाल कम रहता है। आँख बन्द की कि मुश्किल हो जाती है।

आपसे लोग कहते हैं: एकान्त में बैठ जाओ। आप कहते हैं: एकान्त में तो और मुसीबत हो जाती है। इतना तो लोगों से बातचीत करते रहते हैं, तो मन उसमें उलझा रहता है। उलझा रहता है, इसलिये लगता है--सुलझा है। अकेले में तो हम ही रह जाते हैं, तो बड़ी तकलीफ होती है।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने डॉक्टर के पास गया। और डॉक्टर से कहने लगा, 'एक बड़ी मुसीबत हो गयी है सुबह--साँझ--रात--सुबह--जागूँ कि सोऊँ, बस, एक मुश्किल हो गयी है--अपने से बातें--अपने से बातें--अपने से बातें करने में लगा हूँ। कुछ इलाज ...?'

डॉक्टर ने कहा, 'इतने परेशान मत होओ। लाखों लोग अपने से बातें करते हैं।' मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, 'आप समझे नहीं। तुम्हें पता नहीं। अपने से बात करने से

मैं भी इतना न घबड़ाता। लेकिन मैं इतना उबाने वाला हूँ...। अभी तक मैं दूसरों को बोर करता था। अब खुद ही को करता हूँ। अभी तक दूसरों को उबाता था। तब तक भी थोड़ी राहत थी। अब मैं अपने को ही उबाता हूँ चौबीस घंटे। वही बातें जो हजार दफे कह चुका हूँ--कह रहा हूँ।'

इसलिए हम भागते हैं अकेलेपन से। जल्दी से पकड़ो किसी को। कहीं भी कोई मिल जाय, तो एकदम झपट पड़ते हैं—आक्रमण कर देते हैं। हमारे प्रश्न, हमारी बातचीत कुछ नहीं है; भीतर की बेचैनी है।

अब मौसम आपको भी पता है कि कैसा है, जिससे आप पूछ रहे हैं, उसको भी पता है कि कैसा है। आप कहते हैं: 'कहो, कैसा मौसम है?' क्या पूछना है! नहीं; लेकिन सिलसिला शुरू कर रहे हैं आप सिर्फ। यह तो सिर्फ ट्रिक है--प्राथमिक। फिर जल्दी से आप जो आपके भीतर उबल रहा है, वह उसके ऊपर उबाल देंगे। फिर जो ज्यादा ताकतवर होगा, वह दूसरे को दबाकर उसकी खोपड़ी में बातें डाल कर भाग खड़ा होगा। जो कमजोर होगा, वह बेचारा सुन लेगा--कि ठीक है। अब दुबारा जरा सावधान रहना इस आदमी से। जब यह पूछे कि मौसम कैसा है, तभी निकल जाना।

लेकिन अकेले में घबड़ाहट होती है, क्योंकि अकेले में आप ही अपने से पूछ रहे हैं कि मौसम कैसा है और आपको पता है कि मौसम ऐसा है। कुछ ...।

लेकिन तिलोपा ने नारोपा से कहा कि आँख बन्द कर और डूब जा। और वह डूब गया। छोटे बच्चे जैसा रहा होगा।

जमीन बचपन में थी। अब जमीन जवान है; अडल्ट हो गयी है। हजार, दो हजार, तीन हजार साल पहले, पाँच हजार साल पहले जो लोग थे--बच्चों जैसे थे। उनसे कहो कि डूब जाओ--तो वे डूब गये। उन्होंने नहीं पूछा कि कैसे।

हम पूछेंगे कि कैसे!

तो कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि अगर तू डूब सकता हो, मुझमें, तो डूब जा। फिर तो कोई बात करने की नहीं है। लेकिन अर्जुन सुसंस्कृत क्षत्रिय है। पढ़ा-लिखा है। उस समय का बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी है। तो कृष्ण को भी शक है कि वह डूब सकेगा कि नहीं। तो वे कहते हैं कि और अगर न डूब सके, तो फिर अभ्यास-रूप-योग द्वारा मुझको प्राप्त होने की इच्छा कर। फिर तुझे अभ्यास करना पड़ेगा।

भक्त बिना योग के पहुँच जाता है। जो भक्त नहीं हो सकता, उसको योग से जाना पड़ता है। योग का मतलब है--टेक्नॉलॉजी। अगर सीधे नहीं डूब सकते, तो टेकनीक का उपयोग करो। तो फिर एक बिन्दु बनाओ। उस पर चित्त को एकाग्र करो। एक मंत्र लो। सब शब्दों को छोड़कर—ओम्--ओम्--एक ही मंत्र

को दोहराओ--दोहराओ। सारा ध्यान उस पर एकाग्र करो।

अगर मंत्र से काम न चलता हो, तो शरीर को बिलकुल थिर करके आसान में रोक रखो। क्योंकि जब शरीर बिलकुल थिर हो जाता है, तो मन को थिर होने में सहायता पहुँचाता है। तो फिर शरीर को पत्थर की तरह, मूर्ति की तरह थिर कर लो। सिद्धासन है, पद्मासन है--उसमें बैठ जाओ।

अगर आँख खोलने से बाहर की चीजें दिखायी पड़ती हैं, और आँख बन्द करने से भीतर की चीजें दिखायी पड़ती हैं, तो आधी आँख खोलें। तो नाक ही दिखायी पड़े बस, इतना बाहर है। और भीतर भी नहीं, बाहर भी नहीं, बस, नाक पर ही अपने को थिर कर लो।

ये सब टेकनीक हैं। वे सब उनके लिये हैं, जो भक्त नहीं हो सकते। जो प्रेम नहीं कर सकते, उनके लिये हैं। योग उनके लिये है, जो प्रेम में असमर्थ हैं। जो प्रेम में समर्थ हैं, उनके लिये योग की कोई भी जरूरत नहीं है। लेकिन जो प्रेम में समर्थ नहीं हैं, उनको पहले अपने को तैयार करना पड़े कि कैसे डूबें। तो नाक के बिन्दु पर डूबो; कि नाभि पर ध्यान को केन्द्रित करो; कि बन्द कर लो अपनी आँखों को और भीतर एक प्रकाश का बिन्दु कल्पित कर लो--उस पर ध्यान को एकाग्र करो। वर्षों मेहनत करो। 'अभ्यासरूपी योग द्वारा।' और जब इन छोटे-छोटे प्रयोगों से अभ्यास करते-करते वर्षों में तुम इस जगह आ जाओ कि अब तुम न पूछो--कि कैसे। क्योंकि तुम्हें पता हो गया कि ऐसे डूबा जाता है; तब सीधे परमात्मा में डूब जाओ। तब अपने बिन्दु, अपने मंत्र, और अपने यंत्र--सब छोड़ दो। और सीधी छलाँग लगा लो।

जो सीधा कूद सके--इससे बेहतर कुछ भी नहीं है।

प्रेमी सीधा कूद सकता है। लेकिन अगर बुद्धि बहुत काम करती हो, तो फिर पूछें--कि हाउ--कैसे; तो फिर योग की परम्परा है। पतंजलि के सूत्र हैं। फिर साधो। फिर उनको साध-साध कर पहले सीखो एकाग्रता, फिर तन्मयता में उतरो।

'अभ्यासरूप योग के द्वारा मुझे प्राप्त करने की इच्छा कर। और यदि तू ऊपर के कहे हुए अभ्यास में भी असमर्थ हो, तो यह भी हो सकता है, कि तू कहे कि बड़ा कठिन है। कहाँ बैठे हैं! तो कितना बैठो, सम्हाल कर, शरीर कँपता है। और मन को कितना ही रोको, मन रुकता नहीं है। और ध्यान लगाओ, तो नींद आती है, तल्लीनता नहीं होती है...।

अगर तू इसमें भी समर्थ न हो, तो फिर एक काम करना। तो केवल मेरे लिये कर्म करने के ही परायण हो, इस प्रकार मेरे अर्थ कर्मों को करता हुआ मेरी प्राप्ति, मेरी सिद्धि को पा सकेगा।

अगर तुझे यह भी तकलीफ मालूम पड़ती हो, अगर भक्ति-योग तुझे कठिन मालूम पड़े, तो फिर ध्यान-योग है। ध्यान-योग का अर्थ है : योग की साधना--अभ्यास। अगर तुझे वह भी कठिन मालूम पड़ता है, तो फिर कर्म-योग है। तो फिर तू इतना ही कर कि सारे कर्मों को मुझमें समर्पित कर दे। और ऐसा मान ले कि तेरे भीतर मैं ही कर रहा हूँ। और मैं ही तुझसे करवा रहा हूँ। और तू ऐसे कर जैसे मेरा साधन हो गया है--उपकरण-मात्र। न पाप तेरा, न पुण्य तेरा। न अच्छा तेरा, न बुरा तेरा। सब तू छोड़ दे और कर्म को तू मेरे प्रति समर्पित कर दे।

ये तीन मार्ग हैं। श्रेष्ठतम तो प्रेम है। क्योंकि छलाँग सीधी लग जायेगी। नम्बर दो पर साधना है। क्योंकि प्रयास और अभ्यास से लग सकेंगे। अगर वह भी न हो सके, तो नम्बर तीन पर जीवन का कर्म है। फिर पूरे जीवन के कर्म को प्रभु-अर्पित मानकर चलता जा।

इन तीन में से ही किसी को चुनाव करना पड़ता है। और ध्यान रहे : जल्दी से तीसरा मत चुन लेना। पहले तो कोशिश करना, खयाल करना पहले की--प्रेम की। अगर बिलकुल ही अपने को असमर्थ पायें कि नहीं, यह हो ही नहीं सकता...।

कुछ लोग प्रेम में बिलकुल असमर्थ हो गये हैं--अपने ही अभ्यास से। जैसे कोई आदमी अगर धन को बहुत पकड़ता हो, पैसे को बहुत पकड़ता हो, तो प्रेम में असमर्थ हो जाता है। क्योंकि विपरीत बातें हैं। अगर पैसे को जोर से पकड़ना है, तो आदमी को प्रेम से बचना पड़ता है? क्योंकि प्रेम में पैसे को खतरा है। प्रेमी पैसा इकट्ठा नहीं कर सकता। जिनसे प्रेम करेगा, वे ही उसका पैसा खराब करवा देंगे। प्रेम किया कि पैसा हाथ से गया।

तो जो पैसे को पकड़ता है, वह प्रेम से सावधान रहता है कि प्रेम की झंझट में नहीं पड़ना है। वह अपने बच्चों तक से सम्हल कर बोलता है। क्योंकि आप भी जानते हैं कि जरा मुसकराओ, तो बच्चा खीसे में हाथ डालता है। मत मुसकराओ, अकड़े रहो, घर में अकड़ कर घुसो। बच्चा डरता है कि कोई गलती तो पता नहीं चल गयी। गलती तो बच्चे कर ही रहे हैं। और बच्चे नहीं करेंगे, तो कौन करेगा! तो बच्चा समझता है कि कोई गड़बड़ हो गयी है; जरा दूर ही रहो। लेकिन बाप अगर मुसकुरा दे, तो बच्चा फौरन उसके खीसे में हाथ डालता है।

तो बाप पत्नी से भी सम्हल कर बात करता है। क्योंकि जरा ही वह ढीला हुआ और उसकी कमर झुकी कि पत्नी ने बताया कि इतनी साड़ियाँ .. इतने... ! तो जिसको पैसे पर बहुत पकड़ है, वह प्रेम से तो बहुत डरा हुआ है। और हम सबकी पैसे पर भारी पकड़ है। और बहाने हम कई तरह के निकालते हैं कि पैसे पर हमारी पकड़ क्यों है। लेकिन बहाने सब बहाने हैं। एक बात पक्की है कि पैसे की

पकड़ हो, तो प्रेम जीवन में नहीं होता। तो जितना ज्यादा पैसे की पकड़वाला युग होगा, उतना प्रेमशून्य होगा। और प्रेमपूर्ण युग होगा, तो बहुत आर्थिक रूप से सम्पन्न नहीं हो सकता। पैसे पर पकड़ छूट जायेगी।

प्रेमी आदमी बहुत समृद्ध नहीं हो सकता। उपाय नहीं है। पैसा छोड़कर भाग जायेगा--उसके हाथ से। किसी को भी दे देगा। कोई भी उससे निकाल लेगा।

तो हम अगर प्रेम में समर्थ हो सकें, तब तो श्रेष्ठतम। अगर न हो सकें, तो अभ्यास की फिक्र करनी चाहिये। फिर योग-साधन हैं। अगर उनमें भी असफल हो जायँ, तो ही तीसरे का प्रयोग करना चाहिये। फिर हम कर्म को...। क्योंकि वह मजबूरी है। जब कुछ भी न बने, तो आखिरी है।

जैसे आप पहले एलोपैथ डॉक्टर के पास जाते हैं। अगर वह असफल हो जाय, फिर होमिओपैथ के पास जाते हैं। वह भी असफल हो जाय, तो नेचरोपैथ के पास जाते हैं। जो नेचरोपैथी है, वह आखिरी है। जब ऐसा लगे कि कुछ होता ही नहीं है, कि ज्यादा से ज्यादा नेचरोपैथ मारेगा--और क्या करेगा, तो ठीक है अब। सब हार गये हैं, तो कहीं--भी जाया जा सकता है।

कर्म-योग आखिरी है। क्योंकि इसके बाद फिर कुछ भी नहीं है उपाय। तो सीधा कर्म-योग से प्रयोग शुरू मत करना, नहीं तो दिक्कत में पड़ जायेंगे। क्योंकि उससे नीचे गिरने की कोई जगह नहीं है।

पहले प्रेम से शुरू करना। अगर हो जाय--अद्भुत। न हो पाय, तो अभी तो उपाय हैं। अभी दो इलाज बाकी हैं। फिर अभ्यास का प्रयोग करना। और जल्दी मत छोड़ देना। क्योंकि अभ्यास तो वर्षों लेता है। तो वर्षों मेहनत करना। अगर हो जाय, तो बेहतर है। अगर न हो पाय, तो फिर कर्म शुरू करना। और ध्यान रहे : जिसने प्रेम का प्रयोग किया और असफल हुआ; और जिसने योग का अभ्यास किया मेहनत की--और असफल हुआ, वह कर्म-योग में जरूर सफल हो जायेगा। लेकिन जिसने न प्रेम का प्रयोग किया--न असफल हुआ; न जिसने योग साधा--न असफल हुआ, वह कर्म-योग में भी सफल नहीं हो पायेगा। वे दो अफलताएँ जरूरी हैं--तीसरे की सफलता के लिये। क्योंकि फिर वह आखिरी कदम है और जीवन मृत्यु का सवाल है। फिर आप पूरी ताकत लगा देते हैं, क्योंकि उसके बाद फिर कोई विकल्प नहीं है। इसलिये निकृष्ट से शुरू मत करना।

कई लोग अपने को धोखा देते रहे हैं। वे कहते हैं : हम तो कर्म-योग में लगे हैं!

मेरे पास लोग आ जाते हैं। धन्धा करते हैं, नौकरी करते हैं। वे कहते हैं। हम तो कर्म-योग में लगे हुए हैं। जैसे कोई भी काम करना कर्म-योग है! कोई भी काम करना कर्म-योग नहीं है। कर्म-योग का मतलब है : काम आप नहीं कर रहे,

परमात्मा कर रहा है--यह भाव है। दुकान आप नहीं चला रहे, परमात्मा चला रहा है। और फिर जो भी सफलता असफलता हो रही है, तो आपकी नहीं हो रही है; परमात्मा की हो रही है। और जिस दिन आप दीवालिया हो जायँ, तो कह देना : परमात्मा दीवालिया हो गया। और जिस दिन धन बरस पड़े, तो कहना कि उसका ही श्रेय है। मैं नहीं हूँ। अपने को हटा लेना और सारा कर्म उस पर छोड़ देना।

अब हम कीर्तन करें। बीच में उठें मत। थोड़े से पाँच मिनट के लिये नासमझी कर देते हैं। और जब कीर्तन चलता है, तब आप खड़े हो जाते हैं, तो फिर सबको खड़ा होना पड़ता है। पाँच मिनट बैठकर कीर्तन में सम्मिलित हों।

मार्ग अनेक—मंजिल एक • आकर्षण के तीन तल कर्म-योग की कसौटी • कर्मफल समर्पण

छठवाँ प्रवचन

क्रॉस मैदान, पारसी कुआँ, बम्बई, संध्या, दिनांक १७ मार्च, १९७३
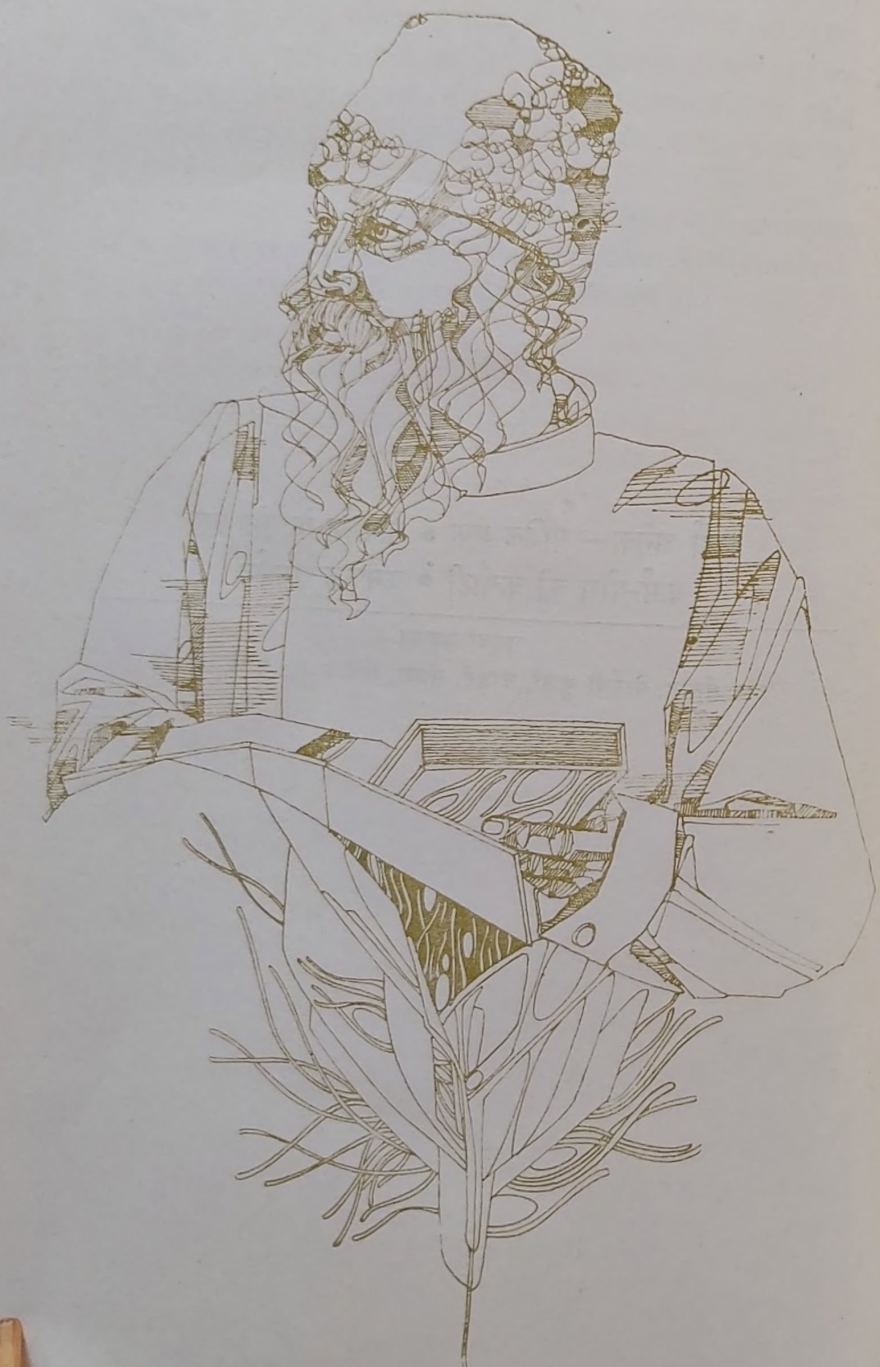
अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ।। ११ ।।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासात् ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागः त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ।। १२ ।।

और यदि इसको भी करने के लिये असमर्थ है, तो जीते हुए मन वाला और मेरी प्राप्तिरूप योग के शरण हुआ सब कर्मों के फल का मेरे लिये त्याग कर।

क्योंकि मर्म को न जानकर किये हुए अभ्यास से परोक्ष ज्ञान श्रेष्ठ है और परोक्ष ज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है तथा ध्यान से भी सब कर्मों के फल का मेरे लिये त्याग करना श्रेष्ठ है। और त्याग से तत्काल परम शान्ति होती है।

पहले कुछ प्रश्न।

● एक मित्र ने पूछा है : बुद्धि और भाव का विकास क्या साथ-साथ सम्भव नहीं है? स्वस्थ व्यक्ति क्या ध्यान और भक्ति एक साथ नहीं कर सकता? व्यक्ति तो पूरा है--बुद्धि भी, भाव भी, कर्म भी, तो फिर साधना का मार्ग एकांगी क्यों होना चाहिये?

व्यक्ति तो पूरा है, लेकिन वह व्यक्ति है आदर्श। वह आप नहीं हैं--जो पूरे हैं। जब व्यक्ति अपनी पूर्णता को प्राप्त होता है, उपलब्ध होता है, तब उसमें सभी बातें पूरी हो जाती हैं। उसकी बुद्धि भी उतनी ही प्रखर होती है, जितना उसका भाव। उसका कर्म, उसकी बुद्धि, उसका हृदय--सभी मिल जाते हैं--त्रिवेणी बन जाते हैं।

लेकिन यह है अन्तिम लक्ष्य। आप अभी ऐसे हैं नहीं। और यात्रा करनी है आपको। तो आप तो जिस तरफ ज्यादा झुके हैं, जिस आयाम में आपकी रुचि, रुझान ज्यादा है, उससे ही यात्रा कर सकेंगे।

और आप अभी खण्ड-खण्ड हैं, अधूरे हैं। कोई है, जिसके पास भाव ज्यादा है--और बुद्धि कम है। कोई है, जिसके पास कर्म की कुशलता है और कर्म का लगाव है--न बुद्धि है, न भाव है। या तुलना में कम है। और कोई है कि बुद्धि गहन है, भाव कोरा है, कर्म की वृत्ति नहीं है। ऐसे हम अधूरे अधूरे हैं।

पूर्णता तो होगी उपलब्ध--अभी है नहीं। और यह जो अधूरा आदमी है, इसे तो अपने अधूरेपन से ही प्रारम्भ करना होगा। तो जो आपके पास ज्यादा हो, वैसा ही मार्ग चुनना उचित है।

और मार्ग तो सदा ही एकांगी होता है। मंजिल पूर्ण होती है। मार्ग ही अगर पूर्ण हो, तो फिर मंजिल का कोई अर्थ ही न रहा।

मार्ग और मंजिल में फर्क क्या है? मार्ग और मंजिल में बड़ा फर्क यही है कि मार्ग तो अधूरा होगा और इसलिये जितने लोग हैं इस जगत् में, उतने मार्ग होंगे। हर आदमी अपनी जगह से चलेगा और हर आदमी वहीं से शुरू करेगा--जहाँ है

--और जो है।

पहुँचना है कहाँ, जहाँ व्यक्ति समाप्त हो जाता है। और जहाँ अव्यक्ति--निराकार--पूर्ण उपलब्ध होता है।

सभी नदियाँ यात्रा करती हैं सागर की तरफ। सागर कोई यात्रा नहीं करता। कोई नदी पूरब से चलती है, कोई पश्चिम से चलती है। कोई दक्षिण की तरफ बहती है; कोई उत्तर की तरफ बहती है। नदियों के रास्ते होंगे और नदियों को रास्ते पकड़ने ही पड़ेंगे। अगर नदी यह सोचे कि सागर का तो कोई आयाम, कोई दिशा नहीं है, इसलिये मैं भी कोई आयाम और दिशा न पकड़ूँ, तो नदी सागर तक न पहुँच पायेगी। सागर तक पहुँचने के लिये रास्ता पकड़ना होगा।

हम जहाँ खड़े हैं, वहाँ से सागर दूर है।

तो ज्यादा विचारणीय यह नहीं है कि पूर्ण पुरुष क्या है; ज्यादा विचारणीय यह है कि अपूर्ण पुरुष--आप--कैसे हैं।

और अपने को समझ कर यात्रा पर निकलना होगा। अगर आप पैदल चल सकते हों, तो ठीक; बैलगाड़ी से चल सकते हों, तो ठीक। घोड़े की सवारी कर सकते हों, तो ठीक; हवाई जहाज से यात्रा कर सकते हों, तो ठीक।

आप क्या साधन चुनते हैं, वह आपकी सामर्थ्य पर निर्भर है। और साधन महत्वपूर्ण है। और साधन एकांगी होगा। क्योंकि जो आपका साधन है, वह दूसरे का नहीं है। इसमें फर्क होंगे।

एक भक्त है। अब जैसे मीरा है। मीरा को बुद्ध का मार्ग समझ में नहीं आ सकता। मीरा को ...। मीरा के पास है हृदय--एक स्त्री का--एक प्रेमपूर्ण हृदय। इस प्रेमपूर्ण हृदय को, यह तो समझ में आ सकता है कि परमात्मा से अपने को भर ले; परमात्मा को अपने में विराजमान कर ले; परमात्मा के लिये अपने द्वार-दरवाजे खुले छोड़ दे और उसे प्रवेश कर जाने दे।

मीरा को बुद्ध की बात समझ में नहीं आ सकती कि अपने को सब भाँति खाली और शून्य कर लिया जाय। थोड़ा समझें।

पुरुष को आसान है समझ में आना कि अपने को खाली कर लो। स्त्री को सदा आसान है समझ में आना कि अपने को भर लो--पूरी तरह भर लो।

स्त्री गर्भ है--शरीर में भी और मन में भी। वह अपने को भर सकती है। भरने की वृत्ति उसमें सहज है। पुरुष अपने को खाली करता है। शरीर के तल पर भी अपने को खाली करता है। भरना उसे थोड़ा कठिन मालूम होगा।

तो मीरा को समझ में आती है बात कि परमात्मा को अपने से भर ले। गर्भ बन जाय और परमात्मा उसमें समा जाय। बुद्ध को समझ में आनी मुश्किल है।

बुद्ध को लगता है अपने को उलीच दूं और सब भाँति खाली कर दूं और जब मैं शून्य हो जाऊँगा, तब जो सत्य है, उससे मेरा मिलन हो जायेगा।

बुद्ध शून्य होकर सत्य बनते हैं। मीरा अपने को भर कर--पूर्ण से--सत्य बनती है।

इन दोनों के रास्ते अलग हैं। न केवल अलग, बल्कि विपरीत हैं। लेकिन जहाँ वे पहुँच जाते हैं, वह मंजिल एक है।

मंजिल पर पहुँच कर मीरा और बुद्ध में फर्क करना मुश्किल हो जायेगा। सारा फर्क रास्ते का फर्क था। जैसे-जैसे मंजिल करीब आयेगी, अन्तर कम होता जायेगा। और जब मंजिल बिलकुल आ जायेगी, तो आप मीरा की शक्ल में और बुद्ध की शक्ल में फर्क न कर पायेंगे। आप पहचान भी न पायेंगे कि कौन मीरा है--कौन बुद्ध। लेकिन यह तो आखिरी घटना है।

इस आखिरी घटना के इंच भर पहले भी मीरा और बुद्ध को पहचाना जा सकता है। उनमें फर्क होंगे। यह मैंने मोटी बात कही। लेकिन एक-एक व्यक्ति में फर्क होंगे। इसलिये दुनिया में इतने धर्म हैं। क्योंकि अलग-अलग लोगों ने, अलग-अलग रास्तों से चलकर उस सत्य की झलक पायी है।

और जिसने जिस रास्ते से चलकर झलक पायी है, स्वभावतः वह कहेगा : 'यही रास्ता ठीक है।' उसके कहने में कोई गलती भी नहीं है। दूसरे रास्ते वह जानता भी नहीं है। दूसरे रास्तों पर वह चला भी नहीं है। और जिन रास्तों पर आप चले नहीं हैं, उनके सम्बंध में आप क्या कहेंगे? जिस रास्ते से आप गुजरे हैं, कहेंगे : 'यही ठीक है।' और कहेंगे कि इसी पर आ जाओ। और समझायेंगे लोगों को कि भटक मत जाना किसी और रास्ते पर।

इसलिये जब दुनिया में जब अलग-अलग धर्मों के लोग कहते हैं कि आ जाओ हमारे रास्ते पर, तो जरूरी नहीं हैं कि उनके इस कहने में करुणा न हो और सिर्फ आपको बदलने की राजनैतिक आकांक्षा हो। जरूरी नहीं है। हो सकता है करुणा हो; और हो सकता है कि जिस रास्ते पर चल कर उनको आनन्द की खबर मिल रही है, वे चाहते हों कि आप भी उसी पर चलें।

लेकिन इससे खतरा पैदा होता है। इससे हर रास्ते को जानने वाला, दूसरे रास्ते को गलत कहने को तैयार हो जाता है। तब संघर्ष, विवाद, वैमनस्य स्वभावतः पैदा हो जाते हैं।

लेकिन अगर यह बात हमारे खयाल में आ जाये कि जितने लोग हैं--इस जमीन पर, जितने हृदय हैं--उतने ही रास्ते परमात्मा की तरफ जाते हैं। जायेंगे ही। न मैं आपकी जगह खड़ा हो सकता हूँ, न आपकी जगह से चल सकता हूँ। न तो मैं आपकी जगह जी सकता हूँ, और न आपकी जगह मर सकता हूँ। कोई लेन-देन संभव नहीं है। आप ही जीयेंगे अपने लिये और आपको ही मरना पड़ेगा अपने लिये। और आप ही चलेंगे। मैं अपने ही ढंग से चलूँगा। अगर यह बोध साफ हो जाय--और होना चाहिये--तो दुनिया बेहतर हो सके।

अगर यह बोध साफ हो जाये कि प्रत्येक व्यक्ति अपने ही रास्ते से चलेगा, अपने ही ढंग से चलेगा, तो हम धर्मों के बीच कलह का कोई कारण न खोज पायें। लेकिन सबको ऐसा खयाल है कि जिस रास्ते से मैं चलता हूँ, वही ठीक है। उपद्रव होता है।

जैसे आप हैं, वैसा ही आपका रास्ता होगा। क्योंकि आपका रास्ता आपसे ही निकलता है। वह पहुँचेगा परमात्मा तक, लेकिन निकलता आप से है। पहुँचते पहुँचते आप समाप्त होते जायेंगे और जिस दिन परमात्मा पर आप पहुँच जायेंगे, पायेंगे कि आप बचे नहीं।

इसलिये आज तक किसी व्यक्ति का परमात्मा से मिलन नहीं हुआ है। जब तक व्यक्ति रहता है, तब तक परमात्मा की कोई खबर नहीं रहती। और जब परमात्मा होता है, तो व्यक्ति समाप्त हो गया होता है, मिट गया होता है, खो गया होता है।

जैसे बूँद सागर में गिरती है, तो जब तक बूँद रहती है, तब तक सागर से दूर रहती है--चाहे फासला इंच भर का ही क्यों न रहा हो। आधे इंच का क्यों न हो। जरा-सा रत्ती भर फासला क्यों न हो, लेकिन अभी जब तक सागर से दूर है, तभी तक बूँद है। जिस क्षण मिलेगी, बूँद खो गयी और सागर ही रह गया।

तो यह कहना कि बूँद सागर से मिलती है--बड़ा मुश्किल है। मिलती तब है, जब बूँद नहीं रह जाती। और जब तक बूँद रहती है, तब तक मिलती नहीं। तब तक दूर रहती है।

आप मिट जायेंगे रास्ते पर। रास्ता आपको समाप्त कर देगा। रास्ते का मतलब ही है : अपने मिटने का उपाय, अपने को खोने का उपाय, समाप्त करने का उपाय।

धर्म एक अर्थ में मृत्यु है और एक अर्थ में--जीवन। इस अर्थ में मृत्यु है कि आप मिट जायेंगे; और इस अर्थ में महा जीवन--कि परमात्मा उपलब्ध होगा।, बूँद खो जाएगी और सागर हो जायेगा।

लेकिन अभी आप प्रथम चरण पर पूर्णता का खयाल न करें। अभी तो आप अपना झुकाव समझ लें। और अपने झुकाव को समझ कर चलें, अन्यथा बहुत समय बहुत शक्ति व्यर्थ ही चली जाती है।

अब मैं देखता हूँ कि अगर एक व्यक्ति ऐसे घर में पैदा हो जाय, जिसका जन्म-

गत संस्कार भावना का है और वह भावना वाला न हो...। एक व्यक्ति जैन घर में पैदा हो जाय, महावीर की परम्परा में पैदा हो जाय और उसके पास हृदय हो मीरा जैसा, तो मुश्किल में पड़ेगा। अगर कोई भक्ति के सम्प्रदाय में पैदा हो जाय, और उसके पास बुद्धि हो बुद्ध या महावीर जैसी, तो मुश्किल में पड़ेगा। क्योंकि जो सिखाया जायेगा, वह उसके अनुकूल नहीं है। और जो उसके अनुकूल हो सकता है, वह उसका सम्प्रदाय नहीं है।

तो अपने विपरीत चलने से बहुत कष्ट होगा। और अपने विपरीत चल कर कोई पहुँच नहीं सकता।

आज दुनिया में जो इतनी अधार्मिकता दिखाई पड़ती है, उसका एक कारण यह भी है कि आप इस बात की खोज हो नहीं करते कि आपके अनुकूल क्या है। आप इसकी फिक्र में लगे रहते हैं कि मैं किस घर में पैदा हुआ हूँ। कौन-सा शास्त्र मुझे पढ़ाया गया--कुरान, कि बाइबिल, कि गीता? आप इसकी फिक्र नहीं करते कि मैं क्या हूँ; मैं कैसा हूँ? क्या गीता मुझसे मेल खायेगी या कुरान मुझसे मेल खायेगा? या बाइबिल मुझसे मेल खायेगा? जो आप से मेल खाता हो, वही आपके लिये रास्ता है। दुनिया ज्यादा धार्मिक हो सकती है, अगर हम धर्म को जन्म के साथ जोड़ना बंद कर दें। और बच्चों को सारे धर्मों की शिक्षाएँ दी जायँ और यह बच्चे के निर्णय पर हो कि जब वह इक्कीस वर्ष का हो जाय, एक उम्र पा ले प्रौढता की तब अपना धर्म चुन ले। उसे सारे धर्मों की शिक्षा दे दी जाय और उसको अपने हृदय की पहचान के मार्ग समझा दिये जायँ और इक्कीस वर्ष का हो कर वह अपना धर्म चुन ले। तो यह दुनिया ज्यादा धार्मिक हो सकती है। क्योंकि तब व्यक्ति अपने अनुकूल चुनेगा।

अभी आप की अनुकूलता का सवाल नहीं है। संयोग की बात है कि आप कहाँ पैदा हो गये हैं। उससे आपका तालमेल बैठता है कि नहीं बैठता है, कहना मुश्किल हैं। इसलिये देखें: जब भी कोई धर्म प्रारंभ होता है, तो उसमें जो जान होती है, वह बाद में नहीं रह जाती।

अब मोहम्मद पैदा हों...। तो मोहम्मद जब पैदा होते हैं, उस समय जो लोग मुसलमान बनते हैं, अपनी चोइस (चुनाव) से बनते हैं। मुसलमान घर में पैदा नहीं हुए हैं, क्योंकि मुसलमान धर्म तो था नहीं। जब मोहम्मद के प्रभाव में वे आते हैं तो वे अपने चुनाव से आते हैं। वे चुनते हैं इसलाम को। फिर उनके बच्चे तो इसलाम में पैदा होते हैं, वे मुरदा होंगे।

बुद्ध जब पैदा होते हैं, तो जो आदमी बौद्ध बनता है, वह चुनता है। वह सोचता है कि बुद्ध से मेरी बात मेल खाती है कि नहीं। यह मुझे अनुकूल पड़ती है या नहीं?

तो वह तो बौद्ध चुनकर बनता है। लेकिन उसका बेटा, उसके बेटों के बेटे, वे तो बिना चुने बनेंगे।

बस, जैसे ही जन्म से धर्म जुड़ेगा, वैसे मुरदा होता जायेगा। इसलिये बुद्ध जब जिंदा होते हैं, तो जो ताजगी होती है; महावीर जब पैदा होते हैं, तो उनके आस-पास जो हवा होती है; मोहम्मद या जीसस जब जिन्दा होते हैं, तो उनके पास जो फूल खिलते हैं, फिर वे बाद में नहीं खिलते। वे धीरे-धीरे मुरझाते जाते हैं। मुरझा ही जायेंगे। बाद में धर्म एक बोझ हो जाता है।

हजार, दो हजार साल पहले आपके किसी बाप-दादे ने धर्म चुना था, तो उसके लिये चुनाव था, क्रान्ति थी। आप के लिये--? आपके लिये बपौती है। आपको मुफ्त मिल गया है--बिना चुनाव किये, बिना मेहनत किये, बिना सोचे, बिना समझे। बस, आपको रटा दिया गया बचपन से। तो आप उस अर्थ में बौद्ध, मुसलमान, हिंदू नहीं हो सकते।

मेरी अपनी समझ यह है कि दुनिया बेहतर होगी, जिस दिन हम धर्मों की शिक्षा देंगे--सब धर्मों की। और व्यक्ति को स्वतंत्र छोड़ देंगे कि अपना धर्म चुन ले। उस दिन दुनिया से धर्मों के झगड़े भी समाप्त हो जायेंगे। क्योंकि एक-एक घर में पाँच-पाँच सात-सात धर्मों के लोग मिल जायेंगे। क्योंकि कोई बेटा चुनेगा--सिक्ख धर्म को; कोई बेटा चुनेगा—इसलाम धर्म को। कोई बेटा हिन्दू रहना चाहेगा। कोई बेटा ईसाई होना चाहेगा। यह उनकी मौज होगी। और एक घर में जब सात धर्म, आठ धर्म, दस धर्म हो सकेंगे, तो दुनिया से धार्मिक दंगे बंद हो सकते हैं, उसके पहले बंद नहीं हो सकते। कोई उपाय नहीं है, उसके पहले बंद करने का।

इसलिये धार्मिक आदमियों के लिये तो एक बड़ी जिम्मेदारी है और वह यह कि वे अगर अपने बच्चों को सच में धार्मिक बनाना चाहते हैं, तो हिंदू, मुसलमान, ईसाई न बनायें। सिर्फ धर्मों की शिक्षा दें। और उनसे कह दें कि तुम समझ लो ठीक से और जब तुम्हारी मौज आये, और जब तुम्हें भाव पैदा हो, तब तुम चुनाव कर लेना और तुम जो भी चुनाव करो--तुम्हारे लिये, वह तुम्हारा चुनाव है।

तो हम दुनिया से बहुत-सा उपद्रव अलग कर सकते हैं।

सभी रास्ते सही हैं। लेकिन सभी रास्ते सभी के लिये सही नहीं हैं। हर रास्ता पहुँचाता है, लेकिन हर रास्ता आपको नहीं पहुँचायेगा। आपको तो एक ही रास्ता पहुँचा सकता है। इसलिये खोजना जरूरी है कि कौन-सा रास्ता आपको पहुँचा सकता है।

एक संगीतज्ञ है। एक कवि है। एक चित्रकार है। निश्चित ही इनके धर्म अलग-अलग होंगे। क्योंकि इनके व्यक्तित्व अलग-अलग हैं।

अगर एक कवि को एक ऐसा धर्म पकड़ाया जाय, जो गणित की तरह रूखा-सूखा, नियमों का धर्म है, तो उसे समझ में नहीं आयेगा। उससे कोई मेल नहीं बैठेगा। और अगर मजबूरी में वह उसे ओढ़ भी ले, तो वह ऊपर से ओढ़ा हुआ होगा। उसकी आत्मा से कभी भी उसका संबंध नहीं जुड़ेगा। वह धर्म उसके भीतर बीज नहीं बनेगा। अंकुरित नहीं होगा। उसमें फल-फूल नहीं लगेंगे। उसे तो कोई काव्य-धर्म चाहिए। ऐसा धर्म जो नाचता हो, गाता हो। उसे तो उसी धर्म से मेल बैठ पायेगा।

अब एक चित्रकार हो, एक मूर्तिकार हो, उसे तो कोई धर्म चाहिये, जो परमात्मा को सौन्दर्य की भाँति देखता हो। उसे तो कोई धर्म चाहिये, जो सौन्दर्य की पूजा करता हो, तो ही उसके अनुकूल बैठेगा। ऐसा कोई धर्म जो सौन्दर्य का दुश्मन हो; विरोध करता हो--रस का, राग का, उसके अनुकूल नहीं बैठेगा। और अगर किसी तरह वह अपने को उस धर्म में समाविष्ट भी कर ले, तो कभी भी उसका हृदय उसे छूएगा नहीं। फासला बना ही रहेगा।

एक गणितज्ञ हो और गणित की तरह साफ-सुथरा काम चाहता हो और दो और दो चार ही होते हों, तो उसे कोई कविता वाला धर्म प्रभावित नहीं कर सकता। उसे उपनिषद प्रभावित नहीं करेंगे। क्योंकि उपनिषद काव्य हैं। उसे पतंजलि का योग-सूत्र प्रभावित करेगा। क्योंकि वह विज्ञान है।

अपनी खोज पहले करनी चाहिए--इसके पहले कि आप परमात्मा की खोज पर निकलें। वह नम्बर दो है। आप नम्बर एक हैं। और अगर आप अपने को ही नहीं समझ पा रहे हैं कि मैं कैसा हूँ, क्या हूँ, तो आप परमात्मा को न खोज पायेंगे। क्योंकि रास्ता आप से निकलेगा।

इसलिये आत्म-विश्लेषण पहला कदम है। और ठीक आत्म-विश्लेषण न हो पाये, तो रुकना; जल्दी मत करना। कोई हर्जा नहीं है। वर्ष, दो वर्ष, चार वर्ष, दस वर्ष--इसमें ही खोना पड़े कि मैं क्या हूँ, कैसा हूँ; मेरा रुझान क्या है; मेरा व्यक्तित्व क्या है; तो हर्जा नहीं है।

एक बार ठीक से आप अपनी नस को पकड़ लें और अपनी नाड़ी को पहचान लें, तो रास्ता बहुत सुगम हो जायेगा। अन्यथा आप अनेक दरवाजों पर भटकेंगे --जो दरवाजे आपके लिये नहीं थे। और आप बहुत से रास्तों पर जायेंगे और सिर्फ धूल-धवांस खा कर वापस लौट आयेंगे, क्योंकि वे रास्ते आपके लिये नहीं थे। लेकिन तब अगर ऐसा भी हो, तो भी यह भूल मत करना कि जिस रास्ते से आपको न मिला हो, तब भी किसी से मत कहना कि वह रास्ता गलत है। क्योंकि वह रास्ता भी किसी के लिये सही हो सकता है। वह आपके लिये गलत सिद्ध हुआ है,

लेकिन वह सबके लिए गलत सिद्ध नहीं हो गया है।

इतनी विनम्रता मन में रखनी ही चाहिए खोजी को--कि जिस रास्ते से मैं नहीं पहुँच पाया, जरूरी नहीं है कि वह रास्ता गलत हो। इतना ही सिद्ध होता है कि मुझमें और उस रास्ते में मेल नहीं बना, तालमेल नहीं बना। मैं उस रास्ते के योग्य नहीं था। वह रास्ता मेरे योग्य नहीं था। लेकिन किसी के योग्य हो सकता है।

और उस व्यक्ति का खयाल रख कर हमेशा एक स्मरण बनाये रखना चाहिए कि जब भी कोई चीज गलत हो, तब कहना चाहिये कि मेरे लिए गलत हो गई। और जब भी कोई चीज सही हो, तो कहना चाहिये कि मेरे लिये सही हो गई। लेकिन उसे सार्वजनिक--यूनिव्हर्सल ट्रुथ--सार्वभौम सत्य की तरह घोषणा नहीं करनी चाहिये। इससे अनेक लोगों को कष्ट, पीड़ा और उलझाव पैदा होगा।

● एक मित्र ने पूछा है : भक्ति-योग में आपने प्रेम को आधारभूत स्थान दिया है। पता नहीं हम सामान्य लोग प्रेम से परिचित हैं या केवल काम-वासना से? इन दोनों में क्या फर्क है? और क्या काम-वासना प्रेम बन सकती है?

पूछने जैसा है और समझने जैसा है। क्योंकि हम काम-वासना को ही प्रेम समझ लेते हैं। और काम-वासना प्रेम नहीं है, प्रेम बन सकती है।

काम-वासना में सम्भावना है—प्रेम की। लेकिन काम-वासना प्रेम नहीं है। केवल बीज है। अगर ठीक-ठीक उपयोग किया जाय, तो अंकुरित हो सकता है। लेकिन बीज वृक्ष नहीं है।

इसलिये जो काम-वासना से तृप्त हो जाये या समझ ले कि अंत आ गया, उसके जीवन में प्रेम का पता ही नहीं होता।

काम-वासना प्रेम बन सकती है। काम-वासना का अर्थ है: दो शरीर के बीच आकर्षण; शरीर के बीच। प्रेम का अर्थ है : दो मनों के बीच आकर्षण। और भक्ति का अर्थ है : दो आत्माओं के बीच आकर्षण। वे सब आकर्षण हैं। लेकिन तीन तलों पर।

जब एक शरीर दूसरे शरीर से आकृष्ट होता है, तो काम, सेक्स। और जब एक मन दूसरे मन से आकर्षित होता है, तो प्रेम, लव्ह। और जब एक आत्मा दूसरी आत्मा से आकर्षित होती है, तो भक्ति, श्रद्धा।

हम शरीर के तल पर जीते हैं। हमारे सब आकर्षण शरीर के आकर्षण हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि शरीर का आकर्षण बुरा है।

शरीर का आकर्षण बुरा बन जाता है, अगर वह उससे ऊपर के आकर्षण तक पहुँचने में बाधा डाले। और शरीर का आकर्षण सहयोगी हो जाता है, सीढ़ी बन जाता है, अगर वह ऊपर के आकर्षण में सहयोगी हो।

अगर आप किसी के शरीर की तरफ आकर्षित होकर धीरे-धीरे उसके मन के तरफ भी आकर्षित होने लगें और किसी के मन के प्रति आकर्षित होकर धीरे-धीरे उसकी आत्मा के प्रति भी आकर्षित होने लगें, तो आपकी काम-वासना विकृत नहीं हुई; ठीक मार्ग से चली और परमात्मा तक पहुँच गयी।

लेकिन किसी के शरीर पर आप रुक जायँ, तो ऐसा जैसे आप कहीं गये और किसी के घर के बाहर ही घूमते रहे और दरवाजे के भीतर प्रवेश ही न किया। तो गलती घर की नहीं है; गलती आपकी है। घर तो बुला रहा था कि भीतर आओ। दीवालें बाहर से जो दिखाई पड़ती हैं, वह घर नहीं है।

शरीर तो केवल घर है। उसके भीतर निवास है। उसके भीतर दोहरा निवास है। उसके भीतर व्यक्ति का निवास है--जिसको मैं 'मन' कह रहा हूँ। और अगर व्यक्ति के भीतर भी प्रवेश करें, तो अन्तरगर्भ में परमात्मा का निवास है--जिसको मैं आत्मा कह रहा हूँ।

हर व्यक्ति अपने गहरे में परमात्मा है। अगर थोड़ा उथले में उसको पकड़ें, तो व्यक्ति है। और अगर बिलकुल बाहर से पकड़ें, तो शरीर है।

हर व्यक्ति की तीन स्थितियाँ हैं। शरीर की भाँति वह पदार्थ है। मन की भाँति वह व्यक्ति हैं--चेतन। और परमात्मा की भाँति--वह निराकार है, महाशून्य है, पूर्ण है।

काम, प्रेम, भक्ति--तीन कदम हैं। पर समझ लेना जरूरी है कि जब तक आप किसी के शरीर से आकृष्ट हो रहे हैं...। और ध्यान रहे : आवश्यक नहीं है कि आप जीवित मनुष्यों के शरीर से ही आकृष्ट होते हों। यह भी हो सकता है कि कृष्ण की मूर्ति में आपको कृष्ण का शरीर ही आकृष्ट करता हो, तो वह भी काम है। कृष्ण का सुन्दर शरीर, उनकी आँखें, उनका मोर-मुकुट, उनके हाथ की बाँसुरी, उनका छन्द-बद्ध व्यक्तित्व, उनका अनुपात भरा शरीर, उनकी नीली देह--वह अगर आपको आकर्षित करती हो, तो वह भी काम है। वह भी फिर अभी प्रेम भी नहीं है; भक्ति भी नहीं है।

और अगर आपके अपने बेटे के शरीर में भी, शरीर भूल जाता हो और जीवन का स्पन्दन अनुभव होता हो...। खयाल ही न रहता हो कि वह देह है। बल्कि इतना ही खयाल आता हो कि एक अभूतपूर्व घटना है; एक चैतन्य की लहर है--ऐसी अगर प्रतीति होती हो, तो बेटे के साथ भी प्रेम हो गया। और अगर आपको अपने बेटे में ही परमात्मा का अनुभव होने लगे, तो वह भक्ति हो गयी।

किस के साथ सम्बन्ध है, इस पर निर्भर नहीं है। भक्ति और प्रेम और काम...। कैसा सम्बन्ध है? आप पर निर्भर है। आप किस भाँति देखते हैं और किस भाँति

आप गति करते हैं...।

तो सदा इस बात को खयाल रखें कि क्या आपको आकृष्ट कर रहा है। देह--पदार्थ--आकाश ..?

पर इसका यह मतलब नहीं है कि मैं कह रहा हूँ कि कुछ बुरा है। भला है। इतना भी है--यह भी क्या कम है! कुछ तो ऐसे लोग हैं, जिनको देह भी आकृष्ट नहीं करती। तो भीतर के आकर्षण का तो कोई सवाल ही नहीं उठता। उन्हें कुछ आकृष्ट ही नहीं करता है। वे मरे हुए लोग हैं; लाश की तरह चलते हैं। उन्हें कुछ खींचता ही नहीं। उन्हें कुछ पुकारता नहीं। उनके लिये कोई आह्वान नहीं मालूम पड़ता। वे इस जगत् में अकेले हैं, अजनबी हैं। इस जगत् से उनका कहीं कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ता।

कोई हर्ज नहीं। कम से कम शरीर खींचता है; यह भी तो खबर है कि आप जिन्दा हैं। कोई चीज खींचती है। कोई चीज आपको पुकारती है। आपको बाहर बुलाती है। यह भी धन्यभाग है। लेकिन इस पर ही रुक जाना खतरनाक है। आप बहुत सस्ते में अपने जीवन को बेच दिये। आप कोयलों पर रुक गये। अभी और आगे यात्रा हो सकती थी। आप दरवाजे पर ही ठहर गये। अभी तो यात्रा शुरू ही हुई थी और आपने समझ लिया कि मंजिल आ गयी। आपने पड़ाव को मंजिल समझ लिया। ठहरें; लेकिन आगे बढ़ते रहें।

मैंने सुना है : यहूदी फकीर हिलेल से किसी ने पूछा कि 'अध्यात्म का क्या अर्थ है?' तो उसने कहा, 'और आगे--और आगे।' वह आदमी कुछ समझा नहीं। उसने कहा कि 'मैं कुछ समझा नहीं!' तो हिलेल ने कहा कि जहाँ भी तेरा रुकने का मन होने लगे, इस वचन को याद रखना : और आगे--और आगे। जब तक तू ऐसी जगह न पहुँच जाय, जहाँ--और आगे कुछ बचे ही नहीं, तब तक तू बढ़ते जाना। यही अध्यात्म का अर्थ है।

शरीर पर रुकना मत। और आगे। शरीर भी परमात्मा का है। इसलिये बुरा कुछ भी नहीं है। निन्दा मेरे मन में जरा भी नहीं है। लेकिन शरीर, शरीर ही है, चाहे परमात्मा का ही हो। वह बाहरी परकोटा है।--और आगे...।

और जब हम शरीर और मन दोनों को छोड़ कर भीतर प्रवेश करते हैं, तो परकोटे खो जाते हैं और सिर्फ आकाश रह जाता है।

इसलिये किसी भी व्यक्ति के प्रेम से परमात्मा को पाया जा सकता है। एक पत्थर की मूर्ति के प्रेम में गिर कर भी परमात्मा को पाया जा सकता है।

परमात्मा को कहीं से भी पहुँचा जा सकता है। सिर्फ ध्यान रहे कि रुकना नहीं है। उस समय तक नहीं रुकना है, जब तक शून्य न आ जाये--और आगे कुछ

भी यात्रा ही बाकी न बचे। रास्ता खो जाये, तब तक चलते ही जाना।

लेकिन काम-वासना के सम्बन्ध में मनुष्य का मन बहुत रुग्ण है। और हजारों-हजारों साज से आदमी को काम-वासना के विपरीत और विरोध में समझाया गया है। शरीर की निन्दा की गयी है और कहा गया है कि शरीर जो है--शत्रु है। उसे नष्ट करना है, उससे दोस्ती तोड़नी है। उससे सम्बन्ध छोड़ देने हैं।

शरीर ही बाधा है--ऐसा समझाया गया है। इस समझ के दुष्परिणाम हुए हैं, क्योंकि यह ना-समझी है; समझ नहीं है। और जो व्यक्ति अपने शरीर से लड़ने में लग जायेगा, वह इसी लड़ाई में नष्ट हो जायेगा। उसकी सारी खोज भटक जायेगी। वह इसी लड़ने में नष्ट हो जायेगा। शरीर भी परमात्मा का है।

ठीक आस्तिक इस जगत् में ऐसी कोई चीज नहीं मानता, जो परमात्मा की नहीं है। आस्तिक मानता है : सभी कुछ उसका है। इसलिये सभी तरफ से उसकी तरफ जाया जा सकता है। और हर चीज उसका मन्दिर है।

जिन्होंने ये बातें समझाई हैं--दुश्मनी की, घृणा की, कन्डेमनेसन की शरीर को दबाने, नष्ट करने की, वे पैथोलॉजिकल रुग्ण रहे होंगे। वे थोड़े रुग्ण रहे होंगे। उनका चित्त थोड़ा मनोविकार से ग्रसित रहा होगा। वे स्वस्थ नहीं थे। क्योंकि स्वस्थ्य व्यक्ति तो अनुभव करेगा कि शरीर तक भी उसी की खबर है।

शरीर भी है इस दुनिया में इसीलिये क्योंकि परमात्मा है। नहीं तो शरीर भी नहीं हो सकेगा। और शरीर भी जीवित है, क्योंकि परमात्मा की किरण उस तक आती है और उसे छूती हैं।

इस भाँति जब कोई देखने को चलता है, तो सारा जगत् स्वीकार योग्य हो जाता है। काम-वासना भी स्वीकार योग्य हो जाता है।

काम-वासना भी स्वीकार योग्य है। वह आपकी शक्ति है। और परमात्मा ने उसका उपयोग किया है--बहुलता से उपयोग किया है।

फूल खिलते हैं। आप जानते हैं क्यों? पक्षी सुबह गीत गाते हैं; जानते हैं क्यों? मोर नाचता है; जानते हैं क्यों? कोयल बहुत प्रीतिकार मालूम पड़ती हैं--क्यों? वह सब काम-वासना है।

मोर नाच रहा है, वह प्रेमी के लिये निमंत्रण है। कोयल गा रही है, वह साथी की तलाश है। फूल खिल रहे हैं, वह तितलियों की खोज है, ताकि फूलों के वीर्य-कणों को तितलियाँ अपने साथ ले जायँ और दूसरे फूलों पर मिला दें।

सेमर का वृक्ष देखा आपने! जब सेमर का फूल पकता है और गिरता है, तो फूल के साथ जो बीज होते हैं, उनमें रुई लगी होती है। वनस्पति-शास्त्री बहुत खोजते थे कि इन फूलों के बीज में रुई की क्या जरूरत है! सेमर में रुई की क्या

जरूरत है? बहुत खोज से पता चला कि वे बीज अगर सेमर वृक्ष के नीचे ही गिर जायँ, तो सेमर इतना बड़ा वृक्ष है कि बीज उसके नीचे सड़ जायेंगे; पनप नहीं सकेंगे। उन बीजों को दूर तक ले जाने के लिये वृक्ष रुई पैदा करता है। ताकि वे बीज रुई में उलझे रहें और हवा के झोके में रुई वृक्ष से दूर चली जाय। कहीं दूर जाकर बीज गिरें, ताकि नये वृक्ष पैदा हो सकें।

बीज क्या हैं? बीज वृक्ष के वीर्यकण हैं, वे काम-वासना हैं।

अगर सारे जगत् को गौर से देखें तो सारा जगत् काम का खेल है। और इस सारे जगत् में केवल मनुष्य है, जो काम से प्रेम तक उठ सकता है। वह केवल मनुष्य की क्षमता है।

काम-वासना तो पूरे जगत् में है। पौधे में, पशु में, पक्षी में--सब में है। अगर आपके जीवन में भी काम-वासना ही सब कुछ है, तो आप समझना कि आप अभी मनुष्य नहीं हो पाये। आप पौधे, पशु-पक्षियों के जगत् का हिस्सा हैं। वह तो सब के जीवन में है।

मनुष्य प्रेम तक उठ सकता है। मतुष्य की सम्भावना है--प्रेम।

जिस दिन आप प्रेमपूर्ण हो जाते हैं, वासना से उठते हैं और प्रेम से भर जाते हैं...। दूसरे के शरीर का आकर्षण महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाता। दूसरे के व्यक्तित्व का आकर्षण, दूसरे की चेतना का आकर्षण, दूसरे के गुण का आकर्षण; दूसरे के भीतर जो छिपा है, आपकी आँखें जब देखने लगती हैं शरीर के पार और जब व्यक्ति की झलक मिलने लगती है, तब आप मनुष्य बने।

और जब आप मनुष्य बन जाते हैं, तब आपके जीवन में दूसरी सम्भावना का द्वार खुलता है--वह है भक्ति। जिस दिन आप भक्त बन जाते हैं, उस दिन देव हो जाते हैं; उस दिन आप दिव्यता को उपलब्ध हो जाते हैं।

काम तो सारे जगत् की सम्भावना है। अगर आप भी काम-वासना में ही जीते हैं और समाप्त हो जाते हैं, तो आपने कोई उपलब्धि नहीं की; मनुष्य जीवन व्यर्थ खोया। अगर आपके जीवन में प्रेम के फूल खिल जाते हैं, तो आपने कुछ उपलब्धि की।

और प्रेम के बाद दूसरी छलाँग बहुत आसान है। प्रेम आँख गहरी कर देता है और हम भीतर देखना शुरू कर देते हैं।

और जब शरीर के पार हम देखने लगते हैं, तब मन के पार देखना बहुत कठिन नहीं है। क्योंकि शरीर बहुत ग्रॉस, बहुत स्थूल है। जब उसके भीतर भी हम देख लेते हैं, तो मन तो बहुत पारदर्शी है--काँच की तरह है। उसके भीतर भी दिखाई पड़ने लगता है। तब हर व्यक्ति भगवान् का मन्दिर हो जाता है। तब आप जहाँ भी देखें, आँख अगर गहरी जाये, तो भीतर वही दीया जल रहा है। दीये होंगे

करोड़ों, लेकिन दीये की ज्योति एक ही परमात्मा की है।

● एक मित्र ने पूछा है कि मैं कर्म-योग की साधना में लगा हूँ, पर डर होता है कि पता कहीं मैं अपने को धोखा तो नहीं दे रहा हूँ। क्योंकि न मैं भक्ति करता हूँ, न मैं ध्यान करता हूँ। मैं तो, जो कर्म है जीवन का, उसे किये चला जाता हूँ। पर मापदण्ड क्या है कि मुझे पक्का पता चला सके कि जो मैं कर रहा हूँ, वह कर्म-योग है। और आत्म-वंचना नहीं हो रही है? और यह कर्म-योग मेरा स्वभाव है, मेरे अनुकूल है या नहीं, इसका भी कैसे पता लगे?

प्रश्न कीमती है। और जिसने पूछा है, उसके मन में सिर्फ जिज्ञासा नहीं है, मुमुक्षा है। पीड़ा से उठा हुआ प्रश्न है--बुद्धि से नहीं।

निश्चित ही आदमी अपने को धोखा देने में समर्थ है। बहुत कुशल है और दूसरे को हम धोखा दें, तो वहाँ तो दूसरा भी होता है; कभी पकड़ ले। हम खुद को ही धोखा दें तो वहाँ कोई भी नहीं होता पकड़ने वाला। हम ही होते हैं। सिर्फ देने वाला ही होता है। इसलिये लम्बे समय तक हम दे सकते हैं।

खुद को धोखा हम जन्मों-जन्मों तक दे सकते हैं। दे सकते ही नहीं, हमने दिया है। हम दे रहे हैं।

तो यह स्वाभाविक है साधक के मन में प्रश्न उठना कि न मैं ध्यान कर रहा हूँ, न मैं भक्ति कर रहा हूँ; मैं अपने कर्म को किये चला जा रहा हूँ; कहीं मैं अपने को धोखा तो नहीं दे रहा?

तीन बातें समझ लेना जरूरी हैं। पहली बात : अगर आप अपने कर्म को परमात्मा पर छोड़ दिये हैं, तो जो ध्यान से होता है, वह इस छोड़ने से होना शुरू हो जायेगा। आप शान्त होने लगेंगे।

अगर आप अशान्त हो, तो समझना कि कर्म-योग, आप जो कर रहे हैं, वह धोखा है। क्योंकि जैसे ही मैं परमात्मा पर छोड़ देता हूँ--कि सारा कर्म उसका है, मुझे अशान्त होने की जगह नहीं रह जाती। अशान्ति तो तभी तक है, जब तक मैं अपने पर सारा बोझ लिये हुए हूँ।

अगर आपके कर्मयोग में आपकी अशान्ति खो रही हो, खो गयी हो, और आप शान्त होते जा रहे हों, तो समझना कि ठीक रास्ते पर हैं? धोखा नहीं है।

दूसरी बात : अगर आपने कर्म परमात्मा पर छोड़ दिया है, तो फल कोई भी आये, आपके भीतर समभाव निर्मित रहेगा। चाहे सुखी हों, चाहे दुःखी हों; चाहे दुःखी हों; चाहे सफलता आये, चाहे असफलता आये...। अगर सफलता अच्छी लगती हो और असफलता बुरी लगती हो, तो समझना कि आप अपने को धोखा दे रहे हैं। क्योंकि जब मैंने छोड़ ही दिया परमात्मा पर, तो मेरी न सफलता रही और

न असफलता रही। अब वह जाने। और उसे अगर असफल होना है, तो उसकी मरजी। और उसे अगर सफल होना है, तो उसकी मरजी। मैं बाहर हो गया।

कर्मयोग का अर्थ है कि मैंने सब परमात्मा पर छोड़ दिया और मैं केवल वाहन रह गया। अब मेरी कोई जिम्मेवारी नहीं है। जिम्मेवारी उसकी है। मैं बाहर हूँ। मैं सिर्फ साक्षी मात्र हो गया। समभाव पैदा होगा। सफलता आयेगी तो ठीक, असफलता आयेगी तो ठीक। और आपके भीतर रंचमात्र भी फर्क नहीं पड़ेगा। आप वैसे ही रहेंगे--सफलता में; वैसे ही रहेंगे--असफल में। ऐसी समबुद्धि पैदा हो रही हो, बढ़ रही हो, तो समझना कि कर्मयोग ठीक है; आप धोखा नहीं दे रहे हैं।

और तीसरी बात : जैसे ही कोई व्यक्ति सभी कुछ परमात्मा पर छोड़ देता है, यह सारा जगत् उसे स्वप्नवत् दिखाई पड़ने लगता है; नाटक हो जाता है। तभी तक यह असली मालूम पड़ता है, जब तक लगता है कि 'मैं'...। और जब मैं सभी उस पर छोड़ देता हूँ, तो सारी बात नाटक हो जाती है। आप दर्शक हो जाते हैं; आप कर्ता नहीं रह जाते।

ध्यान रहे : जब तक मैं कर्ता हूँ, तब तक जगत् और है। और जब मैंने सब मरमात्मा पर छोड़ दिया, तो कर्ता वह हो गया; अब आप कौन रहे? आप सिर्फ दर्शक हो गये। एक फिल्म में बैठे हुए हैं। एक फिल्म देख रहे हैं। नाटक चल रहा है, आप सिर्फ देख रहे हैं। आप सिर्फ देखने वाले रह गये हैं।

तो तीसरी बात : जैसे ही आप सब परमात्मा पर छोड़ देते हैं, और कर्म-योग में प्रवेश करते हैं, जगत् स्वप्न हो जाता है। आप सिर्फ देखने वाले रह जाते हैं।

तो तीसरी बात : अगर आप में साक्षीभाव बढ़ रहा हो...। शान्ति बढ़ रही है, समभाव बढ़ रहा हो, साक्षीभाव बढ़ रहा हो, तो आप जानना कि ठीक रास्ते पर हैं; धोखे का कोई उपाय नहीं है। और अगर यह न बढ़ रहा हो, तो समझना कि आप धोखा दे रहे हैं। और अगर यह न बढ़ रहा हो और--और आप बहुत चेष्टा कर रहे हों और फिर भी न बढ़ रहा हो, तो समझना कि यह आपके स्वभाव के अनुकूल नहीं है। चेष्टा करके देख लेना। अगर बढ़ने लगे गति--इन तीन दिशाओं में, तो समझना कि आपके अनुकूल है। अगर न बढ़े, तो किसी और दिशा से चेष्टा करना।

लेकिन लोग क्या समझते हैं कर्मयोग से? लोग समझते हैं: अपने कर्तव्य को निभाना कर्मयोग है। पत्नी है, बच्चे हैं; ठीक है। अब उलझ गये संसार में तो नौकरी करनी है; धंधा करना है; कमा कर खिला-पिला देना है। अपना कर्तव्य पूरा करना है। लेकिन ऐसे जो लोग हैं, जो कहते हैं--कर्तव्य पूरा करना है--

इनका चेहरा उदास होगा; आनन्द से भरा हुआ नहीं होगा। वे ढो रहे हैं बोझ। इनके मन में भीतर तो कहीं चला रहा है कि पत्नी, बच्चे सभी समाप्त हो जाते तो बड़ा अच्छा होता। हत्या का मन बहुत गहरे में है। या यह भूल न की होती तो बड़ा अच्छा होता। फँस गये, तो अब ढोना है, तो ढो रहे हैं। कर्तव्य अपना पूरा कर रहे हैं। इसको लोग कहते हैं : कर्मयोग कर रहे हैं।

यह कर्मयोग नहीं है। यह तो एक तरह की नपुंसकता है। न तो भाग सकते हैं और न रह सकते हैं। दोनों के बीच में अटके हैं। संन्यासी होने की भी हिम्मत नहीं है--कि छोड़ दें; कि ठीक है, जो गलती हो गयी, हो गयी। अब माफ करो; हम जाते हैं। वह भी हिम्मत नहीं है। यह भी हिम्मत नहीं कि जो है, उसका पूरा आनन्द लें, उसको परमात्मा की कृपा समझें, अहोभाव मानें। यह भी हिम्मत नहीं। दोनों के बीच त्रिशंकु की तरह अटके हैं। इसको वे कहते हैं : कर्तव्य कर रहे हैं।

ध्यान रहे : यह कर्तव्य शब्द बहुत गन्दा है। इसका मतलब होता है : बोझ ढो रहे हैं।

दो तरह के लोग हैं। एक तो जो अपनी पत्नी को प्रेम करते हैं, इसलिए नौकरी कर रहे हैं। वे नहीं कहेंगे कभी कि हम कर्तव्य कर रहे हैं। वे कहेंगे कि हमारी खुशी है। जिस स्त्री को चाहा है, उसके लिये एक मकान बनान है; एक गाड़ी लानी है। उसके लिये एक बगीचा लगाना है। जिसको चाहा है, उसे सुन्दरतम जगह देनी है। इसलिए हम आनन्दित हैं। और कर्तव्य शब्द वे उपयोग नहीं करेंगे।

बच्चे हमारे हैं। हम खुश हैं--उनकी खुशी में। उनकी आँखों में आयी हुई ताजगी, और उनकी आँखों में आता हुआ उल्लास हमें आनन्दित करता है, इसलिए हम मेहनत कर रहे हैं। यह मेहनत हमारी खुशी है--कर्तव्य नहीं है। यह भी आदमी अच्छा है। कम से कम एक बात तो अच्छी है कि खुश है।

एक दूसरा आदमी है, जो कहता है कि 'हमने सब परमात्मा पर छोड़ दिया है। इसलिए परमात्मा की आज्ञा है कि बच्चों को बड़ा करो, तो हम कर रहे हैं।' खुश है, क्योंकि परमात्मा की आज्ञा पूरी कर रहा है। यह भी आनन्दित है। यह कर्तव्य नहीं निभा रहा है। परमात्मा की जो मरजी, उसको पूरा कर रहा है। और अपने को परमात्मा पर छोड़ दिया है। एक पत्नी के प्रेम में आनन्दित था; यह परमात्मा के प्रेम में आनन्दित है। लेकिन दोनों आनन्दित हैं। इनमें कर्तव्य कुछ भी नहीं है।

इन दोनों के बीच में एक तीसरा त्रिशंकु है। न परमात्मा का उसे कुछ पता है और पत्नी का भी पता खो गया है। वह बीच में अटका है। वह कहता है : कर्तव्य पूरा कर रहे हैं। इसको वह कर्मयोग कहता है। यह कर्मयोग नहीं है। यह आदमी मुरदा है। इसे हिम्मत भी नहीं है। इसको कुछ न कुछ तय करना चाहिए।

लेकिन एक बात हमेशा खयाल रखिये : जब भी आप सही दिशा में चलेंगे, आपके भीतर आनन्द बढ़ेगा। और जब आप गलत दिशा में चलेंगे, तो उदासी बढ़ेगी। अगर आपका कर्तव्य आपको उदास कर रहा है, तो कहीं न कहीं भूल हो रही है। या परमात्मा की तरफ बढ़ें। या पत्नी की तरफ भी बढ़ें तो भी कोई हर्जा नहीं, लेकिन कम से कम खुश हों। क्योंकि पत्नी की तरफ खुश हुआ आदमी, कभी परमात्मा की तरफ भी खुश हो सकता है। क्योंकि खुशी तो उसे आती है। आनन्द तो उसे आता है। कम से कम एक बात तो आती है कि वह आनन्दित होना जानता है।

और जो पत्नी की खुशी तक में इतना आनन्दित हो जाता है, जिस दिन परमात्मा की तरफ यात्रा शुरू होगी, उसकी खुशी का कोई अन्त न होगा। जो अपने बच्चे की आँखों में खुशी देख कर इतना खुश हो रहा था, जिस दिन उसे सारे जगत् में परमात्मा की प्रतीति होने लगेगी, उस दिन उसकी खुशी का कोई अन्त होगा? कोई सीमा होगी?

लेकिन यह बीच वाला आदमी बहुत उपद्रव है। इस बीच वाले आदमी से सावधान रहना। यह धोखे की बात है।

जहाँ-जहाँ आनन्द चुकने लगे, सूखने लगे धारा, समझना कि आप गलत जा रहे हैं। क्योंकि जीवन का सम्यक् विकास आनन्द की तरफ है। अगर आप उदास होने लगें...।

इसलिए उदास साधु को मैं साधु नहीं मानता। वह बीमार है। उससे बेहतर तो वह गृहस्थ है, जो आनन्दित है। कम से कम एक बात तो ठीक है उसमें कि वह आनन्दित है। लेकिन हम जिन साधु-संतों को जानते हैं, आमतौर से सब लटके हुए चेहरे वाले लोग हैं। उनके पास जाओ, तो वे आपका भी चेहरा लटकाने की पूरी कोशिश करते हैं। अगर आप हँस रहे हो, प्रसन्न हो, तो जरूर पाप कर रहे हो। कहीं न कहीं कोई गड़बड़ है।

इन उदास लोगों से जरा बचना। ये बीमारियाँ हैं। और हमने और तरह की बीमारियों से तो धीरे-धीरे छुटकारा पा लिया है, एन्टि बायोटिक्स खोज ली हैं। लेकिन इनसे छुटकारा नहीं हो सका। ये मन पर, छाती पर गहरी बीमारियाँ हैं, नासूर हैं। इनसे बचना।

जो साधु आनन्दित नहीं है, समझना कि भूल में पड़ गया है। साधु के आनन्द का तो कोई अन्त नहीं होना चाहिए! हम क्षुद्र चीजों में इतने आनन्दित हैं और तुम परमात्मा के साथ भी इतने आनन्दित नहीं हो? हम असार में इतने प्रसन्न हो रहे हैं, और तुम सार को पाकर भी उदास बैठे हुए हो! हम कौड़ियों में नाच रहे

हैं और तुम कहते हो : हमने हीरे पा लिये हैं और तुम्हारी शक्ल से लगता है कि तुमने कौड़ियां भी गँवा दी है। हीरे वगैर तुम्हें मिले नहीं हैं।

जिन्दगी की सहज सम्यक् धारा आनन्द की तरफ है। आनन्द को कसौटी समझ लें। वह निकस है। उस पर हमेशा कस लें। जो चीज आनन्द न दे, समझना कि कहीं न कहीं कोई भूल हो रही है।

और आनन्द से भयभीत मत होना। और कोई कितना ही कहे कि आनन्द गलत हैं, भूल कर उसकी बात में मत पड़ना। क्योंकि अगर आनन्द गलत है, तो फिर इस जगत् में कुछ भी सही नहीं हो सकता। कसना।

यह भी हो सकता है कि आनन्द भूल भरा हो। जहाँ आप आनन्द पा रहे हों, वहाँ आनन्द पाने योग्य कुछ न हो। यह हो सकता है। लेकिन आप आनन्द पा रहे हैं--यह सही है, चाहे वह स्थिति सही न रही हो। तो आनन्द पाने को बढ़ाये जाना। जिस दिन आप पायेंगे कि आपका आनन्द ज्यादा हो गया और स्थिति छोटी पड़ने लगी, उस दिन आप स्थिति के ऊपर उठने लगेंगे।

एक आदमी के हाथ में छोटा बच्चा है। वह कंकड़-पत्थर इकट्ठे कर लेता है और खुश होता है। रंगीन पत्थर बच्चे इकट्ठे कर लेते हैं और बड़े प्रसन्न होते हैं। खीसे में भर लेते हैं, बोझिल हो जाते हैं। और माँ-बाप कहते हैं : फेंको। कहाँ कचरा ढो रहे हो? लेकिन वे नहीं फेंकना चाहते। रात अपने बिस्तर में लेकर सो जाते हैं। उनको आनन्द आ रहा है। और अच्छा नहीं है वह बाप, जो कहता है : फेंको। क्योंकि वह उससे पत्थर ही नहीं छीन रहा है। वह उसका आनन्द भी छीन रहा है। वह उसे पता नहीं कि वह क्या गड़बड़ कर रहा है। उसे तो ठीक है कि यह पत्थर है। उसकी समझ बढ़ गयी है। लेकिन बच्चे की समझ अभी उसकी समझ नहीं है। और जब वह बच्चे से पत्थर छीन कर फेंक देता है, तो उसे पता नहीं कि उसने एक और अदृश्य चीज भी छीन कर फेंक दी, जो बहुत कीमती थी। पत्थर तो बेकार थे, लेकिन भीतर बच्चे का सुख भी उसने छीन लिया। और इस बच्चे को अभी समझ में आना मुश्किल है कि जो उससे छीन लिया गया है, वह व्यर्थ था। क्योंकि कैसे व्यर्थ था! बच्चा जानता है, उससे आनन्द मिल रहा था।

कई बार समझदार लोग नासमझियाँ कर देते हैं। बच्चे से पत्थर छीनने की जरूरत नहीं है। बच्चे को बुद्धि, समझ देने की जरूरत है। जैसे जैसे बच्चे की समझ बढ़ेगी, एक दिन आप अचानक पायेंगे कि पत्थर एक कोने में पड़े रह गये। अब वह उनकी तरफ ध्यान भी नहीं देता, क्योंकि उसने नये आनन्द खोज लिये हैं। अब वह पत्थरों पर ध्यान नहीं देता : आप उनको उठा कर फेंकना, उसे पता भी नहीं चलेगा। वह खुद ही एक दिन उनको फेंक देगा।

जैसे समझ बढ़ती है, वैसे आनन्द के नये क्षेत्र खुलते हैं।

सम्यक् धर्म आपसे आनन्द नहीं छीनता, सिर्फ आपकी समझ बढ़ाता है। तो जो व्यर्थ होते जाते हैं आनन्द, वे छूटते जाते हैं।

निश्चित ही इस संसार में जो आप आनन्द ले रहे हैं, वह लेने जैसा नहीं है। उसमें कुछ खास है नहीं मामला। बच्चों के हाथ में रंगीन पत्थर जैसी बात है। लेकिन कोई हर्ज नहीं है। आप आनन्द ले रहे हैं, यह भी ठीक है। समझ बढ़ानी चाहिये। इस फर्क को आप समझ लें।

अगर आप उदास साधुओं के पास जाते हैं, तो वे आपसे आपका आनन्द छीनते हैं। आपसे कंकड़-पत्थर छीनते हैं। उनके साथ ही आपके भीतर का आनन्द भी छिन जाता है। वे आपको समझ नहीं दे रहे हैं, आपका आनन्द छीन रहे हैं। आनन्द छीनने से समझ नहीं बढ़ती।

ठीक धर्म आपकी समझ बढ़ाता है, आपकी अन्डरस्टैंडिंग बढ़ाता है। समझ बढ़ने से जो व्यर्थ था, वह छूटता चला चला जाता है और जो सार्थक है, उस पर हाथ बँधने लगते हैं। और धीरे-धीरे आप पाते हैं कि संसार अपने आप ऐसे छूट गया, जैसे बच्चे के हाथ से कंकड़-पत्थर छूटते हैं। और इसी संतार में उस सारभूत पर दृष्टि पहुँच जाती है और उससे मिलन हो जाता है।

समझ बढ़नी चाहिये। और समझ बढ़ने के साथ आनन्द बढ़ता है--घटता नहीं। अगर आप आनन्द छोड़ने लगे, तो आनन्द भी घटता है और आपकी समझ भी घटती है।

आप जो भी कर रहे हों, एक बात आप निरन्तर करते रहना कि उससे आपका आनन्द बढ़ता है, तो आप निर्भय होकर बढ़ते जाना--उसी दिशा में। अगर आनन्द न भी होगा ठीक, तो भी कोई चिन्ता की बात नहीं। दिशा ठीक है। आज नहीं कल जो गलत है, वह छूट जायेगा और जो सही है, वह आपकी आँखों में आ जायेगा। पर अपने को, साधक को कसते रहना चाहिये। और अगर आपको लगता हो : यह कुछ भी नहीं हो रहा है, तो उचित है कि किसी और दिशा से परमात्मा को खोजना शुरू करें।

अब हम सूत्र को लें।

'और यदि इसको भी करने के लिये असमर्थ है, तो जीते हुए मन वाला और मेरी प्राप्तिरूप योग के शरण हुआ, सब कर्मों के फल का मेरे लिये त्याग कर दे।

कृष्ण ने कहा कि तू सब कर्म 'मैं कर रहा हूँ'--ऐसा समझ ले। लेकिन अगर यह भी न हो सके...हो सकता है—यह भी तुझे कठिन हो कि कैसे समझ लूँ कि सब आप कर रहे हैं। (कर तो मैं ही रहा हूँ।) निश्चित ही कठिन है।

अगर कोई आपसे कहे कि सब परमात्मा कर रहा है, तो भी आप कहेंगे कि कैसे मानूं कि सब परमात्मा कर रहा है।

मैंने ऐसे लोग देखे हैं कि अगर उनको समझा दो कि सब परमात्मा कर रहा है, तो वे सब करना छोड़कर बैठ जाते हैं। वे कहते हैं : जब परमात्मा ही कर रहा है, तो फिर हमको क्या करना है! लेकिन यह 'बैठना'--वे कर रहे हैं। इतना वे बचा लेते हैं। इसको वे यह नहीं कहते कि परमात्मा बिठा रहा है--तो ठीक। नहीं। वे कहते हैं कि बैठ हम रहे हैं। हम क्या करें? जब परमात्मा ही सब कर रहा है, तो फिर हम कुछ न करेंगे।

लेकिन 'हम कुछ न करेंगे'--इसका मतलब है कि इतना तो हम कर ही सकते हैं। इतना हमने अपने लिये बचा लिया। इसका मतलब यह भी हुआ कि जो भी वे कर रहे थे, वे मानते नहीं कि परमात्मा कर रहा था। वे खुद ही कर रहे थे, इसलिये वे कहते हैं कि 'अब हम रोक लेंगे। अब देखें : परमात्मा कैसे करता है!'

कठिन है यह मानना कि परमात्मा कर रहा है, क्योंकि अहंकार मानने को राजी नहीं होता कि मैं नहीं कर रहा हूँ। हाँ अगर कुछ बुरा हो जाय, तो मानने को राजी हो भी सकता है कि परमात्मा कर रहा है।

असफलता आ जाय, तो आदमी आसानी से छोड़ भी सकता है कि--परमात्मा--भाग्य। सफलता आ जाय, तो वह कहता है--'मैं'। सफलता को उस पर छोड़ना बहुत मुश्किल हो जाता है। क्यों? क्योंकि सफलता से अहंकार परिपुष्ट होता है। तो जिस चीज से अहंकार परिपुष्ट होता है, वह तो हम अपने लिये बचाना चाहते हैं।

सुनी है मैंने एक कहानी। एक संन्यासी छोटा-सा आश्रम बना कर रहता था। आश्रम मैंने बनाया--ऐसा लोगों से कहता था। ज्ञान मैंने पाया, त्याग मैंने किया--ऐसा लोगों से कहता था। एक दिन एक गाय उसके आश्रम में घुस गयी और फूल और बगीचे को चर गयी। बगिया को चरते देख कर उसे बहुत क्रोध आया। लकड़ी उठा कर उसने गाय को मार दी। गाय मर गयी। एक ब्राह्मण द्वार पर खड़ा था। उसने पूछा कि 'यह तुमने क्या किया! गाय को मार डाला?' तो उस संन्यासी ने कहा कि 'सब परमात्मा कर रहा है--मैं नहीं। जो उसकी मरजी! उसके बिना मारे गाय मर सकती है? उसका बिना हाथ उठाये, मेरा हाथ उठ सकता है? उसकी बिना आज्ञा के पत्ता नहीं हिलता।' लेकिन आश्रम उसने बनाया है! ज्ञान उसने पैदा किया है। त्याग उसने किया है। गाय भगवान् ने मारी है!

यह हमारे मन की तरकीबें हैं। हम सब यही करते रहते हैं। जब आप हार जाते हैं जिन्दगी में, तो कहते हैं--'भाग्य'। और जब जीत जाते हैं, तब कहते हैं--'मैं'। पर सभी कुछ परमात्मा पर छोड़ना मुश्किल है। असफलता को छोड़ना बिल-

कुल आसान है। सफलता छोड़नी मुश्किल है। सब--में दोनों आ जाते हैं।

कृष्ण कहते हैं कि मुश्किल होगा शायद तुझे यह भी करना कि कर्म तू मुझ पर छोड़ दे। क्योंकि खुद को छोड़ना पड़ेगा। और अति कठिन है बात--खुद को छोड़ने की। तो फिर तू एक काम कर। कर्म तू न छोड़ सके, तो कम से कम कर्म का फल तू छोड़।

यह थोड़ा आसान है पहले वाले से। क्योंकि फल हमारे हाथ में है भी नहीं। कर्म हम कर सकते हैं, लेकिन फल क्या आयेगा--इसको हम सुनिश्चित रूप से तय नहीं कर सकते हैं।

मैं एक पत्थर उठा कर मार सकता हूँ, लेकिन आप उस पत्थर से मर ही जायेंगे, यह कहना मुश्किल है। यह भी हो सकता है कि पत्थर आपको लगे और आपकी कोई बीमारी ठीक हो जाय। ऐसा हुआ है। ऐसा अनेक बार हो जाता है कि आप किसी का नुकसान करने गये थे और उसको फायदा हो गया।

चीन में ऐसा हुआ, उससे आक्यूपंक्चर नाम की चिकित्सा-पद्धति पैदा हुई। आज से कोई तीन हजार साल पहले एक युद्ध में एक सैनिक को पैर में गोली लगी। उसको जिन्दगी भर से सिर में दर्द था। पैर में गोली लगी; गोली आरपार हो गयी। गोली लगते ही सिर दर्द एकदम गायब हो गया। वह जिन्दगी भर का दर्द था। और चिकित्सक हार गये थे और वह दर्द अलग होता ही नहीं था।

तो बड़ी हैरानी हुई कि पैर में गोली लगने से दर्द सिर का कैसा चला गया! तो फिर खोजबीन की गयी, तो पाया गया कि शरीर में जो नाड़ियों का संस्थान है और जो ऊर्जा का प्रवाह है, उसमें कुछ बिन्दु हैं। अगर उन पर चोट की जाय, तो उनका परिणाम दूसरे बिन्दुओं पर होता है।

तो फिर चीन में आठ सौ शरीर में बिन्दु खोज लिये गये। तो फिर गोली मारने की जरूरत नहीं है। उन पर जरा-सी भी चोट की जाय...। इसलिए आक्यूपंक्चर में एक सुई चुभा देते हैं। आपके सिर में दर्द है, तो वे जानते हैं कि आपके शरीर में कुछ बिन्दु हैं, जहाँ सुई चुभा दो। सुई चुभाते से सिर दर्द नदारद हो जायेगा।

आक्यूपंक्चर हजारों तरह की बीमारियाँ ठीक करता है--बिना इलाज के। सिर्फ सुई चुभा दो जरा-सी जगह पर, ठीक जगह पर सुई चुभा दो--वह जो आपके भीतर ऊर्जा है शरीर की...।

अब जिस आदमी ने गोली मारी थी, उसने सोचा नहीं था कि इसका सिर ठीक करना है। और उसने यह नहीं सोचा था कि उसके गोली मारने में आक्यूपंक्चर पैदा होगा! और सारी दुनिया में इसका ही सिर ठीक नहीं होगा, करोड़ों लोगों का सिर ठीक होगा। और सिर ही ठीक नहीं होगा, लाखों बीमारियाँ ठीक होंगी।

आप क्या करते हैं, वह तो सोच सकते हैं कि आप कर रहे हैं। लेकिन क्या होगा, वह आप तय नहीं कर सकते कि क्या होगा। होना आपके हाथ में नहीं है। आप किसी को जहर दें और हो सकता है कि वह अमृत सिद्ध हो जाये। और कई बार आप जहर देकर देख भी लिये हैं। और कई बार आप अमृत देते हैं और जहर हो जाता है। जरूरी नहीं है। क्योंकि फल आप पर निर्भर नहीं है। फल बहुत बड़ी विराट् व्यवस्था पर निर्भर है। फल क्या होगा कहना मुश्किल है।

तो कृष्ण कहते हैं कि कर्म तू न छोड़ सके, क्योंकि कर्म तो तुझे लगता है कि तू कर रहा है। लेकिन फल तो छोड़ ही सकता है। क्योंकि फल तो पक्का नहीं है कि तू करता है। कर्म तू करता है; फल होता है। और फल निश्चित नहीं किया जा सकता। और तू नियन्ता नहीं है फल का। इसलिये कम से कम फल ही छोड़ दे। इतना भी कर ले : कर्म तू कर और फल मुझ पर छोड़ दे। जो भी होगा, वह भगवान् कर रहा है। तू कर रहा है ठीक। लेकिन परिणाम भगवान् ला रहा है।

'सब कर्मों का फल त्याग कर दे, मेरे ऊपर छोड़ दे। क्योंकि मर्म को न जान कर किये हुए अभ्यास से, परोक्ष ज्ञान श्रेष्ठ है।'

बहुत से लोग अभ्यास करते रहते हैं--मर्म को न जानते हुए। उन्हें पता नहीं है--क्यों कर रहे हैं। अभ्यास करते रहते हैं! बहुत लोग हैं।

रोज मुझे ऐसे लोग मिलने आ जाते हैं। वर्षों से कुछ कर रहे हैं। उनको पता नहीं--क्यों कर रहे हैं। किसी ने बता दिया, इसलिये कर रहे हैं।

एक सज्जन को मेरे पास लाया गया। उनका दिमाग खराब होने की हालत में आ गया, तब उनके परिचित लोग उन्हें ले आये। किसी ने उनको बता दिया है कि दोनों कान को बंद करके--दोनों अँगूठों से--और भीतर बादलों की गड़गड़ाहट सुननी चाहिये। तो उन्होंने सुनना शुरू कर दिया। तीन साल से वे सुन रहे हैं। अब गड़गड़ाहट इतनी ज्यादा सुनाई पड़ने लगी कि अब और कुछ सुनाई ही नहीं पड़ता। अब अँगूठे न भी लगायें, तो भी गड़गड़ाहट सुनाई पड़ती है। दूसरा बात भी करे, तो उन्हें सुनाई नहीं पड़ता, क्योंकि उनको गड़गड़ाहट भीतर चल रही है।

मैंने उनसे पूछा कि 'तूने गड़गड़ाहट सुनने की कोशिश काहे के लिये की थी?' उन्होंने कहा कि 'मैं तो गया था कि कैसे शांति मिले, उन्होंने कहा कि 'ऐसे शांति मिलेगी : तुम गड़गड़ाहट सुनो।'

'तुम सोचते भी तो कि गड़गड़ाहट सुनने से शांति मिलेगी? कि थोड़ी बहुत शांति होगी, वह भी नष्ट हो जायेगी!'

है एक प्रयोग--वह भी ध्यान का एक प्रयोग है। 'लेकिन तुम समझ तो लेते मर्म उसका! कि तुम करने ही लगे! और अब सफल हो गये, तो परेशान हो रहे हो?' अब वे सफल हो गये हैं। अब गड़गड़ाहट से छुटकारा चाहिये।

बहुत से लोग हैं--न मालूम क्या-क्या करते रहते हैं। कोई शीर्षासन कर रहा है--बिना फिक्र किये कि वह क्या कर रहा है। क्योंकि किसी ने कह दिया; कि पण्डित नेहरु की आत्मकथा में पढ़ लिया; कि फलाँ आदमी सिर के बल खड़ा था, तो बड़ा बुद्धिमान हो गया था।

इतना आसान होता बुद्धिमान होना--सिर के बल खड़े होने से--तो दुनिया में बुद्धू पाने मुश्किल थे। क्योंकि बुद्धू कम से कम सिर के बल तो खड़े हो ही सकते हैं। क्योंकि इसमें अड़चन की बात कहाँ है? निश्चित ही लाभ हो सकता है, लेकिन मर्म को जाने बिना...?

मस्तिष्क में अगर ज्यादा खून चला जाय, तो नुकसान हो जायेगा। कितना खून जाना जरूरी है आपके मस्तिष्क में--न आपको पता हैं, न जिनसे आप सीख के आ रहे हैं, उनको पता है।

आपको पता है कि आदमी में बुद्धि ही इसलिये पैदा हुई, क्योंकि वह सीधा खड़ा हो गया। अब मस्तिष्क में खून कम जा रहा है, इसलिये बुद्धि पैदा हो सकी है। जानवरों को बुद्धि पैदा नहीं हो सकी, क्योंकि खून मस्तिष्क में ज्यादा जा रहा है। खून जब मस्तिष्क में ज्यादा जाता है, तो पतले महीन तन्तु पैदा नहीं हो पाते।

आदमी सीधा खड़ा हो गया; मस्तिष्क में खून कम जा रहा है, तो महीन, बारीक तन्तु, डेलिकेट तन्तु पैदा हो सके। उन्हीं तंतुओं की वजह से आप बुद्धिमान हो सके। उन्हीं तन्तुओं की वजह से आप बुद्धिमान हैं।

रात अगर आप बिना तकिये के सोयें, तो नींद नहीं आती। क्यों? क्योंकि जो महीन तन्तु हैं—खून की धारा उन्हें छेड़ने लगती है। तो आप रात सो नहीं सकते। तकिये पर सिर रख लेते हैं, खून की धारा कम हो जाती है--सिर की तरफ, तो महीनतम तन्तु शांति से सो पाते हैं।

अब आप शीर्षासन कर रहे हैं। अब आपको पहले यह पक्का कर लेना चाहिये कि कितना खून आपके तन्तु सह सकेंगे, नहीं ती टूट जायेंगे।

तो मैंने तो अभी तक शीर्षासन करने वालों को बहुत बुद्धिमान नहीं देखा। आप बता दें कि एकाध शीर्षासन करने वालों ने कोई विज्ञान का आबिष्कार किया हो? कि एकाध शीर्षासन करने वाले को नोबल प्राइज मिली हो?

इसका यह मतलब नहीं कि शीर्षासन का फायदा नहीं हो सकता। लेकिन मर्म को समझे बिना..। और फिर पढ़ लिया कि बड़ा लाभ होता है, तो घण्टों खड़े हैं शीर्षासन में। सिर्फ खोपड़ी खराब हो जायेगी। फायदा हो सकता है, लेकिन बहुत

बारीक मामले हैं। और ठीक प्रशिक्षित व्यवस्था के भीतर ही हो सकता है।

जब आपके भीतर पूरे मस्तिष्क की जाँच हो गयी हो और आपके रग-रग का पता हो कि कितना खून कम है...। वैसे ही तो कहीं ज्यादा नहीं जा रहा है!

जो लोग रात को नहीं सो पाते, उसका कारण ही यह है कि खून ज्यादा जा रहा है। और मस्तिष्क में खून ज्यादा जा रहा हो, तो उस दिन नींद नहीं आ सकती; इनसोमनिया, अनिद्रा पैदा हो जायेगी। खून की मात्रा मस्तिष्क में कम होनी ही चाहिये। तो ही नींद आ पायेगी, तो ही विश्राम हो पायेगा।

जब आप सोचते रहते हैं, तब नींद नहीं आती, क्योंकि सोचने की वजह से ज्यादा खून की जरूरत पड़ती है मस्तिष्क में; तन्तुओं को चलना पड़ता है। इसलिये नींद नहीं आती। तो कम रक्त प्रवाह नींद के लिये जरूरी है; विश्राम के लिए जरूरी है।

लेकिन अगर आपके मस्तिष्क में कम खून जा रहा हो, तो थोड़ी-सी खून की झलक तेजी से पहुँचा देना फायदा भी कर सकती है। तो जो तन्तु मुरदा हो गये हैं, वे सजीव भी हो सकते हैं। उनको खून मिल जाय। लेकिन कितना? उस मर्म को बिना समझे जो किये चला जाता है, वह अकसर लाभ की जगह हानि कर लेता है।

लोग बैठ जाते हैं, कुछ भी कर लेते हैं। अध्यात्म के जगत् में तो बहुत अन्धापन है, क्योंकि मामला अँधेरे का है। सब टटोल-टटोल कर चलना पड़ता है। और कोई भी मिल जाता है...। और गुरु बनने का मजा इतना है कि आपको भी कोई मिल जाय, तो आप भी बिना बताये नहीं मानते--कि ऐसा करो, तो सब ठीक हो जायेगा। आपको खुद को अभी हुआ नहीं है!

मेरे पास रोज ऐसे लोग आ जाते हैं, जिनके सैकड़ों शिष्य हैं। अब वे मुझसे पूछने आते हैं कि ध्यान कैसे करना? तुम इतने शिष्य कहाँ से इकट्ठे कर लिये हो? तुम्हें खुद पता नहीं है, तो तुम इन्हें क्या समझा रहे हो?' तो वे कहते हैं, 'शास्त्रों को पढ़कर...!'

कृष्ण कहते हैं: मर्म को न जान कर किये गये अभ्यास से तो परोक्षज्ञान श्रेष्ठ है। ऐसे अभ्यास में मत पड़ जाना, जिसको तुम जानते नहीं हो, क्योंकि अभ्यास आग से खेलना है। अभ्यास का मतलब है: कुछ होकर रहेगा अब। और अगर तुम्हें पता नहीं है कि तुम क्या कर रहे हो और क्या होकर रहेगा, तो तुम कहीं ऐसा न कर लो कि अपने को नुकसान पहुँचा लो।

और जिन्दगी बहुत जटिल है। ऐसे ही जैसे आपकी घड़ी गिर गयी। खोल कर बैठ गये ठीक करने! तो घड़ी तो कोई बहुत जटिल चीज नहीं है। लेकिन घड़ी

भी आप और खराब कर लोगे। वह घड़ीसाज के पास ही ले जानी चाहिए। वह रुपये दो रुपये में ठीक कर देगा। आप सौ दो सौ की चीज ऐसे ही खराब कर दोगे।

लेकिन जब घड़ी गिरती है, तो बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी का मन खोलने का होता है। क्योंकि बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी भी बचकाना है। वह बच्चा जो भीतर है, क्यूरिऑसिटी जो है, कि जरा खोलकर हम ही ठीक न कर लें--जरा हिला कर। कहाँ जाना? तो जरा हिला लें!

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जरा हिलाने से ठीक हो जाती है। मगर इससे आप यह मत समझ लेना कि आप कलाकार हो गये और आपको पता चल गया कि...। तो दूसरों की घड़ी मत हिलाने लगना, नहीं तो बन्द भी हो सकती है। कभी-कभी संयोग सफल हो जाते हैं। कभी आपकी घड़ी बन्द है। आपने जरा हिलायी। और आप समझे कि अरे! चल गयी! नाहक दो-चार रुपये खराब करने पड़ते। अब हम भी जानकर हो गये। अब जहाँ भी घड़ी बन्द दिखे, उसे हिला देंगे।

संयोग कभी-कभी जीवन में भी सफल होते हैं। कभी-कभी उनसे लाभ भी हो सकता है। पर उनको विज्ञान नहीं कहा जा सकता।

पर जिन्दगी तो बहुत जटिल है। घड़ी में तो कुछ भी नहीं है। आपके छोटे से मस्तिष्क में कोई सात करोड़ सेल्स हैं; सात करोड़ जीवन्त कोष्ठ हैं! उन सात करोड़ जीवन्त कोष्ठ की व्यवस्था पर सब निर्भर है--आपका होना, आपकी चेतना, आपकी बुद्धि, सोच, विचार, भाव--सब।

आप उलटा सिर खड़े हो गये, तो आपको पता नहीं कि इन सात करोड़ कोष्ठों के साथ क्या हो रहा है। कि आपने प्राणायाम शुरू कर दिया। आपको पता नहीं कि उन कोष्ठों के साथ क्या हो रहा है। आपको पता नहीं कि उन कोष्ठों को कितने आक्सीजन की जरूरत है। और जितनी आप दे रहे हैं, उतनी जरूरत है या नहीं है? क्योंकि ज्यादा आक्सीजन आ जाय, तो भी मूर्च्छा आ जायेगी। कम हो जाय, तो भी मूर्च्छा आ जायेगी।

जीवन एक संतुलन है, और बहुत बारीक संतुलन है। इसलिए कृष्ण कहते हैं कि बिना मर्म को जाने हुए अभ्यास में पड़ना मत अर्जुन। उससे बेहतर तो परोक्ष-ज्ञान है।

परोक्ष-ज्ञान का अर्थ है: शास्त्र ने जो कहा है। शास्त्र ने जो कहा है. वह बेहतर है--बजाय इसके कि तू अभ्यास अपना कर के, बिना मर्म को समझे, किसी उपद्रव में पड़ जाय। उससे तो शास्त्र ने जो कहा है...।

शास्त्र का अर्थ होता: जिन्होंने जाना, जिन्होंने अनुभव किया और अपने अनु-

भव को लिपिबद्ध किया--कि उनके काम आ सके, जो जानते नहीं हैं। इस बात को ठीक से समझ लें।

जिन्होंने जाना, जिन्होंने अनुभव किया, प्रयोग किया, अभ्यास किया, प्रतीति की, जो पहुँच गये, उनके वचन हैं। सिर्फ वचन नहीं हैं--उनके लिये जो नहीं जानते हैं। इसमें फर्क है। क्योंकि वे बोल सकते हैं, जैसा उन्होंने जाना। लेकिन अगर आपका ध्यान न रखा जाय, तो उनका ज्ञान आपके लिये खतरनाक हो जायेगा। वह इस भाँति बोला गया है शास्त्र ...। अज्ञानी को खयाल में रख कर बोला गया है कि वह इससे उपद्रव न कर सके।

जीसस ने छोटी-छोटी कहानियाँ कही हैं। और सभी बातें कहानियों में कही हैं। बड़ी मजे की बात है। और कहानियाँ इतनी सरल हैं कि कोई भी समझ ले। और इतनी कठिन भी हैं कि बहुत मुश्किल है समझना। पर कहानियों में इस ढंग से कहा है कि जो कहानी समझेगा, उसे पता ही नहीं चलेगा कि भीतर क्या छिपा है। वह सिर्फ कहानी का मजा लेगा; बात खत्म हो जायेगी। उसे कहानी कोई नुकसान न पहुँचा पायेगी। थोड़ी उसकी समझ बढ़ेगी।

लेकिन जो कहानी में उतर सकता है गहरा, जितना गहरा उतर सकता है, उतना ही अर्थ बदल जायेगा।

जीसस की एक-एक कहानी में सात-सात अर्थ हैं। और सात मन की स्थितियाँ हैं। पहली स्थिति पर सिर्फ कहानी है। उसको बच्चा भी पढ़े तो आनन्दित होगा। एक कहानी का मजा आयेगा। बात खत्म हो जायेगी। लेकिन दूसरी स्थिति में खड़ा हुआ आदमी दूसरा अर्थ लेगा। तीसरी स्थिति में खड़ा हुआ आदमी तीसरा अर्थ लेगा।

शास्त्र का अर्थ है : जो अज्ञानियों को ध्यान में रख कर लिखे गये हैं। और कुंजियाँ इस भाँति छिपाई गयी हैं कि वे गलत आदमियों के हाथ न पड़ जायँ। और उसी वक्त कुंजी हाथ में पड़ें, जब वह आदमी उसका ठीक उपयोग कर सके। उसके पहले हाथ में न पड़ें। इतनी सारी व्यवस्था जहाँ की गयी हो, उसका नाम शास्त्र है।

हर किसी किताब का नाम शास्त्र नहीं है। शास्त्र बहुत वैज्ञानिक आयोजन है। और हजारों साल बाद भी उसी ढंग से शास्त्र कारगर हैं। लेकिन बड़ा मुश्किल है। इसलिए शास्त्र तो आप पढ़ लेते हैं, उसका अर्थ आपको पता चलता है कि नहीं--यह कहना मुश्किल है।

आपको उतना ही पता चलता है, जितना आपको पता चल सकता है। बस, उससे ज्यादा पता नहीं चलता। इसलिए फिर शास्त्रों पर टीकाओं और व्याख्याओं की जरूरत पड़ी। क्योंकि जिनको ज्यादा पता चल गया उन शास्त्रों में--जितना आपको पता चलता था, उससे ज्यादा पता चल गया; उन्होंने टीकाएँ लिखी हैं। लेकिन उन टीकाओं में भी उन्हीं नियमों का उपयोग किया गया है--कि गलत आदमी के हाथ ज्ञान न पड़ जाय।

गलत आदमी अज्ञान में बेहतर है, क्योंकि अज्ञान में ज्यादा खतरा नहीं किया जा सकता।

आपने आमतौर से सुना होगा कि अज्ञान में खतरा होता है। अज्ञान में ज्यादा खतरा नहीं होता। लेकिन अज्ञानी के हाथ में ज्ञान हो, तो फिर ज्यादा खतरा होता है। ऐसा जैसे कि बच्चे के हाथ में तलवार दे दो। तो उन्होंने उठा कर पिता की ही गरदान काट दी। वह सिर्फ देख रहे थे कि तलवार काम करती है कि नहीं करती है! असली है कि नकली है?

आज विज्ञान में यही उपद्रव खड़ा हो गया है। आज विज्ञान ने फिर कुछ कुंजियाँ खोज लीं।

आइन्स्टीन मरने के पहले कह कर मरा है कि अगर मुझे दुबारा जन्म मिले, तो मैं वैज्ञानिक नहीं होना चाहता। मैं एक प्लम्बर हो जाऊँगा, लेकिन अब वैज्ञानिक नहीं होना चाहता। क्योंकि जो मैंने दिया है, वह उनके हाथ में पड़ गया है, जो सारी दुनिया को नष्ट कर देंगे। और मेरा कोई वश नहीं रहा।

अभी वैज्ञानिक विचार करते हैं कि हमें अपना ज्ञान छिपाना चाहिए अब। राजनीतिज्ञों के हाथ न पड़े, क्योंकि राजनीतिज्ञों से ज्यादा नासमझ आदमी खोजने मुश्किल हैं। उनके हाथ में ज्ञान पड़ने का मतलब है : अज्ञानियों के नेताओं के हाथ में ज्ञान पड़ गया। वे खतरा कर देंगे। वे उपद्रव कर देंगे।

अब आज सारी दुनिया के पास ताकत विज्ञान ने दे दी है। और चाबी भी दे दी है। शास्त्र का अर्थ है : कभी ऐसा एक बार पहले भी हो चुका है। अध्यात्म के जगत् में हमने इतने ही मूल्यवान सूत्र खोज लिये थे। लेकिन वह हर किसी को दे देना खतरनाक है। तो हमने शास्त्रों में प्रकट भी किया है और छिपाया भी है।

शास्त्र का अर्थ है : जो प्रकट भी करता है और छिपाता भी है। प्रकट उतना करता है, जितना आप आत्मसात कर लो। और उतना छिपाये रखता है, जितना अभी आपके काम का नहीं है। और जब आप एक कड़ी आत्मसात कर लेंगे, तो दूसरी कड़ी आपको दिखाई पड़नी शुरू हो जायेगी। एक सीढ़ी से ज्यादा आपको कभी दिखाई नहीं पड़ पाती। जब दूसरी सीढ़ी आप आत्मसात कर लोगे, तब तीसरी आपको दिखाई पड़ेगी।

एक कुंजी जब आप उपयोग कर लोगे, तो दूसरी कुंजी आपके हाथ में दी जायेगी।

और दूसरा ताला खुलने लगेगा।

शास्त्र एक वैज्ञानिक व्यवस्था है। इसलिए शास्त्र साधारण किताब का नाम नहीं है। आज तो किताबें बहुत हैं। पाँच हजार किताबें प्रति सप्ताह छपती हैं। इन किताबों की भीड़ में शास्त्र खो गया। अब शास्त्र का कुछ पता लगाना मुश्किल है--कि कौन-सा शास्त्र है...।

लेकिन कृष्ण कहते हैं कि न मर्म को समझ कर किया हुआ अभ्यास--उससे तो परोक्ष-ज्ञान श्रेष्ठ है। परोक्ष-ज्ञान का मतलब : दूसरों ने, लेकिन जिन्होंने जाना है, उनका कहा हुआ ज्ञान। उसको ही स्वीकार कर लेना उचित है।

'परोक्ष-ज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है।' लेकिन परोक्ष-ज्ञान उधार है।

शास्त्र से कितना ही पता चल जाय, वह आपका स्वानुभव तो नहीं है। किसी को पता चला--पतंजलि को। किसी को पता चला--वशिष्ठ को। किसी को पता चला--शंकर को--रामानुज को।

आप ने सुना; उन्हें पता चला है। आपने मान लिया। आपकी थोड़ी बुद्धि तो बढ़ी, लेकिन आप नहीं बढ़े। आपका संग्रह बढ़ा; जानकारी बढ़ी। लेकिन बोध नहीं बढ़ा। बोध तो बढ़ेगा स्वानुभव से।

तो कृष्ण कहते हैं : परोक्ष ज्ञान से--शास्त्र ज्ञान से--मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है।' तो बेहतर है कि तू सीधा न तो अभ्यास की उलझन में पड़, क्योंकि मर्म को बिना समझे खतरा है। न शास्त्रों की समझ में पड़, क्योंकि कितना ही समझ ले, तो भी वह दूसरे का ज्ञान होगा। और सैकन्ड हैण्ड होगा। तेरे लिये नया और ताजा नहीं होगा। अपना जो नहीं है, वह ताजा भी नहीं है।

और ज्ञान के सम्बन्ध में एक बात जान लेनी जरूरी है कि जो अपना नहीं है, वह अपना है ही नहीं। वह कितना ही ठीक पकड़ में आ जाय, तो भी वह दूसरे का है।

और दूसरे के ज्ञान से आपकी आँख काम नहीं कर सकती। दूसरे के पैर से आप चल नहीं सकते। दूसरे की छाती से आप श्वास नहीं ले सकते। दूसरे की प्रज्ञा आपकी प्रज्ञा नहीं बन सकती। आपकी प्रज्ञा तो तभी बनती है, जब सीधा ध्यान परमात्मा की तरफ लगता है।

'परोक्ष ज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है...।' तो जितनी देर आप अभ्यास में लगते हैं, उससे बेहतर है कि उतना समय आप शास्त्र में लगायें। जितना समय आप शास्त्र में लगाते हैं, उससे भी बेहतर है कि उतना बरमात्मा के ध्यान में लगायें। बेहतर है कि किताबें बन्द कर दें। आँख बंद कर लें और पर-

मात्मा का स्मरण करें।

क्या करेंगे परमात्मा के स्मरण में? कैसे होगा परमात्मा का ध्यान? क्या करना पड़ेगा? एक छोटा-सा खयाल समझ लें।

कुछ भी न करें। सिर्फ लेट जायँ या बैठ जायँ और बिलकुल ढ़ीला छोड़ दें अपने को। कुछ भी न करें--श्वास भी खुद न लें। अपने आप जितनी चलती है --चलने दें। एक पाँच मिनट तो सिर्फ इतना ही ध्यान रखें कि मैं कुछ न करूँ, सिर्फ पड़ा रहूँ--मुरदे की भाँति।

एक पाँच मिनट में सिर्फ अपने को शान्त कर लें। दस मिनट, पन्द्रह मिनट जितनी देर आपको लगे। सिर्फ शान्त पड़ जायँ, जैसे मुरदा हैं। जैसे आप हैं ही नहीं। सारी क्रिया को शिथिल छोड़ दिया, रिलैक्स कर दिया। और जब यह सब शिथिल और शान्त हो जाय, सिर्फ श्वास ही सुनाई पड़े।... कभी-कभी कोई विचार मन में तैर जायेगा। कभी कोई चींटी काटती है, तो पता लगेगा। कभी कोई बाहर से आवाज आयेगी, तो झनक पड़ेगी। मगर आप अपनी तरफ से बिलकुल शान्त पड़े हैं, जैसे हैं ही नहीं।

इस क्षण में सिर्फ एक ही भावना करें : आपके मन में जो भी ईष्ट हो, जिस परमात्मा का जैसा नाम आपको प्यारा लगता हो, या मूर्ति प्यारी लगती हो, आकृति प्यारी लगती हो, बुद्ध की प्रतिमा प्यारी लगती हो, तो बस इस शान्त अवस्था में सिर्फ बुद्ध की प्रतिमा का स्मरण करें। इस शून्य में सिर्फ बुद्ध की प्रतिमा बने। या आपको अच्छा लगता हो : ओम् का उच्चार, तो फिर ओम् का उच्चार भीतर गूँजने दें। या आपको अच्छा लगता हो--राम-राम, तो राम का उच्चार भीतर गूँजने दें। कोई भी एक चीज पकड़ लें, जो आपको प्यारी लगती हो और प्रभु का स्मरण दिलाती हो।

ऐसा हुआ है। मैंने सुना है कि एक सूफी फकीर हुआ है। एक सम्राट् उसकी सेवा में आता था और उसने उसे कहा कि 'तू ईश्वर का स्मरण कर।' उस सम्राट् को एक हीरे से बहुत प्रेम था। वह हीरा उसने बड़ी मुश्किल से, बड़े युद्धों के बाद पाया था। और वह चौबीस घण्टे उसको अपने पास रखता था।

जब वह परमात्मा के स्मरण को बैठा, तो परमात्मा का तो स्मरण न आये; उसको उसी हीरे का खयाल आये। और वह हीरा दिखायी पड़े। तो वह वापस फकीर के पास आया। उसने कहा कि 'बड़ी मुश्किल हो गयी है। यह हीरा मुझे बाधा डालता है। मैं कैसे इसका त्याग करूँ!'

तो फकीर ने कहा कि 'तू त्याग मत कर, क्योंकि त्याग से और ज्यादा बाधा डालेगा। तू ऐसा कर कि परमात्मा को छोड़। तू हीरे की ही याद कर। तू आँख

बन्द कर ले और हीरे को ही देख और सिर्फ इतना ही खयाल कर कि यह हीरा परमात्मा का रूप है।' वह सम्राट् चकित हुआ। उसने सोचा होगा कि फकीर कहेगा: हीरे का त्याग कर। कहाँ की क्षुद्र चीज में उलझा है!

लेकिन वह फकीर निश्चित समझदार रहा होगा। सम्राट् ने हीरे पर ध्यान करना शुरू कर दिया। जब हीरे पर ध्यान किया, तो हीरे ने बाधा डालनी बन्द कर दी——स्वभावतः। बाधा वह इसलिये डालता था कि कहाँ जा रहे हो? जब जाने की कोई बात ही न रही, तो हीरे ने बाधा डालनी बन्द कर दी। और कुछ था नहीं उसका उलझाव; एक हीरा ही था। और हीरे में वह परमात्मा को अनुभव करने लगा। थोड़े ही दिनों में हीरा खो गया और परमात्मा शेष रह गया।

तो जो भी आपका 'हीरा' हो, आपकी पत्नी का चेहरा हो, आपके बेटे की आँख हो, आपके मित्र की छबि हो, कृष्ण का रूप हो——राम का हो, जीसस का हो। आपका जहाँ सहज रुझान हो।

और अगर कुछ भी न हो, तो अपनी ही फोटो। वह तो कम से कम होगी। तो आईने में अपनी शक्ल देख ली। आँख बन्द कर लिया और कहा कि यह परमात्मा का रूप है। उसी पर...। उससे भी पहुँच जायेंगे। तुम घबड़ाना मत कि अपनी ही तस्वीर कैसे...!

अपना ही नाम भी...। अगर आपको वही प्यारा हो, तो फिर राम का नाम लेने की जरूरत नहीं है। क्योंकि जो प्यारा नहीं है, उसका नाम लेकर भी कुछ फायदा नहीं होगा।

आपको अगर अपना ही नाम जँचता हो...। सबको जँचता है। और दिल होता है कि कहाँ——'राम-राम' कर रहे हैं! तो अपना ही नाम दोहरायें। कोई हर्जा नहीं है, उसी को दोहराना। और समझना कि यह परमात्मा का नाम है। और आप थोड़े ही दिन में पाओगे कि आप खो गये और परमात्मा बच रहा।

'परोक्ष ज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है। ध्यान से भी श्रेष्ठ है सब कर्मों के फल का मेरे लिये त्याग करना। क्योंकि ध्यान भी आपका कर्म है। आपको लगता है कि 'मैं ध्यान कर रहा हूँ।' इतनी अड़चन बनी रहती है। मैं ध्यानी हूँ——और मैंने ध्यान किया परमात्मा का। वह भीतर 'मैं' की सूक्ष्म रेखा बनी रहती है।

इसलिये कृष्ण कहते हैं: उससे भी श्रेष्ठ है——सब कर्मों के फल का त्याग कर देना। और त्याग से तत्काल ही परम शान्ति होती है। सब कर्मों के फल के त्याग से तत्काल ही परम शान्ति होती है।

जैसे ही कोई सब प्रभु पर छोड़ देता है, अशान्त होने का सारा कारण ही खो

जाता है।

अगर अशान्ति चाहिये, तो सब अपने सिर पर रखना। दूसरों का भी उतार कर अपने सिर पर रख लेना। सारी दुनिया में जो जो तकलीफें हैं, उनको अपने सिर पर रख लेना। तो अशान्ति आपकी आप कुशलता से बढ़ा सकोगे। और करीब करीब इसी तरह लोग बढ़ाये हुए हैं।

सारी दुनिया की तकलीफें, सारी दुनिया का बोझ——आप अकेले के सिर पर पड़ गया है। अगर यह बोझ कम करना हो और शान्ति चाहिये हो, तो यह परमात्मा पर छोड़ देना।

और आप नाहक ही परेशान हो रहे हो। बोझ आपके सिर पर है नहीं। आप की हालत उस देहाती आदमी जैसी है, जो पहली दफा ट्रेन में सवार हुआ था। तो उनने अपना सब बिस्तर-बोरिया अपने सिर पर रख लिया था। उसने सोचा कि टिकट तो मैंने केवल अपनी ही दी है। और यह बिस्तर-बोरा ट्रेन में रखूँ, तो पता नहीं कोई आ जाय और कहे कि कहाँ रखा है! इसे अपने सिर पर रखना ही ठीक हैं। और फिर उसने यह भी सोचा कि इतने आदमियों का बोझ वैसे ही ट्रेन पर है, मैं भी चढ़ा हूँ और इस वजन का——इस बिस्तर का बोझ भी और बढ़ जाय, तो कहीं ट्रेन रुक ही न जाय। तो अपने सिर पर रख लूँ।

लेकिन आप अपने सिर पर भी रख कर बैठे रहें, तो भी ट्रेन पर ही बोझ पड़ रहा है। आप भी झेल रहे हैं——यह मुफ्त में। इसकी नीचे रखा जा सकता है। यह ट्रेन लिये जा रही है।

परमात्मा के ऊपर सब छोड़ते ही आप निर्बोझ हो जाते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि जो बोझ था, वह आप ढो रहे थे। परमात्मा उसे ढो ही रहा है।

इसलिये कृष्ण कहते हैं कि सब कर्म को छोड़ देता है——मेरे ऊपर——वह श्रेष्ठतम है। उसे तो फिर ध्यान की भी जरूरत नहीं है। उसे तो फिर कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। एक ही बात कर ली कि सब हो गया।

एक करने से सब हो जाता है। सिर्फ——कि वह परमात्मा पर छोड़ देता है।

त्याग से तत्काल परम शान्ति होती है। होगी ही। लेकिन त्याग का मतलब आप यह मत समझ लेना कि घर छोड़ दिया, मकान छोड़ दिया, कपड़े छोड़ दिये, भाग गये। वह त्याग का मतलब नहीं है। उस त्याग में तो त्याग आपको पकड़े ही रहेगा। और आप जहाँ भी जाओगे, खबर करोगे कि मैं सब त्याग कर आ रहा हूँ। वह 'मैं त्याग करके आ रहा हूँ'——साथ जायेगा।

नहीं; त्याग का गहन अर्थ है कि मैं कर नहीं रहा हूँ; मैं कर भी नहीं सकता हूँ; जो करने वाला है, वह वही है। मैं नाहक ही बीच में...।

मैंने सुना है कि रथ निकलता था पुरी में और एक कुत्ता रथ के आगे चलने लगा। और सब लोग नमस्कार कर रहे थे और रथ के सामने गिर-गिर के साष्टांग दण्टवत कर रहे थे। उस कुत्ते ने कहा कि 'अरे! बेचारे!' वह सबको मन ही मन आशीर्वाद देता रहा--खुश रहो। मगर क्यों इतने परेशान हो रहे हो... !

उसकी अकड़ बढ़ती चली गयी। उसे लगा कि 'मेरे लिये रथ निकल रहा है। मेरे लिये सारे लोग दण्डवत कर रहे हैं। गजब हो गया। वैसे मैं जानता तो था पहले से ही कि मेरी हालत कितनी ऊँची है! लेकिन दुनिया स्वीकार नहीं करती थी। अब सब ने स्वीकार कर लिया हैं।'

रात कुत्ता सो नहीं सका होगा। और हार्टफेल हो गया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं है।

पर हम सब की हालत भी यही है। हम सब ऐसे ही चल रहे हैं कि 'रथ' हमारे लिये चल रहा है। यह सारा जगत् हमारे लिये चल रहा है। बड़े परेशान हो रहे हैं। नाहक ही परेशान हो रहे हैं। बिना कारण परेशान हो रहे हैं।

ईश्वर-समर्पण का अर्थ है कि ये परेशानियाँ मैं छोड़ता हूँ। यह सब मेरे लिये नहीं चल रहा है। यह सब मैं नहीं चला रहा हूँ। मैं व्यर्थ ही परेशान हो रहा हूँ। इसलिये धार्मिक आदमी परम शान्त हो जाता है, क्योंकि सब परमात्मा कर रहा है, तो अपने को करने के भाव से मुक्त कर देता है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि वह अकर्मण्य हो जाता हैं। इसका सिर्फ इतना ही अर्थ है कि वह छोड़ देता है उस पर। वह काम लेना चाहे, तो काम ले। कर्म लेना चाहे, तो कर्म ले। और अकर्मण्य करके बिठालना चाहे, तो अकर्मण्य करके बिठा ले।

अपनी तरफ अब उसकी कोई भी स्वयं की चेष्टा नहीं है। अब वह बहता है नदी की धारा में, जहाँ नदी ले जाय। डुबा दे, तो वह डुबाना भी उसके लिये किनारा है।

पाँच मिनट रुकें। कोई बीच में न उठे। दो तीन बातें खयाल रखें। कुछ लोग आकर बीच में बैठे जाते हैं; फिर बीच से उठकर जाने की कोशिश करते हैं। बाहर बैठें; जाना हो, तो किनारे पर बैठें। और कीर्तन के समय कोई भी उठे ना। पाँच मिनट कीर्तन करने के बाद जायें।

मन की कठिनाई • जीवित संत को खोजो • वास्तविक भाग्यवाद परमात्मा का प्रिय कौन

सातवाँ प्रवचन

क्रॉस मैदान, पारसी कुआँ, बम्बई, संध्या, दिनांक १८ मार्च, १९७३
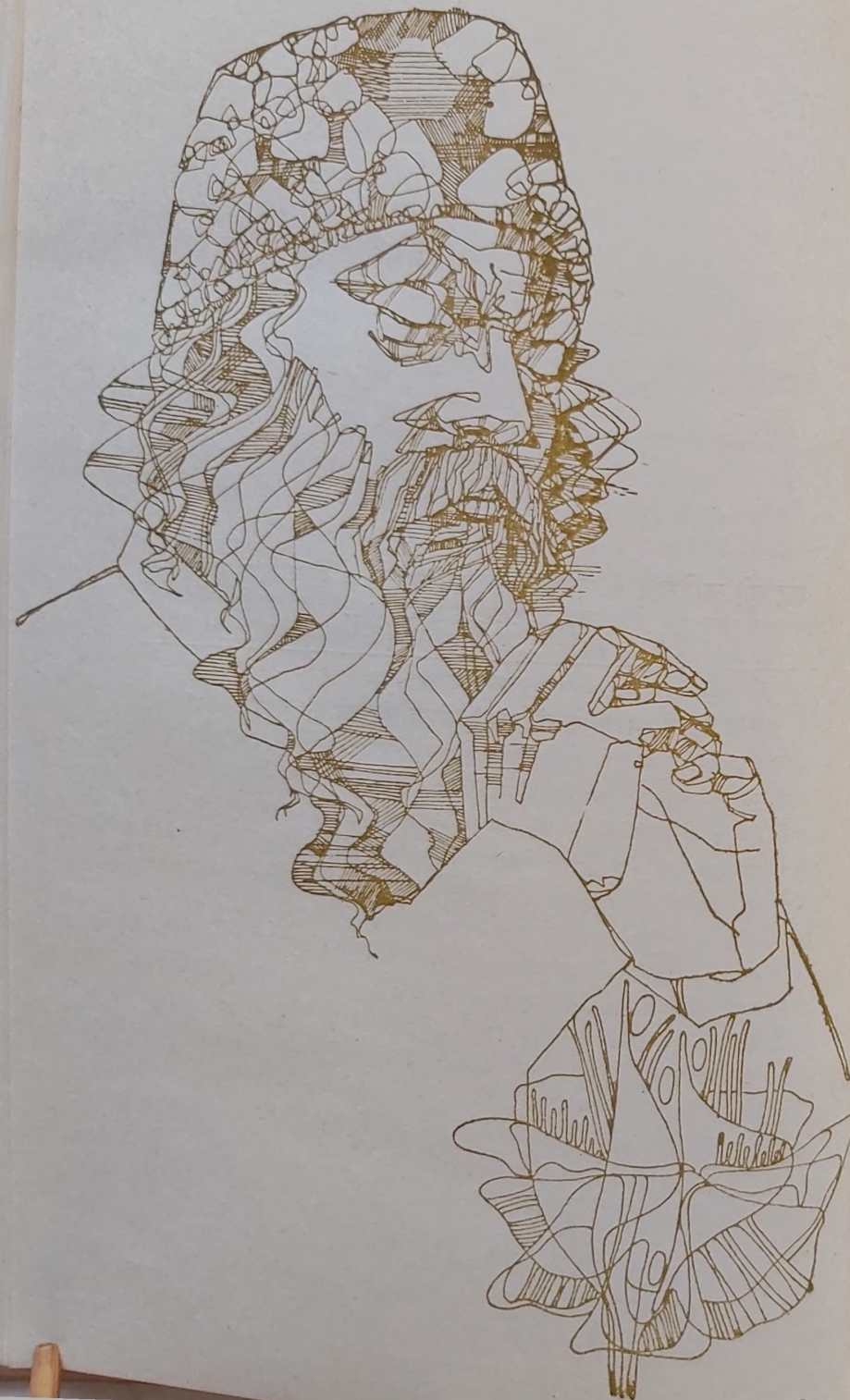
अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ।। १३ ।।

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।। १४ ।।

इस प्रकार शान्ति को प्राप्त हुआ जो पुरुष सब भूतों में द्वेष भाव से रहित एवं स्वार्थरहित सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममता से रहित एवं अहंकार से रहित सुख-दुःखों की प्राप्ति में सम और क्षमावान है अर्थात् अपराध करने वालों को भी अभय देने वाला है तथा जो योग में युक्त हुआ निरन्तर लाभ हानि में संतुष्ट है तथा मन और इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किये हुए मेरे में दृढ़ निश्चय वाला है, वह मेरे में अर्पण किये हुए मन बुद्धि वाला मेरा भक्त मेरे को प्रिय है।

पहले कुछ प्रश्न।

● एक मित्र ने पूछा है कि निराकार की साधना इतनी कठिन क्यों है?

निराकार शब्द भी समझ में नहीं आता। निराकार शब्द भी हमारे मन में आकार का ही बोध देता है। असीम भी हम कहते हैं, तो ऐसा लगता है : उसकी भी सीमा होगी--बहुत दूर, बहुत दूर। लेकिन कहीं उसकी भी सीमा होगी।

मन असीम का खयाल भी नहीं पकड़ सकता। मन का द्वार इतना छोटा है, सीमित है कि उससे अनन्त आकाश नहीं पकड़ा जा सकता है। इसलिये निराकार की साधना कठिन है। क्योंकि निराकार की साधना का अर्थ हुआ : मन को अभी, इसी क्षण छोड़ देना पड़ेगा, तो ही निराकार की तरफ गति होगी।

मन से तो जो भी दिखाई पड़ेगा, वह आकार होगा। और मन से जहाँ तक पहुँच होगी, वह सीमा और गुण की होगी।

मन के तराजू पर निराकार को तौलने का कोई उपाय नहीं है। जो तौला जा सकता है, वह साकार है। और हम मन से भरे हैं। हम मन ही हैं। मन के अतिरिक्त हमारे भीतर कुछ है--इसका हमें कोई पता नहीं है। कहते हैं--आत्मा की बात; सुनते हैं; लेकिन आपको उसका कुछ पता नहीं है। पता तो मन का है। उसका भी पूरा पता नहीं है।

वैज्ञानिक कहते हैं 'कि दस में से केकल एक हिस्सा मन का हमें थोड़ा-थोड़ा पता है, नौ हिस्सा मन का भी हमें पता नहीं है।

मन भी अभी ज्ञात नहीं है। अभी सीमित को भी हम नहीं जान पाये हैं, तो असीम को जानने में कठिनाई होगी।

निराकार शब्द तो खयाल में आ जाता है, लेकिन अर्थ बिलकुल खयाल में नहीं आता। अगर कोई आपसे कहे कि यह जो आकाश है, अनन्त है, तो भी मन में ऐसा ही खयाल बना रहता है कि कहीं न कहीं जा के समाप्त जरूर होता होगा। कितनी ही दूर हो वह सीमा, लेकिन कहीं समाप्त जरूर होता होगा। समाप्त तो होता ही नहीं है, यह बात मन को विबूचन में डाल देती है; मन घबड़ा जाता है। मन

विक्षिप्त होने लगता है--अगर कोई भी सीमा न हो। मन की तकलीफ है।

मन की व्यवस्था सीमा को समझने के लिए है। इसलिये निराकार को पकड़ना कठिन हो जाता है।

सुना है मैंने : एक सम्राट् ने अपने एक प्रतिद्वन्द्वी से, जिससे प्रतिद्वन्द्विता थी--एक प्रेयसी के लिए, उसे द्वन्द्व में उतरने की स्वीकृति दे दी। द्वन्द्व का समय भी तय हो गया। कल सुबह छः बजे गाँव के बाहर एकान्त निर्जन में वे अपनी-अपनी पिस्तौल ले कर पहुँच जायेंगे। और दो में से एक ही बच के लौटेगा। तो प्रेयसी की कलह और उसका झगड़ा शेष न रहेगा।

सम्राट् तो पहुँच गया ठीक समय पर; समय के पूर्व; लेकिन दूसरा प्रतिद्वन्द्वी समय पर नहीं आया। छः बज गया। छः दस बज गये; छः पंद्रह, छः बीस--बेचैनी से प्रतीक्षा रही। तब एक घुड़सवार दौड़ता हुआ आया प्रतिद्वन्द्वी का--एक टेलीग्राम, एक संदेश लेकर।

थोड़े से वचन थे उस टेलीग्राम में; लिखा था : अन-एव्हायडेब्ली डिलेड, बट इट विल बी ए सिन टु डिसएपॉइन्ट यू, सो प्लीज डोन्ट वेट फॉर मी। शूट। अनिवार्य कारणों से देरी हो गई। न पहुँचूँगा, तो आप निराश होंगे; इसलिए मेरी प्रतीक्षा मत करें। आप गोली चलायें।'

लेकिन गोली किस पर चलायें?

जो उस राजा की अवस्था हो गयी होगी, वही निराकार के साधक की होती है। किस पर? किसकी पूजा? किसकी अर्चना? किसके चरणों में सिर झुकायें? किसको पुकारें? किस पर ध्यान करें? किसका मनन? किसका चिन्तन? कोई भी नहीं है वहाँ! वह राजा भी बिना गोली चलाये वापस लौट आया होगा।

निराकार का अर्थ है : वहाँ कोई भी नहीं है, जिससे आप सम्न्बधित हो सकें। और मनुष्य का मन संबंध चाहता है।

आप अकेले हैं...। निराकार का अर्थ हुआ कि आप अकेले हैं; वहाँ कोई भी नहीं है, आपके सामने; इसलिए अति कठिन है।

कल्पना में भी दूसरा हो, तो हम संबंधित हो पाते हैं। न भी हो वहाँ दूसरा, हमें सिर्फ खयाल हो कि दूसरा है, तो भी हम बात कर पाते हैं; तो भी हम रो पाते हैं; तो भी हम नाच पाते हैं।

यह मन, दूसरा हो, तो संबंधित हो जाता है, और गतिमान हो पाता है। दूसरा न हो, तो अवरुद्ध हो जाता है। कोई गति नहीं रह जाती है। इसलिये निराकार कठिन है।

निराकार की कठिनाई निराकार की नहीं, आपके मन की कठिनाई है। अगर

आप मन छोड़ने को राजी हों, तो निराकार फिर कठिन नहीं है। फिर तो साकार कठिन है। अगर मन छोड़ने को आप राजी हों, तो फिर साकार कठिन है, क्योंकि मन के बिना आकार नहीं बनता।

इसका यह अर्थ हुआ कि सारा सवाल आपके मन का है। इसलिये आप इसको ऐसा मत सोचें कि निराकार को चुनें--कि आकार को चुनें। यह बात ही गलत है। आप तो यही सोचें कि मैं मन को छोड़ सकता हूँ या नहीं छोड़ सकता। अगर नहीं छोड़ सकता हूँ, तो निराकार के धोखे में मत पड़ना। तब आपका निराकार झूठा होगा। फिर उचित है कि आप साकार से ही चलें।

अगर आप मन को छोड़ सकते हों, तो साकार की कोई भी जरूरत नहीं है। आप निराकार में खड़े ही हो गये। साकार भी छूट जाता है, लेकिन क्रमशः।

साकार की प्रक्रिया का अर्थ है कि धीरे-धीरे आपके मन को गलायेगा। और एक ऐसी घड़ी आयेगी कि मन पूरा गल जायेगा, और आप मन से छुटकारा पा जायेंगे।

जिस दिन मन छूटेगा, उसी दिन साकार भी छूट जायेगा। जब तक मन है, तब तक साकार भी रहेगा।

तो साकार एक ग्रॅज्युअल प्रॉसेस, क्रमिक विकास है। और निराकार छलाँग है—सडन, आकस्मिक। अगर आपकी तैयारी हो--आकस्मिक छलाँग लगाने की--रख दिया मन और कूद गये—तो निराकार कठिन नहीं है। पर रख सकेंगे मन? कपड़े जैसा नहीं है मन--कि उतारा और रख दिया। चमड़ी जैसा है; बड़ी तकलीफ होगी। चमड़ी से भी ज्यादा तकलीफ होगी। अपनी चमड़ी निकाल के रखना हो, उससे भी ज्यादा तकलीफ होती है, जब कोई अपने मन को निकाल के रखता है। क्योंकि मन और भी--चमड़ी से भी--गहरा--भीतर है। हड्डी-हड्डी से, एक-एक कोष्ठ से जुड़ा है। और हमने अपने को मान ही रखा है कि हम मन हैं। इसलिये मन को उतार के रखना अपने को ही उतार के रखना है। अपने से ही खाली हो जाना है। अपनी ही हत्या है।

इसलिये निराकार के साधकों ने, खोजियों ने कहा है कि जब तक अ-मनी, नो-माइण्ड--अ-मन की स्थिति न हो जाय, तब तक निराकार की बात का कोई अर्थ ही समझ में नहीं आयेगा। इसलिये कठिन है।

पर आदमी बहुत बेईमान है। सगुण के साथ अड़चन मालूम पड़ती है--अहंकार के कारण। साकार के साथ बुद्धि विवाद करती है। तो आदमी कहता है कि 'नहीं, मेरे लिए तो निराकार है।' यह साकार से बचने का उपाय है सिर्फ--कि मेरे लिए निराकार है। लेकिन पता है कि निराकार की पहली शर्त है कि अपने मन को

छोड़ें। उसी मन की मान के तो साकार को छोड़ रहे हैं, और निराकार की बात कर रहे हैं। और जब कोई आपको कहेगा : निराकार का अर्थ हुआ कि अपने मन की आकार बनाने वाली कीमिया को बन्द करें; हटायें इस मन को। तब आपको अड़चन शुरू हो जायेगी।

बहुत से लोग हैं, जिन्होंने साकार को छोड़ दिया है--निराकार के पक्ष में; और निराकार में उतरने की उनकी कोई सुविधा नहीं बनती।

जब भी कुछ छोड़ें, तो सोच लें कि जिस विपरीत के लिये छोड़ रहे हैं, उसमें उतर सकेंगे? अगर न उतर सकते हों तो छोड़ने की जल्दी मत करें। पर हम बहुत होशियार हैं।

हमारी हालत ऐसी है : जैसे सुना है मैंने कि एक शेखचिल्ली एक दुकान पर गया और उसने कहा कि 'यह मिठाई क्या भाव है?' दुकानदार ने कहा, पाँच रुपया सेर।' तो उसने कहा, 'अच्छा, एक सेर दे दो।' जब वह तौल चुका था, और पुड़िया बाँध चुका था और ग्राहक को दे रहा था, तब उसने कहा, 'अच्छा, इसे तो रहने दो। मेरा मन बदल गया। दूसरी मिठाई क्या भाव है?' तो उसने कहा, 'यह ढाई रुपये सेर है।' तो शेखचिल्ली ने कहा, दो सेर, इसकी जगह वह तौल दो।' उसने दो सेर मिठाई तुलवा ली और चलने लगा। जब चलने लगा तो दुकानदार ने पूछा कि 'पैसे?' तो उसने कहा कि 'मैंने तो यह उस मिठाई के बदले में ली है; तो पैसे किस बात के?'

तो दुकानदार ने कहा 'और उस मिठाई के पैसे?' उसने कहा, 'जो मैंने ली ही नहीं, उसके पैसे माँगते हैं?'

साकार और निराकार के बीच में ऐसे ही हम गोते खाते रहते हैं। जब निराकार का सवाल उठता है, तब कहते हैं कि नहीं, यह अपने बस की बात नहीं है। साकार ही ठीक होगा। और जब साकार की बात उठती है, तो हम कहते हैं कि कैसे मानें कि परमात्मा का कोई आकार हो सकता है! तब बुद्धि विचार उठाने लगती है कि कैसे मानें कि परमात्मा की कोई देह हो सकती है? और कैसे मानें कृष्ण को; कैसे मानें बुद्ध को--कि ये भगवान् हैं। नहीं, मन मानने का नहीं होता। हमारे जैसा ही हड्डी, माँस, मज्जा है। हमारे जैसा ही शरीर है। हम जैसे ही जीते हैं, मर जाते हैं, तो कैसे मानें कि ये भगवान् हैं। नहीं, इनको नहीं मान सकते। भगवान् तो निराकार है।

जब साकार में उतरने का सवाल उठे, तब बुद्धि से हम निराकार की बात करते हैं। और जब निराकार में उतरना हो, तब हिम्मत नहीं जुटती; तब हम साकार का सोचने लगते हैं। इसको मैं बेईमानी कहता हूँ। और जो व्यक्ति इसको ठीक से

नहीं पहचान लेता, वह जिन्दगी भर ऐसे ही व्यर्थ शक्ति और समय को गँवाता रहता है।

सोच लें ठीक से कि आपकी सामर्थ्य क्या है, और अपनी सामर्थ्य के अनुसार चलें।

परमात्मा कैसा है—इसकी फिक्र छोड़ें। आपसे कौन पूछ रहा है कि परमात्मा कैसा है! और आपके तय करने के लिये परमात्मा रुका नहीं है। और आप क्या तय करेंगे, इससे परमात्मा में कोई फर्क नहीं पड़ता। आप मानें निराकार, मानें साकार—इससे परमात्मा में क्या फर्क पड़ेगा! आपकी मान्यता से आप में फर्क पड़ेगा।

तो अपनी तरफ सोचें कि मैं जैसा मानूँगा, वैसा मानने से मुझमें क्या फर्क पड़ेगा।

● एक मित्र पन्द्रह दिन हुए मेरे पास आये, उन्होंने मुझसे कहा कि मैं आपको भगवान् नहीं मान सकता। मैंने कहा, 'बिलकुल अच्छी बात है। बात खतम हो गई। अब क्या इरादा है?' तो उन्होंने कहा, 'मैं तो आपको ज्यादा से ज्यादा मित्र मान सकता हूँ।' मैंने कहा, 'यह भी बड़ी कृपा है! ऐसा आदमी भी खोजना कहाँ आसान है, जो किसी को मित्र भी मान ले। यह भी बात पूरी हो गई।' तब वे मुझसे कहने लगे कि 'मेरी सहायता करिये। मुझे शान्ति चाहिए, आनन्द चाहिए, और मुझे परमात्मा का दर्शन चाहिए। आपकी कृपा हो, तो सब हो सकता है।'

तो मैंने उनको पूछा कि एक मित्र की कृपा से यह कुछ भी नहीं हो सकता। मित्र की तो कृपा ही क्या हो सकती है! आप मुझसे माँग तो ऐसी कर रहे हैं, जो भगवान् से हो सके—कि आपको शान्ति दे दूँ, आनन्द दे दूँ, सत्य का ज्ञान दे दूँ। माँग तो आप ऐसी कर रहे हैं, जो भगवान् से हो सके। लेकिन किसी को भगवान् मानने की मरजी भी नहीं है। तो मित्र से जितना हो सकता है, उतना मैं करूँगा। और जिस दिन उतना चाहिए कि जितना भगवान् से हो सकता है, उस दिन तैयारी कर के आना कि मैं भगवान् हूँ। तभी माँगना।'

मैं भगवान् हूँ या नहीं, यह बड़ा सवाल नहीं है। बड़ा सवाल यह है कि आप क्या चाहते हैं अपनी जिन्दगी में? क्या रूपान्तरण चाहते हैं? उसको ध्यान में रखें।

यहाँ मेरे पास बहुत से प्रश्न हैं कि कृष्ण को हम भगवान् नहीं मान सकते? बुद्ध को हम भगवान् नहीं मान सकते!

तुम को कह कौन रहा है? तुम नाहक परेशान हो रहे हो। न कृष्ण तुमसे कह रहे हैं; न बुद्ध तुमसे कह रहे हैं। और तुम्हारे कहने पर उनका भगवान् होना कोई निर्भर भी नहीं है। यह कोई व्होट का मामला थोड़े ही है, कि आपकी व्होट मिलेगी, तो कृष्ण भगवान् हो पायेंगे!

आप अकारण परेशान हैं। आप अपना सोचें कि कृष्ण से कितना लाभ लेना है? अगर कृष्ण से भगवान् जैसा लाभ लेना है, तो भगवान् मान लें। न लेना हो तो बात खतम हो गई।

यह आपका ही लाभ और आपको की ही हानि और आपकी ही जिन्दगी का सवाल है। इससे कृष्ण का कोई लेना-देना नहीं है।

लेकिन लोग बड़े परेशान होते हैं। लोग दूसरों के लिए परेशान हैं—कि कौन क्या है! इसकी बिलकुल चिन्ता नहीं है कि मैं अपनी फिक्र करूँ। जिन्दगी बहुत थोड़ी है।

एक बूढ़े सज्जन मेरे पास आये थे। और वे कहने लगे : 'एक ही बात आपसे पूछनी है। सच में आप भगवान् हैं? आपने ही दुनिया बनायी है!' तो मैंने उनको कहा कि 'जरा पास आ जायें। क्योंकि यह मामला जरा गुप्त है। और मैं सिर्फ कान में ही कह सकता हूँ। और एक ही शर्त है कि आप किसी और को मत बताना।'

वे बड़ी प्रसन्नता से पास हट आये। बूढ़े भी बच्चों जैसे ही होते हैं। बुद्धि नहीं बढ़ती। उन्होंने कान मेरे पास कर दिया। मैंने उनसे कहा, 'बनाई तो मैंने ही है—यह दुनिया। लेकिन दुनिया की हालत देख रहे हैं—कितनी खराब है?—कि किसी से कह नहीं सकता हूँ कि मैंने बनायी है। और आप किसी को बताना मत।'

वह जिसने बनाई है, वही फँस जायेगा, हालत इतनी खराब है।

तो आपसे भगवान् इसीलिए छिपा फिरता है, कि अगर कहीं भी किसी ने कहा कि मैं भगवान् हूँ, तो आप गरदन पकड़ लेंगे कि 'तुम ही हो? यह दुनिया तुमने बनायी है?' तो कौन जुरमी होगा—इस दुनिया के लिये?

'तुमको बताये देता हूँ, लेकिन किसी को कहना मत। अगर कहा, तो मैं बदल जाऊँगा।' लेकिन मैंने उस बूढ़े सज्जन से पूछा कि 'इससे तुम्हें क्या फर्क पड़ेगा कि किसने दुनिया बनायी; किसने नहीं बनायी? और मैं कह दूँ : हाँ, और ना...। इससे तुम्हें होगा क्या? मौत करीब आ रही है, एक क्षण का कोई भरोसा नहीं है। तुम्हारे हाथ-पैर हिलने शुरू हो गये हैं और अभी तुम बच्चों की बातों में पड़े हो? कुछ फिक्र करो अपनी।'

बुद्धिमान आदमी वह है, जो अपनी फिक्र कर रहा है। नासमझ वह है, जो व्यर्थ की बातों में पड़ा है।

कई बार हम समझते हैं कि व्यर्थ की बातें बड़ी कीमती हैं—बड़ी कीमती हैं। क्या कीमत है—इस बात की?

एक बात सदा ध्यान में रखें, कि जो भी आप मानना चाहते हों, जो भी करना चाहते हों, जो भी धारणा बनाना चाहते हों, उससे आपको क्या होगा—क्या आप बदल सकेंगे? क्या आपकी नयी जिन्दगी शुरू होगी? आपका पुराना कचरा बहेगा, जल जायेगा? आपको कोई नयी ज्योति मिलेगी?—इसका खयाल करें।

अगर निराकार से मिलती हो, तो निराकार की तरफ चल पड़ें। अगर साकार

से मिलती हो, तो साकार की तरफ चल पड़ें। जहाँ से मिलती हो--आनन्द की किरण, वहाँ चल पड़ें। चलने से यात्रा पूरी होगी, बैठ के सोचने से यात्रा पूरी नहीं होगी।

कुछ लोग जिन्दगी भर विचार ही करते रहते हैं कि साकार--कि आकार--कि निराकार--निर्गुण--कि सगुण; कि कृष्ण, कि राम, कि क्राइस्ट?

कब तक सोचते रहेंगे? सोचने से कोई यात्रा नहीं होती। चलें। और मैं मानता हूँ, गलत भी चल पड़ें, तो हर्जा नहीं है, क्योंकि गलत से भी सीखने मिलेगा। और गलत चल पड़े, तो कम से कम चले तो। चलना तो कम से कम आ ही जायेगा--गलत रास्ते पर ही सही। वह चलना हाथ में होगा, तो कभी सही रास्ते पर भी चल सकते हैं। लेकिन साहस बिलकुल चलने का नहीं है। और हम सिर्फ सिर में ही, खोपड़ी के भीतर ही चलते रहते हैं। उस चलने से कुछ भी न होगा।

● एक मित्र ने पूछा है: अनेक-अनेक दुर्लभ भक्त हुए--चैतन्य, मीरा, कबीर, रैदास, तुलसी, नरसिंह--और उन्होंने व्यापक पैमाने पर भक्ति का सारे देश में प्रचार भी किया; किन्तु इस सब के बावजूद भी, आज भक्ति-भाव से देश रिक्त दिखाई पड़ता है। इसका क्या कारण है?

नरसिंह को, या रैदास को, या दादू को, या कबीर को जो मिला है, वह उनके प्रचार से आपको नहीं मिल सकता।

धर्म, प्रचार से नहीं मिलता। धर्म कोई राजनीति नहीं है कि प्रचार से फैला दी जाय।

कबीर प्रचार करते भी नहीं। कबीर तो केवल खबर दे रहे हैं कि जो उन्हें मिला है, वह तुम्हें भी मिल सकता है। लेकिन कबीर के कहने से नहीं मिल जायेगा। कबीर ने जो किया है, वह तुम्हें भी करना पड़ेगा, तो ही मिलेगा।

भक्ति दी नहीं जा सकती। ज्ञान हस्तांतरित नहीं हो सकता। यह कोई दे नहीं सकता--कि लो। ले जाओ; यह ज्ञान रहा। कि बाप मरे, तो बेटे को दे दे। गुरु मरे, तो शिष्य को दे दे। ट्रान्सफरेबल नहीं है।

अनुभव तो--कबीर के साथ कबीर का--मर जायेगा। जिन्होंने कबीर की बात सुन के कर ली होगी, उनके भीतर फिर पैदा हो जायेगा। लेकिन यह कबीर वाला ज्ञान नहीं है। यह इनका अपना ज्ञान है--जो पैदा होगा।

कबीर के दीये से अगर आप अपना दीया जला लें—तो ही...। कबीर के प्रचार से नहीं। कबीर के कहने से नहीं। कबीर की किताबों को सम्हाल कर पढ़ लेने से नहीं। उससे कुछ भी नहीं होगा। आप मूल बात तो चूक ही रहे हैं।

इस मुल्क में...। इस मुल्क में ही नहीं, सारी जमीन पर--सभी मुल्कों में--

भक्त हुए, ज्ञानी हुए, उन्होंने जो पाया, वह कहा भी। जो नहीं कहा जा सकता था, उसको भी कहा। जिसको कहना बिलकुल असंभव था, उसको भी शब्दों में बाँधने की अथक कोशिश की। सिर पटका आपके सामने। आपने सुना भी। पहले तो आपने कभी भरोसा नहीं किया, कि ये जो कहते हैं, वह ठीक होगा।

कौन कबीर पर भरोसा करता है? मन में आपको ऐसा ही लगा रहता है कि पता नहीं, वह आदमी होश में है या बेहोश है? यह जो कह रहा है, सच है--कि झूठ? यह जो कह रहा है, सपना है या अनुभव है? आपको शक तो बना ही रहता है।

आप हजार तरकीब से यह तो कोशिश तो कर रहे हैं कि कहीं न कहीं कोई भूल-चूक कबीर से हो गयी है। क्योंकि जो हमको नहीं हुआ, वह इसको कैसे हो सकता है? और हम जैसे बुद्धिमान को नहीं हुआ, तो ये कबीर जैसे गैर-पढ़े-लिखे आदमी को हो गया!

काशी के पंडितों को बड़ा शक था कि यह कबीर को हो नहीं सकता। कैसे होगा? इतने शास्त्र हम जानते हैं और हम को नहीं हुआ! किसी के पास धन है; वह सोचता है: इतना धन मेरे पास है और मुझको नहीं हुआ और इसको हो गया? जरूर कहीं गड़बड़ है। यह जुलाहा या तो बहक गया, या दिमाग इसका खराब हो गया।

लेकिन कबीर जैसे लोग सुनते नहीं--इस तरह के लोगों की। वे कहे ही चले जाते हैं—कहे ही चले जाते हैं। पहले लोग हँसते हैं; पहले लोग अविश्वास करते हैं। फिर नहीं मानते, तो कुछ न कुछ माननेवाले भी मिल जाते हैं। और कबीर कहे ही चले जाते हैं, फिर कुछ लोग कहने लगते हैं कि हो ही गया होगा! इतने दिन तक आदमी कहता है...। लेकिन कोई भी प्रयोग करने को राजी नहीं होता —कि यह जो कह रहा है--वह हम भी कर के देखें। क्योंकि प्रयोग कर के देखने का मतलब तो जीवन को बदलना है। वह कठोर बात है। वह श्रम-साध्य है। इसलिये हम सुन लेते हैं कबीर को और उनकी वाणी को संगृहीत कर लेते हैं। और फिर विश्वविद्यालय में उस पर शोधकार्य--और रिसर्च--और डॉक्टरेट बाँटते रहते हैं! बस, इतना उपयोग होता है!

बड़े मजे की बात है कि जो पंडित कबीर को सुनने नहीं जा सकते थे, वे सब पंडित विश्वविद्यालय में डॉक्टरेट कबीर पर ले कर और बड़े-बड़े पदों पर बैठ जाते हैं। कबीर को कोई विश्वविद्यालय डॉक्टरेट देने को राजी नहीं हो सकता था। लेकिन कबीर पर सैकड़ों लोग शोध कर के डॉक्टर हो जाते हैं। और इन डॉक्टरों में से एक भी--कबीर अगर मौजूद हो तो उसके पास जाने को तैयार नहीं हो सकता। क्योंकि ये पढ़े-लिखे सुसंस्कृत लोग—और यह कबीर—गैर-पढ़ा-लिखा—

जुलाहा—इसके पास . . . ?

हमें लगता है : इतने संत हुए फिर भी दुनिया संतत्व से खाली क्यों है ?

संत दुनिया को संतत्व से नहीं भर सकते। संत तो केवल खबर दे सकते हैं कि यह घटना भी संभव है। और संत अपने व्यक्तित्व से यह प्रमाणित कर सकते हैं कि उनके जीवन में वह घट गया है, जिसको परमात्मा कहते हैं। लेकिन वह तो संत के साथ तिरोहित हो जायेगा। दीया टूटेगा कबीर का और लौ परमात्मा में लीन हो जायेगी। आप उसको कहाँ सम्हाल कर रखेंगे? वह तो आपका भी दिया जल जाय, आप में भी ज्योत जल जाय तो...।

लेकिन हम संतों के आसपास सम्प्रदाय बना लेते हैं। मंदिर खड़े कर लेते हैं। मसजिद बना लेते हैं; गुरुद्वारे खड़े कर लेते हैं। और संतों को उन्हीं में दफना देते हैं। बात खतम हो गयी। उनसे छुटकारा हो गया।

संतों से छुटकारे के दो रास्ते हैं : या तो उनको सूली लगा दो, या उनकी पूजा करने लगो। बस, दो ही उपाय हैं--उनसे छुटकारे के। सूली लगानेवाला भी कहता है : झंझट मिटी। पूजा करनेवाला भी कहता है : कि चलो, फूल चढ़ा लिये दो, झंझट मिटी, तुमसे छुटकारा हुआ। अब हम अपने काम पर जायें।

जरूर इतने संत हुए हैं, लेकिन कहीं कोई प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता। इसका कारण यह नहीं है, कि संतों को जो हुआ था, वह असत है। इसका कारण यह है हम असाध्य बीमारियाँ हैं। कितने ही संत हों, हम अपनी बीमारी को इतने जोर से पकड़े हुए हैं कि हम उनको असफल करके ही रहते हैं। यह हमारी सफलता का परिणाम है--यह जो दिखायी पड़ रहा है!

हम सफल हो रहे हैं। और हमारी संख्या बड़ी है, ताकत बड़ी है। और मजा यह है कि अज्ञान में जीने के लिये कोई श्रम नहीं करना पड़ता। इसलिये उसमें हम मजे से जी लेते हैं। ज्ञान में जीने के लिये श्रम करना पड़ता है।

ज्ञान चढ़ाई है, पर्वत के शिखर की तरह। हम समतल जमीन पर पशु से बैठे रहते हैं। समतल कहना भी ठीक नहीं है। हम तो खाई की रेंगते लुड़कते रहते हैं। वहाँ कोई मेहनत नहीं लगती। गड्ढे की तरफ गिरने में कोई मेहनत है?

श्रम से हम बचते हैं। और अध्यात्म सबसे बड़ा श्रम है। इसलिये दुनिया में बुद्ध होते हैं, महावीर होते हैं, क्राईस्ट, मोहम्मद होते हैं, खो जाते हैं। हम मजबूत हैं, वे हमें हिला भी नहीं पाते। हम अपनी जगह अडिग बने रहते हैं।

फिर अध्यात्म के साथ कुछ कारण हैं। पहला तो कारण यह है, कि अध्यात्म कोई बाह्य संपत्ति नहीं है, जो संगृहीत हो सके। अगर आप के पिता मरेंगे, तो जो मकान बनायेंगे, वह आपके पास छूट जाएगा। जो धन इकट्ठा करेंगे, यह आपके

नाम छूट जायेगा। कोई क्रेडिट होगी बाजार में, उसको भी आप उपयोग कर लेंगे। लेकिन अगर आपके पिता को कोई प्रार्थना का अनुभव हुआ, तो वह कहाँ छूटेगा! अगर कोई ज्ञान की झलक मिली, तो वह कैसे छूटेगी? उसकी कहीं कोई रेखा ही न बनेगी पदार्थ पर। वह तो पिता के साथ ही विलीन हो जायेगी। और पिता के जाने के बाद उस पर भरोसा भी न आयेगा कि वह थी।

इसलिये हम सबको संदेह है कि बुद्ध कभी सच में हुए हैं? क्राइस्ट सच में हुए या कहानी है? क्योंकि वह जो घटना है, यह इतनी अनहोनी है कि दिखाई तो पड़ती नहीं कहीं। तो शक पैदा होता है। तो लगता है कि कहानी ही होगी।

इसलिये जिंदा संत को मानने में हमें ज्यादा कठिनाई होती है, बजाय मुरदा संत को मानने के। क्योंकि मुरदा संत को मानने में अड़चन इसलिये नहीं होती कि हमारे पास कोई प्रमाण भी नहीं होता है कि उसको कहें कि नहीं, यह नहीं हुआ।

जिन्दा संत को मानने में बड़ी कठिनाई होती है। क्योंकि हम पच्चीस कारण निकाल सकते हैं कि इस कारण से शक होता है, इस कारण से शक होता है। तुमको भी भूख लगती है?--तो फिर हम में, तुममें फर्क क्या है? तुमको भी सरदी लगती है; तुमको भी बुखार आ जाता है--तो फिर हम में, तुम में फर्क क्या है? फिर कुछ ज्ञान वगैरह नहीं हुआ। जैसे कि बुखार ज्ञान से डरता हो! जैसे कि मौत ज्ञानी को घटित न होती हो।

मौत भी ज्ञानी को घटित होती है। फर्क मौत में नहीं पड़ता, फर्क ज्ञानी में पड़ता है। आपको भी मौत आती है, ज्ञानी को भी मौत आती है। आपको जब मौत आती है, तो भयभीत होते हैं। ज्ञानी को जब मौत आती है, तो भयभीत नहीं होता। फर्क मौत में नहीं पड़ता, फर्क ज्ञानी में पड़ता है।

हाँ, अगर मौत न आये, तो हम मान लें कि यह आदमी हो गया परम ज्ञान को उपलब्ध। लेकिन मौत तो आती है--बुद्ध को भी। कृष्ण भी मरते हैं। शरीर तो खोता है--उसी तरह, जिस तरह हमारा खोता है। शरीर से गहरी हमारी आँख नहीं जाती कि भीतर कुछ और भी है।

बुद्ध मिट जाते हैं जमीन से, कहानी रह जाती है। फिर कहानी पर धीरे-धीरे हमें शक भी आता है। लेकिन अब दो हजार साल पुरानी कहानी से झगड़ा भी कौन करें!

और आपको खयाल है कि जिन्दा गुरु का हमेशा विरोध होता है। बुद्ध जिन्दा होते हैं, तो विरोध होता है; बुद्ध मर जाते हैं, तो कोई विरोध नहीं करता।

एक और मजे की बात है : लोग मरे हुए गुरु को मानते हैं। कोई मरी हुई पत्नी से विवाह नहीं करता! आप जिन्दा पत्नी चाहेंगे, अगर विवाह करना है। दो हजार

वर्ष पहले कोई औरत हुई हो, चाहे वह कितनी ही सुन्दरी रही हो, आम्रपाली क्यों न रही हो, वह कितनी ही सुन्दरी रही हो, जगत् की, दो हजार साल पहले हुई और मर गई, आप उससे शादी करने को राजी न होंगे।—कि होंगे? आप दो हजार साल पहले की सुन्दरतम स्त्री से शादी न करके आज मौजूद जिन्दा स्त्री से, चाहे वह इतनी सुन्दर न भी हो, उससे शादी करना पसन्द करेंगे। क्यों?

लेकिन अगर जिन्दा गुरु हो, तो आप उसको नहीं मान सकते। दो हजार साल पहले मरा हुआ गुरु हो, उसको ही मान सकते हैं। कुछ मामला गड़बड़ दिखता है।

असल में गुरु से आप बचना चाहते हैं। मरा हुआ गुरु अच्छा है, वह आपका पीछा नहीं कर सकता। जिन्दा गुरु आपको दिक्कत में डालेगा। इसलिये मरा गुरु ठीक है। आप जो चाहें, मरे गुरु के साथ कर सकते हैं। जिन्दा गुरु के साथ आप जो चाहें, वह नहीं कर सकते। वह जो चाहता है आपके साथ, वही करेगा। इसलिये मुरदा गुरु के साथ दोस्ती बन जाती है।

मुरदा पत्नी कोई नहीं चाहता, मुरदा पति कोई नहीं चाहता। मुरदा गुरु सब चाहते हैं। क्योंकि गुरु से लोग बचना चाहते हैं, बचाव कर रहे हैं।

नरसिंह हैं, कबीर हैं--इनकी क्या फिक्र करते हैं? आज भी लोग वैसे ही मौजूद हैं। लेकिन उनकी बात आप दो तीन सौ साल बाद करेंगे--जब वे मर जायेंगे।

इनको खोजिये, जो जिन्दा हैं। आपके बीच अभी भी...। जमीन कभी भी खाली नहीं है। उसमें हमेशा एक अनुपात में उतने ही लोग सदा ज्ञान को उपलब्ध होते हैं--हर युग में। लकिन आपकी आँखें अन्धी हैं। उनको आप देख नहीं पाते। आप तो...। दो हजार साल जब प्रचार चलता है--किसी की कहानी का, तब उसे देख पाते हैं। आपके मानते-मानते वह आदमी खो गया होता है, तब आप मान पाते हैं। और जब वह होता है, तब आप उसे मान नहीं पाते हो।

जीसस को जिनने सूली दे दी, वे ही अब दो हजार साल बाद पूजा कर रहे हैं। इसलिये परिणाम नहीं हो पाता।

जिन्दा गुरु की तलाश करें। जिन्दा भक्त को खोजें। और एक ही बात ध्यान रखें कि आपको इसकी चिन्ता नहीं करनी है कि वह है भक्त--या नहीं। आपको यह ही चिन्ता करनी है कि उसके सान्निध्य में मुझमें भक्ति उतरती है या नहीं। उतरे, तो समझना, कि है। न उतरे तो कोई खोज लेना। लेकिन जिन्दा दीये कि तलाश करें, ताकि आपका बुझा दीया जल सके।

और जिन्दा दिया हमेशा उपलब्ब है। लेकिन आप हमेशा मरे हुए दीये के आस-पास मण्डराते हैं। फिर आपका दीया नहीं जलता, तो आप पूछते हैं: नरसिंह

हुए, मीरा हुई, कबीर हुए, दादू हुए--कुछ हुआ नहीं? ये अभी भी हैं। उनके नाम कुछ और होंगे। उन्हें खोजें और उनकी बातें मत सुनें; उनसे जीवन की कला सीखें; अपने को बदलने की कीमिया सीखें। और साहस करें थोड़ा बदलनेका।

थोड़ी-सी बदलाहट भी आपको जिन्दगी में इतने रस से भर देगी, कि फिर आप और बदलने के लिए राजी हो पायेंगे।

अभी आपकी जिन्दगी में सिवाय दुःख और पीड़ा के कुछ भी नहीं है। सिवाय उदासी और निराशा के कुछ भी नहीं है। सिवाय विषाद और संताप के कुछ भी नहीं है। अभी आप एक जीते-जागते नरक हैं। इसमें कुछ प्रकाश की किरण कहीं से भी मिलती हो, तो लाने की कोशिश करें। और कहीं से भी कुछ फूल खिल सकते हों, तो खिलायें।

लेकिन कहीं से भी आपको फूल की खबर आये, तो पहले तो आप यह शक करते हैं कि फूल असली नहीं हो सकते। क्या कारण है?

आप इतने नरक से भरे हैं कि आप मान ही नहीं सकते कि कहीं स्वर्ग हो सकता है। स्वर्ग बहुत से हृदयों में अभी भी है, लेकिन आपके पास आँख, खुला मन, सीखने का भाव चाहिए।

दुनिया में गुरु तो सदा उपलब्ध होते हैं, शिष्य सदा उपलब्ध नहीं होते। इससे गड़बड़ होती है। ये नरसिंह और कबीर और दादू असफल जाते हैं, क्योंकि गुरु हो जाना तो उनके हाथ में है; लेकिन शिष्य, तो आपके हाथ में है।

तो दुनिया में गुरु भी हों, लेकिन शिष्य न मिल पायें, तो मुसीबत हो जाती है। कोई सीखने को तैयार नहीं है। सब सिखाने को तैयार हैं। क्योंकि सीखने के लिए झुकना पड़ता है। आप भी सिखाने को तैयार हैं। आप भी लोगों को सिखाते रहते हैं--बिना इसकी फिक्र किये कि आप क्या सिखा रहे हैं।

अगर आपका बेटा आपसे पूछता है: ईश्वर है? तो आप में इतनी हिम्मत है कि आप कहें कि मुझे पता नहीं है? आप कहते हैं--बिलकुल है। और अगर आप नास्तिक हैं, कम्युनिस्ट हैं, तो आप कहते हैं: नहीं है--बिलकुल नहीं है। लेकिन एक बात पक्की है कि आप जवाब मजबूती से देते हैं, बिना इस बात की फिक्र किये कि आपको कुछ भी पता नहीं है। या तो हाँ कहते हैं, या ना कहते हैं। लेकिन आप यह नहीं कहते कि नहीं, मुझे पता नहीं है। मैं सिखाने में असमर्थ हूँ।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे के साथ बगीचे में घूम रहा था। तो उसके बेटे ने पूछा कि 'पिताजी, सूरज किसने बनाया?'

मुल्ला ने एक क्षण तो सोचा। क्योंकि कोई भी बाप यह स्वीकार करना मुश्किल अनुभव करता है कि मुझे पता नहीं। लेकिन ऐसे मुल्ला इमानदार आदमी था।

उसने कहा कि 'नहीं। मेरा मन तो उत्तर देने का होता है। लेकिन आज नहीं कल तू पता लगा ही लेगा। इसलिये मैं तुझसे साफ ही कह दूँ। मुझे पता नहीं है।'

घूम रहे थे। फिर उस बच्चे ने पूछा कि वृक्ष कौन बड़े कर रहा है?' मुल्ला ने कहा कि 'मुझे पता नहीं।' फिर उस लड़के ने पूछा, 'रात को चाँद निकलता है, तो उसका एक ही पहलू हमें हमेशा दिखाई पड़ता है। दूसरा पहलू क्यों दिखायी नहीं पड़ता?' मुल्ला ने कहा, मुझे पता नहीं है।'

बार-बार लड़के ने यह सुन के कि 'मुझे पता नहीं, मुझे पता नहीं,' लड़का उदास हो गया। उसके उदास चेहरे को देख के मुल्ला ने पूछा, 'बेटा, पूछ। दिल खोल कर पूछ। पूछेगा नहीं तो सीखेगा कैसे?'

कुछ भी पता नहीं है, फिर भी 'पूछेगा नहीं तो सीखेगा कैसे?'

हम सब सिखा रहे हैं, बिना इसकी फिक्र किये कि हमें पता है या नहीं।

धार्मिक व्यक्ति इस बात से शुरुआत करता है कि मुझे पता नहीं है और अब मैं सीखने निकलता हूँ। फिर वह विनम्र होगा, फिर वह झुका होगा। फिर जहाँ से भी सीखने को मिल जाय, वह सीखेगा।

सीखने वालों की कमी है, इसलिये कबीर दादू असफल चले जाते हैं। और जो हम उनसे सीखते हैं, वह ज्ञान नहीं सीखते; उनके शब्द सीख लेते हैं।

कबीर के पद याद हो जाते हैं। तुलसी की चौपाइयाँ याद हो जाती हैं। लोग तोतों की तरह दोहराते रहते हैं। जब तक वह अनुभव आपको न हो जाये, जो इन पदों में छिपा है, तब तक वे पद तोते की तरह हैं। अच्छा है मत दोहरायें। क्योंकि तोता होना अच्छा नहीं है। जब तक जान न लें, तब तक चुप रहें। और जो ताकत है, वह बोलने में न लगा कर, खोजने में लगायें। तो कबीर सफल हो सकते हैं।

● एक मित्र ने पूछा है कि मनुष्य तो अपने भाग्य को लेकर जन्मता है, तो अगर खोज भाग्य में होगी भगवान् की, तो हो जायेगी। नहीं होगी, तो नहीं होगी!

यह बात मतलब की भी हो सकती है और खतरनाक भी। मतलब की तो तब, जब के और हर पहलू पर भी यही दृष्टि हो। फिर सुख को भी मत खोजें। मिलना होगा, मिल जायेगा। फिर दुःख से भी मत बचें; क्योंकि भोगना है, तो भोगना ही पड़ेगा। फिर जिन्दगी में जो कुछ भी हो, उसको स्वीकार कर लें और जो न हो, उसको भी स्वीकार कर लें कि वह नहीं होना है। तो फिर मैं आपको कहता हूँ कि भगवान् को भी मत खोजें। भगवान् आपको खोजता हुआ आ जायेगा। लेकिन फिर भाग्य की इतनी गहरी निष्ठा चाहिए कि जो होगा--ठीक है।

सिर्फ भगवान् के सम्बन्ध में यह बात और धन के सम्बन्ध में खोज जारी रखें, तो फिर बेईमानी है। धन के सम्बन्ध में खोज जारी रखें, और उसमें तो कहें कि

पुरुषार्थ के बिना क्या होगा; और खोजेंगे नहीं तो मिलेगा कैसे! और जो लोग खोज रहे हैं, उनको मिल रहा है। हम ऐसे हाथ पर हाथ रखे बैठे रहे, तो गँवा देंगे। तो धन की खोज जारी रखें, क्योंकि पुरुषार्थ के बिना धन कैसे होगा? और जब भगवान् को खोजने का सवाल आये, तब कहें कि 'सब भाग्य की बात है। होगा, तो हो जायेगा। नहीं होगा, तो नहीं होगा।' तो फिर धोखा है, आत्म-वंचना है।

तो मैं मानता हूँ कि अगर भाग्य को कोई पूरी तरह स्वीकार कर ले, तो उसे भगवान् को खोजने की जरूरत नहीं है। भगवान् ही उसे खोजेगा। लेकिन भाग्य को पूरा स्वीकार करने का अर्थ समझ लेना।

फिर कुछ भी मत खोजें। फिर खोजना ही मत। फिर यह बात ही छोड़ देना कि मेरे हाथ में करने को कुछ भी है। फिर तो जो भी हो, होने देना। जो भी हो, होने देना। अपनी तरफ से कुछ करना ही मत।

अगर कोई व्यक्ति इतने भाग्य पर अपने को छोड़ दे, तो समर्पण हो गया। उसे भगवान् का पता न भी हो, तो भी भगवान् उसे मिल ही गया, इसी क्षण मिल गया। कोई बाधा न रही। लेकिन यह कानूनी बात न हो। यह कोई लीगल तर-कीब न हो हमारी। क्योंकि हम बड़े कानूनविद् हैं। और हम ऐसी तरकीबें निका-लते हैं, जिनका हिसाब नहीं है!

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी बीमार थी। मरने के करीब थी। डॉक्टर को नसरुद्दीन ने बुलाया। मरने के करीब थी पत्नी, बीमारी खतरनाक थी, तो उस डॉक्टर ने कहा कि 'इलाज जरा महँगा है।'

नसरुद्दीन ने कहा कि 'कितना ही महँगा हो, मैं सब चुकाऊँगा; अपना सब घर बेच कर चुकाऊँगा। लेकिन इसे बचाओ।' तो डॉक्टर ने कहा, 'और यह भी हो सकता है कि यह न बचे।' तो नसरुद्दीन ने कहा कि 'अगर तुम बचा सको तो, और तुम मार डालो तो, जो भी खर्च होगा, वह तो मैं चुकाऊँगा ही।'

फिर डॉक्टर इलाज में लग गया। सात दिन बाद पत्नी मर गयी। काफी खर्च हुआ। डॉक्टर ने बिल भेजा। तो नसरुद्दीन ने कहा कि 'ऐसा करें कि हम गाँव के पुरोहित के पास चलें।' डॉक्टर ने कहा, 'क्या मतलब?' नसरुद्दीन ने कहा कि 'मैं गरीब आदमी हूँ, यह बिल पुरोहित जैसा कह देगा, वैसा कर लेंगे।

पुरोहित के पास नसरुद्दीन गया। पुरोहित के सामने नसरुद्दीन ने कहा कि 'डॉक्टर बोलो, हमारी क्या शर्त थी? तो डॉक्टर ने कहा कि 'शर्त थी हमारी कि मैं बचाऊँ या मारूँ--दोनों हालत में तुम बिल चुकाओगे।'

तो नसरुद्दीन ने कहा कि 'तुमने मेरी पत्नी को बचाया?' तो डॉक्टर ने कहा

कि 'नहीं'। तो नसरुद्दीन ने कहा कि 'तुमने मेरी पत्नी को मारा?' तो डॉक्टर ने कहा कि 'नहीं।' तो नसरुद्दीन ने कहा कि 'किस समझौते के बल पर ये पैसे माँग रहे हो? किस हिसाब से? न तुमने बचाया, न तुमने मारा। मैंने कहा था, बचाओ या मारो––दोनों हालत में पैसे चुका दूंगा।'

हम भी ऐसा रोज-रोज करते रहते हैं। कुछ कानूनी व्यवस्थाएँ खोजते रहते हैं।

यह खयाल आपको भगवान् को खोजते वक्त ही आया––कि भाग्य...? या पहले भी कभी आया?

असल में जिसकी खोज से बचना है, उसे हम भाग्य पर छोड़ देते हैं। जिसे खोजना ही है, उसे हम अपने हाथ में रखते हैं। मगर इसमें ऐसा भी लगता है कि हम तो खोजना चाहते हैं, लेकिन भाग्य में ही न हो तो क्या करें।

एक तरफ राजी हो जायँ। और पूरी तरह राजी हो जायँ। और कोई तरकीबें न निकालें। तो परमात्मा को खोजना भी जरूरी नहीं है।

भाग्य परमात्मा को खोजने की गहरी व्यवस्था है। शायद आपने इस तरह न सोचा होगा।

भाग्यवाद का भाग्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। भाग्यवाद का सम्बन्ध परमात्मा की खोज की खोज की एक विधि से है। इसलिये जो लोग कहते हैं कि सच में भाग्य है या नहीं, वे लोग समझ ही नहीं पा रहे हैं। यह तो एक डिव्हाइस है, यह तो एक उपाय है––परमात्मा की खोज का। यह तो जगत् में परम शान्ति पाने की एक विधि है।

जो व्यक्ति सब कुछ भाग्य पर छोड़ देता है, उसे आप अशान्त नहीं कर सकते। भाग्य सच में है या नहीं—यह सवाल ही नहीं है। यह असंगत है बात। यह तो सिर्फ एक उपाय है कि जो व्यक्ति सब कुछ भाग्य पर छोड़ देता है, उसने सब कुछ पा लिया। उससे कुछ भी छीना नहीं जा सकता। उसकी शान्ति परम हो जायेगी। उसका आनंद अखण्ड हो जायेगा। और अगर भगवान् है, तो भगवान् उसे मिल जायेगा। जो भी है, वह उसे उपलब्ध हो जायेगा। क्योंकि अनुपलब्धि की भाषा ही उसने छोड़ दी। और अगर भगवान् उसे न भी मिले, तो भी उसे बेचैनी नहीं होगी। यह मजा है।

उसे कोई बेचैनी ही नहीं है। वह कहेगा कि 'जो भाग्य में है, वह होगा।' लेकिन यह बात बड़ी गहरी है।

आप यह मत समझना कि आप भाग्यवादी हैं, क्योंकि आप चौरस्ते पर बैठे हुए किसी ज्योतिषी को हाथ दिखाते हैं। इसलिये आप भाग्यवादी हैं, यह आप मत सोचना। अगर भाग्यवादी ही होते, तो चौरस्ते के ज्योतिषी पर जो चार आने ले कर आपका भाग्य देखता है, उस पर आपका भरोसा नहीं होता।

भाग्यवादी का हाथ तो परमात्मा देखता है। उसको बीच के दलालों की जरूरत नहीं है। और चार आने में यह दलाल क्या बतायेगा? कितना बतायेगा? और आपको पता नहीं है कि यह भी बेचारा दूसरे ज्योतिषी को हाथ दिखाता है!

मैंने सुना है कि दो ज्योतिषी पास ही पास रहते थे। सुबह जब अपने धन्धे पर निकलते थे, तो एक दूसरे से पूछते थे कि मेरे बाबत आज क्या खयाल है? आज कैसा धंधा रहेगा?

एक ज्योतिषी एक बार मेरे पास आया। एक मित्र ले आये थे। ज्योतिषी बहुत कीमती थे। और एक हजार एक रुपया लेकर ही हाथ देखते थे।

मेरे मित्र पीछे पड़े थे कि हाथ दिखाना ही है। एक हजार रुपया वे दे देंगे। मैंने कहा कि 'अगर हाथ दिखाना है, तो रुपये मैं दूँगा। तुम्हें नहीं देने दूँगा।'

हाथ मैंने दिखाया। हाथ देख कर उन्होंने बहुत-सी बातें कहीं। फिर वे रुपये की राह देखने लगे। लेकिन मैंने उनसे कहा कि 'आप इतना भी मेरे हाथ से न समझ सके कि यह आदमी रुपये नहीं देगा! आप इतनी मेहनत कर रहे हैं! अपना हाथ देख कर घर से निकले थे? सुबह खयाल कर लिया करें कि कितना मिलेगा? ––कि नहीं मिलेगा। यह तो नहीं मिलने वाला है। यह आप के भाग्य में नहीं है।'

वह आदमी रोने-धोने लगा कि पाँच सौ भी दे दें। फिर सौ पर भी राजी हो गया कि मैं इतनी दूर आया हूँ! मैंने कहा कि भाग्य इतनी आसानी से नहीं बदलता कि हजार से पाँच सौ पर आ गया––सौ पर आ गया। भाग्य में तेरे है ही नहीं!'

यह जो ज्योतिषी को हाथ दिखाने वाला आदमी है––यह भाग्यवादी नहीं है। भाग्यवादी पंडितों के पास नहीं जायेगा, तांत्रिकों के पास नहीं जायेगा। क्योंकि भाग्यवादी यह कह रहा है कि जो होने वाला है––वह होगा; उसे बदलने का भी कोई उपाय नहीं है।

यह पाँच सौ रुपये खराब कर दो––ऐसा करो––तो भाग्य बदल जायेगा।

जो बदल सकता है, वह भाग्य ही नहीं है। जो नहीं बदल सकता...।

और ध्यान रहे कि जो नहीं बदल सकता, उसको जानने का कोई उपाय नहीं हो सकता, क्योंकि जानने से भी बदलाहट शुरू हो जाती है। जानना भी एक बदलाहट है।

अगर आपको यह पता चल जाये कि कल सुबह आप मर जायेंगे, तो कल सुबह तक की जो जिंदगी बिना पता चलने में रहती, वही नहीं हो सकती––पता चलने के बाद। फर्क हो जायेगा। वह जो बोध आपको आ गया कि मर जाऊँगा कल सुबह, वह आपकी पूरी रात को बदल देगा। यह रात वैसी ही नहीं हो सकती अब, जैसी कि बिना पता चले आप सोये होते। अब आप सो नहीं सकते।

भाग्यवादी तो मानता है कि जो भी होगा— वह होगा। कुछ करने का उपाय नहीं है। करने वाले की कोई सामर्थ्य नहीं है। विराट् की लीला है; मैं उसका एक अंग मात्र हूँ। एक लहर हूँ—सागर पर। मेरा अपना कुछ होना नहीं है।

ऐसी समझ एक विधि है, एक उपाय है। ऐसी समझ में जो गहरा उतर जाता है, उसे फिर कुछ भी नहीं खोजना है। परमात्मा भी नहीं खोजना है। परमात्मा खुद उसे खोजता हुआ उसके पास चला आता है।

पर सोच कर...। बाकी सब आप खोजें और परमात्मा आपको खोजे, ऐसा नहीं होगा। बाकी सब खोजना है, तो परमात्मा भी आपको ही खोजना पड़ेगा। कुछ भी नहीं खोजना है, तो वह आपको खोज लेगा।

अब हम सूत्र को लें।

'इस प्रकार शान्ति को प्राप्त हुआ जो पुरुष सब भूतों में द्वेषभाव से रहित एवं स्वार्थरहित, सब का प्रेमी है और हेतुरहित दयालु है। तथा ममता से रहित एवं अहंकार से रहित और सुख-दुःखों की प्राप्ति में सम और क्षमावान है अर्थात् अपराध करने वाले को भी अभय देने वाला है, तथा जो योग में युक्त हुआ योगी निरन्तर लाभ-हानि ये संतुष्ट है तथा मन और इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किये हुए मेरे में दृढ़ निश्चय वाला है, वह मेरे में अर्पण किये हुए मन बुद्धि वाला मेरा भक्त मेरे को प्रिय है।'

क्या है परमात्मा को प्रिय? यह प्रश्न हजारों-हजारों साल में हजारों-हजारों बार पूछा गया है।

क्या है परमात्मा को प्रिय? क्योंकि जो उसे प्रिय है, वही हमारे लिये मार्ग है। क्या है उसे प्यारा? काश! हमें यही पता चल जाये, तो फिर हम उसके प्यारे हो सकते हैं। कैसा चाहता है वह हमें? कब हमें चाह सकेगा? कब हमें समझेगा कि हम योग्य हुए—उसके आलिंगन के? उसकी क्या रुझान है? उसका क्या लगाव है? उसकी क्या पसन्द है? उसकी क्या रुचि है? वह अगर हमें पता चल जाय, तो मार्ग का पता चल गया।

क्या है परमात्मा को प्रिय? इसमें बहुत बातें सोचने जैसी हैं।

इसका यह मतलब नहीं है कि जो उसे प्रिय है, उसके साथ वह पक्षपात करेगा: जो उसे अप्रिय है, उसके साथ वह भेद-भाव करेगा। इसका यह मतलब नहीं है। नहीं तो हमें यह भी खयाल होता है कि जो उसका प्रिय है, उसके पाप भी माफ कर देगा; उसके गुनाह भी क्षमा हो जायेंगे। और जो उसे प्रिय नहीं है, वह पुण्य भी करे, तो पुरस्कार न पा सकेगा।

नहीं; ऐसा नहीं है।

परमात्मा के प्रिय होने का अर्थ समझ लें। परमात्मा के प्रिय होने का अर्थ है: एक शाश्वत नियम, ऋत—जिसको लाओत्से ने ताओ कहा है..। परमात्मा के प्रिय होने का इतना ही अर्थ है कि वह तो हमें हर क्षण उपलब्ध है, लेकिन जब हम एक खास ढंग में होते हैं, तब हम उसके लिये खुले होते हैं और वह हमारे भीतर प्रवेश कर जाता है। और जब हम उस खास ढंग में नहीं होते हैं, तो वह तुमारे पास ही खड़ा अटका रह जाता है। क्योंकि हम अवरोध खड़ा करते हैं।

ऐसा ही: जैसे सूरज निकला है और मैं अपनी आँख बन्द किये खड़ा हूँ। तो सूरज निकला रहे, मैं अँधेरे में खड़ा रहूँगा। और ठीक मेरी पलकों पर सूरज की किरणें नाचती रहेंगी। प्रकाश इतने करीब था, एक पलक झपने की बात थी और मैं प्रकाश से भर जाता। लेकिन मैं आँख बन्द किये हूँ। तो मैं अँधेरे में खड़ा हूँ।

सूरज को खुली आँखें प्रिय हैं, इसका मतलब समझ लेना। इसका कुल मतलब इतना है कि खुली आँख हो, तो सूरज प्रवेश कर पाता है। बन्द आँख हो तो सूरज प्रवेश नहीं कर पाता।

और सूरज आक्रमक नहीं है कि जबरदस्तों आपकी आँख खोले। अनाक्रमक है।

प्रेम अनाक्रमक होगा ही। जबरदस्ती आपकी आँख भी खोली जा सकती है—कि सूरज चोट करे और आपकी आँख खोल दे। लेकिन इस जगत् में अस्तित्व की कोई भी व्यवस्था आक्रमक नहीं है। आपके लिये प्रतीक्षा करेगा। सूरज प्रतीक्षा करेगा कि खोलना जब आँख, तब प्रकाश भर जायेगा।

परमात्मा के लिये प्रिय होने का यही अर्थ है कि एक कुछ ढंग है व्यक्तित्व का, जब हम खुले होते हैं, रिसेप्टिव होते हैं, ग्राहक होते हैं और परमात्मा भीतर प्रवेश कर पाता है। और कुछ ढंग है व्यक्तित्व का, जब हम बन्द होते हैं और सब तरफ से द्वार, दरवाजे, खिड़कियों में ताले पड़े होते हैं और परमात्मा बाहर-बाहर भटकता रहता है, हमारे भीतर प्रवेश नहीं कर पाता।

कृष्ण इस सूत्र में कहते हैं कि वह कौन-सा ढंग है, जो परमात्मा को प्रिय है? कैसे तुम हो जाओ कि वह तुम्हारे भीतर प्रवेश कर जायेगा? समझें।

'शान्ति को प्राप्त हुआ पुरुष...।' अशान्त चित्त में क्या होता है? अशान्त चित्त अपने में ग्रसित होता है।

आप रास्ते पर चलते लोगों को देखें। जितना अशान्त आदमी होगा, उतना ही रास्ते पर बेहोश चलता हुआ दिखाई पड़ेगा। अनेक लोग खुद से बातचीत करते हैं और चलते जाते हैं। ओंठ हिल रहे हैं; हाथ हिला रहे हैं! किससे बात कर रहे हैं? कोई वहाँ है नहीं उनके साथ। खुद से ही...। भीतर परेशान हैं। भीतर परेशानी की तरंगें चल रही हैं।

अगर आप भी दस मिनट बैठ कर लिख डालें कि कि आपके मन में क्या चलता है, तो आप आप खुद ही घबड़ा जायेंगे कि यह क्या मेरे भीतर चल रहा है! लगेगा कि मैं पागल हूँ। आप, जो आपके भीतर चलता है, किसी को भी नहीं बताते। जिसको आप प्रेम करते हैं, उसको भी नहीं बताते--जो आपके भीतर चल रहा है।

मनसविद कहते हैं कि अगर कोई आदमी अपने भीतर जो चलता है, सब बता दे, तो फिर दुनिया में मित्र खोजना मुश्किल है।

आप सब दबाये हैं भीतर, बाहर तो कुछ-कुछ थोड़ी-सी झलक देते हैं। वह भी काफी दुःखदायी हो जाती है। सम्हालते रहते हैं।

यह जो भीतर अशांति का तूफान चल रहा है, यह दीवाल है। इसके कारण आप परमात्मा से नहीं जुड़ पाते। आपके और परमात्मा के बीच एक तूफान है--अशांति का, विचार का, विक्षप्तता का, पागलपन का। यह हट जाय।

कृष्ण कहते हैं, 'शांति को प्राप्त हुआ...।' और शांति को वही प्राप्त होता है...। या तो ध्यान से चलें--विचारशून्य हो जायें। या प्रेम से चलें--और भक्तिपूर्ण हो जायें। या तो सारे विचार समाप्त हो जायें या सारे विचार प्रेम में डूब कर प्रेम-मय हो जायें और प्रेम ही रह जाय, विचार खो जायें...।

या तो सब विचार पिघल कर प्रेम बन जाये और सब विचार भाप बन जायें, और भीतर शून्य, शांत अवस्था रह जाये।

'जो पुरुष सब भूतों में द्वेषभाव से रहित...।' और जैसे ही कोई शांत होगा, द्वेष समाप्त हो जाता है। या उलटा भी समझ लें। जैसे ही द्वेष समाप्त होता है, शांत हो जाता है। जब तक आपका द्वेष है कहीं, तब तक आप शांत नहीं हो सकते। क्योंकि जिस से द्वेष है, वही कारण बनेगा--आपकी अशांति का।

'स्वार्थरहित, सब का प्रेमी, हेतुरहित दयालु...।

क्या है हमारी अशांति?--स्वार्थ। चौबीस घन्टे सोचते हैं--अपनी ही भाषा में।

सुना है मैंने: जिस दिन जीसस को सूली लगी, उस दिन उस गाँव में एक आदमी के दाढ़ में दर्द था। और जिस रास्ते से लोग ले जा रहे थे जीसस को सूली चढ़ाने, उसी रास्ते पर उसका घर था। सारे गाँव से वह परिचित था। लोग देखने जा रहे थे। सारे गाँव में तहलका था कि जीसस को आज सूली लग लग रही है। जो भी गाँव का आदमी वहाँ से निकलता, वह आदमी...आँख में उसके आँसू थे; पीड़ा से कराह रहा था; क्योंकि उसकी दाढ़ में दर्द था। तो लोग उससे पूछते कि अरे, क्या तुम भी जीसस के प्रेमी हो? वह कहता, 'भाड़ में जाये जीसस; मेरी दाढ़ में दर्द है।'

पूरा गाँव वहाँ से निकला। हर आदमी ने पूछा कि 'अरे, यह हमने सोचा नहीं था कि जीसस से तुम्हारा कोई लगाव है!' वह कहता, 'कैसा जीसस? कहाँ की तुम बातें कर रहे हो! मेरी दाढ़ में दर्द है; रात भर से सो न सका।'

जीसस को सूली लग रही है, वह जरा भी मूल्य नहीं है। उसकी दाढ़ में दर्द है-- वह मूल्यवान है।

वियतनाम में हजारों लोग मरते रहे हैं, वह सवाल नहीं है। आपके पैर में जरा-सा काँटा लग जाय, वह मूल्यवान है। सारी जमीन पर कुछ होता रहे, आपकी जेब कट जाय--सब गड़बड़ हो गया।

हम जीते हैं--एक स्वार्थ का केन्द्र बना कर। और जितना ही यह स्वार्थ का केन्द्र मजबूत होता है, उतनी ज्यादा अशान्ति होती है।

अपने सम्बन्ध में जो जितना ज्यादा सोचता है, उतना परेशान होगा। जो अपने सम्बन्ध में जितना कम सोचता है, उतनी परेशानी क्षीण हो जाती है।

जो इस विराट् जगत् को चारों तरफ देखता है--इसकी पीड़ी को, इसके सुख को, इसके दुःख को, उन्हें मौका भी नहीं रह जाता--यह सोचने का--कि मेरे पैर में काँटा है।

स्वार्थ की जो बुद्धि है, वह अशान्ति जनमाती है। इसलिये कुछ...। जैसा जीसस ने सेवा पर बहुत जोर दिया। जोर इसी कारण दिया। इसलिये नहीं कि सेवा से दूसरे को लाभ होगा। वह तो होगा, पर वह गौण है। सेवा पर इसलिये जोर दिया कि उससे तू अपना खयाल भूल सकेगा। और अगर खुद का खयाल भूलता चला जाये, तो वह समर्पण बन जाता है।

तो कृष्ण कहते हैं: 'स्वार्थरहित जो व्यक्ति हो' वह परमात्मा के लिये खुला होता है। जो स्वार्थ से भरा हो, वह बंद होता है।

तो चौबीस घण्टे में कुछ समय तो स्वार्थरहित होना सीखना चाहिये। फिर धीरे-धीरे उसका आनन्द आने लगेगा। कभी स्वार्थरहित छोटा-मोटा कृत्य भी कर के देखें। कभी किसी के तरफ यूँ ही अकारण मुसकरा के देखें।

अकारण कोई मुसकराता तक नहीं। हालाँकि मुसकराहट में कुछ खर्च नहीं होता। लेकिन आप तभी मुसकराते हैं, जब कोई मतलब है। और जब आप मुस-कराते हैं, तो दूसरा भी सावधान हो जाता है--कि जरूर कोई मतलब है। क्योंकि कोई गैरमतलब के मुसकराता भी नहीं है। कोई गैरमतलब के किसी से राम-राम भी नहीं करता।

गाँव में लोग करते थे, अब तो धीरे-धीरे बात वहाँ भी समाप्त होती जा रही है। गाँव में कोई किसी से भी राम-राम कर लेता था। तो शहर का आदमी गाँव जाये और कोई राम-राम करे, तो वह बहुत डरता है, क्योंकि जिससे जान-पहचान

नहीं, वह राम-राम क्यों कर रहा है! जरूर कोई मतलब होगा। मतलब के बिना तो हम राम-राम भी नहीं करते; किसी को नमस्कार भी नहीं करते। करेंगे भी क्यों? जब कोई प्रयोजन होता है...।

मैं एक यूनिवर्सिटी में पढ़ता था। मेरे जो वाइस चांसलर थे, नये-नये आये थे। तो मैं उनसे मिलने गया। जैसे ही मैं उनसे मिलने पहुँचा, उन्होंने मुझसे पूछा, 'कैसे आये?' तो मैंने कहा, 'जाता हूँ। क्योंकि किसी काम से नहीं आया। सिर्फ राम-राम करने आया था।'

उन्होंने कहा, 'क्या मतलब?' वे थोड़े हैरान हुए कि पढ़ा-लिखा लड़का, राम-राम करने आया है! मैंने कहा, 'आप अजनबी आये हैं, नये-नये आये हैं। मैं आपके पड़ोस में ही हूँ, पड़ोसी हूँ। सिर्फ राम-राम करने आया। और अब कभी नहीं आऊँगा। क्योंकि मैंने यह नहीं सोचा था कि आप पूछेंगे--कैसे आये। इसका मतलब यह है कि आपके पास जो लोग आते हैं, काम से ही आते हैं। कोई गैर-काम नहीं आता। और आप भी जिसके पास जाते होंगे, काम से ही जाते होंगे। गैर-काम नहीं जाते। तो आपकी जिन्दगी फिजूल है। काम ही काम है या कुछ और भी है उसमें।'

मैं तो चला गया यह कह कर; वे नाराज भी हुए होंगे, परेशान भी हुए होंगे, सोचते भी रहे होंगे। दूसरे दिन उन्होंने मुझे बुलवाया कि 'मैं रात सो नहीं सका। तुम्हारा मतलब? सच में मुझे ऐसा लगने लगा, रात', उन्होंने मुझ से कहा कि 'मैंने यह पूछ कर ठीक नहीं किया कि कैसे आये?'

मैंने भी कहा, कि कम से कम मुझे बैठ तो जाने देते। यह बात पीछे भी हो सकती थी। राम-राम तो पहले हो जाती। मुझे कुछ काम नहीं है और कभी आपसे कोई काम पड़ने का काम भी नहीं है। कोई प्रयोजन भी नहीं है। लेकिन हम सोच ही नहीं सकते...।

फिर तो उनसे मेरा काफी सम्बन्ध हो गया। लेकिन अब भी वे मुझे कभी मिलते हैं, तो वे कहते हैं कि वह पहला दिन मैं नहीं भूल पाता, जिस दिन मैंने तुम से पूछ लिया कि कैसे आये? और तुमने कहा कि सिर्फ राम-राम करने आया; काम से नहीं आया। उस दिन से पहले मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि बेकाम कोई आयेगा।

जिन्दगी हमारे धन्धे जैसी हो गयी है। सब काम है। उसमें प्रेम, उसमें कुछ खेल, उसमें कुछ सहज--कुछ भी नहीं है।

स्वार्थ-रहित का अर्थ है: जीवन के उत्सव में सम्मिलित--अकारण।

कोई कारण नहीं है; खुश हो रहे हैं। और सदा अपने को केन्द्र नहीं बनाये हुए हैं। सारी दुनिया को सदा अपने से नहीं सोच रहे हैं कि मेरे लिये क्या होगा? मुझे

क्या लाभ होगा? मुझे क्या हानि होगी। हर चीज के पीछे अपने को खड़ा नहीं कर रहे हैं। चौबीस घण्टे में अगर दो-चार घण्टे भी ऐसे आपकी जिन्दगी में आ जायें, तो आप पायेंगे कि धर्म ने प्रवेश शुरू कर दिया। और आपकी जिन्दगी में कहीं से परमात्मा आने लगा।

कभी अकारण कुछ करें। और अपने को केन्द्र बना कर मत करें।

'सब का प्रेमी, हेतुरहित, दयालु...।' दया तो हम करते हैं, लेकिन उसमें हेतु हो जाता है। और हेतु बड़े छिपे हुए हैं।

आप बाजार से निकलते हैं और एक भिखमंगा आप से दो पैसे माँगता है। अगर आप अकेले हों और कोई न देख रहा हो, तो आप उसकी तरफ ध्यान नहीं देते। लेकिन अगर चार साथी साथ में हों, तो इज्जत का सवाल हो जाता है। अब दो पैसे के लिये मना करने से ऐसा लगता है कि लोग क्या सोचेंगे--कि अरे, इतने कृपण! इतने कंजूस! दो पैसे न दे सके?

भिखमंगा भी देखता है; अकेले में आपको नहीं छेड़ता। अकेले में आपसे निकालना मुश्किल है। चार आदमी देख रहे हों, भीड़ खड़ी हो, बाजार में हों, पकड़ लेता है पैर। आपको देना पड़ता है। भिखमंगे को नहीं, अपने अहंकार की वजह। हेतु है वहाँ कि लोग देख लेंगे, तो समझेंगे कि चलो, दयावान है। देता है।

या देते हैं कभी, तो उसके पीछे कोई पुण्य अर्जन का खयाल होता है। देते हैं, कभी, तो उसके पीछे भविष्य में, किसी स्वर्ग में पुरस्कार मिलेगा--उसका खयाल होता है। लेकिन बिना किसी कारण--हेतु रहित दया--दूसरा दुःखी है इसलिये...। इसलिये नहीं कि आपको इससे कुछ मिलेगा। दूसरा दुःखी है इसलिये; दूसरा परेशान है इसलिये, अगर दें, तो दान घटित होता है।

अगर आप किसी कारण से दे रहे हैं, जिसमें आपका ही कोई हित है...।

मैं गया था एक कुंभ के मेले में। तो कुंभ के मेले में पंडित और पुजारी लोगों को समझाते हैं कि 'दो; जितना दोगे, हजार गुना वहाँ--भगवान् के वहाँ मिलेगा।' हजारगुने के लोभ में कई नासमझ दे सकते हैं। हजारगुने के लोभ में...! यहाँ एक पैसा दो, वहाँ हजार पैसा लो! यह तो धंधा साफ है।

लेकिन देने के पीछे अगर लेने का कोई भी भाव हो, तो दान नष्ट हो गया; धंधा हो गया। सौदा हो गया।

कृष्ण कहते हैं, 'हेतुरहित, दयालु... अगर कोई हो, तो परमात्मा उसमें प्रवेश कर जाता है। वह परमात्मा को प्यारा है।

'सब का प्रेमी...।' प्रेम हम भी करते हैं। किसी को करते हैं, किसी को नहीं करते हैं। तो जिसको हम प्रेम करते हैं, उतना ही द्वार--परमात्मा के लिये हमारी

तरफ खुला है। वह बहुत संकीर्ण है। जितना बड़ा हमारा प्रेम होता है, उतना बड़ा द्वार खुला है। अगर हम सब को प्रेम करते हैं, तो सभी हमारे लिये द्वार हो गये, सभी से परमात्मा हममें प्रवेश कर सकता है।

लेकिन हम एक को भी प्रेम करते हैं, यह भी संदिग्ध है। सब को तो प्रेम करना दूर, एक को भी करते हैं, यह भी संदिग्ध है। उसमें भी हेतु है; उसमें भी प्रयोजन है।

पत्नी पति को प्रेम कर रही है, क्योंकि वही सुरक्षा है, आर्थिक आधार है। पति, पत्नी को प्रेम कर रहा है, क्योंकि वही उसकी काम-वासना की तृप्ति है। लेकिन यह सब लेन-देन है। यह सब बाजार है। इसमें प्रेम कहीं हैं नहीं।

जब आप प्रेम भी कर रहे हैं और प्रयोजन आपका ही है कुछ, तो वह प्रेम परमात्मा के लिये द्वार नहीं बन सकता।

इसलिये कुछ को हम प्रेम करते हैं--जिनसे हमारा स्वार्थ होता है। जिनसे हमारा स्वार्थ नहीं होता, उनको हम प्रेम नहीं करते। जिनसे हमारे स्वार्थ में चोट पड़ती है, उनसे हम घृणा करते हैं।

मगर हमेशा केन्द्र में मैं हूँ। जिससे मेरा लाभ हो, उसे मैं प्रेम करता हूँ; जिससे हानि हो, उसको घृणा करता हूँ। जिससे कुछ भी न हो, उसके प्रति मैं तटस्थ हूँ, उपेक्षा रखता हूँ, उससे कुछ लेना-देना नहीं है।

परमात्मा के लिये द्वार खोलने का अर्थ है : सब के प्रति ...। लेकिन सब के प्रति कब होगा ? वह तभी हो सकता है, जब मुझे प्रेम में ही आनन्द आने लगे--स्वार्थ में नहीं। इस बात को थोड़ा समझ लें।

जब मुझे प्रेम में ही आनन्द आने लगे; प्रेम से क्या मिलता है--यह सवाल नहीं।

कोई पत्नी है, उससे मुझे कुछ मिलता है; कोई बेटा है, उससे मुझे कुछ मिलता है। माँ है--उससे मुझे कुछ मिलता है। कोई पिता है, कोई भाई है, कोई मित्र है--उनसे मुझे कुछ मिलता है। उन्हें मैं प्रेम करता हूँ, क्योंकि उनसे मुझे कुछ मिलता है।

अभी मुझे प्रेम का आनन्द नहीं आया। अभी प्रेम भी एक साधन है, और कुछ मिलता है, उसमें मेरा आनन्द है। लेकिन प्रेम तो खुद ही अद्भुत बात है। उससे मिलने का सवाल ही नहीं है। प्रेम अपने आपमें काफी है।

प्रेम इतना बड़ा आनन्द है कि उससे आगे कुछ चाहने की जरूरत नहीं है।

जिस दिन मुझे यह समझ में आ जाये कि प्रेम ही आनन्द है--और यह मेरा अनुभव बन जाय कि जब भी मैं प्रेम करता हूँ, तभी आनन्द घटित हो जाता है; आगे-पीछे लेने का कोई सवाल नहीं है, तो फिर मैं काहे को कंजूसी करूँगा कि इसको करूँ और उसको न करूँ? फिर तो मैं खुले हाथ, मुक्त भाव से--जो भी

मेरे निकट होगा, उसको ही प्रेम करूँगा। वृक्ष भी मेरे पास होगा, तो उसको भी प्रेम करूँगा, क्योंकि वह भी आनन्द का अवसर क्यों छोड़ देना। एक पत्थर मेरे पास होगा, तो उसको भी प्रेम करूँगा, क्योंकि वह भी आनन्द का अवसर क्यों छोड़ देना।

जिस दिन आपको प्रेम में ही रस का पता चल जायेगा, उस दिन आप जो भी है, जहाँ भी है, उसको ही प्रेम करेंगे। प्रेम आपकी श्वास बन जायेगी।

आप श्वास इसलिये नहीं लेते हैं कि उससे कुछ मिलेगा। श्वास जीवन है; उससे कुछ लेने का सवाल नहीं है। प्रेम और गहरी श्वास है--आत्मा की श्वास है; वह जीवन है। जिस दिन आपको यह समझ में आने लगेगा, उस दिन आप प्रेम को स्वार्थ से हटा देंगे और प्रेम तब आपकी सहज चर्या बन जायेगी।

कृष्ण कहते हैं, 'प्रेमी सब का; ममता से रहित ...।' यह बड़ा उलटा लगेगा। क्योंकि हम तो समझते हैं : प्रेमी वही है, जो ममता से भरा हो। ममता प्रेम नहीं है।

ममता और प्रेम में ऐसा ही फर्क है, जैसे कोई नदी बह रही हो, यह तो प्रेम है। और कोई नदी बँध जाये और डबरा बन जाये और बहना बन्द हो जाये और सड़ने लगे, तो ममता है।

जहाँ प्रेम एक बहता हुआ झरना है, किसी पर रुकता नहीं, बहता चला जाता है। कहीं रुकता नहीं; कोई रुकावट खड़ी नहीं करता। यह नहीं कहता कि तुम पर ही प्रेम करूँगा; तुम्हें ही प्रेम करूँगा। अगर तुम नहीं हो, तो मर जाऊँगा। अगर तुम नहीं हो, तो मेरी जिन्दगी गयी। तुम्हारे बिना सब असार है। बस, तुम्हीं मेरे सार हो। ऐसा जहाँ प्रेम डबरा बन जाता है, वहाँ प्रेम धारा न रही; वहाँ प्रेम में सड़ांध पैदा हो गयी।

सड़ा हुआ प्रेम ममता है, रुका हुआ प्रेम ममता है।

ममता से आदमी परमात्मा तक नहीं पहुँचता। ममता से तो डबरा बन गया। नदी सागर तक कैसे पहुँचेगी? वह तो यहीं रुक गयी। उसकी तो गति ही बन्द हो गयी। इसलिए कृष्ण तत्काल जोड़ते हैं, 'सब का प्रेमी, हेतुरहित दयालु, ममता से रहित ...।'

प्रेम कहीं रुकता न हो; किसी पर रुकता न हो, बहता जाये; जो भी करीब आये, उसको नहला दे और बहता जाये। कहीं आग्रह न बनाता हो; और कहीं यह न कहता हो कि बस, यही मेरे प्रेम का आधार है। ऐसा जो करेगा, वह दुःख में पड़ेगा और यह प्रेम भी बाधा बन जायेगा।

इसलिये ममता का विरोध किया है। वह प्रेम बीमार हो गया, उस बीमार प्रेम का विरोध है।

ममता हटे और प्रेम बढ़े, तो आप परमात्मा की तरफ पहुँचेंगे। लेकिन हमें आसान है दो में से एक।

अगर हम प्रेम करें, तो ममता में फँसते हैं। और अगर ममता से बचे, तो हम प्रेम से ही बच जाते हैं। ऐसी हमारी दिक्कत है। अगर किसी से कहो कि ममता मत करो, तो फिर वह प्रेम ही नहीं करता किसी से। क्योंकि वह डरता है कि किया प्रेम, कि कहीं ममता न बन जाये; तो वह प्रेम से रुक जाता है।

ममता से बचते हैं, तो प्रेम रुक जाता है। तब भी दरवाजा बन्द हो गया। अगर प्रेम करते हैं, तो फौरन ममता बन जाती है; तो भी दरवाजा बन्द हो गया।

प्रेम हो और ममता न हो। नदी तो बहे और कहीं सरोवर न बने। इसको खयाल में रखें।

बच्चे को प्रेम करें। आप अपने बेटे को प्रेम करें, इसमें कुछ भी हर्ज नहीं है। शुभ है। लेकिन वह प्रेम आपके ही बेटे पर समाप्त क्यों हो? वह और थोड़ा बढ़े। और भी पड़ोसियों के बेटे हैं, उनको भी छुए। क्यों रुके बेटे तक? और सच में अगर आप असली बाप हैं और आपने बेटे का प्रेम जाना है, तो आप चाहेंगे कि जितने बेटे बढ़ जायँ, उतना अच्छा। क्योंकि उतना प्रेम आपको आनन्द देगा।

एक बेटा इतना आनन्द देता है अगर सारी जमीन के बेटे आपके बेटे हों, तो कितना आनन्द होगा! एक मित्र जब इतना आनन्द देता है, तो फिर क्यों कंजूसी करते हैं; बढ़ने दें। सारी पृथ्वी मित्र बन जाये तो और गहरा आनन्द होगा। अन्तहीन आनन्द होगा।

जब मनुष्यों को प्रेम करने से इतना आनन्द मिलता, तो पशुओं को क्यों वंचित करना--फैलने दें।

जब प्रेम इतना आनन्द देता है, तो रोकते क्यों हैं? उसे बढ़ने दें, उसे फैलने दें। उसे सारी जमीन को, सारे अस्तित्व को घेर लेने दें। तो आप परमात्मा के लिये प्रिय हो जायेंगे। क्योंकि आप खुल जायेंगे--सब तरफ से। आपका रंध्र-रंध्र खुल जायेगा--सब तरफ से। सब तरफ से प्रभु की करणें प्रवेश कर सकती हैं।

'अहंकार से रहित, सुख दुःखों की प्राप्ति में सम, क्षमावान, अपराध करने वाले को भी अभय देने वाला है...।'

अहंकार से रहित...। जितना गहन होता है प्रेम उतना अहंकार अपने आप शान्त और शून्य हो जाता है। जितना कम होता है प्रेम, उतना अहंकार होता है ज्यादा।

अहंकार और प्रेम विरोधी हैं। अगर प्रेम बढ़ता है, तो अहंकार पिघल जाता है। लेकिन बहुत लोग पूछते हैं...।

एक मित्र ने आज भी पूछा है कि अहंकार से कैसे छुटकारा हो? अहंकार से सीधे छुटकारा न होगा। आप प्रेम को बढ़ायें। जैसे-जैसे प्रेम बढ़ेगा, अहंकार विसर्जित होने लगेगा। क्योंकि जो शक्ति अहंकार बनती है, वही प्रेम बनती है।

प्रेम और अहंकार में एक ही शक्ति काम करती है। इसलिये अगर आप बड़े अहंकारी हैं, तो निराश मत हों। आपके पास प्रेम की बड़ी क्षमता छिपी पड़ी है। दुःखी मत हों; आपके पास बड़ा स्रोत है। यही ऊर्जा मुक्त हो जाये, तो प्रेम बन जायेगी।

लेकिन सीधा अहंकार से मत लड़ें। आप जो भी कुछ करेंगे सीधा, उससे अहं-कार नहीं मिटेगा। आप तो प्रेम की तरफ फैलाब शुरू कर दें। कहीं से भी प्रेम को फैलाना शुरू करें। जिस तरफ लगाव जाता हो, उसी तरफ प्रेम को बढ़ायें। यही खयाल रखें कि उसको रुकने मत दें। उसको बढ़ते जाने दें। उसकी सीमाएँ जितनी भी विस्तीर्ण होने लगें, होने दें।

ये विस्तीर्ण होती सीमा और एक दिन आप अचानक पायेंगे कि आपके अहंकार का घाव तिरोहित हो गया। आप प्रेम से भर गये हैं और मैं का कोई भाव नहीं रह गया है।

'सुख-दुःखों की प्राप्ति में सम...।' सुख आता है, दुःख भी आता है। लेकिन आपने कभी खयाल नहीं किया होगा कि सुख और दुःख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सुख के पीछे ही दुःख छिपा होता है; उसका ही संगी-साथी है। और दोनों में तलाक का कोई भी उपाय नहीं है। दोनों सदा साथ हैं। उनका जोड़ा कभी छूटता नहीं।

जब दुःख आता है, तब उसके पीछे सुख छिपा रहता है। लेकिन हमारी आँखें संकीर्ण हैं। जो होता है, उसको ही हम देखते हैं। जो पीछे छिपा है, उसको नहीं देखते हैं।

जब आप खुश हो रहे हैं, तब अब की दफा ध्यान रखना...। जब सुख आये, तब ध्यान रखना कि जरूर उसके पीछे उससे जुड़ा हुआ दुःख आयेगा। और आप घड़ी दो घड़ी में ही पायेंगे कि दुःख आ गया है और इस दुःख की क्वालिटी वही होगी, जो आपने सुख भोगा था--उसकी थी; वही गुण-धर्म होगा।

हर दुःख के पीछे उसका सुख है। और हर सुख के पीछे उसका दुःख है। रुपये में जैसे दो पहलू होते हैं, ऐसे वे दो पहलू हैं।

मगर हम कभी ध्यान नहीं करते। हमने कभी निरीक्षण नहीं किया। नहीं तो आप यह पहचान जायेंगे कि हर सुख का अनिवार्य दुःख है। हर दुःख का अनिवार्य सुख है। और दोनों मिलते हैं--एक नहीं मिलता।

अगर आप अपना दुःख कम करना चाहते हैं, तो आपको अपना सुख कम करना पड़ेगा। अगर आप अपना सुख बढ़ाना चाहते हैं, तो आपको अपना दुःख बढ़ाना पड़ेगा।

इसलिये एक बड़ी अद्‌भुत घटना घटी है--इस जमीन पर। अब हमें खयाल में आती है। जमीन पर जितना सुख बढ़ता जाता है, उतना दुःख भी बढ़ता जाता है। यह बड़े मजे की बात है।

विज्ञान ने सुख के बहुत उपाय किये हैं। और सुख निश्चित ही आदमी का बढ़ गया है। लेकिन आदमी जितना आज दुःखी है, इतना कभी भी नहीं था।

लोगों को लगता है कि इस में बड़ा कन्ट्रॉडिक्शन है, विरोधाभास है।

विज्ञान ने इतना सुख बढ़ा दिया, तो आदमों इतना दुःखी क्यों है? इसीलिये। इसमें विरोध नहीं है।

जितना सुख बढ़ेगा, उसके ही अनुपात में दुःख भी बढ़ेगा। वे साथ ही बढ़ेंगे।

एक गाँव का आदमी कम दुःखी है, क्योंकि कम सुखी भी है। एक आदिवासी कम दुःखी है। यह तो हमको भी दिखाई पड़ता है कि कम दुःखी है। लेकिन दूसरी बात भी आप ध्यान रखना। वह कम सुखी भी है।

एक धनपति ज्यादा सुखी है, ज्यादा दुःखी भी है। एक भिखमंगा कम सुखी है; कम दुःखी भी है।

जिस मात्रा में सुख बढ़ता है, उसी मात्रा में दुःख बढ़ता है। वह उसी के साथ-साथ है। वह उसी की छाया है। आप उससे भाग नहीं सकते। उससे आप बच नहीं सकते।

जिस दिन व्यक्ति को यह दिखाई पड़ जाता है कि सुख दुःख दोनों एक चीज के दो पहलू हैं, उस दिन वह समभावी होता है। उस दिन वह कहता है कि अब सुख को चाहने और दुःख से बचने की बात मूढतापूर्ण है।

यह तो ऐसे हुआ, जैसे मैं अपने प्रेमी को चाहता हूँ और नहीं चाहता कि उसकी छाया उसके साथ मेरे पास आये। और छाया को देख कर मैं दुःखी होता हूँ। और मैं कहता हूँ कि छाया नहीं आनी चाहिये, सिर्फ प्रेमी आना चाहिये। लेकिन प्रेमी के साथ उसकी छाया भी आती है। वह आयेगी ही। अगर मैं छाया नहीं चाहता हूँ, तो मुझे प्रेमी की चाह कम कर देनी पड़ेगी। और अगर मैं प्रेमी को चाहता हूँ, तो मुझे छाया को भी चाहना शुरू कर देना पड़ेगा। बस, ये दो उपाय हैं।

दोनों ही अर्थों में बुद्धि सम हो जाती है या तो सुख को भी मत चाहें—अगर दुःख से बचना है। और अगर सुख को चाहना ही है, तो फिर दुःख की भी उसी आधार पर चाह लें। और जिस दिन आप दोनों के चाह अचाह में बराबर हो जाते

हैं, उस दिन सम हो जाती है।

कृष्ण कहते हैं : जो सम है--दुःख-सुख की प्राप्ति में, वह प्रभु के लिये उपलब्ध हो जाता है।

'क्षमावान, अपराध करने वाले को भी जो अभय देने वाला है।' क्षमा बड़ी कठिन हैं। क्यों इतनी कठिन है? किसी को भी आप क्षमा नहीं कर पाते हैं। क्या कारण है? क्योंकि आप अपने को नहीं जानते, इसलिये क्षमा नहीं कर पाते।

कभी आप खयाल करें अब, जिन-जिन चीजों पर आप दूसरों पर नाराज होते हैं, विचार किया आपने कि वे सब चीजें आपके भीतर भी छिपी पड़ी हैं!

कोई क्रोध करता करता है, तो आप कहते हैं : बुरी बात है। लेकिन कभी आपने सोचा कि क्रोध आपके भीतर भी पड़ा है। कोई चोरी करता है, तो आप कहते हैं--पाप। बड़ा शोरगुल मचाते हैं। लेकिन आपने सोचा कि चोर आपके भीतर भी मौजूद है। हो सकता है, इतना कुशल चोर हो कि आप भी नहीं पकड़ पाते। पुलिस वाले तो पकड़ ही नहीं पाते। आप भी नहीं पकड़ पाते हैं। लेकिन क्या चोरी की वृत्ति भीतर मौजूद नहीं है?

हत्या कोई करता है। आप नाराज होते हैं। लेकिन आपने कई बार हत्या नहीं करनी चाही? यह दूसरी बात है कि नहीं की। हजार कारण हो सकते हैं : सुविधा न रही हो, साहस न रहा हो। अनुकूल समय न रहा हो। लेकिन हत्या आपने करनी चाही है। चोरी आपने करनी चाही है।

ऐसा कौन-सा पाप है, जो आपने नहीं करना चाहा है? किया हो, न किया हो --यह गौण बात है। और जितने पाप जमीन पर हो रहे हैं, सब आप भी करना चाहे हैं। कर सकते थे, करने की सम्भावना है, तो इतना क्रोधित क्यों हो रहे हैं, दूसरे पर?

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, बड़ी उलटी बात। वे कहते हैं कि अगर कोई आदमी चोरी का बहुत ही विरोध करता हो, तो समझ लेना कि उसके भीतर काफी बड़ा चोर छिपा है।

अगर कोई आदमी काम-वासना का बहुत पागल की तरह विरोध करता हो तो समझ लेना कि उसके भीतर काम-वासना छिपी है। क्यों? क्योंकि वह उस चीज का विरोध कर के अपने को भी दबाने की कोशिश कर रहा है। चिल्लाता है, दूसरे पर नाराज होता है, तो उसको अपने को भी दबाने में सुविधा मिलती है।

जिस चीज का आप वियोध करते हैं बहुत गौर से खयाल करना कि कहीं आपके भीतर अचेतन में वह दबी पड़ी है, इसलिए इतना जोर से विरोध कर रहे हैं।

लेकिन जो व्यक्ति जितना आत्म-निरीक्षण करेगा, उतना ही क्षमावान हो जायेगा।

क्योंकि वह पायेगा : ऐसा कोई पाप नहीं, जिसे मैं करने में समर्थ नहीं हूँ। और ऐसी कोई भूल नहीं है, जो मुझसे न हो सके। तो दूसरे पर इतना नाराज होने की क्या बात है।

दूसरा भी मेरे जैसा ही है। वह भी मेरा ही एक रूप है। जो मेरे भीतर छिपा है, वही उसके भीतर छिपा है। तो क्षमा का भाव पैदा होता है।

क्षमा का मतलब यह नहीं कि आप बड़े महान हैं, इसलिए दूसरे को क्षमा करते हैं। वह क्षमा थोथी है। वह तो अहंकार का ही हिस्सा है।

ठीक क्षमा का अर्थ है कि आप पाते हैं कि सारी मनुष्यता आप में है। और मनुष्य जो करने में समर्थ है, वह आप भी करने में समर्थ हैं। मनुष्य जिस नरक तक जा सकता है, आप भी जा सकते हैं। एक बात। इससे क्षमा आती है।

और दूसरी बात कि आप जिस ऊँचाई तक पहुँच सकता हैं, दूसरा मनुष्य भी उसी ऊँचाई तक पहुँच सकता है। दूसरी बात।

निकृष्टतम भी आपके भीतर छिपा है--यह बोध; और श्रेष्ठतम भी दूसरे के भीतर छिपा है--यह बोध, आपके जीवन में क्षमा का जन्म हो जायेगा। अभी हम उलटा कर रहे हैं।

अभी श्रेष्ठतम हम मानते हैं हमारे भीतर है और निकृष्टतम सदा दूसरे के भीतर है। दूसरे का जो बुरा पहलू है, वह देखते हैं। और खुद का जो भला पहलू है, वह देखते हैं। इससे बड़ी तकलीफ होती है। इससे बड़ी अस्त-व्यस्तता फैल जाती है। दोनों देखें।

और जिस नरक में आप दूसरे को देख रहे हैं, उसमें आप भी खड़े हैं कहीं। और जिस स्वर्ग में आप सोचते हैं कि आप हो सकते हैं--या हैं--उसमें दूसरा भी हो सकता है। तब आपके जीवन में क्षमा का भाव आ जायेगा। और यह क्षमा सहज होगी। इससे कोई अहंकार निर्मित नहीं होगा--कि मैंने क्षमा किया।

'तथा जो योग में युक्त हुआ योगी, निरन्तर लाभ-हानि में संतुष्ट, मन और इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किये हुए, मेरे में दृढ़ निश्चिय वाला है, वह मेरे में अपर्ण किये हुए मन बुद्धि वाला, मेरा भक्त को प्रिय है।'

परमात्मा को जो प्रिय है, वही उस तक पहुँचने का द्वार है।

ये गुण विकसित करें--अगर उसे खोजना है। इन गुणों में गहरे उतरें, अगर चाहना है कि कभी उससे मिलन हो जाय।

सीधे परमात्मा की भी फिक्र न की, तो भी हल हो जायेगा। अगर इतने गुण आ गये, तो परमात्मा उपलब्ध हो जायेगा।

● एक मित्र ने पूछा है कि अगर हम ठीक जीवन ही जीये चले जायँ, तो क्या परमात्मा से मिलन न होगा?

बिलकुल हो जायेगा। लेकिन ठीक जीवन...।

ठीक जीवन का अर्थ ही धर्म है। और ये जितनी विधियाँ बताई जा रही हैं, ये ठीक जीवन के लिये ही हैं।

उन मित्र ने पूछा है कि धर्म की क्या जरूरत है, अगर ठीक जीवन जीयें? ठीक जीवन बिना धर्म के होगा ही नहीं। ठीक जीवन का अर्थ ही धार्मिक जीवन है। शब्दों का ही फासला है।

कोई हर्ज नहीं--ठीक जीवन कहें या धार्मिक जीवन कहें। लेकिन ठीक जीवन का क्या अर्थ है?

ये जो गुण कृष्ण ने बताये, ये हैं ठीक जीवन। अहंकार शून्यता, सहज सब के प्रति प्रेम--अकारण। क्षमा, एकाग्र चित्त--ये घटनाएँ अगर बिना ईश्वर के भी घट जायें...। घटी हैं।

महावीर ईश्वर को नहीं मानते हैं। बुद्ध तो आत्मा तक को नहीं मानते हैं। लेकिन महावीर भगवत्ता को उपलब्ध हो गये। जो भगवान् को नहीं मानते हैं, उनको लोगों ने भगवान् कहा।

बुद्ध आत्मा परमात्मा कुछ भी नहीं मानते और बुद्ध जैसा पवित्र और बुद्ध जैसा खिला हुआ फूल पृथ्वी पर दूसरा नहीं हुआ है।

ठीक जीवन पर्याप्त है। लेकिन ठीक जीवन का अर्थ यही है। ठीक जीवन ही तो-प्रभु के लिये खुलना है। ठीक जीवन के प्रति ही तो उसका प्रेम है।

गैर-ठीक जीवन में हम पीठ किये खड़े होते हैं। ठीक जीवन में हमारा मुँह ईश्वर की तरफ उन्मुख हो जाता है।

उन्मुख हो जाना--उसकी तरफ--ठीक जीवन है। या ठीक जीवन हो जाये, तो उन्मुखता आ जाती है। अभी हम जैसे हैं, वह विमुखता है।

पाँच मिनट रुकें! कोई बीच से उठे ना। कीर्तन पूरा करके जायँ।

परमात्मा की खोज • धन और धर्म • स्वानुभव से क्रांति
संसार और परमात्मा • उद्वेगरहित अहंशून्य भक्त

आठवाँ प्रवचन

क्रॉस मैदान, पारसी कुआँ, बम्बई, संध्या, दिनांक १९ मार्च, १९७३
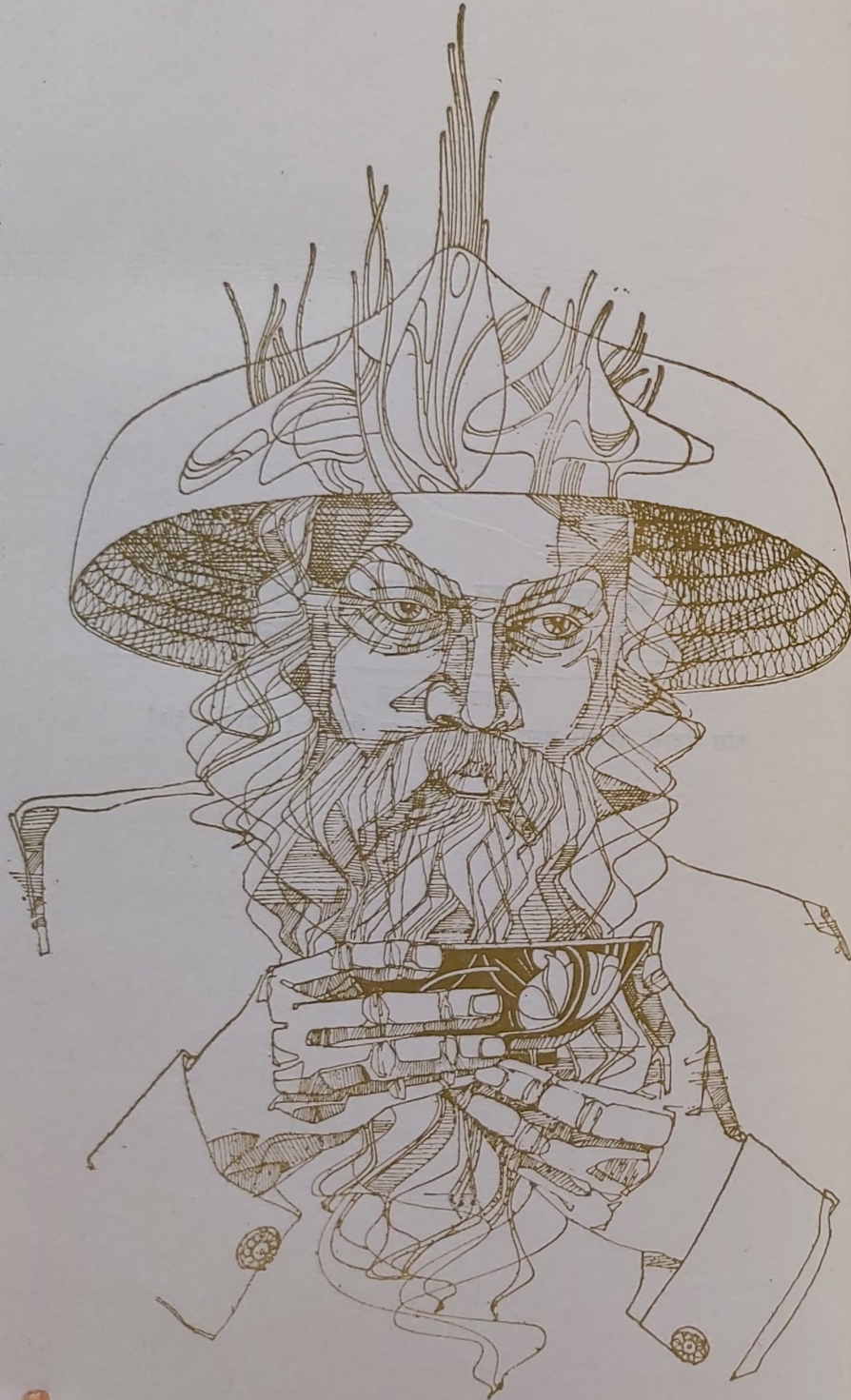
यस्मान्नोद्विजतेलोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५ ॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १६ ॥

तथा जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है और जो स्वयं भी किसी जीव से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादिकों से रहित है, वह भक्त मेरे को प्रिय है ।

और जो पुरुष आकांक्षा से रहित तथा बाहर भीतर से शुद्ध और दक्ष अर्थात् जिस काम के लिये आया था, उसको पूरा कर चुका है एवं पक्षपात से रहित और दुःखों से छूटा है, वह सर्व आरम्भों का त्यागी मेरा भक्त मेरे को प्रिय है ।

पहले कुछ प्रश्न ।

● एक मित्र ने पूछा है : भगवान् को पाने के लिये इतना कठिन, लम्बा और कष्टमय मार्ग क्यों है? उसे पाने के लिये सुगम, सरल और आनन्दमय मार्ग क्यों नहीं है?

मार्ग कष्टमय जरा भी नहीं है । और न ही कठिन है । मार्ग तो अति सुगम है, सरल है, और आनन्दपूर्ण है । लेकिन हम जैसे हैं, उसके कारण कठिनाई पैदा होती है । कठिनाई मार्ग के कारण पैदा नहीं होती । कठिनाई हमारे कारण पैदा होती है।

और अगर प्रभु का रास्ता लगता है कि अति कष्टों से भरा है, तो रास्ता कष्टों से भरा है इसलिये नहीं, हम जिन बीमारियों से भरे हैं, उनको छोड़ने में कष्ट होता है।

अड़चन हमारी है। रास्ता तो बिलकुल सुगम है। आप अगर सरल हो जायँ, तो रास्ता बिलकुल सरल है। आप अगर जटिल हैं, तो रास्ता बिलकुल जटिल है। क्योंकि आप ही हैं रास्ता। आपको अपने से ही गुजर के पहुँचना है। और आपको पहुँचना है, इसलिये आपको बदलना भी होगा।

अब जैसे एक आदमी चोर है, तो चोरी छोड़े बिना, एक इंच भी वह प्रार्थना के मार्ग पर न बढ़ सकेगा। लेकिन चोरी में रस है। चोरी का अभ्यास है। चोरी का लाभ दिखाई पड़ता है, तो छोड़ना मुश्किल मालूम होता है ।

और परमात्मा तो दूर का लाभ है; चोरी का लाभ अभी और यहीं दिखाई पड़ता है। और परमात्मा है भी या नहीं--यह भी सन्देह बना रहता है। चोरी में जो लाभ खो जायेगा, वह प्रत्यक्ष मालूम पड़ता है और परमात्मा में जो आनन्द मिलेगा, वह बहुत दूर की कल्पना मालूम पड़ती है, सपना मालूम पड़ता है। तो चोरी छोड़नी कठिन हो जाती है ।

हिंसा छोड़नी कठिन हो जाती है, क्रोध छोड़ना कठिन हो जाता है। परमात्मा के कारण ये कठिनाइयाँ नहीं हैं। ये कठिनाइयाँ हमारे कारण हैं।

अगर आप सरल हो जायँ, तो रास्ता ही नहीं बचता। इतनी भी कठिनाई नहीं

रह जाती कि रास्ते को पार करना हो। अगर आप सरल हो जायँ, तो आप पाते हैं कि परमात्मा सदा से आपके पास ही मौजूद था; आपकी कठिनाई के कारण दिखाई नहीं पड़ता था।

रास्ता होगा, तो थोड़ा तो कठिन होगा, ही। चलना पड़ेगा। लेकिन इतना भी फासला नहीं है--मनुष्य में और परमात्मा में--कि चलने की जरूरत हो। लेकिन हम बड़े जटिल हैं, बड़े उलझे हुए हैं।

मैंने सुना है कि एक आदमी भागा हुआ चला जा रहा था एक राजधानी के पास। राह के किनारे बैठे एक आदमी से उसने पूछा कि 'मैं राजधानी जाना चाहता हूँ। कितनी दूर होगी?' तो उस आदमी ने कहा, कि 'इसके पहले कि मैं जबाब दूँ, दो सवाल तुमसे पूछना जरूरी है। पहला तो यह कि तुम जिस तरफ जा रहे हो, अगर इसी तरफ तुम्हें राजधानी तक पहुँचना है, तो जितनी जमीन की परिधि है, उतनी ही दूर होगी, क्योंकि राजधानी पीछे छूट गई है। अगर तुम इसी तरफ खोजने का इरादा रखते हो, तो पूरी जमीन घूम के जब तुम लौटोगे, तब राजधानी आ पायेगी। अगर तुम लौटने को तैयार हो, तो राजधानी बिलकुल तुम्हारे पीछे है।

'तो एक तो यह पूछना चाहता हूँ कि किस तरफ जा कर राजधानी खोजनी है? और दूसरा यह पूछना चाहता हूँ कि किस चाल से खोजनी है। क्योंकि दूरी चाल पर निर्भर करेगी। अगर चींटी की चाल चलना हो, तो पीछे की राजधानी भी बहुत दूर है। तो तुम्हारी चाल और तुम्हारी दिशा--इस पर राजधानी की दूरी निर्भर करेगी।

परमात्मा कितना दूर है, यह आप पर निर्भर करेगा कि आप किस दिशा में खोज रहे हैं, और इस पर निर्भर करेगा कि आपकी गति क्या है।

अगर आप गलत दिशा में खोज रहे हैं, तो बहुत कठिन है। और हम सब गलत दिशा में खोज रहे हैं।

मजा तो यह है कि यहाँ नास्तिक भी परमात्मा को ही खोज रहा है। परमात्मा का अर्थ है : परम आनन्द को, अन्तिम जीवन के अर्थ को--प्रयोजन को--सार्थकता को; क्या है अभिप्राय जीवन का--इसको, नास्तिक भी खोज रहा है।

ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जो परमात्मा को न खोज रहा हो। हाँ, कोई गलत रास्ते पर खोज रहा हो, गलत दिशा में खोज रहा हो, यह हो सकता है। लेकिन परमात्मा को खोज ही न रहा हो, यह नहीं हो सकता। हो सकता है, अपनी खोज को वह परमात्मा का नाम भी न देता हो। लेकिन सभी खोज उसी के लिये है। आनन्द की खोज, अभिप्राय की खोज, अर्थ की खोज, उसकी ही खोज है। अपनी

खोज उसकी ही खोज है। अस्तित्व की खोज, उसकी ही खोज है। नाम हम क्या देते हैं, यह हम पर निर्भर है।

आप सूरज को खोजने चल सकते हैं और सूरज की तरफ पीठ करके चल सकते हैं। तो आप हजारों मील चलते रहेंगे और सूरज दिखाई नहीं पड़ेगा।

और एक मजे की बात है कि आप हजारों मील चल चुके हों, और आप पीठ फेर लें, उलटे खड़े हो जायँ, तो सूरज अभी आपकी दिखाई पड़ जायेगा। इससे एक बात खयाल में ले लें।

अगर सूरज की तरफ पीठ कर के हजारों मील चले गये हैं, तो आप यह मत समझना कि जब सूरज की तरफ मुँह करके जब आप हजार मील चलेंगे, तब सूरज दिखाई पड़ेगा। सूरज तो इसी वक्त मुँह फेरते ही दिखाई पड़ जायेगा।

तो परमात्मा से आप कितने दूर चले गये हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। पीठ फेरने को राजी हों, तो इसी वक्त परमात्मा दिखाई पड़ जायेगा।

उसके बीच और आपके बीच दूरी वास्तविक नहीं है, केवल आपकी पीठ के फेरने की है। सिर्फ दिशा की है। वह आपके साथ ही खड़ा है। वह आपके भीतर ही छिपा है।

तो पहली तो बात यह समझ लें, कि कठिनाई रास्ते की नहीं है। इसलिये सरल रास्ते की खोज मत करें। सरल होने की खोज करें।

बहुत से लोग सरल रास्ते की खोज में होते हैं। वे कहते हैं : कोई शॉर्ट-कट? उसमें वे बहुत धोखे में पड़ते हैं, क्योंकि परमात्मा तक पहुँचने का कोई शॉर्ट-कट रास्ता नहीं है। क्योंकि पीठ ही फेरनी है। अब इसमें और क्या शॉर्ट-कट होगा? अगर सिर्फ पीठ फेरनी है और परमात्मा सामने आ जायेगा, तो इससे संक्षिप्त अब और क्या करियेगा? इससे और संक्षिप्त नहीं हो सकता।

लेकिन हम खोज में रहते हैं संक्षिप्त रास्ते की; वह क्यों? वह हम इसलिये खोज में रहते हैं कि कोई ऐसा रास्ता मिल जाय, जो सरल हो, उसका मतलब क्या? उसका मतलब--जो मुझे न बदले।

जब हम पूछते हैं--सरल रास्ता, तो हम पूछते हैं कि कुछ ऐसी बात बताओ, कि जैसा मैं हूँ, वैसा ही परमात्मा से मिलन हो जाय; मुझे कुछ भी न करना पड़े।

सरल का मतलब है : परमात्मा मुफ्त में मिल जाय। मुझे कुछ भी छोड़ना, तोड़ना, बदलना न पड़े। मैं जैसा हूँ--ऐसे को ही मिल जाय परमात्मा--यह आपकी आकांक्षा है भीतर। यह कभी भी नहीं होगा। अगर यह होनेवाला होता, तो बहुत पहले हो गया होता। आप बहुत जन्मों से यह कर रहे हैं।

यह कोई आपकी नयी तलाश नहीं है। काफी--लाखों साल की तलाश है।

और भूल उसमें वही है कि आप सरल रास्ता खोजते हैं, सरल व्यक्तित्व नहीं खोजते। आप सरल हो जायँ, रास्ता सरल है। और इसकी फिक्र में लगें कि मैं कैसे सरल हो जाऊँ।

और जीवन-क्रांति की कोई भी प्रक्रिया शॉर्ट-कट नहीं होती है। क्योंकि जो हमने अपने को उलटा करने के लिये किया है, उतना तो करना ही पड़ेगा सीधा होने के लिये। इसलिये वह बात ही छोड़ दें सरल की, और ध्यान करें--अपनी जटिलता पर।

अपनी जटिलता को समझने की कोशिश करें और जटिलता कैसे खुलेगी--एक-एक गांठ--उसको खोलने को कोशिश करें। जैसे-जैसे आप खुलते जायेंगे, आप पायेंगे कि परमात्मा आपके लिये खुलता जा रहा है। इधर भीतर आँख आप खोलते हैं, उधर बाहर परमात्मा खुलने लगता है। जिस दिन भीतर आप बिलकुल खुल गये होते हैं, परमात्मा बिलकुल सामने होता है।

बुद्ध ने कहा है ...। जब उन्हें ज्ञान हुआ, और किसी ने पूछा कि 'आपको क्या मिला है?' तो बुद्ध ने कहा, 'मुझे मिला कुछ भी नहीं है। सिर्फ उसको ही जान लिया है, जो सदा से मिला हुआ था। कोई नयी चीज मुझे नहीं मिल गई है। मगर जो मेरे पास ही थी और मुझे दिखाई नहीं पड़ती थी, उसका ही दर्शन हो गया है।'

तो बुद्ध ने कहा है कि यह मत पूछो कि मुझे क्या मिला। ज्यादा अच्छा हो कि मुझसे पूछो कि क्या खोया। क्योंकि मैंने खोया जरूर है कुछ, पाया कुछ भी नहीं है। खोया है मैंने अपना अज्ञान; खोयी है मैंने अपनी नासमझी; खोयी है मैंने गलत चलने की दिशा और गलत ढंग; खोया है मैंने गलत जीवन। पाया है, कहना ठीक नहीं, क्योंकि जो पाया है, वह था ही। अब जान के मैं कहता हूँ कि वह तो सदा से मेरे पास था। सिर्फ मैं गलत था, इससे मेरी पहचान नहीं हो पाती थी। जो मेरे भीतर ही छिपा था, उस तक भी मैं नहीं पहुँच पाता था, क्योंकि मैं कहीं और उसे खोज रहा था।

सूफी फकीर औरत हुई—राबिया। एक दिन लोगों ने देखा कि वह रास्ते पर साँझ के अँधेरे में कुछ खोजती है। तो लोगों ने पूछा, 'क्या खोजती है?' उसने कहा, 'मेरी सुई खो गयी है।' तो दूसरे लोग भी खोजने में लग गये कि बूढ़ी की सुई मिल जाये। तब एक आदमी को खयाल आया कि सूरज ढलता जाता है, अँधेरा होता जाता है। उस आदमी ने कहा कि 'तेरी सुई बड़ी छोटी चीज है और रास्ता बड़ा है। आखिर खोई कहाँ है? ठीक जगह कहाँ गिरी है बता, तो हम खोज भी लें; नहीं तो सूरज ढल रहा है।'

तो राबिया ने कहा, 'यह सवाल ही मत उठाओ, क्योंकि सुई तो मेरे घर में गिरी है। घर के भीतर गिरी है।' तो वे सारे लोग खड़े हो गये। उन्होंने कहा, 'पागल औरत! अगर घर के भीतर सुई गिरी है, तो यहाँ बाहर क्यों खोजती है?' तो उसने कहा, 'भीतर घर में प्रकाश नहीं है, बाहर प्रकाश है। और बिना प्रकाश के खोजूं कैसे? इसलिये यहाँ खोजती हूँ।'

आप भी खोज रहे हैं, लेकिन आपको इसका भी खयाल नहीं है कि खोया कहाँ है। और जब तक इसका ठीक पता न हो कि परमात्मा को खोया कहाँ है; खोया भी है या नहीं; या खोया है--तो भीतर या बाहर; तब तक खोज आपकी भटकन ही होती है।

लेकिन आप भी राबिया की तरह हैं। राबिया भी उन लोगों से मजाक कर रही थी। और वे जब हँसने लगे और कहने लगे कि 'पागल औरत, जब घर के भीतर सुई खोयी है, तो वहीं खोज। और अगर प्रकाश नहीं है, तो प्रकाश वहाँ ले जा, बजाय इसके कि प्रकाश में खोज, क्योंकि जब उसे बाहर खोया ही नहीं, तो प्रकाश पैदा तो नहीं कर देगा? प्रकाश तो केवल बता सकता है—जो मौजूद हो। तो तू प्रकाश भीतर ले जा।'

तो राबिया ने कहा कि 'तुम सब लोग मुझ पर हँसते हो, लेकिन मैं तो दुनिया की रीत से चल रही हूँ। मैंने सभी लोगों को बाहर खोजते देखा है। और बाहर खोया किसी ने भी नहीं है। सोचा कि यही उचित है—दुनिया की रीत से ही चलना।'

आप कहाँ खोज रहे हैं? आनन्द कहाँ खोज रहे हैं आप? कोई धन में खोज रहा है; कोई मित्र में, कोई प्रेमी में; कोई यश में, कोई प्रतिष्ठा में। वह सारी खोज बाहर है। लेकिन आपको पक्का है कि आपने आनन्द कभी बाहर खोया है? और आप आनन्द क्यों खोज रहे हैं, अगर आपको आनन्द का पहले कोई पता ही नहीं है तो? यह जरा सोचने जैसी बात है।

उस चीज की खोज नहीं हो सकती, जिसका हमें कोई पूर्व-अनुभव न हो। खोजेंगे कैसे?

सब को लगता है कि आनन्द नहीं है। इससे एक बात तो साफ है कि आपको किसी न किसी गहराई के तल पर पता है कि आनन्द क्या है। नहीं तो आनन्द नहीं है--यह कैसे कहते हैं आप? दुःख है--यह कैसे कहते हैं? क्योंकि जिसने कभी अँधेरा न देखा हो, वह प्रकाश को भी नहीं जान सकता। और जिसने कभी प्रकाश न देखा हो, वह यह भी नहीं पहचान सकता कि यह अँधेरा है। अँधेरे की पहचान के लिये प्रकाश का अनुभव चाहिये।

अगर आपको लगता है: यह दुःख है, तो आपको कुछ न कुछ आनन्द की खबर

है, तभी तो आप सोच पाते हैं कि यह वैसा नहीं है, जैसा होना चाहिये। आनन्द नहीं है, पीड़ा है दुःख है।

सभी को दुःख का अनुभव होता है। इससे अध्यात्म की एक मौलिक धारणा पैदा होती है और वह यह कि सभी को जाने-अनजाने आनन्द का अनुभव है।

शायद आपको भी पता नहीं है, लेकिन आपके प्राणों की गहराई में आनन्द की कोई प्रतीति है—अभी भी। उसी से आप तौलते हैं, और पाते हैं कि नहीं, अनुकूल नहीं है, और उसी को आप खोज रहे हैं।

जो आपकी गहराइयों में छिपा है, उसको ही आप खोज रहे हैं। लेकिन खोज रहे हैं बाहर। जहाँ वह छिपा है, वहाँ नहीं खोज रहे हैं। लेकिन बाहर खोजने का कारण वही है जो राबिया का था। वह कारण यही है कि आँखें बाहर खुलती हैं। इसलिये रोशनी बाहर है। हाथ बाहर फैलते हैं, कान बाहर सुनते हैं, सभी इन्द्रियाँ बाहर खुलती हैं। इन्द्रियों का प्रकाश बाहर पड़ता है, इसलिये हम बाहर खोज रहे हैं।

हम भीतर हैं और इन्द्रियाँ बाहर की तरफ खुलती हैं। इसलिये इन्द्रियों के द्वारा जो भी खोज है, वह आपको कहीं भी न ले जायेगी।

इन्द्रियाँ बाहर की तरफ जाती हैं और आप भीतर की तरफ हैं। आप इन्द्रियों के पीछे छिपे हैं। आप की सम्पदा पीछे छिपी है, और इन्द्रियाँ बाहर जाती हैं। इन्द्रियों का उपयोग यही है। इन्द्रियाँ संसार से जोड़ने का मार्ग हैं। इसलिये बाहर की तरफ जाती हैं।

भीतर तो आँखों की जरूरत ही नहीं है, क्योंकि भीतर तो बिना आँखों के देखा जा सकता है। भीतर कान की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि बिना कान के भीतर सुना जा सकता है। भीतर हाथों की कोई भी जरूरत नहीं है, क्योंकि बिना हाथों के भीतर स्पर्श हो जाता है। इसलिये इन्द्रियों की भीतर की तरफ कोई जरूरत नहीं है। भीतर का सब अनुभव अतीन्द्रिय है, इन्द्रियों के बिना हो जाता है।

इन्द्रियों की जरूरत संसार के लिये है। वे इन्स्ट्रुमेंट्स हैं, साधन हैं, संसार से जुड़ने के। तो जितना संसार से जुड़ना हो, उतनी सबल इन्द्रिय चाहिये।

वैज्ञानिक कहते हैं कि विज्ञान की सारी खोज इन्द्रियों को सबल बनाने से ज्यादा नहीं है। आपकी आँख देख सकती है--थोड़ी दूर तक। दूरबीन है--वह मीलों तक देख सकती है। फिर और बड़ी दूरबीनें हैं, वे आकाश के तारों को देख सकती हैं। लेकिन आप क्या कर रहे हैं? जो तारा खाली आँख से दिखायी नहीं पड़ता, वह दूरबीन से दिखाई पड़ जाता है। क्योंकि दूरबीन बड़ा सबल यन्त्र है। दूर तक उसका सेतु बन जाता है। दूर तक उसका सम्बन्ध बन जाता है। खाली आँख से उतना सम्बन्ध नहीं बनता।

कान से आप सुनते हैं, रेडियो भी सुनता है, लेकिन वह काफी दूर की बात पकड़ लेता है। आँख से आप देखते हैं, टेलीविजन भी देखता है, लेकिन यह बहुत दूर की बात पकड़ लेता है।

सारी वैज्ञानिक खोजें इन्द्रियों का परिष्कार हैं। विज्ञान का जगत् इन्द्रियों का जगत् है।

सारा संसार इन्द्रियों से जुड़ा हुआ है। लेकिन इससे एक उपद्रव पैदा होता है कि हम परमात्मा को भी खोजने इन्हीं इन्द्रियों के रास्ते से चले जाते हैं।

यह गलती वैसे ही है, जैसे कोई आदमी आँखों से संगीत सुनने की कोशिश करने लगे। आँखें देख सकती हैं--सुन नहीं सकती हैं। और कितनी ही सबल आँख हो, तो भी नहीं सुन सकती है। सुनने का काम आँख से नहीं हो सकता। सुनने का काम कान से होगा। और कान अगर देखने की कोशिश करने लगे, फिर मुसीबत होगी, पागलपन पैदा होगा।

इन्द्रियाँ बाहर का मार्ग हैं, उनसे भीतर की खोज नहीं हो सकती। इन्द्रियाँ पदार्थ से जोड़ देती हैं, उनका परमात्मा से जुड़ना नहीं हो सकता। यह उनकी सीमा है।

जैसे आँख देखती है, यह उसकी सीमा है। इसमें कोई कसूर नहीं है।

इन्द्रियाँ बाह्य ज्ञान के साधन हैं, और वह जो छिपा है, वह जो आप हैं, वह भीतर है। उसे खोजना हो तो इन्द्रियों के द्वार बन्द कर के भीतर डूब जाना होगा। इंन्द्रियों के सेतु छोड़ देने होंगे। इन्द्रियों के रास्तों से लौट के अपने भीतर ही खड़े हो जाना होगा।

इस भीतर खड़े हो जाने का नाम अध्यात्म है। और भीतर जो खड़ा हो जाता है, वह पाता है कि जिसे मैंने कभी नहीं खोया था, उसे मैं खोज रहा था। जिससे मेरा कभी बिछुड़ना न हुआ था, उसके मिलन के लिये मैं परेशान हो रहा था। जो सदा ही पास था, उसे मैं दूर-दूर तलाश रहा था। और दूर-दूर तलाशने की वजह से उसे नहीं पा रहा था। नहीं पा रहा था, तो और परेशान हो रहा था, तो और दूर खोज रहा था। ऐसे खोज एक विसियस सर्कल--एक दुष्टचक्र बन जाती है।

सरल है बहुत, क्योंकि परमात्मा आपके इतने निकट है कि उसे निकट कहना भी उचित नहीं है। क्योंकि निकटता में भी थोड़ी-सी दूरी होती है। परमात्मा आपकी श्वास-श्वास में है, रोयें-रोयें में है। ठीक से समझें तो आप परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं।

●एक मित्र ने और पूछा है। उन्होंने पूछा है कि अगर हम परमात्मा ही हैं, तो फिर जानने की क्या जरूरत है?

अगर सच में ही पता चल गया है कि आप परमात्मा हैं, तो फिर जानने की

जरूरत नहीं है। लेकिन 'अगर' खतरनाक है। पूछते हैं कि 'अगर' हम परमात्मा ही हैं। वह 'अगर' ही मिटाने के लिये खोज की जरूरत है। वह जो 'यदि' लगा हुआ है, वही तो उपद्रव है।

उन मित्र ने यह भी पूछा है कि परमात्मा को पा लेने से ही क्या होगा--जब वह मिला ही हुआ है?

कुछ भी नहीं होगा, सिर्फ खोज मिट जायेगी। और खोज मिटते ही पीड़ा मिट जाती है, दौड़ मिट जाती है। और जब तक उसे नहीं पा लिया है, खोज जारी रहेगी।

●एक और मित्र ने पूछा है, कि अगर आदमी ही परमात्मा है, अगर उसके भीतर ही वह छिपा है, तो मिल क्यों नहीं जाता? अड़चन क्यों है?

अड़चन इसलिये है कि यह भी चेतना की सामर्थ्य है कि वह चाहे, तो अपने को विस्मरण कर दे। और यह भी चेतना की सामर्थ्य है कि वह चाहे तो अपने को स्मरण कर ले। जरा जटिल है।

चेतना का अर्थ ही होता हैं कि जिसे स्मरण और विस्मरण की शक्ति हो। और दोनों शक्तियाँ साथ होती हैं।

अगर कोई आदमी कहता है कि मुझे सिर्फ स्मरण की शक्ति है, विस्मरण की नहीं है, तो आप भरोसा मत करना, क्योंकि जो भूल नहीं सकता, वह याद भी नहीं कर सकता।

भूलना और याद करना साथ-साथ हैं। वही याद कर सकता है, जो भूल भी सकता है। जो भूल सकता है, वही याद भी कर सकता है। आप सोचते हैं कि आपके भीतर जो स्मृति की शक्ति है—मेमोरी की--वह विस्मरण पर खड़ी हैं!

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर कोई आदमी भूलना बन्द कर दे, तो याद करना उसी दिन बन्द हो जायेगा।

सोचें : दिनभर में जितनी घटनाएँ घटती हैं, वे सब आपको याद रह जायें, कुछ भी आप भूलें न...। आपको पता है--कितनी घटती हैं? हिसाब मनोवैज्ञानिक लगाते हैं, तो कम से कम एक आदमी की इन्द्रियों पर दस लाख संघात होते हैं--चौबीस घन्टे में--कम से कम। यह भी उस आदमी को जो कुछ ज्यादा न कर रहा हो। ज्यादा करने वाले को तो और ज्यादा होंगे।

दस लाख स्मृतियाँ बनती हैं। अगर वे सब आपको याद रह जायँ, तो दूसरे दिन पता भी न चलेगा कि वहाँ आप चले गये। आप पागल हो जायेंगे।

अगर दस लाख याद रह जायँ, तो आपको यह भी याद न रहेगा कि आप कौन हैं। आपकी पत्नी कौन है? आपका घर कहाँ है? पता ठिकाना क्या है--वह सब

गड़बड़ हो जायेगा।

उस दस लाख में से दस भी याद नहीं रह जाती हैं। सब भूल जाते हैं। इसलिये आपकी स्मृति काम कर पाती है। इसलिये आपको पता रहता है कि आप कौन हैं। घर ठिकाना कहाँ है। साँझ दफ्तर से ठीक अपने ही घर पहुँच जाते हैं। फिर नहीं पहुँच सकेंगे घर--जो भी दिनभर में घटा है, वह याद रह जाये तो।

वह जो विस्मरण है, उसके कारण स्मृति काम करती हैं। यह जो विरोध है--अस्तित्व का--इसे समझ लें।

अस्तित्व ध्रुवीयता से, पोलेरिटि से चलता है। यहाँ अगर धन विद्युत चाहिये, तो ऋण विद्युत के बिना नहीं हो सकती। यहाँ अगर पुरुष चाहिये, तो स्त्री के बिना नहीं हो सकता। यहाँ स्त्री चाहिये, तो पुरुष के बिना नहीं हो सकती। यहाँ दिन चाहिये, तो रात होगी। और जन्म चाहिये, तो मौत होगी। यहाँ विपरीत मौजूद रहेगा और विपरीत से ही सारी व्यवस्था है।

चेतना स्मरण कर सकती है, क्योंकि बिस्मरण कर सकती है। यह चेतना का गुण है। यह आपकी चेतना चाहे, तो स्मरण कर सकती है कि कौन है। जिस दिन स्मरण करेगी, उस दिन परमात्मा हो जायेगी। और चाहे तो विस्मरण कर सकती है। जब विस्मरण कर दे, तो संसार का एक साधारण हिस्सा हो जाती है।

केवल बात इतनी है कि आपको कैसे पुनर्-स्मरण आ जाय।

● लेकिन पूछा है एक और मित्र ने कि आखिर यह खेल की परमात्मा को जरूरत क्या है?

यह कोई परमात्मा आपको खेल खिला रहा हैं--ऐसा नहीं है। आप ही खेल रहे हैं। हमारी धारणा में ऐसा बैठा हुआ है कि ऊपर कोई परमात्मा बैठा है, और वह आपको खिला रहा है। ऐसा अगर कोई परमात्मा हो, जो आपको यह खेल खिला रहा है, तो उसकी हालत शैतान से भी बदतर होगी। आपको नाहक सता रहा है।

यह तो ऐसा हुआ, जैसा कि छोटे बच्चे मेंढक को सता रहे हैं; पत्थर मार रहे हैं। क्योंकि वे खेल खेल रहे हैं। और मेंढक की जान जा रही है।

आप नाहक परेशान हो रहे हैं कि कोई परमात्मा ऊपर बैठा हुआ खेल खेल रहा है। वह भी अब तक ऊब गया होता। इतना खेल हो चुका और सार तो कुछ इस खेल में से दिखाई पड़ता नहीं।

नहीं; यह धारणा ही गलत है कि कोई परमात्मा ऊपर बैठा कर आपको खेल खिला रहा है।

'आप परमात्मा'--खेल खेल रहे हैं। यह आपकी मौज है। इसे ठीक से समझ लें और गहरे उतर जाने दें।

यह आपका ही निर्णय है कि आप अज्ञानी रहना चाहते हैं। इसे मैं गौर से कहता हूँ; जोर दे के कहता हूँ, क्योंकि इसके परिणाम हैं।

अगर यह किसी और का निर्णय है कि आप अज्ञानी हैं, तो फिर आप अपने निर्णय से ज्ञानी न हो सकेंगे। अगर कोई परमात्मा आपको अज्ञानी रखे हुए है, तो फिर उसकी ही मरजी होगी, तब आप ज्ञानी हो जायेंगे। अगर कोई जाल आपको --फँसाये--चला रहा है, तो फिर आप बस के बाहर हैं। आप क्या करेंगे?

यह आपका ही निर्णय है कि आप यह खेल खेल रहे हैं।

छोटे बच्चे को आपने खेल खेलते देखा है? लुकने-छिपने का खेल खेलते? खुद की ही आँखें बन्द करके बच्चा खड़ा हो जाता है, ताकि दूसरे छिप जायँ और फिर वह उन्हें खोज सके।

आप खुद ही अपने से छिप रहे हैं और खोज रहे हैं। यह आपकी मौज है। और जिस दिन आप इससे ऊब जायेंगे, खेल खतम करना आपके हाथ में है।

जब तक आप कहते हैं कि मैं खतम तो करना चाहता हूँ, लेकिन खतम होती नहीं है, तब तक समझना कि आप बेईमानी की बात कर रहे हैं।

आज तक ऐसा कभी हुआ नहीं कि किसी ने खतम करना चाहा हो और खेल चला हो। जब व्यक्ति खतम करना चाहता है, उसी वक्त खतम हो जाता है। क्योंकि आपका हो निर्णय खेल का आधार है।

लेकिन आपकी तरकीब ऐसी है कि आप खेलना भी चाहते हैं, और खतम करने का मजा मी लेना चाहते हैं। खेलने का भी मजा; खतम करने का भी मजा। संसार का भी सुख--और परमात्मा का भी आनन्द। संसार का भी धन, और निर्वाण का भी सुख। सब साथ लेना चाहते हैं। इसलिये आप उलझन में हैं।

आप अगर सच में ही समझ गये हैं कि यह जीवन दुःख है, पीड़ा है, संताप है, नरक है, तो आप भीतर की तरफ लौटना शुरू हो ही जायेंगे। कोई आपको रोक न सकेगा।

बुद्ध घर से गये। उनका सारथि उन्हें छोड़ने गया था। सारथि बड़ा दुःखी हो रहा था कि बुद्ध भी कैसा नासमझ है! कैसा नासमझ लड़का हुआ शुद्धोदन को। लोग जन्मों तक तड़पते हैं, तब कहीं ऐसे सम्राट् के घर में जीवन मिलता है। ऐसे सुन्दर महल, ऐसी सुन्दर पत्नी, ऐसा सारा साज-सामान सारा वैभव छोड़ कर यह नासमझ लड़का भागा जा रहा है।

आखिरी जब बुद्ध उतरने लगे, और उन्होंने कहा कि अब रथ को तू वापस ले जा, तो उस बूढ़े सारथि ने कहा, 'माना कि तुम मालिक हो, और मैं नौकर।

लेकिन यह क्षण ऐसा है कि चाहे अशिष्टता भले हो जाय, मुझे कुछ कहना चाहिये। तुम यह क्या कर रहे हो? महलों को छोड़कर जा रहे हो? सारी दुनिया महलों की तरफ आ रही है। सब की आकांक्षा यही है कि कैसे महल में पहुँच जायँ। तुम महल छोड़ के जा रहे हो? क्या नासमझी कर रहे हो?'

मुझ बूढ़े की बात पर ध्यान दो। तो बुद्ध ने कहा कि 'जहाँ तुझे महल दिखाई पड़ते हैं, वहाँ मुझे आग की लपटों के सिवाय और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। तो जिनको महल दिखाई पड़ रहा है, वे उस तरफ जा रहे हैं। मैं महलों में रहकर लपटें देखकर उस तरफ से हट रहा हूँ। अगर महल होते, तो मैं भी रुक जाता। लेकिन महल वहाँ हैं नहीं।'

वह बूढ़ा छन्ना रोने लगा; वह वह सारथि रोने लगा। उसकी आँख से आँसू झरने लगे। उसने कहा, 'तुम यह क्या कह रहे हो? मेरी समझ में नहीं आता। तुम किसी भूल में तो नहीं पड़ गये हो? तुम किसी भ्रम में तो नहीं हो?'

बुद्ध ने कहा, 'भ्रम में वे लोग हैं, जो महल की तरफ जा रहे हैं। मैं उस जीवन की खोज के लिये निकला हूँ अब, जिसमें आग की लपटें नहीं हैं। मैं उस शीतल जीवन की खोज में जा रहा हूँ, जहाँ लपट नहीं है।'

मगर हम भी चाहते हैं कि ऐसा शीतल जीवन हो।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं: 'कैसे शान्त हो मन?' लेकिन उनकी सब आकांक्षाएँ अशान्ति की हैं। उनकी सब आकांक्षाएँ, जिनको वे तृप्त करना चाहते हैं, अशान्ति की हैं। और शान्ति भी चाहते हैं! और जिन आकांक्षाओं को परिपोषित करते हैं, उन सब से अशान्ति पैदा होती है। उनकी मनोदशा ऐसी है कि वे चाहते हैं कि अगर शान्ति मिल जाय, तो शान्ति से ये सब मनोवासनाएँ पूरी कर लें। ये कन्ट्राडिक्शन्स हैं। यह नहीं हो सकता।

एक युवक मेरे पास आया। विश्वविद्यालय की किसी बड़ी परीक्षा के लिये तैयारी कर रहा है। उसने मुझे कहा कि 'मन बड़ा अशान्त है। और इसीलिये आपके पास आया हूँ। मुझे धन की, धर्म की, ज्ञान की, मुझे कोई जरूरत नहीं है। मुझे तो सिर्फ...। अभी परीक्षा पास है, और जीवन दाँव पर लगा है; मुझे प्रथम आना है। प्रथम श्रेणी में प्रथम आना है। आप कोई ऐसी तरकीब बता दें कि मेरा मन शान्त हो जाये।'

मैंने कहा, 'शान्ति तू किसलिये चाहता है?' उसने कहा कि 'इसीलिये। अगर शान्त हो जाऊँ, तो प्रथम आने का काम पूरा हो जाय। अशान्ति में तो यह न हो सकेगा।'

उसकी बात तर्कयुक्त है। इतना मन अशान्त है, तो कैसे श्रम करूँ प्रथम आने का। यह अशान्ति ही शक्ति खा रही है। इसलिये शान्ति की तलाश में है। लेकिन

उसे पता नहीं कि वह अशान्त क्यों है? अशान्त इसीलिये है कि प्रथम आना चाहता है। वह जो महत्त्वाकाक्षा है, वही अशान्ति ला रही है। अब बड़ी उपद्रव की बात है।

वह चाहता है शान्ति, ताकि महत्त्वाकांक्षा पूरी हो सके। और महत्त्वाकांक्षा से ही अशान्ति पैदा हो रही है। अन्यथा अशान्ति का कोई कारण नहीं है।

क्या किया जाय इस युवक के लिये? कोई भी शान्ति का रास्ता कारगर नहीं होगा। क्योंकि अशान्ति का बीज तो भीतर गहरे में है, उसी से अशान्ति पैदा हो रही है।

उससे मैंने कहा कि 'शान्ति की तू फिक्र छोड़। तू पहले मुझे यह बता कि अशान्ति क्यों हो रही है? क्योंकि अशान्ति का कारण हट जाय, तो तू शान्त हो जायेगा।'

उसने कहा, 'वह भी मेरी समझ में आता है। आपकी बात भी मेरी समझ में आती है कि अशान्ति का कारण यही है कि मैं प्रथम आना चाहता हूँ। यही उपद्रव है मेरे मन में--कि अगर प्रथम न आया, तो क्या होगा? उसी से पीड़ित हो रहा हूँ। अगर मैं यही वासना छोड़ दूँ--प्रथम आने की--तो और कोई अशान्ति का कारण नहीं है।

तो फिर मैंने कहा, 'तू ठीक से तय कर ले। अगर महत्त्वाकांक्षा चाहिये, तो अशान्त होने की हिम्मत चाहिये। मैं नहीं कहता कि तू महत्त्वाकांक्षा छोड़। फिर अशान्ति को स्वीकार कर ले। यह उसका हिस्सा है। और अगर शान्ति चाहिये, तो महत्त्वाकांक्षा को छोड़। फिर यह साहस कर। वह शान्ति का अनिवार्य हिस्सा है।'

हमारी दुविधा यह है कि हम संसार और परमात्मा में दोनों में जो मिलता हो, दोनों चाहते हैं। अज्ञान में जो फायदा हो, वह भी चाहते हैं, और ज्ञान में जो फायदा हो, वह भी चाहते हैं। वे दोनों फायदे विपरीत हैं। एक होगा, तो दूसरा डूब जायेगा। दूसरा होगा, तो पहला डूब जायेगा। दोनों साथ नहीं हो सकते हैं।

हम पूरब पश्चिम दोनों तरफ साथ-साथ चलने की कोशिश कर रहे हैं। इसलिये हम कहीं भी नहीं चल पाते। हम बीच में फँस गये हैं। एक टाँग पूरब चली गयी है; एक टाँग पश्चिम चली गई है। हम बीच में अटके हैं और परेशान हो रहे हैं। और हम एक टाँग न पूरब से वापस खींचते हैं, न पश्चिम से वापस खींचते हैं। और हमारा इरादा यह है कि हम दोनों नाव पर सवार होकर पहुँच जायेंगे दोनों किनारे पर। डूबेंगे बुरी तरह। यह दो नावों पर सवार आदमी डूबेगा ही। और इसका डूबना बड़ा नारकीय होगा। मगर आपको दिखाई नहीं पड़ता कि आप कैसे दो नावों पर सवार हैं। इधर धन की दौड़ लगी हुई है, उधर शान्ति की भी तलाश है।

●एक मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं: धन पर पकड़ छोड़ दो। धन पर पकड़ अगर छोड़ दें, तो फिर क्या हो? अगर धन की पकड़ छोड़ दें, तो संसार में

कैसे चलेगा ?'

मैंने कहा है कि धन की पकड़ छोड़ दो; वे कहते हैं : धन के बिना कैसे चलेगा? मैंने नहीं कहा कि धन के बिना चलाओ ।

धन की जरूरत एक बात है; धन की पकड़ दूसरी बात है । धन की जरूरत तो पूरी हो जाती है; धन की पकड़ कभी पूरी नहीं होती । धन को जितना पकड़ा, उतनी पकड़ बढ़ती जाती है । धन की जरूरत तो पूरी हो सकती है । जरूरतें सब पूरी हो जाती हैं, पागलपन कोई पूरा नहीं हो सकता ।

अमेरिका का अरबपति एन्ड्रू कारनेगी मरा । उसके पास दस अरब रुपये थे। मरते वक्त वह यह कह के मरा है कि मैं असंतुष्ट मर रहा हूँ, क्योंकि मेरे इरादे सौ अरब रुपये छोड़ने के थे । दस अरब केवल !' जैसे दस नये पैसे--वैसा दस अरब--केवल !

दस अरब रुपये पास में हों, तो भी पकड़ पूरी नहीं होती । एन्ड्रू कारनेगी करेगा क्या दस अरब का ? कोई उपयोग नहीं है । उपयोग का समय तो बहुत पहले समाप्त हो गया । जो भी मिल सकता था रुपये से, वह बहुत पहले मिल चुका। अब दस अरब रुपये से कुछ भी नहीं पाया जा सकता । लेकिन अभी भी दौड़ पूरी नहीं हुई, पकड़ पूरी नहीं हुई ।

धन की जरूरत एक बात है; धन की पकड़ दूसरी बात है । धन की पकड़ है पागलपन ।

तो मैं नहीं कहता कि आप धन की पकड़ छोड़ दें । मैं तो तभी कहता हूँ, जब आप कहते हैं : शान्ति चाहिये, आनन्द चाहिये, परमात्मा चाहिये--तभी कहता हूँ। नहीं तो मैं नहीं कहता कि छोड़िये । मैं कहता हूँ : फिर जोर से पकड़िये । आपकी मौज है । कौन आपसे छीन रहा है ! और आप दुःख चाहते हैं, तो मैं कौन हूँ कि आपसे कहूँ कि दुःख मत चाहिये । मजे से चाहिये । आपको वही पसंद है । लेकिन फिर दूसरी बात मत पूछिये ।

लेकिन हम बड़े उलटे हैं । यह उलझन ही हमारी जटिलता है । इसलिये रास्ता सब गड़बड़ हो जाता है ।

आप धन में आनंद पाते हैं, मजे से पकड़ते चले जाइये । अगर दुःख पाते हैं, तो पकड़ छोड़िये । और ये दोहरी बातें एक साथ पूरी करने की कोशिश मत करिये । कि एक हाथ में धन को भी पकड़े रखेंगे और दूसरे हाथ में परमात्मा को पकड़ लेंगे ! ये दोनों बातें आप से नहीं हो सकेंगी, क्योंकि ये कभी किसी से नहीं हो सकीं ।

इसका यह मतलब नहीं है कि आप घर-द्वार छोड़ कर भाग जाइये । धन की

जरूरत है । लेकिन एक बड़े मजे की बात है कि धन की जरूरत भी वही आदमी पूरा कर पाता है, जिस की धन पर पकड़ नहीं होती । नहीं तो आप सैकड़ों अमीर आदमियों को देखिये, उनसे गरीब आदमी खोजना मुश्किल है। धन पर उनकी इतनी पकड़ है कि वे खर्च भी नहीं कर पाते । धन का जो उपयोग है, वह भी नहीं कर पाते। कंजूस आपको दिखाई पड़ते हैं कि नहीं ?

मैं एक कंजूस को जानता हूँ । वे बीमार थे; मेरे घर के सामने रहते थे; रिटायर्ड डॉक्टर थे । अकेले थे--न पत्नी, न बच्चा । शादी उन्होंने कभी की नहीं। कंजूस को शादी करनी नहीं चाहिये । वह महँगा खर्चा है । औरतें खर्चीली हैं। शादी उन्होंने की नहीं, उन्होंने मुझसे कहा कि शादी मैंने इसीलिये नहीं की--कि औरतें फिजूल-खर्ची हैं ।

किराया आता था; दो बड़े बंगले थे; रिटायर हुये थे मिलिटरी से; डॉक्टर थे, तो काफी पैसे इकट्ठे हैं ।

एक दिन अचानक उसका पड़ोसी मेरे पास आया और कहा कि डॉक्टर बहुत बीमार हैं, आप जरा चलें । मैं गया, तो उनका जबड़ा बंद था । वे बेहोश हालत में थे । मैंने पूछा कि 'क्या गड़बड़ हैं ? फोन करके मैं डॉक्टर को बुला लूँ ?'

तो पता है आपको, उस डॉक्टर ने--मरते हुये डॉक्टर ने मुझे क्या कहा ? उसने हाथ से इशारा किया कि रुपये ? रुपये मेरे पास नहीं हैं । रुपये कौन देगा ?'

मुँह बन्द हो गया है; आँखें खुली थीं, लेकिन हाथ से इशारा किया कि रुपये कौन देगा ? मैंने कहा, 'रुपये का कोई इन्तजाम करेंगे । तुम फिक्र मत करो ।'

डॉक्टर को बुलाया । डॉक्टरने कहा तत्क्षण अस्पताल ले जाना पड़ेगा : यहाँ ठीक होनेवाला मामला नहीं है । तो उस मरते हुये डॉक्टर ने मुझसे कहा कि 'पहले ताले में चाबी लगा के मकान की चाबी मुझे दो ।' जब चाबी उसको दे दी, तब वह एम्बुलेन्स में सवार हुआ । एम्बुलेन्स में बिठा के अस्पताल पहुँचाया गया । दो घन्टे बाद वे मर गये । मरने के बाद उनके कुर्ते के भीतर, पाँच हजार रुपये निकले । वे अपने पास ही रखे हुये थे, और डॉक्टर की पाँच रुपये फीस देने के लिये उसने कहा कि... ! इसको कहता हूँ--पकड़ ।

अकसर अमीर आदमी गरीब मर जाते हैं । अमीर होना जरा कठिन है । अमीर होना धन से सम्बधित कम है । धन की पकड़ न हो तो आदमी अमीर होता है ।

दो तरह के गरीब हैं दुनिया में । एक--जिनके पास धन नहीं है; एक--जिनके पास धन की पकड़ है । दो तरह के गरीब लोग हैं दुनिया में । अमीर आदमी बहुत मुश्किल है पाना ।

धन का उपयोग भी आप तभी कर पाते हैं, जब पकड़ न हो ।

तो मैं नहीं कहता कि आप धन का उपयोग न करें। पकड़ मत रखें। धन साधन हो--साध्य न बन जाय। और आप धन के नौकर-चाकर न रह जायँ—कि उसी की हिफाजत कर रहे है; पहरा दे रहे हैं, इकट्ठा कर रहे हैं और मर जायें। और हम मर रहे हैं। इसके सिवा आपका काम क्या है?

लेकिन एक बात खयाल रख लें कि जिस दिशा में चलें, उस दिशा की तकलीफों को भी स्वीकार करें।

हर दिशा की तकलीफ है। हर दिशा का आनन्द है। दोनों आपको स्वीकार करने होंगे। इनमें से आप चाहें कि एक को बचा लें, और दूसरे को छोड़ दें, तो आप जीवन के विज्ञान को नहीं समझते हैं।

● एक और मित्र ने पूछा है कि यदि मनुष्य को अपनी सारी इच्छायें ही छोड़नी हैं, तो फिर जीवन का लक्ष्य क्या है?

शायद उनका खयाल हो कि इच्छाओं को पूरा करना ही जीवन का लक्ष्य है।

इच्छाएँ तो पूरी होती नहीं। कोई इच्छा पूरी नहीं होती। एक इच्छा पूरी होती है, तो दस को पैदा कर जाती है। अब तक किसी ने भी नहीं कहा है कि कोई इच्छा पूरी हो गई है। पूरे होने के पहले ही नयी संतति पैदा हो जाती है और शृंखला शुरू हो जाती है।

जीवन का लक्ष्य इच्छाओं को पूरा करना नहीं है। जीवन का लक्ष्य इच्छाओं के बीच से इच्छारहितता को उपलब्ध हो जाना है। जीवन का लक्ष्य इच्छाओं से गुजर के इच्छाओं के पार उठ जाना है। क्योंकि जैसे ही कोई व्यक्ति सभी इच्छाओं के पार उठ जाता है, वैसे ही उसे पता चलता है कि जीवन की परम धन्यता इच्छाओं में नहीं थी। इच्छाओं से तो तनाव पैदा होता था, खिंचाव पैदा होता था। इच्छाओं से तो मन दौड़ता था, थकता था, गिरता था, परेशान होता था।

इच्छा-शून्यता से प्राणों का मिलन अस्तित्व से हो जाता है। क्योंकि कोई दौड़ नहीं रह जाती--कोई भागदौड़ नहीं रह जाती। जैसे झील शान्त हो जाय और कोई लहरें न हों। तो उस शान्त झील में जैसे चाँद का प्रतिबिम्ब बन जाय, ऐसा ही जब इच्छाओं की कोई लहर नहीं होती, और हृदय शान्त झील हो जाता है, तो जीवन का जो परम रहस्य है, उसका प्रतिबिम्ब बनने लगता है। आप दर्पण हो जाते हैं। और जीवन का रहस्य आपके सामने खुल जाता है

इच्छाओं के माध्यम से इच्छा-शून्यता को उपलब्ध करना जीवन का लक्ष्य है।

लेकिन मैं कह रहा हूँ: इच्छाओं के माध्यम से--तो आप जल्दबाजी भी मत करना। परिपक्वता जरूरी है। इच्छाओं को पकने देना। और इच्छाओं से पूरे हृदयपूर्वक गुजरना, ताकि इच्छाओं का रहस्य समझ में आ जाय; उनकी व्यर्थता

भी समझ में आ जाय; इच्छाओं की मूढता भी समझ में आ जाय।

लेकिन एक बड़ी कठिनाई हो गई है। हम सब अधकचरे हो गये हैं। अधकचरे हो जाने का कारण यह है, कि इसके पहले कि हमें किसी चीज का खुद अनुभव हो, दूसरों का अनुभव और दूसरे के वचन हमें कंठस्थ हो जाते हैं।

सुन लिया हमने कि इच्छाओं से मुक्त होना है। और हमने मान भी लिया, कि इच्छाओं से मुक्त होना है। और अभी इच्छाओं की पीड़ा हमने अनुभव नहीं की, तो हम इच्छाओं में पूरे उतर भी नहीं सकते, क्योंकि यह शिक्षा पीछे से खींचती है कि 'कहाँ जा रहे हो पाप में? इच्छाओं से तो बचना है।' और यह शिक्षा कारगर भी नहीं होती, क्योंकि इच्छाओं से बचने का अनुभव हमारा अभी पैदा नहीं हुआ। बुद्ध को हुआ होगा। महावीर को हुआ होगा। हमको नहीं हुआ। उनका अनुभव हमारे क्या काम आयेगा?

मुझे अनुभव होना चाहिये कि आग जलाती है। आप कहते हैं: आग जलाती है। मुझे कोई अनुभव नहीं है। तो मेरा हाथ खिंचता है आग की तरफ, क्योंकि मुझे लगता है: कितने प्यारे फूल खिल रहे हैं आग में, उन्हें पकड़ लूँ। इन फूलों को सम्हाल लूँ। इन फूलों को अपनी तिजोड़ी में बन्द कर दूँ।

ये--प्यारे फूल--मुझे लग रहे हैं, मैंने दूर से इनको देखा है। लेकिन जब मैं हाथ बढ़ाने लगता हूँ, तो आपकी शिक्षा याद आती है कि हाथ मत बढ़ाना। जल जाओगे। हाथ जल जायेगा। आग जलाती है। ये शिक्षा मेरे हाथ को वहाँ तक भी नहीं पहुँचने देती, जहाँ मैं जल जाऊँ और यह शिक्षा मेरा अनुभव भी नहीं बनती। इसलिये हाथ बढ़ता ही रहता है और आग तक पहुँचता भी नहीं। बढ़ता भी है-- पहुँचता भी नहीं है। ऐसे हम बीच में अटक जाते हैं।

आपके सब अनुभव झूठे हो जाते हैं।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं: 'हमें पता है कि क्रोध बुरा है, फिर भी क्रोध होता है।' यह हो नहीं सकता। अगर पता हो जाय कि क्रोध बुरा है, तो क्रोध हो नहीं सकता। आपको पता ही नहीं। सुना है। लोग कहते हैं: क्रोध बुरा है। लोग कहते हैं, वह आपने सुन लिया है। उनका कहना आपका ज्ञान नहीं है। आपको ही ज्ञान करना पड़ेगा।

तो मैं तो कहता हूँ: ठीक से क्रोध करो, ताकि जल जाओ। और एक दफा ठीक से जल जाओ, तो दुबारा उस तरफ हाथ नहीं जायेगा।

लेकिन आप ठीक से क्रोध भी नहीं करते हैं और जो आदमी ठीक से क्रोध नहीं किया है, वह ठीक से शान्त नहीं हो सकता। उसकी शान्ति में भी क्रोध की वासना छिपी रहेगी।

लोग कहते हैं : ब्रह्मचर्य। और आपका मन खिंचता है काम-वासना की तरफ। और जब काम-वासना की तरफ जाने लगते हैं, तब सब ब्रह्मचारियों की शिक्षा याद आती है। तो मन में लगता है : 'यह क्या पाप कर रहा हूँ?' इस लगने के कारण कि 'क्या पाप कर रहा हूँ,' पाप भी ठीक से नहीं कर पाते। पाप का अनुभव भी नहीं हो पाता। अधकचरा रह जाता है सब।

पाप में जाते भी हैं, कर भी नहीं पाते। कोई पीछे खींचता रहता है। पीछे खिच भी नहीं सकते पूरे, क्योंकि पाप का जब तक परिपक्व अनुभव न हो जाय, तब तक आप खिच भी नहीं सकते, हट भी नहीं सकते। स्वानुभव के अतिरिक्त कोई भी जीवन-क्रान्ति नहीं है।

ठीक कहा होगा, जिन्होंने ब्रह्मचर्य को जाना है। ठीक कहा होगा। और जिस दिन आप जानेंगे, आप भी कहेंगे : ब्रह्मचर्य अमृत है। और भी लोगों को समझायेंगे कि कहाँ उलझ रहे हो? स्वभावतः ...।

जब बाप अपने बेटे को देखता है--आग की तरफ जाते तो कहता है : 'ठहर, आग मत छू लेना। जल जायेगा।' वह ठीक ही कहता है। गलत तो कहता नहीं। लेकिन इस बेटे को अनुभव होने दें। बाप समझदार हो, तो बेटे को पकड़ेगा, आग के पास ले जायेगा, और कहेगा : थोड़ा हाथ बढ़ा, आग में डाल। फिर इस बेटे को किसी शास्त्र की जरूरत न रहेगी। फिर यह बेटा खुद ही उचक के खड़ा हो जायेगा, और बाप से कहेगा : 'यह क्या करते हैं? हाथ जला दिया!'

अब यह बेटा कभी आग के पास न जायेगा।

जो होशियार बाप है, वह अपने ज्ञान को बेटे को नहीं देता; अपने ज्ञान के आधार पर बेटे को अनुभव का मौका देता है। इसे ठीक से समझ लें। इसमें फर्क है।

जो सद्गुरु है, वह आपको ज्ञान नहीं देता। वह आपको अनुभव की सुविधा जुटाता है--सिर्फ सुविधा जुटाता है। ज्ञान तो आपको अपना ही होगा। वह केवल अनुभव की सुविधा जुटाता है--जहाँ आपको अनुभव हो जाय।

गुरजिएफ के पास लोग जाते थे--पश्चिम का एक बहुत कीमती गुरु। तो गुरजिएफ उनको कहता था : तुम अभी शान्ति की फिक्र छोड़ो; ठीक से क्रोध कर लो। अधूरा क्रोध तुम्हें कभी शान्त न होने देगा। तो वह कहता था, 'तुम जितना क्रोध कर सकते हो, पहले कर लो। तो तीन महीने तुम्हें क्रोध की साधना के लिये। इस वक्त तुम्हें जो भी मौका मिले, तुम चूकना मत। और जो भी मौका मिले, तलाश में रहना। और जितना क्रोध कर सको, आग जितनी निकाल सको, जहर जितनी फेंक सको--फेंकना।'

तीन महीने भी बहुत हो जाते। तीन सप्ताह में यह साधक आ कर कहता कि

मैं थक गया बुरी तरह। और क्या मूढता आप मुझसे करवा रहे हैं!

आपको पता है : अगर जान कर आप क्रोध करेंगे, तो बहुत जल्दी पता चलने लगेगा कि यह मूढता है। लेकिन गुरजिएफ कहता है : 'अभी जल्दी है। अभी तुम कच्चे हो। अभी तीन ही सप्ताह हुए। लोग जन्मों-जन्मों से क्रोध कर रहे हैं, अभी तक नहीं पके। तुम जरा रुको। तुम तीन महीने चलने ही दो।' और गुरजिएफ दिये जाता धक्का। धीरे-धीरे साधक को मौका ही न मिलता।

एक महीने अगर आपने तलाश की, तो मौके मिलने कठिन हो जायेंगे--कि अब कहाँ क्रोध करें। और जब खुद आप कर रहे हों, तो आपको खुद ही लगता है कि फिर अब यह मूर्खता करने जा रहे हैं! और इसमें कुछ सार नहीं है--सिवाय दुःख के, पीड़ा के, परेशानी के। जहर फैलता है। खुद की हानि होती है और किसी को कोई लाभ होता नहीं।

तो फिर गुरजिएफ इंतजाम करता--किसी को कहता कि इस आदमी का अच्छी तरह अपमान करो। ऐसे मौके पर अपमान करो कि यह भूल ही जाय और आ जाय क्रोध में। वह इस तरह की डिव्हाइस रचता, इस तरह के उपाय करता जिनमें आदमियों से परेशान करवाता। अगर फिर भी वह आदमी परेशान न होता, तो ...। दो महीने बीत गये, अब उपाय भी काम नहीं करते, तो गुरजिएफ शराब पिलाता, कि शायद शराब पी के नशे में दबा हुआ कुछ निकल आये। शराब पिलाता, रात आधी रात तक शराब पिलाए चला जाता, फिर उपद्रव खड़े करवाता। जब तक सब उपाय से क्रोध को पूरा अनुभव न करवा देता, तब तक वह शान्ति का उपाय न बताता। और फिर शान्ति का उपाय बड़ा सरल है।

जिसका क्रोध से उपद्रव छूट गया, उनको शान्त होने के लिये उपाय नहीं करना पड़ता है। वह शान्त हो जाता है।

जीवन के अनुभव से बचिए मत; उतरिये--और जल्दी भी मत करिये; कोई जल्दी है भी नहीं। बहुत समय है जीवन के पास।

एक ही नुकसान है समय का--अधकचरे अनुभव आपको कहीं भी न ले जायेंगे। अगर मोक्ष चाहिये, तो संसार का परिपक्व अनुभव जरूरी है। और जल्द-बाजी परमात्मा बिलकुल पसंद नहीं करता। और आधे पके फल उसके राज्य में स्वीकृत नहीं हैं। वहाँ पूरा पका फल होना चाहिये।

● आखिरी प्रश्न : एक मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि अगर कोई व्यक्ति अपने को सब भाँति परमात्मा में छोड़ दे, लीन कर दे, स्वीकार कर ले उसे, तो उसे परमात्मा मिल जाता है। क्या इसी तरह संसार की चीजें भी मिल सकती हैं?

भूल के ऐसा मत करना; कुछ न मिलेगा।

संसार की चीजों को पाने के लिये उपाय करना जरूरी है; श्रम करना जरूरी है, चेष्टा करनी जरूरी है; अशान्त होना जरूरी है, पागल होना जरूरी है। तो जो जितना पागल है, संसार में, उतना सफल होता है।

अभी एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक ने एक वक्तव्य दिया है। और उसमें कहा है कि दुनिया के जितने बड़े राजनेता हैं, इन सबका मानसिक अगर परीक्षण किया जाये, तो ये विक्षिप्त पाये जायेंगे, क्योंकि उनकी सफलता हो ही नहीं सकती, अगर ये बिलकुल पागल न हों।

उस मनोवैज्ञानिक ने कहा है कि इंग्लैंड के बड़े राजनीतिज्ञ विन्सटन चर्चिल को किसी ज्योतिषी ने बचपन में बता दिया और फिर उसे यह वहम बैठ गया कि वह पैंतालीस साल से ज्यादा नहीं जीयेगा। जिस दिन से उसको यह खयाल आ गया कि पैंतालीस साल में मेरी मौत है, उस दिन से वह पागल की तरह कॉम्पिटीशन में उतर गया--प्रतिस्पर्धा में। दूसरे लोग, जिनको सत्तर अस्सी साल कम से कम खयाल था जीने का, वे धीरे-धीरे चल रहे थे। विन्सटन चर्चिल को तो तीस साल कम थे, उसको जल्दी चलना जरूरी था। वह बिलकुल पागल की तरह चलने लगा।

उस मनोवैज्ञानिक ने कहा है कि विन्सटन चर्चिल की सफलता का कुल कारण इतना था कि उसको यह खवाल आ गया था कि मेरे पास तीस साल कम हैं। इसलिये मुझे बिलकुल पूरी ताकत लगा के पागल हो जाना चाहिये।

अभी हिटलर, विन्सटन चर्चिल, स्टैलिन--इनके मनों के अध्ययन जो प्रकाशित हो रहे हैं, उनसे पता चलता है कि ये सब विक्षिप्त हैं। लेकिन ये ही विक्षिप्त हैं, ऐसा नहीं; दुनिया के सभी राजनीतिज्ञ सफल अगर हो सकते, तो उनको विक्षिप्त होना जरूरी है। विक्षिप्त का मतलब है कि उन्हें, वह कर रहे हैं, उसके पीछे बिलकुल पागल होना जरूरी है। उसमें समझदारी की जरूरत नहीं है। उसमें अन्धी-दौड़ की जरूरत है।

जो लोग बहुत धन इकट्ठा कर लेते हैं, उनको भी पागल होना जरूरी है। वहाँ रिलेक्जेशन से न चलेगा।

मित्र ने पूछा है कि क्या शान्ति से उपलब्धि हो जायेगी? अगर शान्ति से संसार की उपलब्धि होती, तो फिर कोई अशान्त होता ही नहीं।

यह सारा संसार अशान्त है इसलिये, कि यहाँ की सारी उपलब्धि अशान्ति से होती है। अशान्ति कीमत है--संसार की उपलब्धि करनी हो तो।

इसलिए बुद्धिमान आदमी मैं उसको कहता हूँ .. कि अगर उसे संसार की उपलब्धि करनी है, तो अशान्त होने के लिये तैयार है। फिर वह यह नहीं कहता कि मुझे शान्ति चाहिये।

एक मेरे मित्र हैं; कभी-कभी मिनिस्टर हो जाते हैं; कभी-कभी नहीं रह जाते। जब वे नहीं रह जाते, तब वे मेरे पास आते हैं। साधु-सन्तों के पास जाते ही तब हैं, जब वे मिनिस्टर नहीं रह जाते। भूतपूर्व मिनिस्टरों से ही मिलना होता है--साधु-सन्तों का। जो पद पर होते है, उनसे नहीं होता। और भूतपूर्व इतने हैं मुल्क में कि कोई कमी नहीं है।

वे जब नहीं रह जाते, तो मेरे पास आते हैं। और कहते हैं: 'कोई शान्ति का उपाय?' मैं उनको कहता हूँ: लेकिन शान्ति की तुम्हें जरूरत कहाँ? अगर तुम शान्त हो गये, तो फिर तुम दुबारा मिनिस्टर न हो सकोगे।'

वे कहते हैं कि 'नहीं, कुछ ऐसा बतायें कि शान्त भी हो जाऊँ...। और अभी तो चीफ मिनिस्टर होने की कोशिश है। अशान्ति नहीं चाहता; चीफ मिनिस्टर-शिप चाहता हूँ।'

तो मैं उनको कहता हूँ: 'आप किसी और के पास जायँ, जो आपको धोखा दे सकता हो। मैं धोखा नहीं दे सकता। मैं तो आपको यही कह सकता हूँ कि चीफ मिनिस्टर होना है, तो कुशलता से अशान्त हों, और अशान्ति को स्वीकार करें। वह उसका हिस्सा है।

'रास्ते पर चलता है आदमी, धूल पड़ती है। वह पड़ेगी। उतनी धूल जरूरी है।

'चीफ मिनिस्टर होना है, तो थोड़े ज्यादा अशान्त हों, क्योंकि अभी तो आप सिर्फ मिनिस्टर थे।'

संसार में तो जो भी पाना हो, उसकी कीमत चुकानी पड़ेगी। स्वयं को वेचना पड़ेगा। स्वयं को नष्ट करना पड़ेगा। एक पैसा भी मुफ्त नहीं मिलता है। इतनी ही आत्मा खोती है, तब मिलता है। एक सफलता भी मुफ्त नहीं मिलती, उतना ही अस्तित्व नष्ट होता है, तब मिलती है।

इसलिये जो बहुत सफल हो जाते हैं--बाहर की दुनिया में, भीतर बिलकुल खाली हो जाते हैं। भीतर उनके कुछ भी नहीं होता। हिटलर के पास आत्मा जैसी कोई चीज नहीं बचती। बच नहीं सकती। अगर आत्मा बचाना हो, तो हिटलर जो कर रहा है, वह नहीं हो सकता।

धन की ढेर लगा लेनी हो, तो फिर भीतर दरिद्र होना जरूरी है। भीतर की दरिद्रता आवश्यक है। क्योंकि उसी की कीमत पर मिलता है यह।

संसार में तो श्रम--विश्राम नहीं। संसार में तो अशान्ति--शान्ति नहीं। संसार में तो पुरुषार्थ—भाग्य नहीं। लेकिन परमात्मा को पाने का रास्ता बिलकुल उलटा है। होगा ही। क्योंकि परमात्मा की दिशा त्रिलकुल उलटी है।

संसार में जाते हैं--बाहर की तरफ; परमामा में जाते हैं--भीतर की तरफ।

उलटा हो जायेगा सब।

तो जिन-जिन कामों से संसार में सफलता मिलती है, उन्हीं-उन्हीं कामों में परमात्मा में असफलता मिलती है। इसे ठीक गणित की तरह समझ लें। और जिन कामों से परमात्मा में सहायता मिलती है, उन्हीं कामों से संसार में असफलता नहीं मिलती। नहीं मिल सकती है। नहीं मिलनी चाहिये।

अगर आप परमात्मा को पाने के लिये अशान्त हो रहे हैं, तो फिर आपको परमात्मा न मिलेगा। आप परमात्मा को भी संसार की एक वस्तु की भाँति समझ रहे हैं। इसलिये ज्ञानियों ने कहा है : उसे पाना हो, तो प्रयत्न भी छोड़ देना पड़ता है। उसे पाना हो, तो उसको भी भूल जाना पड़ता है, क्योंकि फिर उसकी भी खटक बनी रहे--कि अभी तक नहीं मिला, अभी तक नहीं मिला, तो उससे भी बेचैनी होती है।

बुद्ध के पास एक युवक आया--सारिपुत्र, फिर बाद में तो महाज्ञानी हुआ। सारिपुत्र जिस दिन आया, उसने बुद्ध से कहा कि 'मुझे भी तुम जैसा होना है।' तो बुद्ध ने कहा : 'यह खयाल छोड़, तो हो सकता है। अगर यह खयाल पकड़ लिया, तो मुसीबत है। क्योंकि मैं जब हुआ--मेरे जैसा, तो मुझे यह बिलकुल खयाल नहीं था--इसलिये हो पाया। तू यह खयाल छोड़ दे, कि तुझे बुद्ध जैसा होना है।'

सारिपुत्र अनेक वर्ष मेहनत किया, लेकिन वह खयाल नहीं छूटता था--कि मुझे बुद्ध जैसा होना है। तो बुद्ध ने उसे एक दिन बुला के कहा कि 'सारिपुत्र, तू सब कर रहा है, सिर्फ एक चीज बाधा डाल रही है। यह वासना कि तुझे मुझ जैसा होना है, यही तुझे मुझ जैसा नहीं होने देती। तू यह वासना छोड़ दे।'

और जिस दिन सारिपुत्र यह वासना भी छोड़ पाया, उसी दिन वह बुद्ध जैसा हो गया।

परमात्मा को पाने के लिये ज्ञानी कहते हैं : प्रयत्न भी ...। शुरू में तो प्रयत्न करना होता है। हमारी आदतें खराब हैं। बिना प्रयत्न के हम कुछ समझ ही नहीं सकते। लेकिन उसे भी छोड़ देना होता है। उसका लक्ष्य भी छोड़ देना होता है। वह न मिले, तो भी इतना ही प्रसन्न होना होता है, जितना कि वह मिल जाय तो। यह महत्त्वाकांक्षा भी छोड़ देनी होती है कि ईश्वर को मैं खोज के रहूँगा। और जिस दिन कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं होती, कोई प्रयत्न नहीं होता, और चित्त बिलकुल शांत और शिथिल होता है...। महत्त्वाकांक्षा नहीं है, तो अशांति होगी कैसे? कोई तनाव नहीं होता, कोई दौड़ नहीं होती, कहीं पहुँचना नहीं है। ऐसी स्वीकृति विश्राम है। ऐसी स्वीकृति में वह उपलब्ध हो जाता है।

संसार को पाना है, तो दौड़िये खूब--पागल हो कर दौड़िये। शराब पी कर दौड़िये। परमात्मा को पाना है, तो दौड़िये ही मत। और सब तरह के नशे, सब तरह की महत्त्वाकांक्षाएँ छोड़ दीजिये।

अगर संसार पाना है, तो जैसा नदी में कोई तैरता है--उलटी धारा की तरफ --वैसे तैरिये। बड़ी ताकत लगानी पड़ेगी, तब भी जरूरी नहीं कि पहुँच जायँ, क्योंकि आप अकेले नहीं तैर रहे हैं। और लोग भी तैर रहे हैं। आप न पहुँच जायँ, इसमें बाधा डाल रहे हैं। और खुद पहुँच जायँ, इसका उपाय कर रहे हैं।

आप अकेले नहीं हैं संसार में। और भी उपद्रव आसपास चल रहा है बड़ा। अगर साढ़े तीन-चार अरब आदमी हैं, तो हर एक आदमी के खिलाफ चार अरब आदमी काम कर रहे हैं। यहाँ पहुँचना इतना आसान भी नहीं है। इसमें जो बिलकुल पागल होगा, जिद्दी होगा, हठी होगा, जो सुनेगा ही नहीं, देखेगा ही नहीं, जो अन्धे की तरह दौड़ा चला जायेगा, वह ही शायद पहुँच पाये।

लेकिन अगर परमात्मा में जाना है, तो तैरने जैसा नहीं है, बहने जैसा है। नदी की धार में अपने को छोड़ दिया। तैरते भी नहीं; हाथ भी नहीं हिलाते; नदी ले चली। श्वास श्वास शांत हो गई, क्योंकि अब कुछ करना नहीं है आपको। नदी सब कर रही है; आप अपने को छोड़ दिये हैं।

परमात्मा की उपलब्धि होती है--बहने में। संसार की उपलब्धि होती है--तैरने में।

अब हम सूत्र को लें।

'तथा जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है और जो स्वयं भी किसी जीव से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है; तथा जो हर्ष और अमर्ष, भय व उद्वेगों से रहित है, वह भक्त मेरे को प्रिय है। और जो पुरुष आकांक्षा से रहित है, तथा बाहर भीतर से शुद्ध है, दक्ष है और जिस काम के लिये आया था, उसको पूरा कर चुका है, एवं पक्षपात से रहित और दुःखों से छूटा हुआ है, वह सर्व आरम्भों का त्यागी मेरा भक्त मेरे को प्रिय है।'

कृष्ण और भी लक्षण बताते हैं, उसके, जो परमात्मा को प्रिय है। अर्थात् जो परमात्मा के निकट होता चला जाता है, समीप होता चला जाता है।

ये गुण समीप लानेवाले गुण हैं। ये गुण परमात्मा की तरफ उन्मुख करनेवाले गुण हैं।

'जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता ...। यह जरा जटिल है। जिसके कारण किसी को कोई अशान्ति पैदा नहीं होती। पर इसे समझना पड़ेगा। क्योंकि ऐसे लोग मिल जायेंगे, जो कहेंगे : हमें कृष्ण के कारण अशान्ति हो रही है। ऐसे लोग मिल जायेंगे, जो कहेंगे : हमें बुद्ध के कारण अशान्ति हो रही है।

ऐसे लोग थे।

बुद्धि की हत्या करना चाहते थे। अब जो बुद्ध की हत्या करना चाहता होगा, निश्चित ही उसे अशान्ति उपलब्ध हो रही है। जिन्होंने जीसस को सूली पर लगाया, उनको परेशानी हो रही थी--तभी। तो क्या जीसस ईश्वर के प्यारे नहीं थे? तब कृष्ण भी दिक्कत में पड़ जायेंगे, क्योंकि कृष्ण से भी लोगों को अशान्ति हो रही है। वे कृष्ण को नष्ट करने के लिये पूरी कोशिश में लगे हैं।

पर यह सूत्र कहता है, 'तथा जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है।' इसका मतलब समझ लें।

जरूरी नही है कि बुद्ध से आप उद्वेग को प्राप्त न हों। बुद्ध के कारण ही जरूरी नहीं है; आपके कारण भी आप उद्वेग को प्राप्त हो सकते हैं। शर्त इतनी है कि बुद्ध अपनी तरफ से आपको उद्विग्न नहीं करते। मगर आप हो सकते हैं। आप अगर अपने ही कारण हो रहे हैं, तो बुद्ध का कोई जुम्मा नहीं है। लेकिन बुद्ध आपको उद्विग्न करने की न तो कोई चेष्टा करते हैं, न उनका कोई रस है। न वे कारण बनाते हैं--अपनी तरफ से।

आप कारण न बनें, किसी के उद्विग्न होने के--यह ध्यान रखना जरूरी है। फिर भी कोई उद्विग्न हो सकता है। क्योंकि उद्विग्न होने में आप अकेले ही भागीदार नहीं होते। होनेवाला भी उतना ही भागीदार होता है।

मेरे एक परिचित हैं। अपने बेटे से वे हमेशा परेशान रहते हैं। तो मैंने उनके बेटे से कहा, 'तेरे पिता जैसा चाहते हैं, तू वैसा ही कर। और कोई खास बात नहीं चाहते हैं। कर दे। इससे तुझे कोई नुकसान होनेवाला नहीं है। उनको शान्ति होगी।' उनके बेटे ने मुझे कहा कि 'आपको पता नहीं है। इससे कोई फर्क ही नहीं पड़ता कि मैं क्या करता हूँ। वे जो कहते हैं, वह भी करूँ, उससे भी उद्विग्न होते हैं।'

मैंने कहा, 'उदाहरण।' तो उसने कहा कि जैसे अगर मैं काफी साफ-सुथरे कपड़े पहनूँ, जो मुझे पसन्द हैं, तो वे चार लोगों के सामने कहेंगे कि, 'देखो, मैंने तो हड्डी तोड़-तोड़ के पैसा कमाया। शाहजादे को देखो! मुफ्त का है। मजा करो। कर लो मजा। जिस दिन मर जाऊँगा, उस दिन भूखे मरोगे।' अगर ऐसा न करो, साफ-सुथरे कपड़े न पहने, तो भी वे खड़े हो के लोगों के सामने कहेंगे कि 'अच्छा! तो क्या मैं मर गया? जब मैं मर जाऊँ, तब इस हालत में घूमना। अभी तो मजा कर लो। यह हालत आयेगी। ज्यादा देर नहीं है। लेकिन अभी से तो यह शक्ल ले कि मत घूमो। मेरे सामने यह शकल ले के मत आओ।'

तो उनके बेटे ने मुझे कहा कि 'बड़ी मुसीबत यह है, कि वे जो कहते हैं, अगर उसको भी मानो, तो भी उद्विग्नता में कोई फर्क नहीं पड़ता।

मतलब यह हुआ कि कोई आदमी उद्विग्न होना ही चाहता है, तो कोई भी बहाना खोज सकता है। आप भी खयाल करना कि जब आप उद्विग्न होते हैं, तो जरूरी नहीं है कि दूसरे ने कारण मौजूद ही किया हो; आप अपने से भी हो सकते हैं।

सुना है मैंने : मुल्ला नसरुद्दीन का मित्र उससे कह रहा था कि 'अच्छी मुसीबत में फँस गया मैं। ऐसी औरत मिल गई कि एक शब्द बोले कि फँसे। कि फिर वह इस तरह की बातें शुरू कर देती है, उस शब्द में से, कि उनका कोई अन्त ही नहीं आता।'

मुल्ला ने कहा, 'यह कुछ भी नहीं है। माइन इज ए सेल्फ स्टार्टर। तुम्हें तो एक शब्द भी बोलना पड़ता है। एक मेरी औरत है! बोलने की जरूरत ही नहीं है और वह शुरू कर देती है! चुप रहना भी खतरनाक है। क्यों चुप हो? जरूर कोई मतलब है।'

खयाल करना : जरूरी नहीं है कि दूसरा कारण उपस्थित कर रहा हो। सौ में निन्यान्नबे मौके पर तो आप कारण की तलाश कर रहे होते हैं। उसके भी कारण हैं।

दफ्तर में हैं; मालिक ने कुछ कह दिया। वहाँ क्रोध प्रकट नहीं कर सकते। मालिक को जवाब देना मुश्किल है। वहाँ जरा महँगा सौदा है। नौकरी पर आ सकती है। मगर पी गये। वह पीया हुआ कहाँ जायेगा? उसको कहीं निकालना पड़ेगा।

आप घर पहुँच के रास्ता खोज रहे हैं—कि पत्नी रोटी जला के ले आये; कि चाय थोड़ी ठंडी ले आये। आपको पता भी नहीं कि आप यह रास्ता देख रहे हैं। ऐसा नहीं कि आप यह सोच रहे हैं। यह अचेतन में है। लेकिन क्रोध की एक मात्रा आपके भीतर खड़ी है। वह रास्ता खोज रही है। वह मालिक की तरफ न बह सकी, क्योंकि वह जरा पहाड़ी की तरफ चढ़ाई थी। इधर पत्नी की तरफ बह सकती है। यह जरा खाई की तरफ उतार है।

आप किसी की तलाश में हैं, जिसकी तरफ आप बह सकें। आप कोई न कोई बहाना खोज लेंगे। और तब पत्नी चौंकेगी। क्योंकि इसी तरह की रोटी उसने कल भी खिलाई थी। तो कल आप नाराज नहीं हुए थे। और यही चाय वह सदा जिन्दगी से पिला रही थी। आज...? उसकी समझ के बाहर है। इसलिये कभी भी कोई किसी का क्रोध समझ नहीं पाता। क्रोध समझ के बाहर है।

जरूरी नहीं कि वह कारण हो। कारण कहीं और हो। न मालूम कहाँ हो। हजार कारण दूसरे रहे हों। सब का इकट्ठा मिल के निकल रहा हो। पत्नी की समझ के बाहर है।

लेकिन पति परमात्मा है, ऐसा पतियों ने समझाया हुआ है। पतियों ने पत्नियों

को समझाया है हजारों साल से कि पति परमात्मा है। यह बेचारी ...! उसकी अपनी सुरक्षा है। क्योंकि दुनिया भर में पिट के आता है पति। अगर घर में भी परमात्मा न हो, तो जीवन अकारण का जा रहा है। कहीं कोई उपाय होना चाहिये, जहाँ वह भी अकड़ के खड़ा हो जाय--कि मैं परमात्मा हूँ। कई लोग उस पर अकड़ते हैं।

तो पत्नी जो है, वह एक रिलीज है; वह एक सुविधा है। मगर औरतें अब उपद्रव खड़ा कर रही हैं दुनिया भर में। वे कहती हैं : अब यह हम न मानेंगे। अब ...। इस मुल्क में तो अभी चलता है।

तो पत्नी भी इकट्ठा कर लेती है। पति पर प्रकट नहीं कर सकती। वह बेटे का रास्ता देखेगी। वह स्कूल से लौट आये। और बेटे को कुछ पता नहीं है। वे मजे से चले आ रहे हैं--खेलते-कूदते। उन्हें पता नहीं है कि घर में क्या उपद्रव तैयार है। घर में घुसते ही माँ टूट पड़ेगी। कोई भी बहाना खोज लेगी। बहाना ऐसा नहीं कि कोई जान के खोज रही है। सब अचेतन है, अनकॉन्शस है। यह कपड़ा कहाँ फट गया? यह स्लेट कैसे टूट गई? यह किताब कैसे फट गई?'

लड़के के समझ में ही नहीं आयेगा, क्योंकि यह तो रोज ही इसी तरह टूटती है और फटती है। पर उसकी समझ के बाहर है कि यह क्या हो रहा है। और वह बिलकुल अनुभव करता है कि अन्याययुक्त है। लेकिन अन्याय की घोषणा--और अन्याय के खिलाफ बगावत कहाँ करने जाय? एक ही रास्ता है कि माँ उसको डाँटे-पीटे, तो वह किताब को और फाड़ डाले, स्लेट तोड़ डाले, या कमरे में जाकर अपनी गुड़िया की टाँग तोड़ दे और चीर-फाड़ के रख दे।

वह जो दफ्तर में पैदा हुआ था--गुड़िया फँसी उसमें। अब गुड़िया को क्या लेना-देना था--आपके बॉस ने क्या कहा था दफतर में--उससे? लेकिन यह हो रहा है चौबीस घन्टे।

इस सूत्र का अर्थ यह नहीं है कि आप शान्त हो जायेंगे, तो आपके कारण कोई अशान्त न होगा। इस सूत्र का अर्थ है कि आप कारण मत बनना। इसका होश रखना कि मैं कारण न बनूँ : और एक बड़े मजे की घटना घटती है।

अगर आप कारण न बनें, तो जब दूसरा आपको जबरदस्ती कारण बना लेता है, तो आप क्रुद्ध नहीं होते, क्योंकि आप जानते हैं कि बेचारा निकाल रहा है। इस बात को, फर्क को समझ लें।

जब आप कारण नहीं बनते किसी की उद्विग्नता का, आप सचेतन रूप से कारण नहीं हैं उद्विग्नता का, और फिर कोई उद्विग्न होता हो, तो आप हँस सकते हैं। और अगर आपको उसमें क्रोध आ जाय, तो समझना कि आप कहीं न कहीं कारण

थे। यही जाँच है--और कोई जाँच नहीं है।

अगर आप घर लौटें और पत्नी आप पर टूट पड़े; सच में ही आप जरा भी उद्विग्नता का कारण नहीं हैं, तो आप हँस सकेंगे। आप रिएक्ट नहीं करेंगे; आप प्रतिक्रिया नहीं करेंगे--कि आप और जोर से उछलने-कूदने लगें और सामान तोड़ने लगें। अगर आप वह करते हैं, तो आप कितना ही कहें कि मैं कारण नहीं हूँ, आप कारण हैं। अगर आप कारण नहीं हैं, तो आप बाहर खड़े रह जायेंगे और हँसेंगे कि यह पत्नी कैसी पागल की तरह काम, कर रही हैं; होश में नहीं है। आपके मन में दया का भाव पैदा होगा। क्रोध का भाव पैदा नहीं होगा--कि बेचारी; कुछ अड़चन है, या किसी ने सताया है, या दिनभर का फिजूल काम--बरतन साफ करना, रोटी बनाना--रोज की बोरियत उससे ऊब गई है। लेकिन आपको क्रोध नहीं आयेगा।

जिस व्यक्ति के भीतर से दूसरों को उद्विग्न करने के कारण समाप्त हो जाते हैं, वह प्रतिक्रिया से, रिएक्शन से मुक्त हो जाता है। वही लक्षण है।

'जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है और जो स्वयं भी किसी जीव से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है।'

दूसरी घटना तभी घटेगी, जब पहली घट गई हो। अगर आप किसी के कारण नहीं बनते हैं, दूसरा आपका कारण बनना भी चाहे, तो भी बन नहीं सकता। और अगर दूसरा कारण बनने में समर्थ है अभी, तो समझना कि अभी पहली बात घटी नहीं है। दूसरा उसका सहज परिणाम है।

जब आप किसी का कारण नहीं हैं, दुःख देने का, तो कोई आपको दुःख देना भी चाहे, तो दे नहीं सकता।

जीसस को सूली पर लटकाया गया, तो भी जीसस ने प्रार्थना की परमात्मा से, कि इन सबको क्षमा कर देना, क्योंकि ये नहीं जानते—ये क्या कर रहे हैं। ये होश में नहीं हैं। ये बेहोश हैं। इसलिये इनको पापी मत समझना और इन्हें क्षमा कर देना।

वही आदमी ऐसी प्रार्थना कर सकता है, जिसको अब कोई फाँसी भी दे, तो भी क्रोध का कारण नहीं पैदा कर सकता। ऐसी घटना घट जाय तो, आप प्रभु के समीप होने लगते हैं।

कृष्ण कहते हैं, 'यह मुझे प्रिय है... ।' 'और जो हर्ष और अमर्ष, भय और उद्वेगों से रहित है, वह मुझे प्रिय है।

'हर्ष और अमर्ष, भय और उद्वेग से रहित . । इसे थोड़ा समझें। थोड़ा बारीक, सूक्ष्म है।

कोई दुःखी होता है, तो आप दुःखी होते हैं। किसी के घर कोई मर गया, तो आपको भी आँसू आ जाते हैं। किसी का घर जल गया, तो आप सान्त्वना, संवेदना प्रकट करने जाते है। लेकिन क्या कभी आपने सोचा कि यह दुःख सच्चा है--या झूठा है? अगर यह सच्चा है, तो इसकी कसौटी एक ही है, कि जब किसी का मकान बड़ा हो रहा हो, तब आप खुश हों। तो ही जलने पर आपको दुःख हो सकता है। और जब कोई जीत रहा हो, तो आप प्रसन्न हों, तो ही उसकी हार से आपको पीड़ा हो सकती है।

कोई गरीब से धनी हो रहा हो, तो क्या आपको हर्ष होता है?--पीड़ा होती है। तो फिर दूसरी बात सन्दिग्ध है--कि कोई अमीर से गरीब हो गया हो, तो आपको दुःख हो। वह सन्दिग्ध है; वह नहीं हो सकता। क्योंकि जीवन का तो गणित है। और उसकी सीधी साफ लकीरें हैं। उस हिसाब में कहीं भूलचूक नहीं है।

इसलिये मनसविद कहते हैं कि आप जब दूसरे के दुःख में दुःख बताते हैं, तो भीतर आपको सुख होता है। यह बड़ी जटिल बात है और हमें लगता है कि उलटी मालूम पड़ती है। हमको लगता है: यह बात ठीक नहीं है।

जब किसी का घर जल जाता है, तो हम सच में ही दुःखी होते हैं--ऐसा हमें लगता है। लेकिन मनोवैज्ञानिक कहते हैं: आपके गहरे में थोड़ा सुख होता है। और वह सुख--कि 'अपना घर नहीं जला। एक। इसका जल गया और जलना ही था। पाप की कमाई है।' सब भीतर है। 'और काफी इतरा रहे थे, रास्ते पर आ गये। देर है उसके न्याय में; अन्धेर नहीं है। यह सब भीतर चल रहा है और ऊपर से सहानुभूति बता रहे हैं। और उस सहानुभूति में ही एक तरह का सुख है कि 'आज इस हालत में आ गये कि सहानुभूति हम दिखा रहे हैं। भगवान् न करें कि कभी हम इस हालत में हों कि कोई हमें सहानुभूति दिखाये।'

आपको पता है: जब कोई आपको सहानुभूति दिखाने आता है, तो अच्छा नहीं लगता। खटकता है--कि 'अच्छा, कोई बात नहीं। किस्मत की बात है। कभी मौका आयेगा, तो हम भी सहानुभूति बताने आयेंगे। ऐसा सदा हमारे यहाँ थोड़ा ही होता रहेगा? सब के घर होगा।'

लेकिन जब आपको कोई सहानुभूति बताता है, तो सच में आपको अच्छा लगता है? अगर आपको अच्छा नहीं लगता, तो निश्चित ही जो बता रहा है, उसको अच्छा लग रहा होगा। उसके अच्छे लगने की वजह से आपको अच्छा नहीं लग रहा है। और आपको अच्छा न लगने की वजह से उसको भी अच्छा लग रहा है। सब जुड़ा है।

दूसरे की खुशी में आप खुश नहीं होते। तो दूसरे के दुःख में भी आपका दुःख

झूठा है। तभी आपका दुःख सच्चा हो सकता है--दूसरे के दुःख में--जब दूसरे की खुशी में आपकी खुशी सच्ची हो। और दूसरे की खुशी में आपको खुशी तभी हो सकती है, जब तुम उतने मिट गये हो कि दूसरा दूसरा मालूम न पड़े। नहीं तो नहीं मालूम हो सकता।

जब तक मैं हूँ, तब तक दूसरे की खुशी में मुझे कैसे खुशी मालूम होगी? उसको मिल गई और मुझे नहीं मिली?

राजनीति में भी दो आदमी चुनाव लड़ते हैं, तो हारा हुआ जाता है--जीते-वाले को धन्यवाद देने, शुभकामना करने। लेकिन उस शुभकामना में कितना अर्थ होगा? और शुभकामना में कितनी पीड़ा होगी! लेकिन खेल के नियम हैं, वे भी पूरे करने पड़ते हैं। इससे ऊपर-ऊपर सब व्यवस्था बनी रहती है; भीतर-भीतर जहर चलता रहता है, ऊपर-ऊपर व्यवस्था बनी रहती है। ऊपये-ऊपर मुसकराहटें लगी रहती हैं, भीतर-भीतर काँटे सरकते रहते हैं, और छुरी चलती रहती है।

दूसरा जब तक दूसरा है, तब तक आप उसके दुःख में दुःखी नहीं हो सकते। दूसरा जब तक दूसरा है, उसके सुख में सुखी नहीं हो सकते। और दूसरा जब दूसरा ही नहीं होगा...। कब नहीं होगा? जब आप नहीं होंगे भीतर—वह भीतर की अस्मिता नहीं होगी--अहंकार नहीं होगा।

लेकिन बड़ी जटिलता है। जब अहंकार ही नहीं होता, तो अपने सुख में भी सुख नहीं होता; अपने दुःख में भी दुःख नहीं होता। और जो व्यक्ति अहंकार-शून्य हो जाता है, वह हर्ष और विषाद के परे हो जाता है--न अपना, न दूसरे का।

लेकिन यह थोड़ा सोचने जैसा है कि बुद्ध जैसा व्यक्ति भी तो दूसरों के दुःख दूर करने की कोशिश करता है!

जापान में एक फकीर हुआ नान-इन। उससे किसी ने पूछा कि 'बुद्ध सब दुःखों के पार हो गये, लेकिन क्या उन्हें दूसरे का दुःख अभी भी छूता है?' बड़ा विचार-णीय है। क्योंकि वे दूसरे के दुःख को दूर करने की कोशिश में तो लगे हैं।

तो नान-इन ने कहा है, 'दूसरे का दुःख उन्हें नहीं छूता। दूसरे का दुःख स्वप्न दिखाई पड़त है--नाइट मेअर।

जैसे कि मैं जाग जाऊँ रात। अपना सपना समाप्त हो गया, मैं जाग गया। और आपको मैं देखता हूँ पड़ोस में। आपके मुँह से फसूकर गिर रहा है, और, छाती जोर से धड़क रही है, और आप कँप रहे हैं, और आँख से आँसू बह रहे हैं, और लगता है: कोई आपकी छाती पर चढ़ा है; कोई आपको सता रहा है। इससे मैं दुःखीनहीं होता। मैं हँस सकता हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि यह सपना है। लेकिन यह सपना मुझे है। आपको असलियत है अभी। और आप पूरी तकलीफ पा रहे हैं और मैं

आपको जगाने की कोशिश भी कर सकता हूँ। इस जगाने का मतलब यह नहीं कि मैं आपके दुःख से दुःखी हो रहा हूँ। इस जगाने का कुल मतलब इतना ही है कि मैं जानता हूँ कि तुम नाहक ही परेशान हो रहे हो, और तुम्हारी परेशानी झूठी है। लेकिन तुम्हारे लिये अभी सच्ची है। क्योंकि तुम सो रहे हो। और तुम जाग जाओ, तो तुम्हारे लिये भी झूठी हो जायेगी।

तो बुद्ध की जो चेष्टा है, या कृष्ण की जो चेष्टा है, वह आपका दुःख दूर करने की नहीं है। दुःखी तो आप हैं नहीं। लेकित दुःख-स्वप्न दूर करने का है।

आप सपना देख रहे हैं--बड़े दुःख का, और बड़े परेशान हो रहे हैं, और बड़ी करवटें ले रहे हैं। यह जो आपकी दशा है, इससे बुद्ध दुःखी नहीं हो रहे हैं। इससे बुद्ध अनुभव कर रहे हैं कि अकारण तुम दुःखी हो रहे हो। और इस दुःख के बाहर आ सकते हो। और जिस भाँति वे बाहर आ गये हैं, वे रास्ता कह रहे हैं कि इस भाँति तुम भी बाहर आ जाओ।

कृष्ण का सूत्र कहता है, 'तथा जो हर्ष और अमर्ष, भय और उद्वेगों से रहित है ...' जिसे न अब कोई हर्ष होता, न जिसे अब कोई अमर्ष होता। न जिसे अब कोई चीज भयभीत करती है। मौत भी नहीं। क्योंकि मौत भी स्वप्न है।

कोई कभी मरता नहीं है। प्रतीत होता है कि हम मरते हैं। जिसकी अंतर दशा में ऐसी प्रतीति होने लगे--कि अब मौत भी घटित नहीं होती है मुझे; मौत भी मेरे आसपास आती है और गुजर जाती है--और मैं अछूता, अस्पर्शित रह जाता हूँ--ऐसा व्यक्ति मुझे प्रिय है।

महावीर ने तो अभय को पहला लक्षण कहा है--कि वही आत्मा को उपलब्ध हो सकेगा, जो अभय को उपलब्ध हो जायेगा।

कृष्ण कहते हैं : जिसका भय नहीं रहा कोई, वह प्रभु को प्रिय है। लेकिन भय क्या है?

एक ही भय है; सब भय की जड़ में एक ही भय है--कि मैं मिट न जाऊँ--कहीं मैं मिट न जाऊँ; मौत कहीं मुझे समाप्त न कर दे; बस, यही भय है--सारे भय के पीछे। फिर बीमारी का हो, दुःख का हो--सब के गहरे में मौत है।

और जब तक कोई व्यक्ति अहंकार के पार नहीं झाँकता, और इन्द्रियों के पीछे नहीं देखता तब तक मौत दिखाई पड़ती ही रहेगी, क्योंकि इन्द्रियों के बाहर जो जगत् है, वहाँ मौत है। जिस संसार को आप आँख से देख रहे हैं, वहाँ मौत है। वहाँ वास्तविकता है मौत की। वहाँ मौत ही ज्यादा वास्तविक है; जीवन तो वहाँ क्षणभंगुर है।

फूल खिला नहीं कि मुरझाना शुरू हो जाता है। बच्चा पैदा नहीं हुआ कि मरना

शुरू हो जाता है। वहाँ सब परिवर्तित हो रहा है। परिवर्तन का अर्थ है कि प्रतिपल मौत घटित हो रही है।

इन्द्रियों का जहाँ अनुभव है, उस अनुभव के जगत् में मृत्यु प्रतिपल घटित हो रही है। वहाँ जीवन--आश्चर्य है। मृत्यु--तथ्य है। वहाँ जीवन संदिग्ध है। इसीलिये तो नास्तिक कहते हैं कि जीवन है ही नहीं; सभी पदार्थ है। क्योंकि मौत इतनी घटित हो रही है कि तुम कहाँ जीवन की बातें लगा रहे हो! यहाँ जीवन सिर्फ सपना है तुम्हारा। यहाँ सब मौत है।

एक लिहाज से उनके कहने में सचाई है। बाहर के जगत् में जीवन का पता भी नहीं चलता। झलक ही मिलती है। वह झलक भी ऐसी लगती है कि शायद सिर्फ मौत को प्रकट करने के लिये आती है। सिर्फ मौत का पता हो जाय, इसलिये जीवन की लकीर कहीं-कहीं झलक में आती है। बाकी चारों तरफ मौत है।

पदार्थ का अर्थ है : मृत्यु, और इन्द्रियों से पदार्थ के अतिरिक्त किसी चीज का पता नहीं चलता। इसलिये भय पकड़ता है। वह जो भीतर अमृत है, जो कभी नहीं मरता, वह भी भयभीत होता है--मौत को चारों तरफ देख के। चारों तरफ घटती मौत--आपको भी वहम पैदा होता है कि मैं भी मरूँगा।

जो व्यक्ति इन्द्रियों के पार भीतर उतरता है, और देखता है, उसे पता चलता है कि यहाँ जो बैठा है, वह मरता ही नहीं। वह कभी मरा नहीं, वह मर नहीं सकता।

यह अमृत का बोध होना जब तक शुरू न हो जाय, तब तक आदमी भयभीत रहेगा। फर्क को समझ लें।

जिनको आप कहते हैं--'निर्भय,' उनसे प्रयोजन नहीं है यहाँ। हम दो तरह के लोगों को जानते हैं। भयभीत--भीरु--कायर; निर्भय--बहादुर। अभय तीसरी बात है। जिसको हम निर्भय कहते हैं, वह भी भयभीत तो होता है, लेकिन भागता नहीं है। भयभीत तो वह भी होता है, लेकिन भागता नहीं। जिसको हम कायर कहते हैं, वह भी भयभीत होता है, लेकिन भागता है।

कायर और बहादुर में इतना फर्क है कि कायर भी भयभीत होता है, बहादुर भी भयभीत होता है। लेकिन कायर भयभीत हो कर खड़ा होता है; बहादुर डटा रहता है। बाकी भयभीत दोनों होते हैं।

अभय का अर्थ है : जो भयभीत नहीं होता। उसको बहादुर भी नहीं कह सकते आप, क्योंकि बहादुरी का भी कोई सवाल नहीं रहा। जब भय ही नहीं, तो बहादुरी क्या? जिसको भय ही नहीं लगता, उसकी बहादुरी का क्या मूल्य है?

अभय--अभय का अर्थ है : अब न बहादुरी रही, न कायरता रही। वे दोनों खो गयीं। इस आदमी को यह पता है कि मृत्यु घटती ही नहीं।

तो कृष्ण कहते हैं : वह भक्त मुझे प्रिय है, जिसे अमृत की थोड़ी झलक मिलने लगी, जो भय के पार होने लगा।

'और जो पुरुष आकांक्षा से रहित है, तथा बाहर भीतर से शुद्ध है। दक्ष है, अर्थात् जिस काम के लिये आया था, उसको पूरा कर चुका है। एवं पक्षपात से रहित और दुःखों से छूटा हुआ है, वह सर्व आरम्भों का त्यागी, मुझे प्रिय है।'

आकांक्षा से रहित है...। जिसने वासनाओं की व्यर्थता को समझ लिया है और अब जो माँग नहीं करता कि मुझे यह चाहिये। जो मिल जाता है, कहता है : बस, यही मेरी चाह है। जो नहीं मिलता, उसकी चिन्ता नहीं है, आकांक्षा भी नहीं है।

हमें तो जो नहीं मिलता, उसका ही खयाल है। जो मिल जाता है, उसको हम भूल जाते हैं। आपको खयाल है?—जो मिल जाता है, उसको आप भूल जाते हैं। जो नहीं मिलता है, उसका खयाल बना रहता है। और जब तक नहीं मिलता है, तभी तक खयाल बना रहता है। जिस कार को आप खरीदना चाहते हैं और जब तक नहीं खरीदा है, तभी तक वह आपके पास है। जिस दिन आप खरीद लेंगे, उसमें बैठ जायेंगे, वह आपके पास नहीं रही; भूल गई। अब दूसरी कारें आपको दिखाई पड़ने लगेंगी, जो दूसरों के पास हैं।

जिस मकान में आप हैं, वह आपको नहीं दिखाई पड़ता। वह भी दूसरों को दिखाई पड़ता है, जो फुटपाथ पर बैठे हैं--उनको दिखाई पड़ता है, कि गजब का मकान है। काश! इसके भीतर होते, तो पता नहीं कैसा आनन्द मिलता! और वे भी कभी नहीं देखते कि भीतर जो रह रहा है, उसकी गति भी तो देखो। उसे कोई आनन्द-वानन्द नहीं मिल रहा है। वह अलग परेशान है; इस मकान में वह रहना ही नहीं चाहता। वह दूसरे किसी और मकान की खोज कर रहा है।

जो नहीं है--उसका हमें खयाल है। जो है—उसे हम भूल जाते हैं। जो नहीं है--उससे दुःख पाते हैं। जो है--उससे कोई सुख नहीं मिलता।

मैंने सुना है : एक आदमी साक-सब्जी वाले की दुकान पर केले खरीद रहा था। और केले वाले से उसने पूछा कि 'कितनी कीमत है?' तो उसने कहा, 'एक रुपया दरजन।' तो उस आदमी ने कहा, 'गजब की लूट कर रहे हो। सामने की दुकान पर आठ आने दरजन मिल रहे हैं--ये ही केले।' तो उस दुकानदार ने कहा, 'बड़ी खुशी से वहीं से खरीद लें।' तो उस आदमी ने कहा, 'लेकिन आज उसके केले खतम हो गये हैं।' तो उस दुकानदार ने कहा कि 'जब मेरे भी खतम हो जाते हैं, तब तो मैं चार आने दरजन बेचता हूँ। मैं तो चार आने दरजन पर ही बेच देता हूँ। वह लूट रहा है। आठ आने दरजन बता रहा है; लूट रहा है।'

मगर इस दुनिया में जो नहीं है, उसका भी काफी मोल-भाव चल रहा है। जो

नहीं है, उस पर जानें लोग अटकाये हुए हैं। अपनी जानें लगाये हुए हैं। और जो है, वह विस्मृत हो जाता है।

आकांक्षा का अर्थ है : जो नहीं है--उसकी खोज है। आकांक्षा-मुक्ति का अर्थ है : जो है--उसमें तृप्ति।

'बाहर भीतर से जो शुद्ध है।'... शुद्ध कौन है--बाहर भीतर से? शुद्ध वही है, जो बाहर भीतर एक-सा है। भीतर कुछ और है, बाहर कुछ और है, वह अशुद्ध है।

शुद्ध का क्या अर्थ होता है? आप कब कहते हैं : पानी शुद्ध है? जब पानी में पानी के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता है, तब आप उसे कहते हैं : पानी शुद्ध है। कब आप कहते हैं : दूध शुद्ध है? जब दूध में सिर्फ दूध होता है और कुछ नहीं होता है। शुद्ध पानी और शुद्ध दूध को भी मिलायें, तो दोनों अशुद्ध हो जाते हैं।

बड़े मजे की बात है। दोनों शुद्ध थे, तो डबल शुद्ध हो जाने चाहिये। लेकिन शुद्ध पानी शुद्ध दूध में मिलाओ; दोनों अशुद्ध हो गये। न पानी शुद्ध रहा, न दूध शुद्ध रहा। बात क्या हो गई? फारेन एलिमेन्ट, जो विजातीय है, वह अशुद्धि पैदा करता है। जब दूध दूध था; सिर्फ दूध था--एकरस; सिर्फ दूध ही दूध था--बाहर भीतर एक-सा ही था, तब शुद्ध था। जब पानी एक-सा ही था, तब वह भी शुद्ध था। अब न पानी पानी रह गया, न दूध दूध रह गया। दो पैदा हो गया, द्वन्द्व खड़ा हो गया।

जब आप भीतर बाहर एक से होते हैं--पानी पानी, दूध दूध।... जो भी हैं, जैसे भी हैं--बुरे हैं, भले हैं, यह सवाल नहीं है। जैसे भी हैं--बाहर भीतर एक से होते हैं, तो आप शुद्ध होते हैं।

और जब बाहर भीतर आप दो तरह के होते हैं, जब आपके भीतर दो आदमी होते हैं, तब वे दोनों ही अशुद्ध हो जाते हैं।

बाहर भीतर की सम-रसता एक-सा-पन शुद्धि है।

कृष्ण कहते हैं : जो बाहर भीतर शुद्ध है, एक जैसा है, वह मुझे प्रिय है। क्योंकि जो बाहर भीतर एक-सा हो जाता है, उसके भीतर द्वन्द्व मिट गया। और जिसके भीतर द्वन्द्व मिट गया, वह तैयार हो गया—निर्द्वन्द्व, अद्वन्द्व को अपने भीतर पहुँचाने के लिये। क्योंकि जैसे हम हैं, उससे ही हमारा मिलन हो सकता है। अगर हम द्वन्द्व में हैं, तो अद्वैत से हमारा मिलन नहीं हो सकता। समान से मिलता है समान। इसलिये भीतर और बाहर एक-सा-पन...।

आप चोर हैं, तो कोई फिक्र न करें। चोर भी परमात्मा को पा सकता है, लेकिन बाहर भीतर एक-सा हो। यही कठिनाई है कि चोर बाहर भीतर एक-सा नहीं हो सकता। नहीं तो चोरी नहीं चलेगी। अगर वह घोषणा कर दे कि मैं चोर हूँ, तो

चोरी तत्क्षण समाप्त हो जायेगी ।

मैंने सुना है : एक सम्राट् अपने कारागृह में गया; उसका जन्मदिन था, और कैदियों को कुछ मिठाई बाँटने गया था। हर कैदी ने कहा कि 'मैं बिलकुल निर्दोष हूँ महाराज! जालसाजी में मुझे फँसा दिया गया। यह अपराध झूठा था, गवाह झूठे थे। यह सब अन्याय हो गया है। मुझे मुक्त करो।' हर कैदी ने यही कहा।

आखिरी कैदी के पास सम्राट् पहुँचा और कहा कि 'तेरा क्या खयाल है? तू भी शुद्ध है? तू भी निर्दोष है क्या?'

उस आदमी ने कहा, कि 'नहीं महाराज, मैं चोर हूँ, और मैंने चोरी की थी, और न्याययुक्त ढंग से मेरा मुकदमा चला। और जिन्होंने गवाही दी, उन्होंने ठीक ही गवाही दी। और अदालत ने जो फैसला किया, वह उचित है। जितना मेरा पाप था, उसके अनुकूल मुझे दंड मिला।'

सम्राट् ने अपने आदमियों को कहा कि 'इस शैतान को फौरन जेलखाने के बाहर करो। थ्यो दिस क्रूक आउट ऑफ द जेल।'

सारे कैदी चिल्लाने लगे कि 'यह क्या अन्याय हो रहा है? यह आदमी अपने मुँह से कह रहा है कि मैं चोर हूँ—और मुझे ठीक ही हुआ कि दंड मिला और हम चिल्ला-चिल्ला के कह रहे हैं कि हम निर्दोष हैं, और इस दोषी को जिसने खुद स्वीकार किया, उसको आप बाहर करते हैं?' तो सम्राट् ने कहा, 'उसका कारण है। अगर इस शैतान को हम बाहर नहीं करते, तो तुम सब निर्दोष आत्माओं को यह खराब कर सकता है।'

जब कोई चोर भी इतना खुला हो जाता है, और सहज कह देता है--भीतर बाहर एक, तो परमात्मा 'आप निर्दोष आत्माओं को' बचाने के लिये उसको तत्काल अलग कर देता है। नहीं तो वह आपको खराब कर दे। ऐसे शैतान को यहाँ नहीं बचने दिया जाता।

आप क्या हैं--यह सवाल नहीं है। अगर आप एक-रस अभिव्तक्त हो जाते हैं--जैसे हैं--तो इस जगत् में आपके लिये फिर कोई जगह नहीं है। फिर परमात्मा के हृदय में ही आपके लिये जगह है।

'दक्ष, जिस काम के लिये आया था, उसे पूरा कर चुका...।' वह जो मैं कह रहा था, उसी काम के लिये प्रत्येक व्यक्ति आया है--कि वासनाओ में उतर के जान ले कि व्यर्थ हैं। आकांक्षा कर के देख ले कि जहर है। संसार में उतर के देख ले कि आग है। इसी काम के लिये प्रत्येक व्यक्ति आया है। और अगर यही काम आप नहीं कर पा रहे हैं, यह अनुभव नहीं कर पा रहे हैं, तो आप दक्ष नहीं हैं। और जो भी दक्ष हो जाता है, वह परमात्मा के लिये प्रिय है।

'पक्षपात से रहित, सब दुःखों से छूटा हुआ, सर्व आरंभों का त्यागी मेरा भक्त मुझे प्रिय है।'

आरंभ का अर्थ है : जहाँ से वासना शुरू होती है। अगर वासना छोड़नी है, तो बीच में नहीं छोड़ी जा सकती; अन्त में नहीं छोड़ी जा सकती; प्रारम्भ में ही छोड़ी जा सकती है।'

आप रास्ते से गुजरे और एक मकान आपको लगा बहुत सुन्दर है। अभी आपको खयाल भी नहीं है कि वासना का कोई जन्म हो रहा है। आप शायद सोच रहे हों, कि आप बड़े सौन्दर्य के पारखी हैं। बड़ा एस्थेटिक आपका बोध है, इसलिये मकान आपको सुन्दर लग रहा है। लेकिन यह आरंभ है।

जो मकान सुन्दर लगा, उसके पीछे थोड़ी ही देर में दूसरी बात भी लगेगी कि कब मेरा हो जाय।

आरंभ हमेशा छिपा हुआ है; पता नहीं चलता। आप कहते हैं : यह स्त्री जा रही है, कितनी सुन्दर है! और आप सोचते होंगे कि चूँकि आप बड़े चित्रकार हैं, बड़े कलाकार हैं इसलिये..। लेकिन जैसे ही आपने कहा : कितनी सुन्दर है, थोड़ी खोज करना, भीतर छिपी है--दूसरी वासना : कैसे मुझे उपलब्ध हो जाये।

यह आरंभ है। अगर इस आरंभ में ही नहीं चेत गये, तो वासना पकड़ लेगी। इसलिये सर्व आरंभ का त्यागी।

जहाँ जहाँ से उपद्रव शुरू होता हो, उस उपद्रव को ही पहचान लेने वाला, और वहीं त्याग कर देने वाला। अगर वहाँ त्याग नहीं हुआ, तो मध्य में त्याग नहीं होने वाला। मध्य से नहीं लौटा जा सकता।

कुछ चीजें हैं, हाथ से तीर की तरह छूट जाती हैं, फिर उनको लौटाना मुश्किल है। जब तक तीर नहीं छूटा है, और प्रत्यन्चा पर सवार है, तब तक चाहें तो आप लौटा ले सकते हैं।

आरंभ का अर्थ है : जहाँ से तीर छूटता है।

सब आरंभ का त्यागी परमात्मा को प्रिय है।

पाँच मिनिट रुकेंगे। कोई बीच से उठे ना। कीर्तन करें और फिर जायँ।

भक्ति और स्त्रैण गुण • वासना का अनुभव • शिष्यत्व
समतावान भक्त • शक्तिपात ध्यान

नौवाँ प्रवचन

क्रॉस मैदान, पारसी कुआँ, बम्बई, संध्या, दिनांक २० मार्च, १९७३
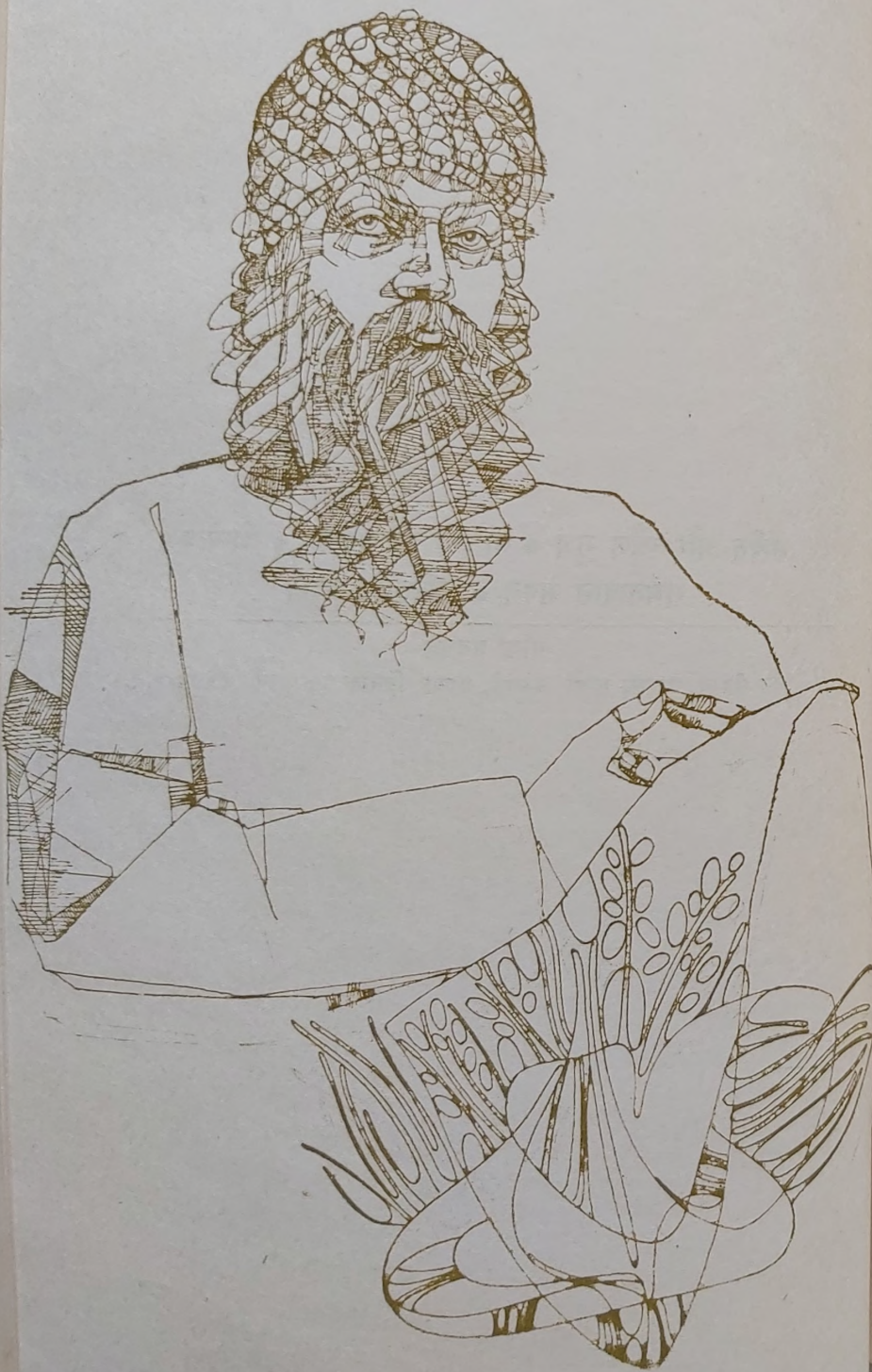
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥ १७ ॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥ १८ ॥

और जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोच करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ अशुभ सम्पूर्ण कर्मों के फल का त्यागी है, वह भक्तियुक्त पुरुष मेरे को प्रिय है।

और जो शत्रु मित्र में और मान अपमान में सम है तथा सर्दी गर्मी और सुख-दुःखादिक द्वन्द्वों में सम है और सब संसार में आसक्ति से रहित है, वह पुरुष मुझे प्रिय है।

पहले कुछ प्रश्न।

• एक मित्र ने पूछा है : परमात्मा के प्रेमी भक्त के बहुत से गुण और लक्षण इस अध्याय में कहे गये हैं, वे सब के सब स्त्रैण गुण वाले हैं। इसका क्या कारण है? और समझायें कि केवल स्त्रैण गुणों पर जोर देने में क्या जीवन का असन्तुलन नहीं है? जीवन के विराट् सन्तुलन में स्त्रैण और पुरुष के गुणों का सम्यक् योगदान का महत्त्व भक्ति-योग के सन्दर्भ में क्या है?

भक्ति का मार्ग स्त्री का मार्ग है। लेकिन उसका यह अर्थ नहीं कि पुरुष उस मार्ग पर नहीं जा सकते हैं। लेकिन पुरुष को भी जाना हो, तो उसके मन में परमात्मा के प्रति प्रेयसी वाली भावदशा चाहिये।

भक्ति के मार्ग पर पुरुष भी स्त्री होकर ही प्रवेश करता है। इसे थोड़ा गहराई में समझ लेना जरूरी है।

पहली बात तो यह समझ लेनी जरूरी है कि न तो कोई स्त्री पूरी स्त्री है और न कोई पुरुष पूरा पुरुष है। दोनों, दोनों में मौजूद हैं। होंगे ही। उसके कारण हैं। क्योंकि चाहे आप पुरुष हों और चाहे आप स्त्री, आपकी बनावट स्त्री और पुरुष दोनों से हुई है। आप अकेले नहीं हो सकते। न तो पुरुष के बिना आप हो सकते हैं और न स्त्री के बिना आप हो सकते हैं। दोनों का दान है आप में। आप दोनों का मिलन हैं। दोनों आपके भीतर मौजूद हैं। आपकी माँ भी मौजूद है--पिता भी।

आप स्त्री और पुरुष दोनों हैं एक साथ। फिर अन्तर क्या है? अन्तर केवल अनुपात का है। जो पुरुष है, वह साठ प्रतिशत पुरुष है--और चालीस प्रतिशत स्त्री है। जो स्त्री है, वह साठ प्रतिशत स्त्री है--चालीस प्रतिशत पुरुष है। यह अनुपात का भेद होगा। लेकिन आप पुरुष हैं, तो आपके भीतर छिपी हुई स्त्री है। और आप स्त्री हैं, तो आपके भीतर छिपा हुआ पुरुष है।

इस सदी के बहुत बड़े विचारक, बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक कार्ल गुस्ताव जुंग ने पश्चिम में इस विचार को पहली दफा स्थापित किया। पूरब में तो यह विचार बहुत पुराना है। हमने अर्ध-नारीश्वर की मूर्ति बनायी। जिसमें शंकर आधे स्त्री हैं

और आधे पुरुष हैं। वह हजारों साल पुरानी हमारी धारणा है। और वह धारणा सच है। लेकिन जुंग ने पहली दफा पश्चिम में इस विचार को बल दिया कि कोई पुरुष पुरुष नहीं, कोई स्त्री स्त्री नहीं है। दोनों दोनों हैं। इसके बहुत गहरे अर्थ हैं।

इसका अर्थ यह हुआ कि अगर आप पुरुष हैं, तो आपको स्त्री के प्रति जो आकर्षण मालूम होता है, वह आकर्षण आपके भीतर छिपी हुई स्त्री के लिये है। और इसलिये दुनिया में आप किसी भी स्त्री से तृप्त न हो पायेंगे, क्योंकि जब तक आपको अपनी भीतर की स्त्री से मिलना न हो जायेगा, तब तक कोई तृप्ति तृप्ति नहीं हो सकती।

और स्त्री हैं अगर आप, तो पुरुष का जो आकर्षण है, और पुरुष की जो तलाश है, वह कोई भी पुरुष आपको संतुष्ट न कर पायेगा। सभी पुरुष असफल हो जायेंगे। क्योंकि जब तक आपके भीतर छिपे हुए पुरुष से आपका मिलन न हो जाय, तब तक वह खोज जारी रहेगी।

असल में हर आदमी अपने भीतर छिपी हुई स्त्री और पुरुष को बाहर खोज रहा है। कभी-कभी किसी व्यक्ति में उसकी झलक मिलती है, तो आप प्रेम में पड़ जाते हैं।

प्रेम का एक ही अर्थ है कि आपके भीतर जो स्त्री छिपी है, उसकी झलक अगर आपको किसी स्त्री में मिल जाती है, तो आप प्रेम में पड़ जाते हैं। इसलिये जब आप प्रेम में पड़ते हैं, तो न तो कोई तर्क होता है, न कोई कारण होता है। आप कहते हैं : बस, मैं प्रेम में पड़ गया। आप कहते हैं : मेरे वश में नहीं है यह बात।

आपके भीतर की स्त्री से जब भी बाहर की किसी स्त्री का कोई भी तालमेल हो जाता है...। लेकिन यह तालमेल ज्यादा देर तक नहीं चल सकता। क्योंकि यह तालमेल पूरा कभी भी नहीं हो सकता।

आपके भीतर जैसी स्त्री पृथ्वी पर कहीं है ही नहीं। वह आपके भीतर ही छिपी है। आपके भीतर जैसा पुरुष पृथ्वी पर कहीं है नहीं। किसी में भनक मिल सकती है थोड़ी। लेकिन जैसे ही आप निकट आयेंगे, भनक टूटने लगेगी। जितना ही निकट आयेंगे, उतना ही डिस-इल्यूजनमेंट, उतना ही भ्रम टूट जायेगा।

इसलिये धन्यभागी वे प्रेमी हैं, जो अपने प्रेयसियों से कभी नहीं मिल पाते, क्योंकि उनका भ्रम बना रहता है। अभागे वे प्रेमी हैं, जिनको उनकी प्रेयसियाँ मिल जाती हैं, क्योंकि भ्रम टूट जाता है।

मिली हुई प्रेयसी ज्यादा देर तक प्रिय नहीं रह जाती। मिला हुआ प्रेमी ज्यादा देर तक प्रिय नहीं रह जाता। क्योंकि भ्रम टूटेगा ही। तालमेल थोड़ा-बहुत हो सकता है, वह भी आभास है।

जुंग कहता है कि जब तक भीतर आपकी स्त्री और आपके पुरुष का अन्तर-

मिलन न हो जाय, तब तक आप अतृप्त रहेंगे और तब तक काम-वासना आपको पकड़े रहेगी। इसको हमने युगनद्ध कहा है। तंत्र की भाषा में भीतर जो स्त्री और पुरुष का मिलन हो जाता है, उसे हमने युगनद्ध कहा है। वह जो मिलन है, उस मिलन के साथ ही आप अद्वैत हो जाते हैं; आप एक हो जाते हैं; दो नहीं रह जाते। और वह जो एक की घटना भीतर घटती है, वही परमात्मा का मिलन है।

अभी आप दो हैं। इसका मनोवैज्ञानिक यह पहलू भी समझ लेना जरूरी है कि जो आप ऊपर होते हैं, उससे विपरीत आप भीतर होते हैं। ऊपर पुरुष--तो भीतर स्त्री। ऊपर स्त्री--तो भीतर पुरुष।

एक और मजेदार घटना मनोवैज्ञानिकों के खयाल में आती है और वह यह कि जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, आप में विपरीत लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

जैसे स्त्रियाँ पचास के करीब पहुँच-पहुँच कर पुरुष जैसी होने लगती हैं। अनेक स्त्रियों को मूंछ के बाल, दाढ़ी के बाल उगने शुरू हो जाते हैं। उनकी आवाज पुरुषों जैसी भर्रायी हो जाती है। उनके गुण पुरुषों जैसे हो जाते हैं। उनका शरीर भी धीरे-धीरे पुरुषों के करीब पहुँचने लगता है।

पचास के बाद पुरुषों में स्त्रैणता आनी शुरू हो जाती है। उनमें गुण स्त्रियों जैसे होने शुरू हो जाते हैं।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि इसका अर्थ यह है कि जो आपके ऊपर-ऊपर था, जिन्दगी भर आपने उसका उपयोग कर के चुका लिया। और जो भीतर दबा था, वह बिना चुका रह गया। इसलिये आप ऊपर से कमजोर हो गये हैं और भीतर की बात प्रकट होनी शुरू हो गयी है।

एक स्त्री पचास साल तक स्त्री के तल पर चुक जाती है, समाप्त हो जाती है। उसने उपयोग कर लिया स्त्री ऊर्जा का और भीतर का पुरुष बिना उपयोग किया हुआ पड़ा है। और जब ऊपर की स्त्री कमजोर हो जाती है, तो भीतर का पुरुष धक्के मारने लगता है और प्रकट होने लगता है।

पुरुष चुक जाता है पचास साल में--अपने पौरुष से। और भीतर की स्त्री अनचुकी, ताजी बनी रहती है। वह प्रकट होनी शुरू हो जाती है।

यह जो पचास साल की उम्र के बाद अन्तर पड़ता है, यह बड़ा जटिल है। और इसके कारण हजारों कठिनाइयाँ पैदा होती हैं। क्योंकि जिन्दगी भर आप पुरुष रहे, तो पुरुष के गुणों की तरह अपने को सजाया, संवारा, सुशिक्षित किया और अचानक आपके भीतर फर्क होता है। नयी दुनिया शुरू होती है। उसकी कोई ट्रेनिंग नहीं, उसका कोई प्रशिक्षण नहीं।

जुंग ने सलाह दी है कि पैंतालीस साल के स्त्री-पुरुषों को हमें फिर से स्कूल

भेजना चाहिये, क्योंकि उनके भीतर एक क्रांतिकारी फर्क हो रहा है, जिसकी उनके पास कोई तैयारी नहीं है। और जिसकी उनके पास तैयारी है, वह व्यर्थ हो रहा है और एक नयी घटना घट रही है। और जब तक हम इस बात को पूरा न कर पायें, जुंग कहता है, लोग ज्यादा मात्रा में विक्षिप्त होते रहेंगे।

पैंतालीस साल की उम्र खतरनाक उम्र है। उसके बाद सारी मानसिक बीमारियाँ शुरू होती हैं। लेकिन पैंतालीस साल की उम्र ही धार्मिक होने की उम्र भी है।

और जुंग ने कहा है कि मेरे पास जितने मरीज आते हैं मन के, उनमें अधिक की उम्र पैंतालीस के ऊपर है या पैंतालीस के करीब है। और उनमें अधिक की बीमारी यही है कि उनके जीवन में धर्म नहीं है, अगर धर्म होता, तो वे पागल न होते।

यह जो कृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं—भक्ति का जो मार्ग--इसमें वे स्त्रैण गुणों की चर्चा कर रहे हैं। और अर्जुन जैसा पुरुष खोजना मुश्किल है। यह विरोधाभासी लगता है।

अर्जुन है क्षत्रिय; पुरुषों में पुरुष। हजारों हजारों साल में वैसा पुरुष होता है। उससे यह स्त्रैण गुणों की बात निश्चित ही प्रश्न उठाती है। लेकिन अगर मेरी बात आपके खयाल में आ गयी, तो उसका मतलब यह है कि अर्जुन का पुरुष तो चुक ही जाने को है। और जीवन के अन्तिम हिस्से में जब अर्जुन का पुरुष चुक जायेगा, तब उसकी स्त्री प्रकट होनी शुरू होगी। वह जो विपरीत दबा पड़ा है, वह बाहर आयेगा। और उस विपरीत से ही धर्म का मार्ग बनेगा। एक।

दूसरी बात यह भी खयाल में ले लेनी जरूरी है कि स्त्रैण होने का आध्यात्मिक अर्थ होता है--ग्राहक होना, रिसेप्टिव होना। पुरुष है आक्रमक, एग्रेसिव, हमलावर। बायोलॉजिकली भी, जैविक व्यवस्था में भी पुरुष हमलावर है। स्त्री ग्राहक है। स्त्री गर्भ है। वह स्वीकार करती है, समा लेती है, आत्मसात कर लेती है। हमला नहीं करती है।

भक्ति का मार्ग ग्राहक होने, स्वीकार करने का मार्ग है। वह स्त्रैण है। वहाँ तो परमात्मा को अपने भीतर स्वीकार करना है—श्रद्धापूर्वक, नत होकर, सिर को झुकाकर उसे अपने भीतर झेल लेना है।

भगवान् के लिये गर्भ बन जाता भक्त। वह पुरुष है या स्त्री—इसका कोई सवाल नहीं। लेकिन जो गर्भ नहीं बन सकता भगवान् के लिये, वह भक्त नहीं बन सकता।

आपको शायद सुनकर हैरानी हो या कभी आपको पता भी हो : एक ऐसा भी भक्तों का सम्प्रदाय हुआ है, जिनमें पुरुष भी स्त्रियों के कपड़े ही पहनते हैं। अब

भी बंगाल में उसकी थोड़ी-सी धारा शेष है। वे स्त्री जैसे ही रहते हैं भक्त। और परमात्मा को अपना पति स्वीकार करते हैं। रात सोते भी हैं, तो परमात्मा की मूर्ति साथ लेकर सोते हैं, जैसे कोई प्रेयसी अपने प्रेमी को साथ लेकर सो रही है।

यह बात हमें बड़ी अजीब-सी लगेगी, क्योंकि हमें इसके भीतर के रहस्य का कोई पता नहीं है। और जिस बात के भीतर के रहस्य का हमें कोई पता न हो, बड़ी अड़चन होती है। राहुल सांकृत्यायन ने, एक बड़े पंडित ने बड़ा विरोध किया है इस बात का कि यह क्या पागलपन है! ये पुरुष स्त्रियाँ बन जायें, यह कैसी बेहूदगी है! यह कैसा नाटक है! और कोई भी ऊपर से देखेगा, तो ऐसा ही लगेगा। लेकिन राहुल सांकृत्यायन को कुछ भी पता नहीं है कि भक्त के भीतर क्या घटित हो रहा है। यह जो उसका स्त्रैण रूप है, ऊपर से, यह तो उनके भीतर की घटना की अभिव्यक्ति मात्र है। वह भीतर से भी स्त्रैण हो रहा है।

और आप जानकर हैरान होंगे : कभी-कभी भक्त इस जगह पहुँच गये हैं, जब कि उनकी भाव की स्त्रैणता इतनी गहरी हो गयी कि उनके शरीर के अंग तक स्त्रैण हो गये।

रामकृष्ण के जीवन में ऐसी घटना घटी। वह अनूठी है। क्योंकि रामकृष्ण एक बड़ा मूल्यवान प्रयोग किये। वह प्रयोग था कि उन्होंने एक मार्ग से तो परमात्मा को जाना। जानने के बाद दूसरे मार्गों से भी चलकर जानने की कोशिश की--कि दूसरे मार्गों से भी वहीं पहुँच जा सकता है या नहीं। तो उन्होंने आठ दस मार्गों का प्रयोग किया। उस में एक यह भक्ति मार्गियों का पंथ भी था, जिसमें स्त्री होकर ही साधना करनी थी।

तो रामकृष्ण छः महीने तक स्त्री के कपड़े ही पहनते थे। स्त्री जैसे ही उठते-बैठते थे। स्त्रैण भाव से ही जीते थे। और एक ही धारणा मन में थी कि मैं प्रेयसी हूँ और परमात्मा प्रेमी है।

बड़ी हैरानी की घटना घटी, जो हजारों लोगों ने देखी है। वह यह कि रामकृष्ण की चाल थोड़े दिन में बदल गयी। वे स्त्रियों जैसा चलने लगे। बहुत कठिन है चलना--स्त्रियों जैसा। क्योंकि स्त्री के शरीर का ढाँचा अलग है। पुरुष के शरीर का ढाँचा अलग है। क्योंकि स्त्री के शरीर में गर्भ है, इसलिये बड़ी खाली जगह है। उस खाली जगह की वजह से उसके पैर और ढंग से घूमते हैं। पुरुष के पैर उस ढंग से नहीं घूम सकते।

लेकिन रामकृष्ण ऐसे चलने लगे, जैसे स्त्रियाँ चलती हैं। यह भी कुछ बड़ी बात न थी। इससे भी बड़ी घटना घटी कि दो महीने के बाद रामकृष्ण के स्तन बढ़ने लगे। यह भी कोई बहुत बड़ी बात न थी, क्योंकि एक उम्र में पुरुषों के स्तन तो

थोड़े बढ़ ही जाते हैं।

जो सबसे चमत्कारी घटना घटी, यह यह कि चार महीने के बाद रामकृष्ण को मासिक-धर्म शुरू हो गया।

यह मनुष्य जाति के इतिहास में घटी थोड़ी-सी मूल्यवान घटनाओं में एक है कि भाव का इतना परिणाम शरीर पर हो सकता है।

इतने अन्तःकरणपूर्वक उन्होंने मान लिया कि मैं तुम्हारी प्रेयसी हूँ और तुम मेरे प्रेमी हो--यह भावना इतनी गहरी हो गयी कि शरीर के रोएँ-रोएँ ने इसका स्वीकार कर लिया और शरीर स्त्रैण हो गया। साधना के छः महीने के बाद भी रामकृष्ण को छः महीने और लग गये--वापस ठीक से पुरुष होने में। ये सारे लक्षण विदा होने में फिर छः महीने और लगे।

भक्त का अर्थ है : प्रेयसी का भाव। इसलिये कृष्ण जो भी गुण, लक्षण बता रहे हैं, वे सब स्त्रैण हैं।

क्या आपने कभी खयाल किया कि दुनिया के सभी धर्मों ने, चाहे वे भक्ति के सम्प्रदाय हों या न हों, जिन गुणों का मूल्य दिया है, वे स्त्रैण हैं। चाहे महावीर उस को अहिंसा कहते हों, चाहे बुद्ध उसको करुणा कहते हों, चाहे जीसस उसको प्रेम कहते हों। ये सब स्त्रैण गुण हैं। स्त्री अगर पूरी तरह प्रकट हो, तो ये गुण उसमें होंगे।

इस विचार के कारण जर्मनी के गहन विचारक फ्रेडरिक नीत्से ने बुद्ध, क्राइस्ट--इन सबको स्त्रैण कहा है। और कहा है कि इन्हीं लोगों ने सारी दुनिया को बरबाद कर दिया। क्योंकि ये जो बातें सिखा रहे हैं, वे लोगों को स्त्रैण बनाने वाली हैं।

नीत्से ने तो विरोध में यह बात कही है कि मनुष्य जाति को स्त्रैण बना दिया--बुद्ध, क्राइस्ट इस तरह के लोगों ने। क्योंकि जो शिक्षाएँ दीं, उसमें पुरुष के गुणों का कोई मूल्य नहीं है। पौरुष का, तेज का, बल का, आक्रमण का, हिंसा का, संघर्ष का, युद्ध का कोई भाव नहीं है। इनने स्त्रैण बना दिया है जगत् को।

उसकी बात में थोड़े दूर तक सच्चाई है। लेकिन वे लोग सच में ही स्त्रैण बनाने में सफल नहीं हो पाये। नहीं तो पृथ्वी स्वर्ग हो जाती।

जीवन में जो भी मूल्यवान है, वह कहीं न कहीं माँ से जुड़ा हुआ है। जीवन में जो भी मूल्यवान है, कीमती है, कोमल है, फूल की तरह है, वह कहीं न कहीं स्त्री से सम्बंधित है।

और पुरुष तो एक बेचैनी है। स्त्री एक समता है।

जरूरी नहीं कि स्त्रियाँ ऐसा न सोच लें कि वे ऐसी हैं। यह तो स्त्री के परम अर्थ की बात है। परम लक्ष्य पर स्त्री अगर हो, तो ऐसा होगा। अभी तो अधिक

स्त्रियाँ भी पुरुष जैसी हैं और वे पूरी कोशिश कर रही हैं कि पुरुष जैसी कैसे हो जायँ। पश्चिम में वे बड़ी लड़ाई लड़ रही हैं कि पुरुष के जैसी कैसे हो जायँ। कपड़े भी पुरुष जैसे पहनने हैं; काम भी पुरुष जैसा करना है। अधिकार भी पुरुष जैसा चाहिये। सब--जो पुरुष कर रहे हैं...। अगर पुरुष सिगरेट पी रहे हैं, तो स्त्रियाँ भी उसी तरह सिगरेट पीना चाहती हैं। क्योंकि यह असमानता खलती है, अखरती है।

तो जो पुरुष कर रहा है, अगर वह गलत भी कर रहा है, तो स्त्री को भी वह करना ही चाहिये।

सारी दुनिया में एक दौड़ है कि स्त्रियाँ भी पुरुष जैसी कैसे हो जायँ। इसलिये स्त्रियाँ यह न सोचें कि जो मैं कह रहा हूँ, वह उनके बाबत लागू है। वे सिर्फ यह सोचें कि अगर उनकी स्त्रैणता पूरे रूप में प्रकट हो, तो जो मैं कह रहा हूँ, वह सही होगा।

स्त्री अगर पूरे रूप में प्रकट हो...। और स्त्री पूरे रूप में प्रकट हो सकती है। और जब पुरुष भी पूरे रूप में प्रकट होता है, तो स्त्री जैसा हो जाता है। इसके कारण बहुत हैं।

पहले तो बायोलॉजिकली समझने की कोशिश करें।

जीवशास्त्री कहते हैं कि स्त्री में संतुलन है, पुरुष में संतुलन नहीं है--शरीर के तल पर भी। जिन वीर्य कणों से मिलकर जीवन का जन्म होता है, रज और वीर्य के मिलन से जो व्यक्तित्व का निर्माण होता है, उसमें एक बात समझने जैसी है।

पुरुष के वीर्यकण में दो तरह के वीर्यकण होते हैं। एक वीर्यकण होता है, जिसमें चौबीस सेल होते हैं, चौबीस कोष्ठ होते हैं। एक वीर्यकण होता है, जिसमें तेईस कोष्ठ होते हैं। स्त्री में जो रजकण होते हैं, उन सबमें चौबीस कोष्ठ होतें हैं। उनमें तेईस कोष्ठ वाला कोई रजकण नहीं होता। इनमें सबमें चौबीस कोष्ठ वाले रजकण होते हैं।

जब स्त्री का चौबीस कोष्ठ वाला रजकण, पुरुष के चौबीस कोष्ठ वाले वीर्यकण से मिलता है, तो स्त्री का जन्म होता है : चौबीस--चौबीस। और जब स्त्री का चौबीस कोष्ठ वाला रजकण, पुरुष के तेइस कोष्ठवाले वीर्यकण से मिलता है, तब पुरुष का जन्म होता है। चौबीस--तेईस।

जीवशास्त्री कहते हैं कि स्त्री संतुलित होती है। उसके दोनों पलड़े बराबर हैं--चौबीस--चौबीस। और पुरुष में एक बेचैनी है, उसका एक पलड़ा थोड़ा नीचे झुका है, एक थोड़ा ऊपर उठा है।

इसलिये अगर छोटी बच्ची भी हो और छोटा लड़का भी हो, दोनों को देखें,

तो लड़के में आपको बेचैनी दिखायी पड़ेगी। लड़की शांत दिखाई पड़ेगी।

लड़का पैदा होते से थोड़ा उपद्रव शुरू करेगा। उपद्रव न करे, तो लोग कहेंगे कि लड़का थोड़ा स्त्रैण है, लड़कियों जैसा है। वह जो बेचैनी है, असंतुलन जो है, वह काम शुरू कर देगा।

इस बेचैनी की तकलीफें हैं, इसके फायदे भी हैं। समता का लाभ भी है, नुकसान भी है। दुनिया में कोई लाभ नहीं होता, जिसका नुकसान न हो। कोई नुकसान नहीं होता, जिसका लाभ न हो।

पुरुष में जो बेचैनी है, उसी के कारण उसने इतने बड़े साम्राज्य बनाये। पुरुष में जो बेचैनी है, उसी के कारण उसने विज्ञान निर्मित किया, इतनी खोजें कीं। पुरुष में बेचैनी है, इसलिये यह एव्हरेस्ट पर चढ़ा और चाँद पर पहुँचा।

स्त्री में वह बेचैनी नहीं है, इसलिये स्त्रियों ने कोई खोज नहीं की, कोई आविष्कार नहीं किया। वह तृप्त है। वह अपने होने से पर्याप्त है। उसे कहीं जाना नहीं है। उसकी समझ के बाहर है कि एव्हरेस्ट पर चढ़ने की जरूरत क्या है!

हिलेरी से, जो आदमी एव्हरेस्ट पर पहली दफा चढ़ा, उससे उसकी पत्नी ने पूछा कि 'आखिर एव्हरेस्ट पर चढ़ने की जरूरत क्या है? यह तो समझ के बाहर है बात कि नाहक...। सुख शांति से घर में रह रहे हो, परेशान हो जाओ; मौत का खतरा लो। जरूरी नहीं कि पहुँचो। अनेक लोग मर चुके हैं। और पहुँचकर भी मिलेगा क्या? अगर पहुँच भी गये, तो फायदा क्या? आखिर एव्हरेस्ट पर चढ़ने की जरूरत क्या है?

तो पता है, हिलेरी ने क्या कहा? हिलेरी ने कहा, 'जब तक एव्हरेस्ट है, तब तक आदमी बेचैन रहेगा; चढ़ना ही पड़ेगा।' कोई कारण नहीं है और। लेकिन एव्हरेस्ट का होना!--कि अनचढ़ा एक पर्वत है; आदमी के लिये चुनौती है। क्योंकि एव्हरेस्ट है--इसलिये चढ़ना पड़ेगा। कोई और कारण नहीं है।'

पुरुष में एक बेचैनी है, इसलिये पुरुष युद्ध के लिये आतुर है; संघर्ष के लिये आतुर है। नये संघर्ष खोजता है; नये उपद्रव मोल लेता है। नयी चुनौतियाँ स्वीकार करता है।

चाँद पर जाने की कोई जरूरत नहीं है। अभी तो कोई भी जरूरत नहीं है लेकिन चाँद है, तो रुकना बहुत मुश्किल है।

जिस वैज्ञानिक ने पहली दफा चाँद की यात्रा का खयाल दिया, उसने लिखा है कि अब हमारे पास चाँद तक पहुँचने के साधन हैं, तो हमें पहुँचना ही है। अब कोई और वजह की जरूरत नहीं है। अब हम पहुँच सकते हैं, तो हम पहुँचेंगे।

तो फायदा है। संसार के तल पर पुरुष के गुणों का फायदा है। इसलिये स्त्रियाँ

पीछे पड़ जाती हैं। संसार की दौड़ में वे कहीं भी टिक नहीं पातीं। लेकिन नुकसान भी उसका है, तो बेचैनी, अशांति, विक्षिप्तता, पागलपन--वह सब पुरुष का हिस्सा है। स्त्रियाँ शांत हैं।

इसे आप ऐसा समझें कि अगर बाहर की जगत् में खोज करनी हो, तो पुरुष के गुण उपयोगी हैं। पुरुष बहिर्गामी है। अगर भीतर के जगत् में जाना हो, तो स्त्री के गुण उपयोगी हैं। स्त्री अन्तर्गामी है।

स्त्री और पुरुष जब प्रेम भी करते हैं, तो पुरुष आँख खोल कर प्रेम करना पसन्द करता है। स्त्रियाँ आँख बन्द करके। पुरुष चाहता है कि प्रकाश जला रहे, जब वह प्रेम करे। स्त्रियाँ चाहती हैं--बिलकुल अन्धेरा हो। पुरुष चाहता है कि वह देखे भी कि स्त्री के चेहरे पर क्या भाव आ रहे हैं--जब वह प्रेम कर रहा है। स्त्री बिलकुल आँख बन्द कर लेती है। वह पुरुष को भूल जाना चाहती है।

प्रेम के गहरे क्षण में भी वह पुरुष को भूल कर अपने भीतर डूबना चाहती है। उसका जो रस है, वह भीतरी है।

पुरुष देखना चाहता है कि स्त्री प्रसन्न हो रही है, आनन्दित हो रही है, तो वह प्रसन्न होता है। यह देखता है कि स्त्री दुःखी हो रही है, परेशान हो रही है या उसके मन में कोई भाव नहीं उठ रहा है, तो उसका सारा सुख खो जाता है।

पुरुष बहिर्दृष्टि है। इसका मतलब यह हुआ कि अगर आपको भीतर की तरफ जाना है, तो आपके भीतर छिपी जो स्त्री है, उसके गुणों को आपको विकसित करना होगा। और अगर स्त्रियों को भी बाहर की तरफ जाना है, तो उनके भीतर छिपा हुआ जो पुरुष है, उसको उन्हें विकसित करना होगा।

बहिर्यात्रा पुरुष के सहारे हो सकती है--अन्तर्यात्रा स्त्री के सहारे। इसलिये कृष्ण स्त्रैण गुणों को इतनी गहराई से कहा है।

● एक मित्र ने पूछा है कि कल आपने कहा कि क्रोध को पूरा जानने के लिये क्रोध का पूरा अनुभव जरूरी है। तो काम-वासना को पूरा कैसे जाना जाय? क्योंकि अनुभवियों ने कहा है कि काम-वासना की तृप्ति कभी नहीं हो पाती। जितनी भोगेंगे, उतनी ही बढ़ती जायेगी, तो काम-वासना को कैसे पार किया जाय?

पहले तो अनुभवियों से थोड़ा बचना। खुद के अनुभव का भरोसा करना।

इसका यह मतलब नहीं कि अनुभवियों ने जो कहा है, वह गलत कहा है। इसका कुल मतलब इतना है कि दूसरे के अनुभव को मान कर चलने से आप अनुभव से वंचित रह जायेंगे। और अगर अनुभव से वंचित रह गये, तो अनुभवियों ने जो कहा है, वह आपको कभी सत्य न हो पायेगा।

अनुभवियों ने जो कहा है, वह अनुभव से कहा है। दूसरे अनुभवियों को सुन कर

नहीं कहा है। यह फर्क खयाल में रखना। उन्होंने यह नहीं कहा है कि अनुभवियों ने कहा है, इसलिये हम कहते हैं। उन्होंने कहा है कि हम अपने अनुभव से कहते हैं।

तुम भी अगर सच में ही मुक्त होना चाहो, तो अपने अनुभव से ही होओगे।

और यह बात गलत है कि अनुभव से काम-वासना बढ़ती है। कोई वासना दुनिया में अनुभव से नहीं बढ़ती। और अगर अनुभव से काम-वासना बढ़ती है, तो फिर इस दुनिया में कोई भी आदमी उससे मुक्त नहीं हो सकता।

अनुभव से सभी चीजें क्षीण होती हैं। अनुभव से सभी चीजों में ऊब आ जाती है। एक ही भोजन कितना ही स्वादिष्ट हो, रोज-रोज करें, कितने दिन कर पायेंगे? थोड़े दिन में स्वाद खो जायेगा। फिर थोड़े दिन बाद बेस्वाद हो जायेगा। फिर कुछ दिन बाद आप भाग जाना चाहेंगे--कि आत्महत्या कर लूँगा, अगर यही भोजन वापस मिला तो।

अनुभव से ऊब आती है। चित्त रस खो देता है। और अगर अनुभव से ऊब नहीं आती, तो समझना कि अनुभव आप ठीक से नहीं ले रहे हैं। इस बात को ठीक से समझ लेना।

और अनुभव आप ठीक से ले नहीं सकते, क्योंकि अनुभवियों ने जो कहा है, वह आपकी परेशानी किये दे रहा है।

अनुभव के पहले आप छूटना चाहते हैं।

ये मित्र पूछते हैं कि काम-वासना से कैसे पार जाया जाय? पहले काम-वासना में तो चले जाओ, फिर पार भी चले जाना। पार जाने की जल्दी इतनी है कि उसमें भीतर जा ही नहीं पाते, उतर ही नहीं पाते।

एक काम का गहन अनुभव भी पार ले जा सकता है। लेकिन वह कभी गहन हो नहीं पाता। यह पीछे से जान अटकी ही रहती है कि पार कब, कैसे हो जायँ। न पार हो पाते, न अनुभव हो पाता। और बीच में अटके रह जाते हैं।

जब मैं आपसे कहता हूँ कि अनुभव ही मुक्ति है, तो उसका अर्थ ठीक से समझ लेना। क्योंकि जो चीज व्यर्थ है, वह अनुभव से दिखायी पड़ेगी—कि व्यर्थ है। और किसी तरह दिखाई नहीं पड़ सकती।

जब तक आपको अनुभव नहीं है, आप भला सोचें कि व्यर्थ है, लेकिन सोचने से क्या होगा। रस तो कायम है भीतर। और कितने ही अनुभवी कहते हों कि व्यर्थ है, उनके कहने से क्या व्यर्थ हो जायेगा अगर उनके कहने से होता होता, तो अब तक सारी दुनिया की काम-वासना तिरोहित हो गयी होती।

बाप कितना नहीं समझता है बेटे को। बेटा सुनता है? लेकिन बाप कहे चला जाता है। और बाप इसकी बिलकुल फिक्र नहीं करता कि वह भी बेटा था और

उसके बाप ने भी यही कहा था। उसने भी नहीं सुना था। अगर वह ही सुन लेता, तो यह बेटा कहाँ से आता! और वह घबड़ाये ना। यह बेटा भी बड़ा होकर अपने बेटे को यही शिक्षा देगा। उसमें कोई अन्तर पड़ने वाला नहीं है।

किसी का अनुभव काम नही पड़ता। बाप का अनुभव आपके काम नहीं पड़ सकता। आपका अनुभव ही काम पड़ेगा।

बाप गलत कहता है, ऐसा मैं नहीं कह रहा हूँ। बाप अपने अनुभव से कह रहा है--कि यह सब पागलपन से वह गुजरा है। लेकिन पागलपन से गुजर कर कह रहा है वह। और बिना गुजरे वह भी नहीं कह सकता था। बिना गुजरे कोई भी नहीं कह सकता है। और बिना गुजरे कोई भी किसी की बात भी नहीं मान सकता है।

अनुभव के अतिरिक्त इस जगत् में कोई अनुभूति नहीं है। अनुभव से ही गुजरना होगा।

फिर घबड़ाहट भी क्या है इतनी? इतना पार होने की जल्दी भी क्या है? अगर परमात्मा एक अवसर देता है, तो उसका उपयोग क्यों न किया जाय? और उस उपयोग को पूरा क्यों न समझा जाय।

जरूर निहित कोई प्रयोजन होगा। परमात्मा आपसे ज्यादा समझदार है। और अगर उसने आपमें काम-वासना रखी है, तो उसका कोई निहित प्रयोजन होगा।

महात्मा कितना ही कहते हों कि काम-वासना बुरी है, लेकिन परमात्मा नहीं कहता कि काम-वासना बुरी है। नहीं तो रचता नहीं। नहीं तो उसके होने की कोई जरूरत न थी।

परमात्मा तो रचे जाता है, महात्माओं की वह सुनता नहीं। जरूर कोई निहित प्रयोजन है। और निहित प्रयोजन यह है कि ये महात्मा भी पैदा नहीं हो सकते थे, अगर काम-वासना न होती। ये महात्मा भी उसी अनुभव से गुजर कर पार गये हैं। इन्होंने भी उसमें पड़ कर जाना है कि व्यर्थ है।

व्यर्थता का बोध बड़ा कीमती है। वह होगा ही तब, जब आपको अनुभव में आ जाय।

तो जल्दी मत करना। उधार अनुभवों का भरोसा मत करना। इसका यह मतलब नहीं है कि तुम अनुभवियों को कहो कि तुम गलत हो। आपको इतना ही कहना चाहिये कि हमें अभी पता नहीं है और हम उतरना चाहते हैं, और हम जानना चाहते हैं कि क्या है--यह काम-वासना। और हम इसे पूरा जान लेंगे। तो अगर यह गलत होगी, तो वह जानना मुक्ति ले आयेगा। और अगर यह सही होगी, तो मुक्त होने की कोई जरूरत नहीं है।

एक बात निश्चित है कि अब तक जिन्होंने भी ठीक से जान लिया, वे मुक्त हो

गये हैं।

और दूसरी बात भी निश्चित है कि जिन्होंने नहीं जाना, वे कितना ही सिर पीटें, और अनुभवियों की बात मानते रहें, वे कभी मुक्त नहीं हुए हैं, न हो सकते हैं। इतनी घबड़ाहट क्या है? इतना डर क्या है? भीतर जो छिपा है, उसे पहचानना होगा। उपयोगी है कि उससे आप गुजरें।

मैंने सुना है कि एक सम्राट् ने अपने बेटे को एक फकीर के पास शिक्षा के लिये भेजा। हर माह खबर आती रही कि शिक्षा ठीक चल रही है। साल पूरा हो गया। और वह दिन भी आ गया, जिस दिन फकीर युवक को लेकर राजदरबार आयेगा। और सम्राट् बड़ा प्रसन्न था। उसने अपने सारे दरबारियों को बुलाया था कि आज मेरा बेटा उस महान फकीर के पास से शिक्षित होकर वापस लौटता है।

लेकिन जब फकीर लड़के को लेकर राजमहल के दरवाजे पर पहुँचा, तो राजा की छाती बैठ गयी। देखा कि फकीर ने अपना बोरिया-बिस्तर सब राजकुमार के सिर पर रखा हुआ है। और कपड़े उसे ऐसे पहना दिये हैं कि जैसे कोई कुली कपड़े पहने हुए है।

सम्राट् तो बहुत क्रोध से भर गया। और उसने कहा कि 'मैंने शिक्षा देने भेजा था! मेरे लड़के का इस तरह अपमान करने नहीं।' फकीर ने कहा कि 'अभी आखिरी सबक बाकी है। अभी बीच में कुछ मत बोलो। और अभी साल पूरा नहीं हुआ है। सूरज ढलने को शेष है। अभी लड़का मेरे जुम्मे है।'

तब उस फकीर ने अपने सामान में से एक कोड़ा निकाला। सब सामान लड़के से नीचे रखवा कर उसे सात कोड़े लगाये दरबार में।

राजा तो चीख पड़ा लेकिन अपने वचन से बँधा था कि एक साल के लिये दिया था उसे। सूरज अभी नहीं डूबा था। लेकिन उसने कहा कि 'कोई हर्ज नहीं; सूरज डूबेगा और न मुझे फाँसी लगवा दी...।' उस फकीर से कहा, 'सूरज डूबेगा; तू घबड़ा मत। कोई फिक्र नहीं; तू कर ले। एक साल का वायदा है।'

लेकिन और दरबारियों में बूढ़े समझदार लोग भी थे। उन्होंने राजा से कहा कि 'थोड़ा पूछो भी तो उससे कि वह क्या कर रहा है! आखिर उसका प्रयोजन क्या है?'

तो किसी ने पूछा, तो फकीर ने कहा कि 'मेरा प्रयोजन है। यह कल राजा बनेगा। और अनेक लोगों को कोड़े लगवायेगा। इसे कोड़े का अनुभव होना चाहिये। इसे पता होना चाहिये कि कोड़े का मतलब क्या है। कल यह राजा बनेगा और न मालूम कितने लोग इसका सामान ढोने में जिन्दगी व्यतीत कर देंगे। इसको पता होना चाहिये कि जो आदमी सड़क पर समान ढो कर आ रहा है, उसके भीतर की गति कैसी है। इसे राजा होने के पहले उन सब अनुभवों से गुजर जाना

चाहिये, जो कि राजा होने के बाद इसको कभी न मिल सकेंगे। लेकिन अगर यह उनसे नहीं गुजरता है, तो यह हमेशा अप्रौढ़ रह जायेगा। तो साल भर में मैंने इसकी एक ही शिक्षा पूरी की है, पूरे साल में, कि जो इसको राजा होने के बाद कभी भी न होगा, उस सब से मैंने इसे गुजार दिया है।

यह संसार एक विद्यापीठ है। और परमात्मा आपको बहुत से अनुभव से गुजार रहा है। अनेक तरह की आगों में जला रहा है। वह जरूरी है। उससे निखर कर आप असली कुन्दन, असली सोना बनेंगे। सब कचरा जल जायेगा।

लेकिन आपकी हालत ऐसी है कि कचरे से भरा सोना हैं आप; और आग से गुजर कर जो उस तरफ चले गये हैं अनुभवी, उनकी बातें सुन रहे हैं। और वे कहते हैं कि यह आग है, इससे बचना। लेकिन इसी आग से गुजर कर वे शुद्ध हुये हैं। और अगर उनकी बात मानकर तुम इसी तरफ रुक गये, और तुमने कहा, यह आग है; इससे हम बचेंगे, तो ध्यान रखना कि वह कचरा भी बच जायेगा, जो आग में जलता है।

आग से गुजरना। उन अनुभवियों से पूछना कि तुम यह आग से गुजर कह रहे हो और मैंने बिना गुजरे यह बात मान ली, तो मैं डूब गया तुम्हारे साथ। उचित है; तुम्हारी बात मैं खयाल रखूंगा; लेकिन मुझे भी अनुभव से गुजर जाने दो। मेरे भी कचरे को जल जाने दो।

काम-वासना आग है, लेकिन उसमें बहुत-सा कचरा जल जाता है। अगर आप बोधपूर्वक, समझपूर्वक, होशपूर्वक काम-वासना में उतर पायें, तो आपका सब कचरा जल जाता है। आप सोना बच जाते हैं। और वह जो सोना है, वही क्रान्ति है। वह जो सोने की उपलब्धि है, वही क्रान्ति है।

तो मैं आप से कहना चाहता हूँ कि जो आपके अनुभव से आये, उसे आने देना। और जल्दी मत करना। उधार अनुभव मत ले लेना। उनसे ज्ञान तो बढ़ जायेगा, आत्मा नहीं बढ़ेगी। उनसे बुद्धि में विचार तो बहुत बढ़ जायेंगे, लेकिन आप वही के वही रह जायेंगे।

आग से गुजरे बिना कोई उपाय नहीं है। सस्ते में कुछ भी मिलता नहीं है।

काम-वासना एक पीड़ा है। उसमें सुख तो ऊपर-ऊपर है, भीतर दुःख ही दुःख है। बाहर-बाहर झलक तो बड़ी रंगीन है, वही इन्द्रधनुष जैसी है, लेकिन भीतर हाथ कुछ भी नहीं आता। सिर्फ उदासी, सिर्फ विषाद, सिर्फ आँसू हाथ लगते हैं। लेकिन वे आँसू बाहर से बहुत चमकते हैं और मोती मालूम पड़ते हैं। लेकिन पास जाते ही पता चलता है कि मोती झूठे हैं और आँसू हैं और पीछे सिर्फ विषाद रह जाता है। लेकिन इससे गुजरना होगा।

इससे जो बच जाता है...। आप बच भी नहीं पाते। बचने का मतलब केवल इतना है कि आप पास ही नहीं जा पाते मोती के, पूरे--कि पता चला जाय कि वह आँसू की बूंद है, मोती नहीं है। आप जाते भी हैं, क्योंकि भीतर वासना का धक्का है। परमात्मा कह रहा है, जाओ, क्योंकि अनुभव ने गुजरोगे तो ही निखरोगे। जाओ।

परमात्मा बहुत निःशंक भेज रहा है। एक-एक बच्चे को भेज रहा है। इधर हम सुधार-सुधार कर जिन्दगी परेशान हो जाते हैं। बूढ़े जब तक सुधर पाते हैं, उनको वह हटा लेता है। और फिर बच्चे पैदा कर देता है। वे फिर बिगड़े के बिगड़े। फिर वही उपद्रव शुरू। फिर वही करेंगे--जो अनुभवी कह गये हैं कि मत करना।

यह परमात्मा बच्चे क्यों बनाता है? बूढ़े क्यों नहीं बनाता है? आखिर बूढ़े भी पैदा कर सकता था--सीधे के सीधे। कोई झगड़ा झंझट नहीं होती। अनुभवी पैदा हो जाते। लेकिन बूढ़े भी अगर वह पैदा कर दे, तो बच्चे ही होंगे। क्योंकि अनुभव के बिना कोई वार्धक्य, कोई बोध पैदा नहीं होता।

वह बच्चे पैदा करता है। उसकी हिम्मत बड़ी अनूठी है। वह नासमझ पैदा करता है, समझदारों को हटाता है। हम तो मानते ही ऐसा हैं कि जिसकी समझ पूरी हो जाये, फिर उसका जन्म नहीं होता। उसका मतलब कि समझदारों को फौरन हटाता है और नासमझों को भेजता चला जाता है।

विद्यालय में नासमझ ही भेजे जाते हैं। जब बात पूरी हो जाती है, विद्यालय के बाहर हो जाते हैं।

लेकिन जो बच्चा स्कूल में जा रहा है, वह स्कूल से रिटायर होते हुए प्रोफेसर की बात सुनकर बाहर ही रुक जाये, तो क्या गति होगी?

एक बच्चा अभी स्कूल में प्रवेश कर रहा है और आज पहला दिन है उसके स्कूल में प्रवेश का। उसी दिन कोई बूढ़ा प्रोफेसर रिटायर हो रहा है। वह प्रोफेसर कहता है: 'कुछ भी नहीं है यहाँ, जिन्दगी हमने ऐसे ही गँवायी। सब बेकार गया। तू अंदर मत जा। तू वापस लौट जा।' बस, यह आपकी हालत है।

रिटायर होते लोगों से जरा सावधान। उनकी बात तो सच है। बिलकुल ठीक कह रहे हैं, अनुभव से कह रहे हैं। पर आपको भी उस अनुभव से गुजरना ही होगा। आप भी एक दिन वही कहोगे। लेकिन थोड़ा समय--पकने के लिये जरूरी है। आग में गुजरना जरूरी है, तो परिपक्वता आती है।

इसलिये डरें मत। परमात्मा ने जो भी जीवन की नैसर्गिक वासनाएँ दी हैं, उनमें सहज भाव से उतरें। घबड़ाएँ मत। घबड़ाना क्या है? जब परमात्मा नहीं घबड़ाता

तो आप क्यों घबड़ा रहे हैं? जब वह नहीं डरा हुआ है, तो आप क्यों इतने डरे हुए हैं? उतरें।

उतरने में एक ही खयाल रखें कि पूरी तरह उतरें। ये कचरे खयाल दिमाग में न पड़े रहें कि 'गलत है'। क्योंकि गलत है, तो उतर ही नहीं पाते। अधूरे रह जाते हैं। हाथ भी बढ़ता है और आग तक पहुँच भी नहीं पाता। रुक जाता है बीच में। तो दोहरे नुकसान होते हैं। न तो अनुभव होता है, और न लौटना होता है। अधकचरे बीच में लटके रह जाते हैं।

इस जमीन पर जो लोग बीच में लटके हैं, उनकी पीड़ा का अन्त नहीं है।

इधर पीछे से महात्मा खींचते हैं कि वापस लौट आओ। और उधर भीतर से परमात्मा धक्के देता है कि जाओ, अनुभव से गुजरो। इन दोनों की रस्साकसी में आपकी जान निकल जाती है।

मैं कहता हूँ कि मत सुनो। निसर्ग की सुनो। स्वभाव की सुनो। वह जो कह रहा है--जाओ। एक ही बात ध्यान रखो कि होशपूर्वक जाओ, समझपूर्वक जाओ। समझते हुए जाओ--क्या है।

काम-वासना क्या है? इसको किताब से पढ़ने की क्या जरूरत है? इसको उतर कर ही देख लो। और जब उतरो, तो पूरे ध्यानपूर्वक उतरो।

लेकिन मैं जानता हूँ लोगों को, वे मेरे पास आते हैं। वे मुझसे कहते हैं कि काम-वासना से कैसे छूटें। मैं उनसे पूछता हूँ कि 'जब तुम काम-कृत्य में उतरते हो, तब तुम्हारे दिमाग में कोई और खयाल तो नहीं होता?' वे कहते हैं: 'हजार खयाल होते हैं। कभी दुकान की सोचते हैं; कभी बाजार की सोचते हैं। कभी कुछ और सोचते हैं। कभी यह सोचते हैं--कि कैसा पाप कर रहे हैं। इसका क्या प्रायश्चित होगा?'

तो तुम काम-वासना में भी जब उतर रहे हो, तब भी तुम्हारी खोपड़ी कहीं और है, तो तुम जान कैसे पाओगे कि यह क्या है!

ध्यान बना लो। हटा दो सब विचारों को। जब काम में उतर रहे हो, तो पूरे उतर जाओ--पूरे मनपूर्वक। पूरे प्राण से, पूरा बोध लेकर। दुबारा उतरने की जरूरत न रहेगी।

एक बार भी अगर यह हो जाय कि काम-वासना का और ध्यान का मिलन हो जाय, तो वहीं पहला बोध, पहला होश उपलब्ध हो जाता है। सब चीज व्यर्थ दिखाई पड़ती है; बचकानी हो जाती है। दुबारा जाना भी चाहो तो नहीं जा सकते। बात ही व्यर्थ हो गयी।

जब तक यह न हो जाय, तब तक जाना ही पड़ेगा। और प्रकृति कोई अपवाद

नहीं मानती। प्रकृति तो उन्हीं को पार करती है, जो पूरी तरह पक जाते हैं। कच्चे लोगों को नहीं निकलने देती। अगर आप कच्चे हैं, तो फिर जन्म देगी। फिर धक्के देगी।

अगर आप कच्चे ही बने रहते हैं, तो अनन्त अनन्त जन्मों तक भटकना पड़ेगा। पक्का अगर होना है, तो भय छोड़ें। और निसर्ग को बोधपूर्वक अनुभव करें। मुक्ति वहाँ है।

● एक मित्र ने पूछा है कि कृष्ण ने कहा है कि सर्व आरंभों को छोड़ने वाला भक्त मुझे प्रिय है। तो क्या परमात्मा की खोज का आरंभ भी छोड़ देना चाहिये?

अगर आरंभ कर दिया हो, तो छोड़ देना चाहिये। मगर अगर आरंभ ही न किया हो, तो छोड़ियेगा क्या--खाक? है क्या छोड़ने को आपके पास? आरंभ कर दिया हो, तो छोड़ना ही पड़ेगा। लेकिन आरंभ कहाँ किया है, जिसको आप छोड़ दें!

हमारी तकलीफ यह है कि हमें यही पता नहीं है कि हमारे पास क्या है? और अकसर हम वह छोड़ते हैं, जो हमारे पास नहीं है। और वह पकड़ते हैं--जो है।

आपने परमात्मा की खोज शुरू की है? आरंभ हुआ है? अगर हो गया है, तो कृष्ण कहते हैं, उसे भी छोड़ दो। इसी वक्त उपलब्ध हो जाओगे। लेकिन अगर वह हुआ ही नहीं तो छोड़ियेगा क्या?

आदमी अपने को इस-इस तरह से धोखे देता है कि उसका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है! बहुत मुश्किल है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि आप कहते हैं कि 'प्रयत्न छोड़ना पड़ेगा!' तो मैं उनसे पूछता हूँ कि 'प्रयत्न कर रहे हो? कर लिया है प्रयत्न, तो छोड़ना पड़ेगा। अभी प्रयत्न ही नहीं किया है, छोड़ियेगा क्या?

लोग कहते हैं कि मूर्ति से बँधना ठीक नहीं है, मूर्ति तो छोड़नी है। वे ठीक कहते हैं। लेकिन बँध गये हो--कि छोड़ सको?

आपकी हालत ऐसी है: मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन शादी के दफ्तर में पहुँच गया और और उसने जाकर सब पूछताछ की कि तलाक के नियम क्या हैं। सारी बातचीत समझकर वह चलने को हुआ, तो रजिस्ट्रार ने उससे पूछा कि 'कब तलाक के लिये आना चाहते हो?' तो उसने कहा कि 'अभी शादी कहाँ की है? अभी तो मैं पक्का कर रहा हूँ कि अगर शादी कर लूं, तो तलाक की सुविधा है या नहीं। कोई झंझट में तो नहीं पड़ जाऊँगा।

आप भी तलाक की चिन्ता में पड़ जाते हैं, इसकी बिना फिक्र किये कि अभी शादी भी हुई--या नहीं।

आरंभ किया है आपने--परमात्मा की खोज का? एक इंच भी चले हैं उस

तरफ? एक कदम भी उठाया है? एक आँख भी उस तरफ की है? कभी नहीं की है।

अगर वह आरम्भ हो गया है, तो कृष्ण कहते हैं, उसे छोड़ना होगा। सभी आरम्भ छोड़ने होते हैं, तभी तो अन्त उपलब्ध होता है। सभी आरम्भ छोड़ने होते हैं, तभी तो लक्ष्य उपलब्ध होता है।

आरम्भ भी एक वासना है। परमात्मा को पाना भी एक वासना है। और कठिनाई यही है कि परमात्मा को पाने के लिये सभी वासनाओं से मन रिक्त होना चाहिये। परमात्मा को पाने की वासना भी बाधा है। मगर वह आखिरी वासना है, जो जायेगी। अभी मत छोड़ देना; अभी तो वह की ही नहीं है। अभी तो करें।

अभी तो मैं कहता हूँ : परमात्मा को पाने की जितनी वासना कर सकें--करें। इतनी वासना करें कि सभी वासनाएँ उसी में लीन हो जायँ। एक ही वासना रह जाय--सभी वासनाओं की मिल कर। एक ही धारा बन जाय--कि परमात्मा को पाना है। धन पाना था--वह भी इसी में डूब जाय। प्रेम पाना था--वह भी इसी में डूब जाय। यश पाना था--वह भी इसी में डूब जाय।

सारी वासनाएँ डूब जायँ; एक ही वासना रह जाय--कि परमात्मा को पाना है। ताकि आपके जीवन की सभी ऊर्जा एक तरफ दौड़ने लगे। और जिस दिन वह एकता आपके भीतर घटित हो जाय, उस दिन वह वासना भी छोड़ देना कि परमात्मा को पाना है। उसी वक्त परमात्मा मिल जाता है। क्योंकि परमात्मा कहीं दूर नहीं है कि उसे खोजने जाना पड़े; वह यहीं है।

जो दूर हो, उसे पाने के लिये चलना पड़ता है। जो पास हो, उसे पाने के लिये रुकना पड़ता है। जिसे खोया हो, उसे खोजना पड़ता है। जिसे खोया हो न हो, उसके लिये सिर्फ शान्त होकर देखना पड़ता है।

तो वह जो परमात्मा को पाने की वासना है--आखिरी, यह सिर्फ उपाय है--सारी वासनाओं को छोड़ देने का। जब सब छूट जायँ, तो उसे भी छोड़ देना है उसी तरह, जैसे पैर में एक काँटा लग जाय, तो हम एक और काँटा ले आते हैं वृक्ष से--पैर के काँटे को निकालने के लिये। लेकिन फिर आप जब पैर का काँटा निकाल कर फेंक देते हैं, तो दूसरे काँटे का क्या करते हैं जिसने आपकी सहायता की? क्या उसको घाव में रख लेते हैं?--कि सम्हाल कर रखें--कि यह काँटा बड़ा परोपकारी है। इस काँटे ने कितनी कृपा की कि पुराने काँटे को निकाल दिया। तो अब इसको सम्हालकर रख लें--इसी घाव में; कभी जरूरत पड़े। तो फिर आप मूढ़ता कर रहे हैं। तो काँटा निकालना व्यर्थ गया, क्योंकि दूसरा काँटा भी उतना ही काँटा है। और हो सकता है कि दूसरा काँटा पहले काँटे से भी मजबूत हो, तभी तो उसे निकाल पाया। खतरनाक है। यह काँटा जान ले लेगा।

परमात्मा का विचार, उसका ध्यान, इस जगत् के सारे काँटों को निकाल देने के लिये है। लेकिन वह भी काँटा है।

पर जल्दी मत करना यह सोचकर कि अगर काँटा है, तो हमको क्या मतलब है। हम तो वैसे ही काँटों से परेशान हैं, और एक काँटा क्या करेंगे? जल्दी मत करना। वह काँटा ही सारे काँटों को निकालने के काम आता है। और जिस दिन आपका काँटा निकल गया, उस दिन दोनों काँटों को साथ-साथ फेंक देना पड़ता है। फिर उस दूसरे काँटे को रखना नहीं पड़ता है।

जैसे सब वासनाएँ खो जाती हैं, अन्त में परमात्मा को पाने की वासना भी छोड़ देनी पड़ती है। वह आखिरी वासना है। उसके छूटते ही आपको पता चलता है कि वह मिला ही हुआ है।

हमारी भाषा में अड़चन है। ऐसा लगता है कि परमात्मा कहीं है, जिसको खोजना है। दूर कहीं छिपा है, जिसका पता लगाना है। कहीं दूर है, जिसका रास्ता होगा, यात्रा होगी। यह भ्रांति है।

परमात्मा आपका अस्तित्व है। आपके होने का नाम ही परमात्मा है। आप हैं—इसलिये--कि वह है। उसी की साँस है, उसी की धड़कन है। यह आपकी भ्रांति है कि साँस मेरी है और धड़कन मेरी है। बस, यह भ्रांति, भर टूट जाये, तो वह प्रकट है। वह कभी छिपा हुआ नहीं है।

और यह भ्रांति तब तक बनी रहेगी, जब तक आप सोचते हैं कि मुझे कुछ पाना है--परमात्मा पाना है तो आप बने हैं। आपकी वासना के कारण आप बने हुए हैं और जब तक वासना है, तब तक आप भी भीतर रहेंगे, नहीं तो वासना कौन करेगा!

और जब वासनाएँ सभी खो जाती हैं, आखिरी वासना भी खो जाती है, तो आप भी खो जाते हैं। क्योंकि जब वासना नहीं, तो वासना करने वाला भी नहीं बचता। वह जब मिट जाता है, तत्क्षण दृष्टि बदल जाती है। जैसे अचानक अँधेरे में प्रकाश हो जाय। और जहाँ कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था, वहाँ सब कुछ दिखाई पड़ने लगे। वासना के खोते ही अँधेरा खो जाता है और प्रकाश हो जाता है।

● आखिरी सवाल। एक मित्र ने पूछा है कि बुद्ध के शिष्यों में कोई भी उनकी श्रेणी का नहीं हुआ। क्राइस्ट के शिष्यों में भी कोई दूसरा क्राइस्ट नहीं बन सका। महावीर के शिष्य ठीक उनके विपरीत हैं। कृष्ण के शिष्यों में भी कोई कृष्ण नहीं है। क्या फिर भी आप गुरु-शिष्य प्रणाली पर विश्वास करते हैं?

पहली तो बात यह कि आपकी जानकारी बहुत कम है। बुद्ध के शिष्यों में हजारों

लोग बुद्ध बने। गौतम बुद्ध नहीं बने। गौतम बुद्ध कोई भी नहीं बन सकता है दूसरा। बुद्ध बने, बुद्धत्व को उपलब्ध हुए।

गौतम बुद्ध, वह जो शुद्धोदन का पुत्र सिद्धार्थ है, उसका जो व्यक्तित्व है, उसका जो ढंग है, वैसा तो किसी का कभी नहीं होने वाला है। वैसा तो वह अकेला ही है--इस जगत् में।

आप भी अकेले हैं, अद्वतीय हैं, बेजोड़ हैं। आप जैसा आदमी न कभी हुआ और न कभी होगा। कोई उपाय नहीं है आप जैसा आदमी होने का। आप अनरिपीटेबल हैं। आपको पुनरुक्त नहीं किया जा सकता। डिट्टो--आप जैसा कोई आदमी खड़ा नहीं किया जा सकता। आप बिलकुल बेजोड़ हैं।

यह अस्तित्व एक-एक चीज को बेजोड़ बनाता है। परमात्मा बड़ा अद्‌भुत कलाकार है। वह नकल नहीं करता। बड़े से बड़ा कलाकार भी नकल में उतर जाता है।

एक दफा पिकासो के पास एक चित्र लाया गया। पिकासो के चित्रों की कीमत है बड़ी। उस चित्र की कीमत कोई पाँच लाख रुपये थी और जिस आदमी ने खरीदा था, वह पक्का करने आया था कि 'यह चित्र ओरीजिनल है? आपका ही बनाया हुआ है? किसी ने नकल तो नहीं की है?' तो पिकासो ने चित्र देखकर कहा कि 'यह नकल है; ओरीजिनल नहीं है।'

वह आदमी तो बड़ी मुश्किल में पड़ गया। उसने कहा, 'लेकिन जिससे मैंने खरीदा है, उसने कहा है कि उसकी आँख के सामने आपने यह चित्र बनाया है!'

तो वह आदमी लाया गया। तो उसने कहा कि 'हद कर रहे हो; क्या भूल गये? मैं मौजूद था तुम्हारे सामने, जब तुमने इसे बनाया। यह तुम्हारा ही बनाया हुआ है।' तो पिकासो ने कहा कि 'मैंने कब कहा कि मैंने नहीं बनाया है! लेकिन यह भी नकल है, क्योंकि पहले मैं एक ऐसा चित्र और बना चुका हूँ। उसकी नकल है। मैं भी चुक जाता हूँ बना बना कर, तो फिर रिपीट करने लगता हूँ खुद ही। इसलिये इसको मैं ओरीजिनल नहीं कहता। इससे क्या फर्क पड़ता है कि नकल मैंने की अपने ही चित्र की या किसी और ने की। नकल तो नकल ही है।

लेकिन परमात्मा ने आज तक नकल नहीं की। एक आदमी बस, एक ही जैसा है। वैसा दूसरा आदमी फिर दुबारा नहीं होता। इससे मनुष्य बड़ी अद्‌भुत कृति है।

मनुष्य को ही क्यों हम कहें, एक बड़े वृक्ष पर एक पत्ते जैसा दूसरा पत्ता भी नहीं खोज सकते हैं आप। इस जमीन पर एक कंकड़ जैसा दूसरा कंकड़ भी नहीं खोज सकते। प्रत्येक चीज मौलिक है, ओरीजिनल है।

तो गौतम बुद्ध जैसा तो कोई भी नहीं हो सकता। इसका यह मतलब नहीं है कि और लोग बुद्धत्व को उपलब्ध नहीं हुए। बुद्ध के शिष्यों में से सैकड़ों लोग

उपलब्ध हुए।

एक बार तो बुद्ध से भी किसी ने जाकर पूछा, हो सकता है यही मित्र रहे हों, बुद्ध से जाकर किसी ने पूछा कि 'आप जैसे आप अकेले ही दिखाई पड़ते हैं। आपके पास दस हजार शिष्य हैं, इनमें से कितने लोग हैं, जो बुद्धत्व को उपलब्ध हो गये हैं?' बुद्ध ने कहा 'इनमें से सैंकड़ों बुद्धत्व को उपलब्ध हो गये हैं।'

तो उस आदमी ने पूछा, 'लेकिन उनका कोई पता नहीं चलता!' तो बुद्ध ने कहा, 'मैं बोलता हूँ; ये चुप हैं। और ये इसलिये चुप हैं, कि जब मैं बोलता हूँ, तो इनको परेशान होने की कोई जरूरत नहीं। और तुम्हें मैं नहीं दिखाई पड़ता। मैं जो बोलता हूँ, वह सुनाई पड़ता है। मैं भी चुप जाऊँ, तो तुम मेरे प्रति भी अन्धे हो जाओगे। ये भी जब बोलेंगे, तब तुम्हें दिखाई पड़ेंगे। ये चुप हैं, क्योंकि मैं बोल रहा हूँ; कोई जरूरत नहीं है।'

और जो भी उपलब्ध हो जाते हैं, जरूरी नहीं कि बोलें। बोलना अलग बात है। बहुत से सद्‌गुरु नहीं बोले हैं, चुप रहे हैं। बहुत से सद्‌गुरु बोले नहीं--नाचे, गाये। उसी से उन्होंने कहा। बहुत से सद्‌गुरुओं ने चित्र बनाये, पेन्टिंग की। उसी से उन्होंने कहा। बहुत से सद्‌गुरुओं ने गीत गाये, कविताएँ लिखीं, उसी से उन्होंने कहा है।

बहुत से सद्‌गुरुओं ने उठा लिया एक वाद्य और चल पड़े और गाते रहे गाँव-गाँव। और उसी से उन्होंने कहा। जो जैसा कह सकता था, उसने उस तरह कहा। जो मौन ही रह सकता था, वह मौन ही रह गया। उसने अपने मौन से ही कहा। फिर और भी बहुत कारण हैं।

गौतम बुद्ध सम्राट् के लड़के थे। सारा देश उनको जानता था। और जब वे ज्ञान को उपलब्ध हुये, तो सारे देश की नजरें उन पर रहीं। फिर कोई गरीब का लड़का भी बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ होगा। न उसे कोई जानता है, न सब की उस पर नजरें हैं।

फिर बुद्ध शिक्षक हैं। सभी शिक्षक नहीं होते। जरूरी भी नहीं है। शिक्षक होना अलग कला है, अलग गुण है। तो बुद्ध समझा सके, कह सके--ढंग से कह सके। इसलिये इतिहास में उनका उल्लेख रह जाता है।

इतिहास सभी बुद्धों की खबर नहीं रखता है। कुछ बुद्धों की खबर रखता है, जो इतिहास पर स्पष्ट लकीरें छोड़ जाते हैं।

क्राइस्ट को प्रेम करने वाले लोगों में भी लोग उपलब्ध हो गये हैं। लेकिन आपको पता है कि क्राइस्ट को प्रेम करने वाले जो उनके बारह शिष्य थे, वे बड़े दीन-हीन थे; बड़े गरीब थे। कोई मछुआ था; कोई लकड़हारा था; कोई बढ़ई

था; कोई चमार था। वे सब दीन-हीन गरीब लोग थे। पढ़े-लिखे भी नहीं थे। फिर भी उपलब्ध हुए और उन्होंने वह जाना, जो जीसस ने जाना।

लेकिन जीसस को सूली लग गयी, यही एक फायदा रहा। सूली लगने की वजह से आपको याद रहे।

जीसस की वजह से क्रिश्चियॅनिटि पैदा नहीं हुई; क्रॉस की वजह से पैदा हुई। अगर सूली न लगती, तो जीसस कभी के भूल गये होते। वह सूली याददाश्त बन गयी। जीसस का सूली पर लटकना एक घटना हुई; वह घटना इतिहास पर छा गयी। इतिहास के अपने ढंग हैं।

लेकिन इस खयाल में मत रहें कि महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट, या बुद्ध के शिष्यों में कोई उपलब्ध नहीं हुआ। हुआ; अपने ढंग से हुआ। ठीक उसी जगह पहुँच गया, जहाँ वे पहुँचे थे। लेकिन अपने ढंग से पहुँचा। कोई नाचता हुआ पहुँचा; कोई चुप होकर पहुँचा; कोई बोल कर पहुँचा।

अपने-अपने ढंग हैं। उन ढंगों में फर्क है। लेकिन बुद्ध जैसे व्यक्ति के पास जो समर्पित होने की सामर्थ्य रखता है, वह जरूर पहुँच जायेगा।

समर्पण कला है। सीखें। और बुद्ध जैसे व्यक्तित्व के पास जब जायें, तो वहाँ तो पूरी तरह झुक कर सीखने की सामर्थ्य होनी चाहिये। हम झुकने की कला ही भूल गये हैं। इसलिये दुनिया से धर्म कम होता जाता है।

एक मित्र मेरे पास आये। समझदार हैं, पढ़े-लिखे हैं, दर्शन का चिन्तन करते हैं, विचार करते हैं। बड़े अच्छे सवाल उन्होंने पूछे--बड़े गहरे। लेकिन सब सवालों पर पानी फेर दिया जाते वक्त।

जाते वक्त उन्होंने कहा कि 'एक बात और है; आप ऊपर क्यों बैठे हैं; मैं नीचे क्यों बैठा हूँ—यह और पूछना है!'

सीखने आये हैं, लेकिन नीचे भी नहीं बैठ सकते। तो मैंने कहा, 'पहले ही क्यों न कहा, मैं और ऊपर बिठा देता। इसमें कोई अड़चन न थी। लेकिन तब मैं आपसे सीखता। तो जिस दिन आपको मुझे कुछ सिखाने का भाव आ जाय; जरूर आ जाना। और आपको काफी ऊँचाई पर बिठा दूँगा और मैं नीचे बैठ कर सीखूँगा। लेकिन सीखने आये हों, तो नीचे बैठना तो—बात मूल्य की नहीं है, लेकिन झुकने का भाव मूल्य का है।

लेकिन वह अखरता रहा होगा। बातें तो बड़ी ऊँची कर रहे थे--परमात्मा की, आत्मा की--लेकिन पूरे वक्त जो बात खली रही होगी, वही आखीर में निकली --कि नीचे बैठा हूँ।

बैठे तो गये थे, लेकिन इतना साहस भी नहीं था कि पहले ही कह देते कि मैं

खड़ा रहूँगा; मैं बैठूंगा नहीं। या कुछ ऊँची कुर्सी बुलायें, उस पर बैठूंगा; नीचे नहीं बैठूंगा। वैसे नीचे कोई अड़चन न थी। ज्यादा ईमानदारी की बात होती; ज्यादा सच्चे साबित होते। वह तो भीतर छिपाये रखे। तो उनका परमात्मा का प्रश्न और आत्मा का प्रश्न--सब झूठा हो गया, क्योंकि भीतर असली प्रश्न यही था, जो चलते वक्त उन्होंने पूछा--कि अब एक बात और पूछ लूँ आखिरी--कि आप ऊपर क्यों बैठे हैं; मैं नीचे क्यों बैठा हूँ।

झुकने की वृत्ति खो गयी है। गुरु और शिष्य के सम्बन्ध का और कोई मतलब नहीं है। इतना ही मतलब है कि आप जिसके पास सीखने गये हैं, वहाँ झुकने की तैयारी से जाना। नहीं तो मत जाना। कौन कह रहा है?

अगर झुकने की तैयारी नहीं है, तो मत जाना।

हालत हमारी ऐसी है कि नदी में खड़े हैं, लेकिन झुक नहीं सकते--और प्यासे हैं। और झुकें ना, तो बर्तन में पानी कैसे भरें! मगर अकड़ खड़े हैं। प्यासे मर जायेंगे। लेकिन झुकें कैसे? क्योंकि झुकना--और नदी के सामने!

मत झुकें। नदी बहती रहेगी। नदी को आपके झुकने से कुछ मजा नहीं आने वाला है। नदी आपके झुकने के लिये नहीं बह रही है। न झुकाने में कोई रस है। अगर प्यास हो, तो झुक जाना। अगर प्यास न हो, तो खड़े रहना।

लेकिन हमारा मन ऐसा है कि हम अकड़े खड़े रहें, नदी आये--हमारे बर्तन में; झुके--और भर दे बर्तन को। और फिर धन्यवाद दे कि बड़ी कृपा तुम्हारी कि तुम प्यासे हुए, नहीं तो मेरा नदी होना अकारथ हो जाता!

गुरु-शिष्य का इतना ही अर्थ है कि गुरु है--जिसने पा लिया है, जो अब बह रहा है परमात्मा की तरफ। जिसकी नदी बही जा रही है। और ज्यादा देर नहीं बहेगी। थोड़े दिन में तिरोहित हो जायेगी और सागर में खो जायेगी। तो बाहर की नदी जो है, वह तो बहती भी रहेगी। उधर हिमालय पर पानी बरसता ही रहेगा हर साल--और नदी बहती रहेगी।

ये बुद्ध या कृष्ण या क्राइस्ट की जो नदियाँ हैं—ये कोई हमेशा नहीं बहती रहेंगी। कभी प्रकट होती हैं; कभी बहती हैं। फिर सागर में खो जाती हैं। फिर हजारों साल लग जाते हैं। नदी का पाट खो जाता है। कहीं पता नहीं चलता कि नदी कहाँ खो गयी। ये नदियाँ सरस्वती जैसी हैं; गंगा और यमुना जैसी नहीं। ये तिरोहित हो जाती हैं।

तो जब तक मौका हो, तब तक झुक जाना। मगर लोग ऐसे नासमझ हैं कि जब नदी खो जाती है और सिर्फ रेत का पाट रह जाता है, तब वे लाखों साल झुकते रहते हैं।

बुद्ध की नदी पर अभी भी झुक रहे हैं! और जब बुद्ध मौजूद थे, तब वे अकड़ कर खड़े रहे। अब झुक रहे हैं। अब वहाँ रेत है। और नदी कभी की खो गयी है। वहाँ नदी थी कभी; अब वहाँ सिर्फ रेत है। लेकिन अभी और नदियाँ बह रही हैं। लेकिन वहाँ आप मत झुकना, क्योंकि वहाँ झुके तो प्यास भी बुझ सकती है। बचाना वहाँ अपने को। ये नदीवाली स्थिति है गुरु की। और शिष्य जब तक शिष्य न हो जाय, झुकना न सीख ले, तब तब कुछ भी सीख नहीं पाता।

अब हम सूत्र लें।

और न जो कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है; न सोच-चिंता करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ संपूर्ण कर्मों के फल का त्यागी है, वह भक्तियुक्त पुरुष मेरे को प्रिय है। और जो पुरुष शत्रु और मित्र में तथा मान और अपमान में सम है तथा सर्दी गर्मी और सुख-दुःखादिक द्वन्द्वों में सम है और सब संसार में आसक्ति से रहित है, वह मुझको प्रिय है।'

'और जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है। न सोच करता है, न कामना करता है, जो शुभ-अशुभ संपूर्ण कर्मों के फल का त्यागी है, वह भक्तियुक्त पुरुष मेरे को प्रिय है।' क्या है इसका अर्थ? आप सोच कर थोड़े हैरान होंगे कि-- जो न कभी हर्षित होता, न द्वेष करता है...। क्या प्रसन्न होना भी बाधा है? क्या हर्षित होना भी बाधा है? कृष्ण के वचन से लगता है। थोड़ा इसके मनोविज्ञान में प्रवेश करना पड़े।

आप हँसते क्यों हैं? कभी आपने सोचा? क्या आप इसलिये हँसते हैं कि आप प्रसन्न हैं? या आप इसलिये हँसते हैं कि आप दुःखी हैं? उलटा लगेगा। लेकिन आप हँसते इसलिये हैं, क्योंकि आप दुःखी हैं। दुःख के कारण आप हँसते हैं। हँसना आपका दुःख भुलाने का उपाय है। हँसना एन्टिडोट है; उससे दुःख विस्मृत होता है। आप दूसरे पहलू पर घूम जाते हैं।

आपके भीतर बड़ा तनाव है। हँस लेते हैं और वह तनाव बिखर जाता है और निकल जाता है। इसलिये आप यह मत समझना कि बहुत हँसने वाले लोग, बहुत प्रसन्न लोग हैं। संभावना उलटी है। संभावना यह है कि वे भीतर बहुत दुःखी हैं।

नीत्से ने कहा है कि मैं हँसता रहता हूँ। लोग मुझसे पूछते हैं कि क्यों हँसते रहते हो, तो मैं छिपा जाता हूँ। क्योंकि बात बड़ी उलटी है। मैं इसलिये हँसता रहता हूँ कि कहीं रोने न लगूँ। अगर न हँसूं, तो रोने लगूँगा। वे आँसू न दिख जायँ किसी को; वह दीनता न प्रकट हो जाय, तो मैं हँसता रहता हूँ। मेरी हँसी एक आवरण है, जिसमें मैं दुःख को छिपाये हुए हूँ।

दुःखी लोग अकसर हँसते रहते हैं। कुछ भी मजाक खोज लेंगे, कुछ बात खोज

लेंगे और हँस लेंगे। हँसने से थोड़ा हलकापन आ जाता है। लेकिन अगर कोई आदमी भीतर से बिलकुल दुःखी न रहा हो, तो फिर हर्षित होने की यह व्यवस्था तो टूट जायेगी। जब भीतर से दुःख ही चला गया हो, तो यह जो हँसी थी, यह जो हर्षित होना था, यह तो समाप्त हो जायेगा। यह तो नहीं बचेगा।

इसका यह मतलब नहीं है कि वह अप्रसन्न रहेगा। पर उसकी प्रसन्नता का गुण और होगा। उसकी प्रसन्नता किसी दुःख का विरोध न होगी। उसकी प्रसन्नता किसी दुःख पर आधारित न होगी। उसकी प्रसन्नता सहज होगी, अकारण होगी।

आपकी प्रसन्नता सकारण होती है। भीतर तो दुःख रहता है, फिर कोई कारण उपस्थित हो जाता है, तो आप थोड़ा हँस लेते हैं। लेकिन उसकी प्रसन्नता अकारण होती है। वह हँसेगा नहीं।

अगर इसे हम ऐसा कहें कि वह हँसता हुआ ही रहेगा, तो शायद बात समझ में आ जाय। वह हँसेगा नहीं, वह हँसता हुआ ही रहेगा। उसे पता ही नहीं चलेगा कि वह कब हर्षित हो रहा है। क्योंकि वह कभी दुःखी नहीं होता। इसलिये भेद उसे पता भी नहीं रहेगा।

कृष्ण का चेहरा ऐसा नहीं लगता कि वे उदास हों। उनकी बाँसुरी बजती ही रहती है। लेकिन हमारे जैसा हर्ष नहीं है। हमारा हर्ष रुग्ण है। हम हँसते भी हैं, तो वह रोग से भरा हुआ है, उसके भीतर दुःख छिपा हुआ है, हिंसा छिपी हुई है, तनाव छिपे हुए हैं। वे उसमें प्रकट होते हैं।

कृष्ण का हँसना एक सहज आनन्द का भाव है। उसे हम ऐसा समझें कि सुबह जब सूरज नहीं निकला होता है, रात चली गयी होती है और सूरज अभी नहीं निकला होता है, तो जो प्रकाश होता है--आलोक, सुबह के भोर का आलोक-- ठंडा, कोई तेजी नहीं है। अँधेरे के विपरीत भी नहीं है, अभी प्रकाश भी नहीं है। अभी बीच में संध्या में है। कृष्ण जैसे लोग, बुद्ध जैसे लोगों की प्रसन्नता आलोक जैसी है। दुःख नहीं है; सुख नहीं है। दोनों के बीच में संध्या।

तो कृष्ण कहते हैं, जो न कभी हर्षित होता है। 'कभी'। कभी तो वही हर्षित होगा, जो बीच-बीच में दुःखी हो, नहीं तो कभी का कोई मतलब नहीं है।

'जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है ...।'

सब दुःखों का कारण द्वेष है। और जो द्वेष करता है, वह दुःखी होगा।

आपको पता है कि आपके दुःख का कारण आपके दुःख कम और दूसरों के सुख ज्यादा हैं। आपका मकान हो सकता है--काफी हो आपके लिये, मकान पड़ोस में एक बड़ा मकान बन गया, अब दुःख शुरू हो गया।

एक मित्र के घर में मैं रुकता था। बड़े प्रसन्न थे वे। और जब जाता था, तो

अपना घर दिखाते थे। स्विमिंग पूल दिखाते थे; बगीचा दिखाते थे। बहुत अच्छा, प्यारा घर था। बड़ा बगीचा था। सब शानदार था। खूब संगमरमर लगाया था।

जब मैं उनके घर जाता था, तो घर में रहना मुश्किल था; घर की बातें ही सुननी पड़ती थीं--घर के बाबत। यह बनाया, यह बनाया ...। मुझे सुबह से वही देखना पड़ता था। जब भी गया, यही था। वे कुछ न कुछ बनाये ही जाते थे।

फिर एक बार गया। उन्होंने घर की बात न चलायी। तो मैं थोड़ा परेशान हुआ। क्योंकि वे बिलकुल पागल थे। वे घर के पीछे दीवाने थे। जैसे घर बनाने को ही जमीन पर आये थे। उसके सिवाय उनके सपने में भी कुछ नहीं था।

उनकी पत्नी भी उनसे परेशान थी। वह मुझसे बोली थी कि हम तो सोचे थे कि यह घर मेरे लिये बना रहे हैं, घरवाली के लिये बना रहे हैं। अब तो ऐसा लगता है कि घरवाली को घर के लिये लाये हैं! कि घर खाली खाली न लगे, इसलिये शादी की है--ऐसा मालूम पड़ता है।' 'पहले तो मैं यह सोचती थी,' उनकी पत्नी ने मुझे कहा, 'कि मुझ से शादी की, इसलिये घर बना रहे हैं। अब गलती है, यह खयाल मेरा गलत था।'

लेकिन जब मैंने पाया कि वे चुप हैं, घर के बाबत कुछ नहीं कहते, तो मैंने उनसे दोपहर पूछा कि 'बात क्या है! बड़ी बेचैनी-सी लगती है घर में। आप घर के सम्बंध में चुप क्यों हैं?' उन्होंने कहा कि 'देखते नहीं, कि पड़ोस में एक बड़ा घर बन गया है। अब क्या खाक बात करें इसकी! अब रुको। दो चार साल बाद करेंगे। जब तक इससे ऊँचा न कर लूं...।'

दुःखी हैं, उदास हैं। घर उनका वही का वही है। लेकिन पड़ोस में एक बड़ा घर बन गया है। बड़ी लकीर खींच दी किसी ने। इनकी लकीर छोटी हो गयी है!

आपके अधिक दुःख आपके दुःख नहीं हैं। आपके अधिक दुःख दूसरों के सुख हैं। और इससे उलटी बात भी आप समझ लेना। आपके अधिक सुख भी आपके सुख नहीं हैं--दूसरे लोगों के दुःख हैं।

जब आप किसी का मकान छोटा कर लेते हैं, तब सुखी होते हैं। आपको अपने मकान से सुख नहीं मिलता। और जब कोई आपका मकान छोटा कर देता है, तो आप दुःखी होते हैं। आपको अपने मकान से न दुःख मिलता है--न सुख। दूसरों के मकान हैं। द्वेष, ईर्ष्या ...।

कृष्ण कहते हैं कि न जो द्वेष करता है, न हर्षित होता है, न चिन्ता करता है...।

चिन्ता क्या है? क्या है चिन्ता हमारे भीतर? जो हो चुका है, उसको जुगाली करते रहते हैं। आदमी की खोपड़ी को खोलें, तो वह जुगाली कर रहा है। सालों पुरानी बातें जुगाली कर रहा है कि कभी ऐसा हुआ, कभी वैसा हुआ।

जो अब नहीं है, उसको आप क्यों ढो रहे हैं? या भविष्य की फिक्र कर रहा है, जो अभी है नहीं। या तो अतीत की फिक्र कर रहा है, जो अभी आया नहीं। और जो अभी, यहीं है--वर्तमान, उसे खो रहा है--इस चिन्ता में। और परमात्मा अभी है--यहाँ। और आप या तो अतीत में हैं या भविष्य में। यह चिन्ता प्राण ले लेती है। यही चुका देती है।

तो कृष्ण कहते हैं कि जो चिन्ता नहीं करता ...। चिन्ता का मतलब यह कि शान्त है; जो यहीं है, न अतीत में उलझा है, न भविष्य में। वर्तमान के क्षण में जो है--निश्चित, चिन्तनशून्य, विचारमुक्त।

वर्तमान में कोई विचार नहीं है। सब विचार अतीत के हैं या भविष्य के हैं। और भविष्य कुछ भी नहीं है; अतीत का ही प्रक्षेपण है। और हम इसी में डूबे हुए हैं। या तो आप पीछे की तरफ चले गये हैं या आगे की तरफ। यहाँ--? यहाँ आप बिलकुल नहीं हैं। और यहीं है परमात्मा, इसलिये आपका मिलन नहीं हो पाता।

कृष्ण कहते हैं: न जो चिन्ता करता है, न जो कामना करता है, और जो शुभ अशुभ कर्मों के फल का त्यागी है। और जिसने सब शुभ अशुभ कर्म परमात्मा पर छोड़ दिया है कि तू करवाता है--वह भक्तियुक्त पुरुष मुझे प्रिय है।

'जो पुरुष शत्रु और मित्र में, मान और अपमान में सम है, सर्दी गर्मी में, सुख दुःख में सम है, आसक्ति से रहित है, वह पुरुष मुझे प्रिय है।'

जो सम है, जो डोलता नहीं है--एक से दूसरे पर ...। हम निरन्तर डोलते हैं। जिसको आप प्रेम करते हैं, उसी को घृणा भी करते हैं। सुबह प्रेम करते हैं, साँझ घृणा करते हैं। जिसको आप सुन्दर मानते हैं, उसी को आप कुरूप भी मानते हैं। साँझ सुन्दर मानते हैं; सुबह कुरूप मानते हैं।

जो अच्छा लगता है, वही आपको बुरा भी लगता है। चौबीस घण्टे आप इसी में डोलते रहते हैं--द्वन्द्व में, घड़ी के पैंडयूलम की तरह, दायें से बायें, बायें से दायें। यह जो डोलता हुआ मन है--विसम--यह मन उपलब्ध नहीं हो पाता--अस्तित्व की गहराई को।

कृष्ण कहते हैं, जो सम है। सुख आ जाये, तो भी विचलित नहीं होता, दुःख आ जाये, तो भी विचलित नहीं होता। आप सब हालत में विचलित होते हैं। दुःख में तो विचलित होते ही हैं, लॉटरी मिल जाय, तो भी हार्ट अटैक होता है। तो भी गये।

मैंने सुना है कि चर्च का एक पादरी बड़ी मुश्किल में पड़ गया। एक आदमी को लॉटरी मिली--लाख रुपये की। उसकी पत्नी को खबर आयी। पति तो बाहर गया था। पत्नी घबड़ा गयी। घबड़ा गयी यह सोच कर कि जैसे ही पति को पता

लगेगा कि लाख रुपये की लॉटरी मिली है, यह सुनकर उनके बचने का उपाय नहीं है। वह जानती थी अपने पति को कि एक रुपया मिल जाय, तो वे दीवाने हो जाते हैं। लाख रुपया! पागल हो जायेंगे या मर जायेंगे।

तो उसने सोचा कि जल्दी कोई उपाय करना चाहिये—इसके पहले कि वे घर आयें। तो उसे खयाल आया कि पड़ोस में चर्च का पादरी है होशियार, बुद्धिमान पुरोहित है। उसको जाकर कहे कि कुछ कर दो। कुछ ऐसा इंतजाम जमाओ।

तो उस चर्च के पादरी को उसने जाकर बताया कि लाख रुपये की लॉटरी मिल गयी है मेरे पति के नाम। और अब वे आते ही होंगे बाजार से। आप घर चलें मेरे। और जरा इस ढंग से उनको समझायें, इस ढंग से बात को प्रकट करें कि उनको कोई सदमा न पहुँच जाये सुख का। और वे बच जायें; कोई नुकसान न हो।

तो पादरी ने पूछा कि 'तू मुझे क्या देगी?' तो उसने कहा कि पाँच हजार आप ले लेना।' पादरी ने कहा कि 'क्या कहा? पाँच हजार...!' उसको हार्ट अटैक हो गया। वह वहीं गिर पड़ा। 'सच? पाँच हजार!' वह पहली दुर्घटना चर्च के पादरी के साथ हो गयी।

आदमी सुख हो या दुःख, जब भी कुछ तीव्र होता है, तो विचलित हो जाता है। 'सम' का अर्थ है--जो विचलित नहीं होता। जो भी आता है, उसे ले लेता है कि ठीक है आया--चला जायेगा।

सुबह आयी, साँझ आयी। अँधेरा आया, प्रकाश आया, सुख आया, मित्र-शत्रु--ले लेता है चुपचाप और अलिप्त दूर खड़ा देखता रहता है। ऐसा व्यक्ति, कृष्ण कहते हैं, मुझे प्रिय है।

दो तीन बातें कल के सम्बन्ध में। कल वे ही मित्र यहाँ आयें, जो सच में ही भक्ति के इस भाव में उतरना चाहते हों, क्योंकि कल प्रयोग करने को है।

गीता का एक सूत्र बचा हैं, वह मैं परसों लूँगा। कल कोई गीता का सूत्र नहीं लूँगा। कल बात नहीं होगी। कुछ कृत्य होगा।

इतने दिन जिन्होंने सुना है, अगर उन्हें लगता हो कि कुछ करने जैसा भी है, सिर्फ सुनने जैसा नहीं है--केवल वही लोग आयें। जिनको सुनना है, वे परसों आयें, कल उनके लिये छुट्टी है। जिन्हें कुछ करना है, कल वे ही लोग आयें।

इसे जरा ईमानदारी से खयाल रख लेना, क्योंकि यहाँ कोई रुकावट नहीं लगायी जा सकती। अगर आपको नहीं करना है, तो भी आप आ गये, तो कोई रुकावट नहीं लग सकती। लेकिन वह आपकी बेईमानी होगी। आप मत आयें। आते हों, तो करने का तय करके आयें। यहाँ कुछ प्रयोग होगा, उसमें सम्मिलित होना है--पहली बात।

दूसरी बात : जो लोग यहाँ आने वाले हैं, वे एक फूल अपने साथ, कोई फूल ले आयें। और पूरे रास्ते एक ही बात मन में पुनरुक्त करते रहें--बार-बार जप की तरह--कि यह फूल मेरा अहंकार है, यह फूल मेरी अस्मिता है। यही मेरा ईगो है। उस फूल में अपने सारे अहंकार को समाविष्ट कर दें।

एक ही भाव आँख खोल कर भी करें। फूल को देखें; आँख बन्द करके भी करें। फूल को सूंघें और समझें कि यह मेरा अहंकार है, जिसको मैं सूंघ रहा हूँ। छुएँ--और समझें कि यह मेरा अहंकार है, जिसको मैं छू रहा हूँ। देखें--और समझें कि यह मेरा अहंकार है, जिसको मैं देख रहा हूँ।

घर से आते वक्त, पूरे रास्ते फूल में ही अपने ध्यान को रखें और अपने अहंकार को पूरा प्रोजेक्ट कर दें। फूल में डुबा दें--अपने अहंकार को।

जैसे-जैसे आपका अहंकार फूल में प्रवेश करने लगेगा, आपको फूल भारी मालूम पड़ने लगेगा। अगर आपने ठीक से प्रयोग किया, तो आपको भारीपन स्पष्ट अनुभव होगा। न केवल फूल भारी होने लगेगा, लेकिन जैसे-जैसे आपका अहंकार फूल में प्रवेश करने लगेगा, फूल कुम्हलाने और मुरझाने लगेगा।

पूरे प्राणों से अपने को उँडेल दें--कि सारा अहंकार मेरा इस फूल में समा जाये। यह भावना करते और सब विचार छोड़ के...। कोई विचार बीच में आ जाये, जैसे ही खयाल आये, छोड़ कर वापस इसी विचार में लग जायँ कि यह फूल मेरा अहंकार है। आप अगर अपने अहंकार को इस फूल में समाविष्ट कर लाये, तो यहाँ परिणाम हो सकेगा।

आपको फूल लाकर यहाँ चुपचाप बैठ जाना है। और कल यहाँ आकर आप बिलकुल बातचीत न करें। बिलकुल जबान बन्द कर दें। क्योंकि आपकी बातचीत आपके प्रयोग में बाधा बनेगी। जैसे ही प्रवेश करें ग्राउन्ड पर, चुपचाप अपनी जगह जाकर बैठ जायें।

फूल को दोनों हाथों के बीच में ले लें और एक ही भाव करते रहें, आँख बन्द कर के, कि इस फूल में मेरा सारा अहंकार प्रवेश कर रहा है। जब तक मैं न आ जाऊँ, आपको यह प्रयोग करते रहना है। फिर आने के बाद मैं आपको कहूँगा कि अब क्या आगे करें।

एक घन्टे का हम प्रयोग करेंगे : यह प्रयोग सामूहिक शक्तिपात का प्रयोग है।

अगर आप अपने अहंकार को छोड़ने को राजी हो गये, अगर आपने अपने अहंको फूल में समाविष्ट कर लिया, तो मैं आऊँगा और कहूँगा कि इस फूल को अब फेंक दें। मैं जब तक न कहूँ, तब तक आपको रखे बैठे रहना है।

उस फूल को गिराते ही आपको लगेगा कि जैसे सिर से पूरा बोझ, एक भार,

एक पहाड़ हट गया और उसके हटने के बाद एक काम हो सकेगा ।

बीस मिनट तक पहले चरण में यहाँ कुछ संगीत चलता रहेगा और मैं आपकी तरफ देखता रहूँगा । उन बीस मिनट में आपको एक टक मेरी तरफ देखते रहना है। चाहे पलक से आँसू बहने लगें, आपको पलक नहीं झपनी है ।

बीस मिनट आपको एकटक मेरी ओर देखना है । सारी दुनिया मिट गयी; मैं हूँ और आप हैं। बस, हम दो बचे हैं। अगर आपको यह खयाल में आ गया कि हम दो बचे हैं--मैं और आप--तो मैं आप पर काम करना शुरू कर दूँगा और जो आप वर्षों में अकेले नहीं कर सकते, वह क्षणों में हो सकता है ।

लेकिन हिम्मत की जरूरत है कि आप बीस मिनट आँख एक टक मेरी ओर देखते रहें। और आपको किसी को भी नहीं देखना है। यहाँ इतने लोग हैं, आपको मतलब नहीं । आपको मुझे देखना है। आपके पड़ोस में कोई चीखने-चिल्लाने लगे, रोने लगे, कुछ करने लगे, आपको आँख नहीं फेरनी है। आपको मेरी तरफ देखना है।

यह प्रयोग गुरु-गंभीर है और इसको अगर आप थोड़ा समझपूर्वक करेंगे, तो बड़े अनुभव पर उतर जायेंगे ।

बीस मिनट आपको मेरी तरफ देखते रहना है और जो कुछ आपके भीतर हो, उसे होने देना है ।

कोई चीखने लगेगा, कोई चिल्लाने लगेगा, कोई रोने लगेगा । किसी ने रोना रोक रखा है--सालों से, जन्मों से; घाव भरे हैं--वे बहने लगेंगे । कोई खिलखिला कर हँसने लगेगा । कोई पागल जैसा व्यवहार करने लगेगा, उसकी फिक्र न करें। और आपके भीतर भी कुछ होना चाहे, तो उसे रोकें मत । यह साहस हो, तो ही आना ।

पागल होने की हिम्मत हो, तो ही आना। अपने को रोक लिया, तो आपका आना व्यर्थ हुआ और आपके कारण आपके आसपास ही हवा भी व्यर्थ होगी। आप मत आना। आपकी कोई जरूरत नहीं है।

बीस मिनट आपकी सारी बीमारी, आपकी सारी विक्षिप्तता को मैं खींचने की कोशिश करूँगा--आपकी आँखों के जरिये। अगर आपने मेरे साथ सहयोग किया, तो आपके न मालूम कितने मानसिक तनाव, बीमारी, चिंता गिर जायेगी । आप एकदम हलके हो जायेंगे ।

फिर बीस मिनट मौन रहेगा । उस मौन में फिर पत्थर की तरह होकर बैठ जाना है। आँख बंद और शरीर मुरदे की तरह छोड़ देना है।

फिर बीस मिनट, आखिरी चरण में, आपको अभिव्यक्ति का मौका होगा। इस बीस मिनट के मौन में आपको जो आनन्द उपलब्ध हुआ हो ...। और गहन आनंद

उपलब्ध होगा और जो शांति आपने जानी, वह आपके भीतर झरने की तरह बहने लगेगी। उसको अभिव्यक्ति देने के लिये बीस मिनट होंगे ।

कोई खुशी से नाचेगा, कोई गीत गायेगा, कोई कीर्तन करेगा । लेकिन आपको दूसरे पर ध्यान नहीं देना है। आपको अपने भीतर का ही भाव देखना है--कि मुझे नाचना है, तो नाच लूँ । शांत बैठना है, शांत बैठा रहूँ । गाना है--गा लूँ । और किसी की चिंता न करूँ ।

एक घन्टे अगर आप मेरे साथ सहयोग करते हैं, तो मैं आपके भीतर प्रवेश कर सकता हूँ। और आपके भीतर बहुत कुछ बदला जा सकता है।

और यह प्रयोग इसलिये है कि आपको एक झलक मिल जाय। क्योंकि हम उसकी खोज भी कैसे करें, जिसकी हमें झलक भी न हो? जिस परमात्मा का हमें जरा-सा भी स्वाद नहीं है, उसकी हम खोज भी कैसे करें? थोड़ी-सी झलक हो, थोड़ा-सा उसका स्वर सुनायी पड़ जाय: थोड़े-से उसके आनन्द का झरना फूट पड़े, थोड़ा-सा उसका प्रकाश दिखायी पड़ जाय, तो फिर हम भी दौड़ पड़ेंगे। फिर हमारे पैरों का सारा आलस्य मिट जायेगा । और फिर हमारे प्राणों की सारी सुस्ती दूर हो जायेगी । लेकिन एक झलक मिल जाय--जरा-सी झलक, फिर हम उसकी खोज कर लेंगे--जन्मों-जन्मों में। फिर वह हमसे बच नहीं सकता। फिर वह कहीं भी हो, हम उसका पता लगा लेंगे।

मैंने सुना है कि एक गाँव से जिप्सियों का समूह निकलता था और गाँव के एक बच्चे को, जो चर्च के पादरी का एक बच्चा था, उन्होंने चुरा लिया । उसे उन्होंने अपनी बैलगाड़ी में अंदर बन्द करके डाल दिया और उनका समूह आगे बढ़ने लगा।

जिप्सी अकसर बच्चे चुरा लेते हैं। वह छोटा बच्चा था। उसको कुछ समझ में न आ रहा था कि क्या हो रहा है। लेकिन गाड़ी में पड़े हुए उसका ध्यान तो अपने गाँव की तरफ लगा था--कि गाँव दूर होता जा रहा है ।

साँझ का वक्त था और चर्च की घन्टियाँ बज रही थीं। वह घन्टी को सुनता रहा । जेसे-जैसे गाड़ी दूर होती गयी, घन्टी की आवाज धीमी होती गयी । लेकिन और गौर से सुनता रहा । क्योंकि शायद यह आखिरी बार हो। अब दोबारा यह मौका आये न आये। अपने गाँव की आज सुन सकेगा या नहीं। और इस गाँव की एक ही याददाश्त--यह बजती हुई घन्टी का धीमा होता जाना, धीमा होते जाना...। और वह इतने गौर से सुनने लगा कि राह पर चलती गाड़ियों की आवाज, घोड़ों की आवाज, जिप्सियों की बातचीत--सब उसे भूल गयी। सिर्फ उसे घन्टी की आवाज सुनायी पड़ती रही । बड़े दूर तक सन्नाटे में वह उसे सुनता रहा।

फिर वर्षों बीत गये। बड़ा हो गया। उसके गाँव की उसे सिर्फ एक ही याद रह

गयी--वह घन्टी की आवाज। अपने बाप का नाम उसे याद न रहा; अपने गाँव का नाम याद न रहा; अपने गाँव की शक्ल याद न रही। उसका घर, उसका चर्च कैसा था, वह सब विस्मृत हो गया। वह बहुत छोटा बच्चा था। लेकिन एक बात चित्त में कहीं गहरे उतर गयी : वह घन्टी की आवाज।

लेकिन घन्टी की आवाज से क्या होगा? कैसे वापस खोजे?

जवान होते वह भाग खड़ा हुआ। जिप्सियों को उसने छोड़ दिया। और वह हर गाँव के आसपास साँझ को जाकर खड़ा हो जाता था--जिस भी गाँव के पास होता था, और घन्टी की आवाज सुनता था।

कहते हैं कि पाँच साल के निरन्तर खोज के याद आखिर एक दिन एक गाँव के पास उसे चर्च की घन्टी पहचान में आ गयी--कि यह वही घन्टी है। फिर चर्च से दूर जाकर भी उसने देख लिया। जैसे-कैसे दूर गया, घन्टी वैसी ही धीमी होती गयी, जैसी पहली बार हुई थी।

फिर वह भागा हुआ चर्च में पहुँच गया। एक स्वर मिल गया, तो वह चर्च भी पहचान गया। वह पिता के चरणों में गिर पड़ा। पिता बूढ़ा था और मरने के करीब था। और पिता नहीं पहचान पाया। उसने अपने बेटे से पूछा कि 'तूने कैसे पहचाना? तू कैसे पहचाना? तू कैसे वापस आया? मैं तक तुझे भूल गया हूँ।' तो उसने कहा, 'एक आवाज--इस चर्च की घन्टी आवाज मेरे साथ थी।'

कल के इस प्रयोग में अगर आपको थोड़ी-सी भी आवाज उस परमात्मा की सुनायी पड़ जाय, तो वह आपके साथ रहेगी। और जन्मों-जन्मों में कहीं भी वह आवाज सुनायी पड़ जाय और समझेंगे कि परमात्मा का मंदिर निकट है; खोज हो सकती है।

लेकिन कल केवल वे ही लोग आयें, जो प्रयोग करने की तैयारी रखते हों। बाकी, ईमानदारी से कोई व्यक्ति न आये।

अब हम कीर्तन करें। पाँच मिनट बैठे रहें अपनी जगह पर। उठें न। कीर्तन के बाद जायें।

सामूहिक शक्तिपात ध्यान

क्रॉस मैदान, पारसी कुआँ, बम्बई, संध्या, दिनांक २१ मार्च, १९७३

जीवन उतना ही नहीं है, जितना आप उसे जानते हैं। आपको जीवन की सतह का भी पूरा पता नहीं है। उसकी गहराइयों का—अनंत गहराइयों का आपको स्वप्न भी नहीं आया। लेकिन आपने मान रखा है कि जैसे आप हैं, वह होने का अंत है। अगर ऐसा आपने मान रखा है कि जैसे आप हैं, वही होने का अंत है, तो फिर आपके जीवन में आनन्द की कोई सम्भावना नहीं। फिर आप नरक में ही जीयेंगे और नरक में ही समाप्त होंगे।

जीवन बहुत ज्यादा है। लेकिन उस ज्यादा जीवन को जानने के लिये ज्यादा खुला हृदय चाहिये। जीवन अनंत है। और उस अनंत को देखने के लिये बन्द आँखें काम न देंगी। जीवव विराट् है और अभी और यहीं जीवन की गहराई मौजूद है। लेकिन आप अपने द्वार बन्द किये बैठे हैं। और अगर कोई आपका द्वार भी खटखटाये, तो आप भयभीत हो जाते हैं। और भी मजबूती से द्वार बन्द कर लेते हैं।

मैंने आज आपको बुलाया है। मैं आप के द्वार नहीं खटखटाऊँगा, बल्कि आपके द्वार तोड़ भी डालूँगा। पर आपकी तैयारी चाहिये। आप अगर भयभीत रहे, तो आप वंचित रह जायेंगे। भय से अगर आपने आँखें बन्द रखीं, तो सूरज निकलेगा भी, तो भी आपके लिये नहीं निकलेगा। आप अँधेरे में ही रह जायेंगे।

यह प्रयोग तो साहस का प्रयोग है; और केवल उन लोगों के लिये है, जो अपने से ऊब चुके हैं—भलीभाँति। और जो अपने से अच्छी तरह परेशान हो चुके हैं। और जिन्होंने यह भलीभाँति समझ लिया है कि जैसे वे हैं, वैसे ही रहने से कोई भी मार्ग नहीं है। तो बदलाहट हो सकती है। तो क्रांति आ सकती है।

सुना है मैंने कि दूर पहाड़ियों में बसा हुआ एक गाँव था। खाई में बसा हुआ था। ऊँचाई पर वर्षा आती, नदियों में बाढ़ आती, गाँव के घर बह जाते, खेती-बाड़ी नष्ट हो जाती। जानवर बह जाते, बच्चे डूब जाते। झंझावात आते, आँधियाँ आतीं। पहाड़ से पत्थर गिरते, लोग दब जाते और मर जाते।

उस गाँव की जिन्दगी बड़े कष्ट में थी। जिन्दगी थी ही नहीं, बस, मौत से लड़ने का नाम ही जिन्दगी थी। कभी वर्षा सताती, कभी तूफान सताते। और जीना

दूभर था। लेकिन उस पहाड़ी गाँव के लोग मानते थे कि यही एक ढंग है जीने का, क्योंकि बचपन से वे इसी ढंग से परिचित थे। उनके बापदादे भी ऐसे ही जीये थे। उनके बाप-दादों के बाप-दादे भी ऐसे ही जीये थे। यही मुसीबत उनकी कथाओं में थी। यही बाढ़ों का आना और डूब जाना; और पत्थरों का गिरना और मौत घटित होना और जूझते जूझते जन्मना और जूझते जूझते मर जाना--यही उनके सारे पुराण थे।

लेकिन एक रात एक भटकता हुआ यात्री उस गाँव में पहुँच गया। और उसने कहा कि 'तुम नासमझ हो। तुम्हारी समस्याओं को हल करने का कोई उपाय नहीं है। तुम थोड़े अपने मकान ऊँचाइयों पर बनाओ। इस खाई-खंदकों को छोड़ो। और इतने सुन्दर पहाड़ तुम्हारे चारों तरफ हैं, इनके उतार पर अपने मकान बनाओ।

गाँव के लोगों ने पूछा कि 'क्या उससे हमारी समस्याएँ हल हो जायेंगी? क्योंकि ऊँचे मकान के बनवाने से समस्याओं का क्या हल होगा! वर्षा तो आयेगी, तूफान तो होंगे। नदियाँ तो बहेंगी। ये थोड़े ही रुक जायेंगे।'

उनका सवाल ठीक था। लेकिन उस यात्री ने हँस कर कहा कि 'तुम घबड़ाओ मत। तुम्हारी समस्याएँ बदल जायेंगी, क्योंकि तुम ऊँचाई पर चले जाओगे। तुम नीचाई पर हो, इसलिये समस्याएँ है। और यहीं--नीचाई पर अगर तुम समस्याओं को हल करना चाहते हो, तो कभी हल न कर पाओगे।'

गाँव के लोग हिम्मतवर रहे होंगे। बड़ी हिम्मत की जरूरत है—पुरानी आदतों को बदलने के लिये। उन्होंने ऊँचे मकान, ऊँचाइयों पर बनाने शुरू कर दिये। और तब गाँव के लोगों ने उत्सव मनाया और उन्होंने कहा कि हमें आश्चर्य है कि हमें यह खयाल पहले क्यों न आया! नदियाँ अब भी बहेंगी, लेकिन अब हमारा कोई नुकसान न कर पायेंगी। पत्थर अब भी गिरेंगे, लेकिन हम खाई-खन्दकों में नहीं हैं।

आप जहाँ जी रहे हैं, वह एक खाई है। जहाँ सारी मुसीबतें गिरती हैं और आप परेशान होते हैं।

यह प्रयोग आपको खाई से निकाल कर ऊँचाई पर ले चलने का है। लेकिन मुश्किल है--पुरानी आदतों को छोड़ना; चाहे वे आदतें कितनी ही तकलीफ क्यों न देती हों।

क्रोध किसको तकलीफ नहीं देता? ईर्ष्या किसको नहीं जलाती? दुश्मनी से किसको आनन्द मिला है? लेकिन हम आदी हैं। और अगर कोई कहे कि लाओ, मैं तुम्हारा क्रोध ले लूँ, तो भी हम संकोच करेंगे और कंजूसी दिखायेंगे।

यह प्रयोग इसलिये है कि मैं आपसे आपकी सारी बीमारियाँ माँगता हूँ। और आपको रास्ता भी बताता हूँ कि आप कैसे इन बीमारियों को मुझे दे सकते हैं। वे

बीमारियाँ आप से छूट सकती हैं, क्योंकि आप बीमारियाँ नहीं हैं; बीमारियाँ केवल आपकी आदत है। आदतें बदली जा सकती हैं। उन्हें आपने बनाया है, आप उन्हें मिटा सकते हैं।

लेकिन हमारे पास बीमारियों की राशि है। जन्मों-जन्मों से न मालूम हमने कितना उपद्रव भीतर इकट्ठा कर रखा है। कितने आँसू हैं भीतर, जो बहना चाहते थे, लेकिन नहीं बह सके। कितनी चीख-पुकार है भीतर, जो प्रकट होना चाहती थी, और प्रकट नहीं हो पायी। कितना क्रोध, कितनी आग है—भीतर जल रही है। उस आग, घृणा, क्रोध, विक्षप्तता के कारण आपका जीवन सदा एक ज्वालामुखी के ऊपर है। जिसमें कभी भी विस्फोट हो सकता है।

मनसविद् कहते हैं कि हर आदमी पागल होने के किनारे ही खड़ा है। और कभी भी पागल हो सकता है। और वे ठीक कहते हैं। पागलपन करीब-करीब सामान्य हालत है। लेकिन मैं आपको एक रास्ता बताता हूँ कि आपके भीतर जो भी दबा हो, उसे आप खुले आकाश में छोड़ दें।

किसी के ऊपर क्रोध करने की जरूरत नहीं है, वह खुले आकाश में भी छोड़ा जा सकता है। भीतर जो पागलपण है, उससे किसी को नुकसान पहुँचाने की जरूरत नहीं है। पागलपन को हवा में इव्होपोरेट, वाष्पीभूत किया जा सकता है।

और जैसे ही आप अपने इस उपद्रव को फेंकने लगेंगे, वैसे ही आप पायेंगे कि आपके सिर का बोझ हलका हुआ जा रहा है। और आपके आसपास की दीवाल टूटती जा रही है और आप आकाश के लिये खुल रहे हैं और परमात्मा के लिये रास्ता बन रहा है।

यह प्रयोग समर्पण का प्रयोग है। इसमें आप अपने को छोड़ेंगे, तो ही कुछ हो पायेगा। आपकी बुद्धिमत्ता की इसमें जरूरत नहीं है। आप अपनी बुद्धिमत्ता से तो जी ही रहे हैं। परिणाम आपके सामने है। आप जो हैं, वह आपकी बुद्धिमत्ता का परिणाम है। उसे बुद्धिमत्ता कहें या बुद्धिहीनता कहें--कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन जो भी आप हैं, आपकी बुद्धिमानी का परिणाम हैं।

यह प्रयोग आपकी बुद्धिमानी का नहीं है। आपको अपनी बुद्धिमानी छोड़ देनी है। उससे आप जी कर काफी देख लिये।

एक घन्टे भर के लिये मुझे मौका दें कि मैं आपके भीतर प्रवेश कर सकूँ और आपको बदल सकूँ। अगर आप राजी हुए, थोड़ा-सा भी झरोखा आपने खोला, तो मैं एक ताजी हवा की तरह आपके भीतर प्रवेश कर सकता हूँ। उसका स्पर्श आह्लादकारी होगा। मैं एक विद्युत प्रवाह की तरह आपके भीतर आ सकता हूँ, उसमें बहुत-सा कचरा जल जायेगा और सोना निखर उठेगा। लेकिन एक साहस करना

आपको जरूरी है कि आप अपनी बुद्धिमानी नहीं बरतेंगे। आपकी बिलकुल जरूरत नहीं है।

वह जो फूल मैंने आपको लाने को कहा है और कहा है कि ध्यान करते आना कि यह मेरा अहंकार है, वह इसीलिये कहा है। अगर पूरा भाव आपने किया है कि यह फूल मेरा अहंकार है, तो थोड़ी देर बाद जब मैं आपको कहूँगा अब दोनों हाथ उठा कर, पूरे मन से, भाव कर के कि यह फूल मेरा अहंकार है, उसे छोड़ दें। उस फूल के गिरते ही न मालूम आपके मन का कितना बोझ साथ गिर जायेगा। आप हलके हो जायेंगे।

आपका अहंकार बाधा है। वह हट जाय, तो मैं एक तूफान की तरह यहाँ बह सकता हूँ और जो मैं कह रहा हूँ वह कोई प्रतीक की भाषा नहीं है। मैं कोई साहित्य की बात नहीं कह रहा हूँ। मैं कोई मेटाफर में नहीं बोल रहा हूँ। वस्तुतः मैं एक तूफान की तरह आपके आसपास घूमूँगा और जैसे कोई तूफान एक वृक्ष को पकड़ ले और उसे हिलाने लगे और उसके सारे सूखे पत्ते गिर जायँ, और उसकी सारी धूल झड़ जाय, वैसा मैं आपको पकड़ लूँगा। तब आप एक वृक्ष की तरह ही कँपने लगेंगे और आपका रोआँ-रोआँ स्पन्दित हो उठेगा। आपकी प्राण-ऊर्जा जागने लगेगी और आपके भीतर शक्ति का एक प्रवाह शुरू हो जायेगा।

जैसे ही आप अपने को छोड़ेंगे, मैं काम करना शुरू कर दूँगा। आपका छोड़ना पहली शर्त है। उसके बाद आपको कुछ भी नहीं करना है। चीजें होनी शुरू हो जायेंगी। आपको एक ही काम करना है कि आप कुछ मत करना। आप सिर्फ छोड़ देना और प्रतीक्षा करना।

जैसे ही मेरी शक्ति आपकी शक्ति से मिलेगी, आपके साँस में परिवर्तन शुरू होगा। वह पहला लक्षण होगा कि आप मुझसे मिल गये हैं। ठीक रास्ते पर हैं। आपने मेरी तरफ छोड़ दिया है अपने आपको। जैसे ही आप छोड़ेंगे, आपकी साँस बदलने लगेगी। आपकी साँस तेज और गहरी होने लगेगी। जब यह साँस तेज और गहरी होने लगे, समझना कि पहला लक्षण है। और उसे रोकना मत। उसे और गहरा हो जाने देना। उसे पूरा सहयोग देना, ताकि पूरी तरह आपको कँपाने लगे। वह आपके भीतर चलने लगे, जैसे कि लोहार की धौंकनी चलती है।

वह साँस आपके भीतर बहुत कुछ लायेगी और बहुत कुछ आपके बाहर ले जायेगी। वह साँस मुझे आपके भीतर लायेगी और आपके कूड़ा-करकट को बाहर फेकेगी। वह साँस आपके भीतर विराट् का स्पन्दन बनने लगेगी और आपकी क्षुद्रता को बाहर फेंकने लगेगी। आपकी आती साँस में मैं आऊँगा और जाती साँस में आपसे कुछ ले जाऊँगा। इसलिये जितनी तेज साँस हो सके, उतना लाभ होगा,

क्योंकि उतनी तेजी से आप उलीचेंगे। तो जब आपकी साँस तेज होने लगे, तब साथ देना और बाधा मत डालना।

दूसरा अनुभव : जैसे ही साँस तेज होगी, आपको तत्काल लगेगा कि आपके शरीर में एक नयी विद्युत, एक इलेक्ट्रिसिटि, एक जीवन ऊर्जा दौड़ने लगी। रोआँ-रोआँ कँपना चाहेगा, नाचना चाहेगा। शरीर में बहुत ही प्रक्रियाएँ शुरू हो जायेंगी। मुद्राएँ बनने लगेंगी। कोई एकदम से खड़ा होना चाहेगा। किसी का सिर घूमने लगेगा। किसी के हाथ ऊपर उठ जायेंगे। कुछ भी हो सकता है। और जो भी हो, उसे आपको रोकना नहीं है--होने देना है। आप जैसे बह रहे हैं, एक नदी में। आपको तैरना जरा भी नहीं है। नदी की धार जहाँ ले जाये।

आपको पता नहीं है कि क्या हो रहा है। इसलिये आप से कहता हूँ कि रोकना मत। अगर आप बहुत क्रोधी हैं, तो आपके दोनों हाथों की अंगुलियों में क्रोध समाविष्ट है। और जब मैं आपको पकड़ूँगा, तो क्रोध आपको अंगुलियों से निकलना शुरू होगा; आपके हाथ कँपने लगेंगे। अगर आप बहुत चिन्ता से भरे हुए व्यक्ति हैं, आपका मस्तिष्क बहुत बोझिल है, तो आपका सिर कँपने लगेगा और उससे चिन्ताएँ गिरनी शुरू हो जायेंगी। अगर आप बहुत कामुक व्यक्ति हैं, तो आपके काम-केन्द्र पर बहुत जोर से ऊर्जा का प्रवाह शुरू होगा। आप घबड़ाना मत। वह प्रवाह ऊपर की तरफ उठेगा, क्योंकि मैं उसे ऊपर की तरफ खींच रहा हूँ। वही कुण्डलिनी बन जाती है।

आपकी पूरी रीढ़ कँपने लगेगी। उसके साथ-साथ आपका पूरा शरीर कँपने लगेगा। लगेगा कि कोई आपको आकाश की तरफ खींच रहा है। निश्चित ही मैं आपको आकाश की तरफ खींचूँगा और अगर आपने बाधा न दी, तो आप इस पूरे प्रयोग में पायेंगे कि आप वेटलेस हो गये; आपका कोई वजन न रहा। जमीन का ग्रेव्हिटेशन, जमीन को कशिश कम हो गयी। लेकिन आपको छोड़ना पड़ेगा।

साँस बढ़ेगी, फिर आपकी प्राण-ऊर्जा बढ़ेगी और तीसरा--स्पन्दन और गहरा होगा (रोने-चिल्लाने की आवाजें।) (अभी रुकें; पूरी बात समझ लें) और जब स्पन्दन पूरा गहरा होगा...। (चिल्लाने की आवाजें।) (इन्हें थोड़ा सम्हालें, अभी रुकें।) तो आपके भीतर से आवाजें निकलनी शुरू हो जायेंगी : चीत्कार, हुँकार या कोई मंत्र का उद्घोष या रोना, चिल्लाना, हँसना या स्क्रीम या सिर्फ चिल्लाहट--चीख--उसको रोकना मत। उसे हो जाने देना। उसके साथ ही न जाने आपके भीतर के कितने रोग बाहर हो जायेंगे। आप हलके हो जायेंगे--एक बच्चे की तरह कोमल, हलके और निर्दोष।

यह पहला चरण है। बीस मिनट तक यह प्रयोग चलेगा। यहाँ संगीत चलता

रहेगा। आपको एकटक मेरी तरफ देखना है, ताकि मैं आपकी आँखों से प्रवेश कर सकूँ। छोड़ना है अपने को और मेरी तरफ देखना है। फिर शेष काम मैं कर लूँगा।

बीस मिनट के बाद संगीत बन्द हो जायेगा। और तब आप जिस अवस्था में होंगे, वैसे ही रुक जाना है। कोई अगर खड़ा रह गया हो, तो वह वैसा ही खड़ा रह जायेगा। किसी का हाथ अगर आकाश की तरफ उठा हो, तो हाथ को वहीं रहने देना है। किसी की अगर गरदन झुक गयी है, तो वैसे ही रह जाना है। फिर जो भी अवस्था आपकी हो...। बीस मिनट की प्रक्रिया के बाद, मृत--जैसे आप अचानक पत्थर हो गये, वैसे ही रह जाना है। जैसे ही आवाज होगा : रुक जायें --आँख बन्द कर लेनी है।

दूसरे चरण में आँख बन्द करके पत्थर की मूर्ति की तरह हो जाना है। कितना ही मन हो कि जरा पैर हिलाऊँ, कि जरा आँख खोलूँ, कि जरा हाथ बदल लूँ, कि जरा करवट बदल लूँ--मन को रोकना। यह मन बेईमान है। वह जो भीतर शक्ति जगी है, उससे डाईव्हर्ट कर रहा है, उससे हटा रहा है। बिलकुल बीस मिनट पत्थर की तरह रह जाना। और आप रह सकेंगे। अगर पहले बीस मिनट आपने शरीर को पूरे प्रवाह में बहने दिया, तो दूसरे बीस मिनट में आपको कोई बाधा नहीं आयेगी। आप मूर्तिवत् हो जायेंगे।

ये दूसरे बीस मिनट में मैं आपके मौन में काम करूँगा। और आपसे मौन में मिलूँगा।

शब्दों से मैंने आपसे बहुत-सी बातें कही हैं। लेकिन जो भी महत्त्वपूर्ण है, वह शब्दों से कहा नहीं जा सकता। और क्योंकि गहरा है, इसलिये कभी भी शब्दों से नहीं कहा गया है। उसके लिये तो मौन में ही संवाद हो सकता है।

अगर आप प्रयोग में ठीक से उतरें, तो मौन में आप से कुछ कह सकूँगा और मौन में कुछ कर भी सकूँगा।

दूसरे चरण में, एक बीस मिनट की गहरी शान्ति में आपको अपूर्व अनुभव होंगे। आनन्द से हृदय भर जायेगा। जैसा आनन्द आपने कभी भी न जाना होगा। और ऐसा सन्नाटा, ऐसी शान्ति और शून्य भीतर उतर आयेगा--जो अपरिचित है। आप अपने ही भीतर एक ऊँचाई पायेंगे, जिससे आप कभी भी सम्बंधित नहीं थे। आप खाई से ऊपर उठ गये--पहाड़ की चोटियों की तरफ और वहाँ आपको नये प्रकाश का अनुभव होगा। और परमात्मा की असीम उपस्थिति प्रतीत होगी।

तीसरे बीस मिनट में आपको अपने आनन्द को प्रकट करने का अवसर होगा। तब जो भी आपकी मौज में, अहोभाव में पैदा हो जाय...। आप नाचना चाहें, आप गाना चाहें, हँसना चाहें या मौन रहना चाहें--जो भी होना चाहें, बीस मिनट

आप परमात्मा के अनुग्रह में डूब जायेंगे।

पहले बीस मिनट में आपको आपकी बीमारियों से मुक्त करना है। दूसरे बीस में आपके मौन में, आपके आनन्द को जन्म देना है। तीसरे बीस मिनट में आपके अहोभाव, कृतज्ञता के बोध को विकसित करना है। ये तीन चरण हैं। और आपको सिर्फ इतना करना है कि आप बाधा मत डालना; आप सहयोग देना।

कुछ साधारण सूचनायें। बहुत कुछ होना शुरू होगा, तो आप दूसरे पर ध्यान मत देना। नहीं तो आप चूक जायेंगे। बच्चों जैसा मत करना। आप छोटे बच्चे नहीं हैं।

बगल में अगर कोई चीखने लगे, तो आपको देखने की जरूरत नहीं; चीखने देना। कोई बगल में नाचने लगे, तो आपको लौट कर देखने की जरूरत नहीं है। नहीं तो आप चूक जायेंगे। इतनी-सी बाधा और आप से मेरा सम्बंध टूट जायेगा। आप मेरी तरफ ही देखते रहना। आसपास कुछ भी हो।

यह पूरा स्थान एक तूफान, एक विक्षिप्तता की स्थिति में हो जायेगा। आप एक ही याद रखना कि आपको मुझसे सम्बन्ध है और यहाँ कोई भी नहीं है। कितना ही मन हो कि जरा यहाँ देखें, वहाँ देखें--इस फिजूल बात को रोकना। क्योंकि जिंदगी भर से यहाँ-वहाँ देख रहे हैं, उससे कुछ हो नहीं गया है। और आपके देखने से कुछ होगा भी नहीं। आप चूक जायेंगे, समय व्यर्थ जायेगा। एक अवसर जरा-सी बचकानी बात से खोया जा सकता है। तो यहाँ वहाँ मत देखना।

और बीस मिनट, शुरू के बीस मिनट आपको एकटक देखना है, पलक झुकानी नहीं है। आँख से आँसू बहने लगें, फिक्र मत करना। कोई आँखें खराब नहीं हो जानेवाली हैं। सिर्फ ताजी हो जायेंगी। थोड़ी धूल बह जायेगी, स्वच्छ हो जायेंगी।

आप देखते ही रहना। इतना थोड़ा-सा बल रखना। मेरी तरफ देखते ही रहना, क्योंकि आँख के द्वारा ही मैं सरलता से प्रवेश कर सकूँगा।

वे तीन चरण खयाल में रखना।

अब हम शुरू करेंगे। आप जो फूल साथ में लाये हैं, उसे दोनों हाथों के बीच में ले लें।...दोनों हाथों के बीच फूल को ले लें और हथेलियों को बंद कर लें। और एक बार और पूरे मन से भाव करें कि मेरा अहंकार इस फूल में केन्द्रित है। ...दोनों हाथ ऊपर उठा लें फूल के साथ। फूल को ऊपर उठा लें। दोनों हाथ ऊपर लें लें। आखिरी भाव करें कि यह फूल मेरा अहंकार है और मैं इस अहंकार को छोड़ता हूँ। और फूल को दोनों हाथों से जमीन की तरफ छोड़ दें।

अब मेरी ओर देखें।

(चीखना, चिल्लाना, रोना आदि की तीव्र आवाजें।... २० मिनट तक प्रयोग

जारी रहा)।

...अब रुक जायें। (फिर दूसरे बीस मिनट तक सब ओर गहन सन्नाटा रहा। फिर तीसरे बीस मिनट में संगीत बजता रहा। लोग नाचते, गाते रहे। उत्सव चलता रहा। फिर भगवान् श्री ने समापन के कुछ शब्द कहे।):

जिन्होंने किया, वे पुरस्कृत हुए। लेकिन नासमझों की कोई कमी नहीं है। और आप में बहुत हैं, जो नासमझ हैं। कुछ बातें हैं, जो देखने से दिखायी नहीं पड़तीं। और मनुष्य के भीतर क्या घटित होता है, जब तक आपके भीतर घटित न होता हो, तो आपको पता नहीं चल सकता। अगर आप बाहर से देख रहे हैं, तो यह भी हो सकता है कि दूसरा आदमी पागलपन कर रहा है। लेकिन मेरे सामने आप पागल सिद्ध हो गये।

कुछ चीजें हैं, जो केवल भीतर से ही देखी जा सकती हैं। और जब तक आप ही न उतर जायें किसी अनुभव में, तब तक उसके सम्बन्ध में आप कुछ भी नहीं जान सकते। कोई प्रेम में है...।

(एक आदमी शोर मचा रहा है।...) चुप हो जायें। खड़े रहने दो, उनको खड़े रहना है तो। लेकिन चुप रहें।)

कोई प्रेम में है, तो बाहर से आप कुछ भी नहीं जान सकते कि उसे क्या हो रहा है। कोई आनन्द में है, तो भी बाहर से नहीं जाना जा सकता कि क्या हो रहा है। कोई दुःख में है, तो भी बाहर से नहीं जाना जा सकता कि उसके भीतर क्या हो रहा है। भीतर तो आप वही जान सकते हैं, जो आपके भीतर हो रहा है।

इसलिये भक्त अकसर पागल मालूम पड़े हैं। और लगा है कि उसका मस्तिष्क खराब हो गया। लेकिन एक बार मस्तिष्क खराब कर के भी देखना चाहिये। वह स्वाद ही और है। और अनुभव का रस एक बार आ जाय, तो आप दुनिया भर की समझदारी उसके लिये छोड़ने को राजी हो जायेंगे। लेकिन कुछ छोटी-सी बातें बाधा बन जाती हैं।

एक तो यही बात बाधा बन जाती है कि जो मुझे नहीं हो रहा है, वह दूसरे को भी कैसे होगा! आप मापदण्ड नहीं हैं। न कसौटी हैं। बहुत कुछ है, जो दूसरे को हो सकता है और आपको नहीं हो रहा है। और ध्यान रखना: जो दूसरे को हो रहा है, वह आपको भी हो सकता है, सिर्फ साहस की जरूरत है।

और दुनिया में बड़े से बड़ा साहस एक है और वह साहस है इस बात का कि लोग चाहे हँसें, तो भी नये के प्रयोग करने या साहस।

बड़ा डर हमें लगता है कि कोई क्या कहेगा। हम मरते वक्त तक लोगों का ही हिसाब रखते हैं कि कोई क्या कहेगा। इसी में हम जीवन को गँवा देते हैं। पड़ोसी क्या

कहेंगे? वह आपको नाचते, गाते और आनन्दित होते देखेगा, तो क्या कहेगा? पत्नी क्या कहेगी; पति क्या कहेगा; बच्चे आपके क्या कहेंगे? तो आप दूसरों के मंतव्य इकट्ठे करते रहना और जीवन की धारा आपके पास से बही जा रही है।

आपके पास से बुद्ध भी गुजरे हैं और आप उनसे भी चूक गये और आपके पास से कृष्ण भी गुजरे हैं, उनसे भी आप चूक गये। और क्राइस्ट भी आपके पास से निकले हैं और आपको उनकी कोई सुगन्ध न लगी। क्योंकि आप हमेशा यह खयाल कर रहे हैं कि कोई क्या कहेगा! आप नाहक ही वंचित हो जाते हैं।

फिर एक बात ध्यान रखनी चाहिये कि धर्म तो एक प्रयोग है। और जब तक आप प्रयोग कर के न देखें, तब तक आप कुछ भी नहीं कह सकते कि क्या होता है। नये के प्रयोग को कर के ही निर्णय लेना चाहिये।

यहाँ दो तरह के लोग हैं। एक जिन्होंने प्रयोग किया; और एक जो बिना प्रयोग यहाँ खड़े रहे। और मजे की बात यह है कि जिन्होंने प्रयोग किया है, वे शायद किसी से कुछ भी न कहें। लेकिन जिन्होंने प्रयोग नहीं किया है, वे बिलकुल तैयार हैं। उनका मन बिलकुल तैयार है कि वे जाकर लोगों को कहें कि वहाँ क्या हुआ। अगर आपने प्रयोग न किया हो, तो किसी से मत कहना कि वहाँ क्या हुआ। क्योंकि जो भी आ बोलोगे, वह झूठ होगा। वह आपका अनुभव नहीं है। आपने अनुभव किया हो, तो ही लोगों को कहना कि क्या हुआ। क्योंकि इस बात में कोई सच्चाई है। लेकिन हम ईमानदारी से जैसे जरा भी सम्बन्धित नहीं रहे। और हमारा सारा व्यक्तित्व अब झूठा हो गया है।

इधर मैं देखता हूँ। इधर मैंने देखा; सैकड़ों लोग थे, जो हिल रहे थे, लेकिन रोक भी रहे थे। कहीं सच में ही कोई चीज कँपा न जाय! क्या रोक रहे हैं; आपके पास बचाने को भी क्या है?

बड़ा मजा तो यह है कि बचाने को भी कुछ होता, तो भी कोई बात थी; बचाने को कुछ भी नहीं है। आप खो क्या देंगे? आपके पास है क्या, जो नष्ट हो जायेगा? जो आपके पास है, वह नष्ट होने योग्य है। लेकिन उसी को बचा रहे हैं!

सुना है मैंने कि फ्रान्स में क्रान्ति हुई, तो बैस्टली के किले में जहाँ कि आदिम अपराधियों को रखा जाता था, क्रान्तिकारियोंने दीवालें तोड़ दीं और वहाँ के हजारों कैदियों की जंजीरें तोड़ दीं; उन्हें मुक्त कर दिया। लेकिन वे कैदी आदिम कैदी थे। कोई बीस वर्ष से, कोई पन्द्रह वर्ष से, कोई चालीस वर्ष से, कोई पच्चास वर्ष से भी बन्द था। उनके हाथों और पैरों को जंजीरें सदा के लिये डाली गयी थीं। जब वे मरेंगे, तभी उनकी जंजीरें निकलेंगी।

क्रान्तिकरियों ने उनकी जंजीरें तोड़ दीं; उन्हें मुक्त कर दिया। और उन्होंने

सोचा कि वे बड़े आनन्दित होंगे। लेकिन आपको पता है कि क्या हुआ! आधे कैदी साँझ होते तक वापस आये और उन्होंने कहा कि 'बाहर हमें अच्छा नहीं लगता।' और उन्होंने कहा कि बिना जंजीरों के हम सो भी न सकेंगे।' बीस साल, चालीस साल वे जंजीरों के साथ सो रहे थे। 'अब हमें नींद भी न आयेगी और जंजीरें अब जंजीरें नहीं हैं, हमारे शरीर का हिस्सा हो गयी हैं। हमें जंजीरें वापस लौटा दो। और हमारी जो काली कोठरियाँ हैं, वे ठीक हैं, क्योंकि सूरज की रोशनी आँख को बहुत खलती है। और फिर इस बाहर की दुनिया में हम करें भी क्या? हमारे सारे सम्बन्ध टूट चुके हैं। हमें कोई पहचानता नहीं। हमारा कोई नाता-रिश्ता नहीं है। यह कारागृह ही अब हमारा घर है। हम यहीं मरना चाहते हैं।

क्रांतिकारियों ने कभी सोचा भी नहीं था कि कारागृह के कैदी भी वापस लौट आयेंगे! उन्होंने सोचा भी नहीं था कि स्वतंत्रता को ठुकरा कर कोई वापस लौट आयेगा। लेकिन कारागृह से भी मोह हो जाता है और जंजीरों से भी प्रेम बन जाता है। हम इसी तरह के लोग हैं।

हमारा दुःख भी हम से छूटते नहीं बनता। अगर आप रोना भी चाहते हैं, तो भी रोकते हैं। हँसना भी चाहते हैं, तो भी रोकते हैं। आप कुछ भी छोड़ नहीं सकते। आपकी जंजीरें बड़ी प्रीतिकर हो गयी हैं। वे आभूषण मालूम होती हैं। और जब तक आप इन जंजीरों से भरे रहेंगे, परमात्मा का, स्वतंत्रता का आकाश आपको उपलब्ध नहीं हो सकेगा। आपको जंजीरें छोड़नी पड़ेंगी। आपको कटघरे तोड़ने पड़ेंगे। आपको फेंकना ही पड़ेगा बोझ, जो आप सिर पर लिये हैं। क्योंकि परमात्मा की यात्रा केवल उनके लिये है, जो निर्बोझ हैं, जो हलके हैं। भारी लोगों के लिये वह यात्रा नहीं है।

एक छोटा-सा प्रयोग था, आप न भी कर पाये हों, तो कुछ खो नहीं दिया। घर जाकर अकेले में हिम्मत कर करने की कोशिश करना। यहाँ दूसरों का डर रहा होगा। घर इसे ले जाना। द्वार बन्द लर लेना। मैं वहाँ भी आपके साथ काम कर सकता हूँ। जैसा प्रयोग यहाँ किया है ...। एक फूल को रख लेना। उसमें भाव करना, अहंकार को छोड़ देना और ठीक तीन चरण में इस प्रयोग को होने देना। मैं वहाँ भी आ सकता हूँ। और एक बार आपको झलक मिल जाय, तो आप दूसरे आदमी हो जायेंगे। आपका नया जन्म हो जायेगा। और जब तक आपका नया जन्म न हो, तब तक आपका आज का जीवन और जन्म बिलकुल व्यर्थ है।

इस मुल्क में हम उस आदमी को पूजते रहे हैं, जिसको हम द्विज कहते हैं--ट्वाइस बॉर्न। द्विज हम उसे कहते हैं ...।

एक तो जन्म वह है, जो हमें माँ-बाप से मिलता है। वह असली जन्म नहीं है।

एक जन्म वह है, जो आप और परमात्मा के बीच सम्पर्क से मिलता है। वही असली जन्म है। क्योंकि उसके बाद ही आप जीवन को उपलब्ध होते हैं।

माँ-बाप से जो जन्म मिलता है, वह मृत्यु में ले जाता है और कहीं नहीं ले जाता। उसको जीवन कहना व्यर्थ है। एक और जीवन है, जो कभी नष्ट नहीं होता। और जब तक उसकी सुगन्ध, उसकी सुवास, आपको उसका संस्पर्श न हो जाये, तब तक आप जानना कि आप व्यर्थ ही भटक रहे हैं। और जहाँ हीरे कमाये जा सकते थे, वहाँ आप कंकड़ इकट्ठे करने में समय नष्ट कर रहे हैं।

घर जाकर इस प्रयोग को कर लेना। और ऐसा नहीं हैं कि एक दफे प्रयोग कर लिया, तो काम पूरा हो गया। इसे आप रोज सुबह कर ले सकते हैं। और अगर तीन महीने आपने इसको नियमत रूप से किया, तो आप दूसरे आदमी हो जायेंगे, द्विज हो जायेंगे। और आप अनुभव करेंगे कि पहली बार खुले आकाश में, खुली हवाओं में, खुले सूरज में, आपकी यात्रा शुरू हुई। और आप दहली दफा अनुभव करेंगे कि पृथ्वी पर होना धन्यभाग है और यह जीवन एक सौभाग्य है--अभिशाप नहीं। और परमात्मा ने इसे एक शिक्षण के लिये दिया है।

जिन मित्रों ने प्रयोग किया है, उनमें से बहुत से मित्र गहरे झलक लिये हैं। वे प्रयोग को घर जारी रखेंगे, तो उनकी गहराई बहुत बढ़ जायेगी।

एक बात ध्यान रखें : ध्यान को स्नान जैसा बना लें—रोज का कृत्य। जैसे शरीर को रोज धो लेना पड़ता है। तभी वह ताजा और साफ होता है। ऐसे ही मन को भी रोज धो लें, ताकि ताजा और साफ हो जाये। जिनके मन ताजे और साफ नहीं हैं, वे भगवान् का आवास नहीं बन सकते।

उसे हम बुलाते हैं, लेकिन हम तैयार नहीं हैं। उसे हम चाहते हैं कि वह मेहमान बने, लेकिन हमारे भीतर गंदगी और कचरे के सिवाय कुछ भी नहीं है। साधारण अतिथि घर में आता है, तो हम बड़ी तैयारियाँ और बड़ी सजावट करते हैं। और हम परमात्मा को बुलाते हैं--बिना किसी तैयारी के। वहाँ हमारी कोई सजावट नहीं है। और ध्यान रहे : वह अतिथि आने को तैयार है, लेकिन मेजबान तैयार नहीं है। थोड़ा इसे तैयार करें।

जैसा शरीर को धोते हैं रोज, वैसा मन को भी धोते रहें। धोते-धोते मन दर्पण बन जाता है और उस दर्पण में परमात्मा की छबि उतरनी शुरू हो जाती है।

परमात्मा कोई सिद्धान्त नहीं है। दर्शन-शास्त्र से उसका कोई सम्बंध नहीं है। परमात्मा एक अनुभव है। और सारे शास्त्र भी आपके पास हों, तो व्यर्थ हैं, जब तक परमात्मा की निजी एकाध प्रतीति न हो। और एक छोटी-सी प्रतीति और दुनिया दूसरी हो जाती है। फिर इस दुनिया में कोई दुःख नहीं है, कोई चिन्ता नहीं

है और कोई मृत्यु नहीं है।

अमृत की तरफ एक इशारा हमने यहाँ किया। एक प्रयोग छोटा-सा किया। जिन्होंने हिम्मत की, वे इसे दोहराएँ। जिन्होंने हिम्मत नहीं की, वे भी घर जाकर एकान्त में इसे करने की कोशिश करें। अगर आपने ठीक श्रम किया, तो एक बात पक्की है कि परमात्मा की तरफ उठाया गया कोई भी कदम व्यर्थ नहीं जाता। कोई भी कदम व्यर्थ नहीं जाता। और छोटा-सा भी प्रयास पुरस्कृत होता है।

हमारी बैठक पूरी हुई।

आधुनिक मनुष्य की साधना • जीवन की धन्यता • सत्य का विरोध

दसवाँ प्रवचन

क्रॉस मैदान, पारसी कुआँ, बम्बई, संध्या, दिनांक २२ मार्च, १९७३

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥ १९ ॥

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥ २० ॥

ॐ तत्सदिति

श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥

तथा जो निन्दा स्तुति को समान समझने वाला और मननशील है एवं जिस किस प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा सन्तुष्ट है और रहने के स्थान में ममता से रहित है, वह स्थिर बुद्धिवाला भक्तिमान पुरुष मेरे को प्रिय है।

और जो मेरे को परायण हुए श्रद्धायुक्त पुरुष इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृत को निष्काम भाव से सेवन करते हैं, वे भक्त मेरे को अतिशय प्रिय हैं।

॥ भक्तियोग नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

पहले कुछ प्रश्न ।

● एक मित्र ने पूछा है, 'क्या बन्दरों की तरह उछल-कूद से ध्यान उपलब्ध हो सकेगा ?'

क्योंकि आप बन्दर हैं, इसलिये बिना उछल-कूद के आपके भीतर के बन्दर से छुटकारा नहीं है। यह ध्यान के कारण उछल-कूद की जरूरत नहीं हैं, आपके बन्दर-पन के कारण है।

जो आपके भीतर छिपा है, उसे जन्मों-जन्मों तक दबाये रहें, तो भी उससे छुटकारा नहीं है। उसे झाड़ ही देना होगा, उसे बाहर फेंक ही देना होगा। कचरे को दबा लेने से कोई मुक्ति नहीं होती। उसे झाड़-बुहारकर बाहर कर देना जरूरी है।

बन्दर को शान्त करने के दो रास्ते हैं : एक रास्ता है कि जोर-जबरदस्ती में उसे बिठा दो—डन्डे के बल से, कि हिलना मत, डुलना मत, नाचना मत, कूदना मत । ऊपर से बन्दर अपने को सम्हाल लेगा, लेकिन भीतर के बन्दर का क्या होगा ? ऊपर से बन्दर अपने को रोक लेगा, लेकिन भीतर और शक्ति इकट्ठी हो जायेगी। और अगर इस तरह बन्दर को दबाया, तो बन्दर पागल हो जायेगा। बहुत लोग इसी तरह पागल हुए हैं। पागलखाने उनसे भरे पड़े हैं, क्योंकि भीतर जो शक्ति थी, उन्होंने जबरदस्ती दबा ली, वह शक्ति विस्फोटक हो गयी।

एक रास्ता यह है कि बन्दर को नचाओ, कुदाओ, दौड़ाओ। बन्दर थक जायेगा। और शान्त होकर बैठ जायेगा। वह शान्ति अलग होगी; ऊपर से दबाकर आ गयी शान्ति अलग होगी।

आज मनोविज्ञान इस बात को बड़ी गहराई से स्वीकार करता है कि आदमी के भीतर जो भी मनोवेग हैं, उनका रिप्रेशन, उनका दमन खतरनाक है। उनकी अभिव्यक्ति योग्य है। लेकिन अभिव्यक्ति का मतलब किसी पर क्रोध करना नहीं है, किसी पर हिंसा करना नहीं है। अभिव्यक्ति का अर्थ है : बिना किसी के संदर्भ में मनोवेग को आकाश में समर्पित कर देना। और जब मनोवेग समर्पित हो जाता है और भीतर की दबी हुई शक्ति छूट जाती है, मुक्त हो जाती है, तो एक शान्ति

भीतर फलित होती है। उस शान्ति में ध्यान की तरफ जाना आसान है।

यह उछल-कूद ध्यान नहीं है। लेकिन उछल-कूद से आपके भीतर की उछल-कूद थोड़ी देर को फिक जाती है, बाहर हट जाती है। उस मौन के क्षण में जब बन्दर थक गया है, भीतर उतरना आसान है।

जो लोग आधुनिक मनोविज्ञान से परिचित है, वे इस बात को बहुत ठीक से समझ सकेंगे। पश्चिम में अभी एक नयी थैरेपी, एक नयी मनोचिकित्सा का ढंग विकसित हुआ है। उस थैरेपी का नाम है : स्क्रीम थैरेपी। और पश्चिम के बड़े से बड़े मनोवैज्ञानिक उसके परिणामों से आश्चर्यचकित रह गये हैं। इस थैरेपी, इस चिकित्सा की मूल खोज यह है कि बचपन से ही प्रत्येक व्यक्ति अपने रोने के भाव को दबा रहा है। रोने का उसे मौका नहीं मिला है। पैदा होने के बाद पहला काम बच्चा करता है—रोने का। आपको पता है, अगर आप उसको दबा दें, तो बच्चा मर ही जायेगा !

पहला काम बच्चा करता है रोने का, क्योंकि रोने की प्रक्रिया में ही उसकी श्वास चलनी शुरू होती है। अगर हम उसे वहीं रोक दें कि रो मत, तो वह मरा हुआ ही रहेगा, वह जिन्दा ही नहीं हो पायेगा। इसलिये बच्चा पैदा हो और अगर न रोये, तो माँ-बाप चिन्तित हो जायेंगे, डॉक्टर परेशान हो जायेगा। रुलाने की कोशिश की जायेगी कि वह रो ले, क्योंकि रोने से उसकी जीवन प्रक्रिया शुरू होगी। लेकिन बच्चे को तो हम रोकते भी नहीं।

लेकिन जैसे-जैसे बच्चा बढ़ने लगता है, हम उसके रोने की प्रक्रिया को रोकने लगते हैं। हमें इस बात का पता नहीं है कि इस जगत् में ऐसी कोई भी चीज नहीं है, जिसका जीवन के लिये कोई उपयोग न हो; अगर उपयोग न होता, तो वह होता ही नहीं।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चे के रोने की जो कला है, वह उसके तनाव से मुक्त होने की व्यवस्था है। और बच्चे पर बहुत तनाव हैं। बच्चे को भूख लगी है और माँ दूर है या माँ काम में उलझी है। बच्चे को भी क्रोध आता है और अगर बच्चा रो ले, तो उसका क्रोध बह जाता है और बच्चा हलका हो जाता है। लेकिन माँ उसे रोने नहीं देती।

मनसविद् कहते हैं कि उसे रोने देना; उसे प्रेम देना, लेकिन उसके रोने को रोकने की कोशिश मत करना। हम क्या करेंगे ? बच्चे को खिलौना पकड़ा देंगे कि मत रो। बच्चे का मन डाइवर्ट (अन्यत्र) हो जायेगा। वह खिलौना पकड़ लेगा। लेकिन रोने की जो प्रक्रिया भीतर चल रही थी, वह रुक गयी और जो आँसू बहने चाहिये थे, वे अटक गये। और जो हृदय हलका हो जाता बोझ से, वह हलका नहीं

हो पायेगा। वह खिलौने से खेल लेगा, लेकिन यह जो रोना रुक गया, उसका क्या होगा? यह विष इकट्ठा हो रहा है।

मनसविद् कहते हैं कि बच्चा इतना विष इकट्ठा कर लेता है, यही उसकी जिंदगी में दुःख का कारण है और वह उदास रहेगा। आप इतने उदास दिख रहे हैं, आपको पता नहीं कि यह उदासी हो सकता था न होती; अगर आप हृदयपूर्वक जीवन में रोये होते, तो ये आँसू आपकी पूरी जिंदगी पर न छाते; ये निकल गये होते। और सब तरह का रोना थैराप्यूटिक (स्वास्थ्यप्रद) है। हृदय हलका हो जाता है। रोने में सिर्फ आँसू ही नहीं बहते, भीतर का शोक, भीतर का क्रोध, भीतर का हर्ष, भीतर के मनोवेग भी आँसुओं के सहारे बाहर निकल जाते हैं। और भीतर कुछ इकट्ठा नहीं होता।

तो स्क्रीम थैरेपी के लोग कहते हैं कि जब भी कोई आदमी मानसिक रूप से बीमार हो, तो उसे इतने गहरे में रोने की आवश्यकता है कि उसका रोआँ-रोआँ, उसके हृदय का कण-कण, श्वास, धड़कन-धड़कन रोने में सम्मिलित हो जाये; एक ऐसे चीत्कार की जरूरत है, जो उसके पूरे प्राणों से निकले--जिसमें वह चीत्कार ही बन जाये।

हजारों मानसिक रोगी ठीक हुए हैं--चीत्कार से; और एक चीत्कार भी उनके न मालूम कितने रोगों से उन्हें मुक्त कर जाती है। लेकिन उस चीत्कार को पैदा करवाना बड़ी कठिन बात है। क्योंकि आप इतना दबाये हैं कि आप अगर रोते भी हैं, तो रोना भी आपका झूठा होता है। उसमें आपके पूरे प्राण सम्मिलित नहीं होते। आपका रोना भी बनावटी होता है। ऊपर-ऊपर रो लेते हैं। आँख से ही आँसू बह जाते हैं, हृदय से नहीं आते। लेकिन चीत्कार ऐसी चाहिये, जो आपकी नाभि से उठे और आपका पूरा शरीर उसमें समाविष्ट हो जाय। आप भूल भी जायँ कि आप चीत्कार से अलग हैं; आप एक चीत्कार ही हो जायँ।

तो कोई तीन महीने लगते हैं मनोवैज्ञानिकों को--आपको रुलाना सिखाने के लिये। तीन महीने निरन्तर प्रयोग करके आपको गहरा किया जाता है।

करते क्या हैं स्क्रीम थैरेपी वाले लोग? आपको छाती के बल लिटा देते हैं जमीन पर। और आपसे कहते हैं कि जमीन पर लेटे रहें और जो भी दुःख मन में आता हो, उसे रोकें मत, उसे निकालें। रोने का मन हो--रोयें; चिल्लाने का मन हो--चिल्लायें। तीन महीने तक ऐसा बच्चे की भाँति आदमी लेटा रहता है जमीन पर। रोज घन्टे, दो घन्टे। एक दिन, किसी दिन वह घड़ी आ जाती है कि उसके हाथ-पैर कँपने लगते हैं – विद्युत के प्रवाह से। वह आदमी आँख बन्द कर लेता है, वह आदमी जैसे होश में नहीं रह जाता और एक भयंकर चीत्कार उठनी शुरू

होती है। कभी-कभी घन्टों वह चीत्कार चलती है। आदमी बिलकुल पागल मालूम पड़ता है, लेकिन उस चीत्कार के बाद उसकी जो-जो मानसिक तकलीफें थीं, वे सब तिरोहित हो जाती हैं।

यह जो सक्रिय-ध्यान का प्रयोग मैं करवाता हूँ, इससे जब तक आपके सब मनोवेग--रोने के, हँसने के, नाचने के, चिल्लाने के, चीखने के, पागल होने के, इनका निरसन न हो जाय, तब तक आप ध्यान में जा नहीं सकते। यही तो बाधाएँ हैं।

आप शान्त होने की कोशिश कर रहे हैं और आपके भीतर वेग भरे हुए हैं, जो बाहर निकलना चाहते हैं। आपकी हालत ऐसी है, जैसे केतली चढ़ी है चाय की, ढक्कन पर पत्थर रखे हैं, केतली का मुँह भी बन्द किया हुआ है और नीचे से आग भी जल रही है। वह जो भाप इकट्ठी हो रही है, वह फोड़ देगी केतली को। विस्फोट होगा। दस-पाँच लोगों की हत्या भी हो सकती है। इस भाप को निकल जाने दें। इस भाप के निकलते ही आप नये हो जायेंगे और तब ध्यान की तरफ प्रयोग शुरू हो सकता है।

● उन मित्र ने यह भी पूछा है कि बुद्ध ने, महावीर ने और लाओत्से ने भी क्या ऐसी ही बात सिखायी है?

नहीं; लाओत्से और बुद्ध और महावीर ने ऐसी बात नहीं सिखायी, क्योंकि वे आपको नहीं सिखा रहे थे; वे दूसरे तरह के लोगों को सिखा रहे थे। आप मौजूद होते, तो उनको भी यही सिखाना पड़ता।

बुद्ध और महावीर जिन लोगों से बात कर रहे थे, वे ग्रामीण लोग थे--सीधे, शान्त, सरल, निर्दोष, स्वाभाविक। उन्होंने कुछ दमन नहीं किया हुआ था। उन्होंने कुछ रोका नहीं था। जितना आदमी सभ्य होता है, उतना दमित होता है। सभ्यता दमन का एक प्रयोग है।

फ्रायड ने तो यह स्वीकार किया है कि सभ्यता हो ही नहीं सकती, अगर दमन न हो। इसलिये आप देखें : एक मजे की घटना। आदिवासी सरल हैं, लेकिन वे सभ्य नहीं हो पाते। दुनिया में छोटे-छोटे कबीले हैं--जंगली लोगों के। बड़े अच्छे लोग हैं, सरल हैं, आनन्दित हैं, लेकिन सभ्य नहीं हो पाते। आप समझते हैं, क्या कारण है?

आखिर जितनी भी अच्छी कौमें हैं, अच्छी जातियाँ हैं, जंगलों में छिपी हुई, जो निर्दोष हैं, वे सभ्य क्यों नहीं हो पातीं? न्यूयार्क और बम्बई जैसे नगर वे क्यों नहीं बसा पातीं? आकाश में हवाई जहाज क्यों नहीं उड़ा पातीं? चाँद पर क्यों नहीं पहुँच पातीं? एटम और हाइड्रोजन बम क्यों नहीं खोज पातीं? रेडियो और

टेलीविजन क्यों नहीं बना पातीं ?

ये अच्छे लोग, शान्त लोग नाचते तो हैं, लेकिन चाँद पर नहीं पहुँच पाते। गीत तो गाते हैं, लेकिन एटम बम नहीं बना पाते। खाने को भी मुश्किल से जुटा पाते हैं; कपड़ा भी न के बराबर--अर्धनग्न। आधे भूखे, लेकिन हैं निर्दोष। चोरी नहीं करते, झूठ नहीं बोलते, वचन दें तो प्राण भी चले जायँ तो भी पूरा करते हैं, लेकिन ये लोग सभ्य क्यों नहीं हो पाते, समृद्ध क्यों नहीं हो पाते ?

तो फ्रायड का कहना है, और ठीक कहना है, कि ये लोग इतने आनन्दित हैं और इतने सरल हैं कि उनके भीतर भाप इकट्ठी नहीं हो पाती, जिससे सभ्यता का ईंजन चलता है। इनका क्रोध इकट्ठा नहीं हो पाता, घृणा इकट्ठी नहीं हो पाती, काम-वासना इकट्ठी नहीं हो पाती, वही इकट्ठी हो जाय तो उसी स्टीम, उसी भाप को फिर दूसरी तरफ मोड़ा जा सकता है। तो फिर उससे ही मकान जमीन से उठना शुरू होता है, आकाश तक पहुँचता जाता है। वह आपके दमित वेगों की भाप है। नहीं तो झोपड़े से आप आकाश छूने वाले मकान तक नहीं जा सकते।

यह सारी की सारी सभ्यता ड्राइवर्शन (मार्ग-परिवर्तन) है--आपकी शक्तियों का। इसलिये परिणाम साफ है कि कोई आदमी सरल हो, शान्त हो, स्वाभाविक हो, तो सभ्यता का यह जाल खड़ा नहीं हो सकता। और सभ्यता का जाल खड़ा करना हो, तो आपके भीतर जितना उपद्रव है, उसके निकलने के सब द्वार बन्द करने जरूरी हैं; सब द्वार बन्द करके उसे एक ही द्वार से निकलने देना जरूरी है। इसलिये हमारी शिक्षा की सारी प्रक्रिया आपकी समस्त तरह की वासनाओं को इकट्ठा करके महत्त्वाकांक्षा में लगाने की प्रक्रिया है, सारी वासनाओं को इकट्ठा करके अहंकार की पूर्ति की दिशा में दौड़ाने की प्रक्रिया है।

इसलिये फ्रायड ने यह भी कहा है कि अगर हम आदमी को सरल बनाने में सफल हो जायँ, तो वह पुनः असभ्य हो जायेगा। अब यह बड़ी कठिनाई है। अगर सभ्यता चाहिये तो आदमी जटिल होगा, रुग्ण होगा, विक्षिप्त होगा। अगर शान्ति चाहिये, आनन्द चाहिये, स्वाभाविकता चाहिये, तो सभ्यता खो जायेगी। आदमी गरीब होगा, प्रसन्न होगा--समृद्ध नहीं हो सकता।

तो फ्रायड ने तो यह कहा है कि आदमी एक असंभव बीमारी है। या तो यह गरीब होगा, सभ्यता के सुख इसे नहीं मिल सकेंगे; सभ्यता की समृद्धि इसे नहीं मिल सकेगी। और अगर यह समृद्धि होगा तो यह पागल हो जायेगा, विक्षिप्त हो जायेगा, शान्त नहीं रह जायेगा।

बुद्ध और महावीर जिनको समझा रहे थे, वे बड़े सरल लोग थे। उनका कुछ दबा हुआ नहीं था, इसलिये उन्हें ध्यान में सीधे ले जाया जा सकता था। आप

सीधे ध्यान में नहीं ले जाये जा सकते। आप बहुत जटिल हैं। आप उलझन हैं एक।

पहले तो आपकी उलझन को सुलझाना पड़े और आपकी जटिलता कम करनी पड़े और आपके रोगों से थोड़ा छुटकारा करना पड़े। टेम्परेरी ही सही। चाहे अस्थायी ही हो, लेकिन थोड़ी देर के लिये आपकी भाप को अलग कर देना जरूरी है--जो आपको उलझाये हुए है--तो आप ध्यान की तरफ मुड़ सकते हैं, अन्यथा आप नहीं मुड़ सकते।

इसलिये दुनिया की सारी पुरानी पद्धतियाँ ध्यान की, आपके कारण व्यर्थ हो गयी हैं। आज उनसे कोई काम नहीं हो रहा है। आपमें सौ में से कभी एकाध आदमी मुश्किल से होता है, जिसको पुरानी पद्धति पुराने ही ढंग में काम कर पाये। निन्यानबे आदमियों के लिये कोई पुरानी पद्धति काम नहीं कर पाती। उसका कारण यह नहीं कि पुरानी पद्धतियाँ गलत हैं। उसका कुल कारण इतना है कि आदमी नया है और पद्धतियाँ जिन आदमियों के लिये विकसित की गयी थीं, वे पृथ्वी से खो गये। आदमी दूसरा है। यह जो इलाज है, यह आपके लिये विकसित नहीं हुआ था। आपने इस बीच नयी बीमारियाँ इकट्ठी कर ली हैं।

तीन हजार, चार हजार, पाँच हजार साल पहले ध्यान के जो प्रयोग विकसित हुए थे, वे उस आदमी के लिये थे, जो मौजूद था। वह आदमी अब नहीं है। उस आदमी का जमीन पर कहीं कोई निशान नहीं रह गया है। अगर कहीं दूर जंगलों में थोड़े से लोग मिल जाते हैं, तो हम उनको जल्दी से शिक्षित करके सभ्य बनाने की पूरी कोशिश में लगे हैं। और हम सोचते हैं, हम बड़ी कृपा कर रहे हैं, उनकी सेवा करके।

अभी एक महिला मेरे पास आयी। अपना जीवन लगा दिया है--आदिवासियों को शिक्षित करने में। वह मेरे पास आयी थी कि 'कुछ रास्ते बताइये कि हम आदिवासियों को कैसे सभ्य बनायें।' मैंने उससे पूछा कि 'पहले तू मुझे यह बता कि जो सभ्य हो गये हैं--ज्यादा से ज्यादा आदिवासी भी सभ्य होकर यही हो पायेंगे, और क्या होगा। तो तुझे क्या परेशानी हो रही है! और ये जो सभ्य लोग दिखायी पड़ रहे हैं, क्या इनसे तुझे तृप्ति है कि थोड़े आदिवासियों को इन्हीं जैसा बना देने से कोई दुनिया का गौरव और कोई सुख-शांति बढ़ जायेगी ?'

तो वह बहुत घबड़ा गयीं। उसने कहा, 'मैंने अपने जीवन के तीस साल इसी में लगा दिये, लेकिन मुझे कभी किसी ने यह कहा नहीं। यह मैं सोचती हूँ, तो घबड़ाहट होती है कि शिक्षित होकर ज्यादा से ज्यादा यही होगा।'

मगर जो शिक्षित हो गये हैं, उनको क्या लाभ है ?

मगर उस महिला की भी अपनी मजबूरी है। अपनी काम-वासना को दबा

लिया है; विवाह नहीं किया है; किसी से कभी प्रेम नहीं किया; ब्रह्मचर्य को मानने-वाली है। क्रोध नहीं करती है; अक्रोध का व्रत लिया है। झूठ नहीं बोलती है; सच बोलने की कसम खायी है। इस तरह सब भाँति अपने को रोक रखा है। अब वह जो भाप इकट्ठी हो गयी है, उसका क्या करना? तो वह पागल की तरह आदि-वासियों को सेवा में लगी है, बिना इसकी फिक्र किये कि सेवा का परिणाम क्या होगा! तुम्हारी भाप तो निकली जा रही है, लेकिन जिन पर निकल रही है, उनका परिणाम क्या है? क्या फायदा होगा?

आदमी जैसा आज है, ऐसा आदमी जमीन पर कभी भी नहीं था। यह बड़ी नयी घटना है। और इस नयी घटना को सोचकर ध्यान की सारी पद्धतियों में रेचन, कैथार्सिस का प्रयोग जोड़ना अनिवार्य हो गया है। इससे पहले कि आप ध्यान में उतरें, आपका रेचन हो जाना जरूरी है। आपकी धूल हट जानी जरूरी है।

लेकिन वे प्रश्नकर्ता मित्र समझदार हैं। और उन्होंने लिखा है कि 'आप हमें धोखा न दे पायेंगे। इस उछल-कूद वे कोई भी लाभ होने वाला नहीं।'

एक बात तो पक्की है कि उन्होंने उछल-कूद नहीं की और यही उछल-कूद जो बच गयी है, उनके इस प्रश्न में निकली है। वे कर लेते, तो हलके हो जाते। और बन्दर उनके पास निश्चित है और गहरा है। चैन नहीं पड़ी उनको रात जाकर। वे बेचैन रहे होंगे रात भर; शायद सोयें भी न हों; क्योंकि बड़े क्रोध से प्रश्न लिखा है। प्रश्न कम है, गाली-गलौज ज्यादा है। इससे तो बेहतर था कि यहाँ निकाल ली होती, तो रात हलके सो गये होते और प्रश्न में गाली-गलौज न होता।

और मैं आपको धोखा दे रहा हूँ! क्या प्रयोजन हो सकता है? और आपके नाचने से मुझे क्या लोभ होगा? और आप बन्दर की तरह उछल-कूद कर लेंगे, तो किसका हित सधने वाला है?

लिखा है कि 'आप हमें धोखा न दे पायेंगे।' पर तुम्हें धोखा देने की जरूरत भी क्या है? प्रयोजन भी क्या है? पर वे यह कह रहे हैं कि हम धोखे में न आयेंगे। वे असल में यह कह रहे हैं कि हम धोखे में न आयेंगे। वे यह कह है कि हम जैसे हैं, हम ऐसे ही रहेंगे। हम किसी को बदलने का कोई मौका न देंगे।

मत दें। आपकी मरजी है। आप अपने से प्रसन्न हों, तो यहाँ मुझे सुनने आने की भी क्या जरूरत है? आप जैसे हैं, भले हैं। आपको यहाँ परेशान होने की भी क्या जरूरत है! आपको ध्यान में आने की भी क्या जरूरत है! लेकिन अगर आने की कोई जरूरत है, अगर चिकित्सक के पास आप जाते हैं, तो बीमार हैं, इस बात की खबर देते हैं। मैं एक चिकित्सक हूँ, इससे ज्यादा नहीं।

अगर आप मेरे पास आते हैं, तो आप बीमार होने की खबर देते हैं और आपकी

बीमारी को अगर अलग करने के लिये मैं कोई दवा बताऊँ तो आप कहते हैं: 'आप हमें धोखा न दे पाओगे।' तो आने की कोई जरूरत नहीं है। आप अपने घर मजे में हैं। किसी दिन मुझे जरूरत होगी, तो मैं आपके घर आ जाऊँगा, लेकिन आप मत आयें।

आप अपने को बचायें। आप जितना अपने को बचाइयेगा, उतना ही लाभ होगा! क्योंकि उतने ही आप परेशान होंगे, पीड़ित होंगे, पागल होंगे। और जिस दिन बात सीमा के बाहर चली जाय, उस दिन कहीं बिजली के शॉक आपको लगाने पड़ेंगे।

मैं कहता हूँ: अभी कूद लें, ताकि बिजली के शॉक न लगाने पड़ें और अभी कूद लें, ताकि आपको पागलखाने में न बिठाना पड़े। अपने पागलपन को अपने हाथ से बाहर फेंक दें, ताकि किसी और को आपके पागलपन को फेंकने के लिये कोई उपाय और कोई तरकीब न करनी पड़े। लेकिन आप नहीं सोचते। इसे हम कई तरह से समझने की कोशिश करें।

सिर्फ इंगलैंड एक मुल्क है, जहाँ के स्कूल के बच्चे पत्थर नहीं फेंक रहे हैं; सारी दुनिया के बच्चों द्वारा पत्थर फेंके जा रहे हैं। सिर्फ इंगलैंड अकेला मुल्क है, जहाँ के बच्चे स्कूल में शिक्षकों को पत्थर नहीं मार रहे हैं, गाली नहीं दे रहे परेशान नहीं कर रहे हैं। तो सारी दुनिया के विचारशील लोग परेशान हैं कि इंगलैन्ड में यह क्यों नहीं हो रहा है। सारी दुनिया में बड़े पैमाने पर हो रहा है। तो एक बात खोजी गयी और वह यह कि इंगलैंड के हर स्कूल में बच्चे को कम से कम दो घंटे खेल खेलना पड़ रहा है। वही कारण है। और कोई कारण नहीं है।

जो बच्चा दो घंटे तक हॉकी की चोट मार रहा है, वह पत्थर फेंकने में उत्सुक नहीं रह जाता। उसने फेंकने का काम पूरा कर लिया। जो बच्चा फुटबाल को लात मार रहा है--दो घंटे तक, उसकी इच्छा नहीं रह जाती अब, किसी को लात मारने की। लात मारने की वासना निकल गयी।

इंगलैन्ड के मनोवैज्ञानिकों का सुझाव है कि सारी दुनिया में अगर बच्चों के उपद्रव रोकने हैं, तो उनको खेलने की गहन प्रक्रियाएँ देनी होंगी, जिनमें उनकी हिंसा निकल जाय। और बच्चों में बड़ी हिंसा है, क्योंकि बच्चों में बड़ी ताकत है।

हमारे स्कूल में बच्चा क्या कर रहा है? पाँच-छः घंटे आप उसको बिठा रखते हैं। कोई बच्चा प्रकृति से पाँच-छः घंटे एक क्लास के रूप में बैठने को पैदा नहीं हुआ है। प्रकृति ने कोई इन्तजाम नहीं किया है, कोई बिल्ट-इन व्यवस्था नहीं है भीतर, कि छ. घंटे बच्चे को बिठाया जा सके। छः घंटे बच्चे को बिठाने का मत-लब है कि छः घंटे जो शक्ति प्रगट होनी चाहती थी, वह रुक रही है।

स्कूल से बच्चे जब छूटते हैं, तो जरा उनको देखें। जैसे ही छुट्टी होती है, लगता है : वे नरक से छूटे––उछाल रहे हैं बस्ते को, फेंक रहे हैं किताबों को और इतने आनन्दित हो रहे हैं कि जैसे जीवन मिल गया!

आपने जरूर उनके साथ कोई अपराध किया है पाँच-छः घंटे। नहीं तो उन्हें इतनी खुशी स्कूल से छूटकर न मिलती; और यह अपराध जारी रहेगा। यह बीस साल की उम्र, पच्चीस साल की उम्र तक जारी रहेगा। धीरे-धीरे वे इसी दबी हुई व्यवस्था के लिये राजी हो जायेंगे। फिर उनका सारा जीवन गड़बड़ हो जायेगा। क्योंकि ऊर्जा जो दब गयी और प्रगट होने का जिसे मार्ग न मिला, वह क्रोध बन जाती है, हिंसा बन जाती है, फिर नये-नये मार्गों से मार्ग खोजती है। फिर वे सब तरह के उपद्रव करेंगे। फिर वे किसी छोटी-सी बात का बहाना ले लेंगे और उनकी हिंसा बाहर होने लगेगी।

हम सब हिंसा से भरे हुए लोग हैं। लेकिन अगर समझपूर्वक समझा जाय और जीवन को बदलने की ठीक व्यवस्था का खयाल रखा जाय, तो हिंसा भी सृजनात्मक हो सकती हैं। हिंसा भी क्रिएटिव हो सकती है। और क्रोध से भी फूल खिल सकते है, अगर अकल हो।

यह जो मैं आपसे कह रहा हूँ––ध्यान का प्रयोग, यह आपकी हिंसा, आपके क्रोध, आपकी काम-वासना, आपकी घृणा, इनको सृजनात्मक रूप से रूपान्तरित करने का प्रयोग है। यह क्रिएटिव ट्रान्सफॉर्मेशन है।

आपका लक्ष्य ध्यान है। अगर आप चीख भी रहे हैं, तो आपका लक्ष्य ध्यान है। आपके चीखने की ऊर्जा भी ध्यान की तरफ प्रवाहित हो रही है। अगर आप अपने क्रोध को भी फेंक रहे हैं, नाराजगी को भी फेंक रहे हैं, तो भी आपका लक्ष्य ध्यान है। यह ऊर्जा ध्यान की तरफ प्रवाहित हो रही है।

अगर आप थोड़े दिन तैयार हो जायँ––मुझसे धोखा खाने को...। आप अपने से तो धोखा खा ही रहे हैं, बहुत दिन से––तो यह भी प्रयोग कर लेने जैसा है। तीन महीने में आपसे कुछ छीन न लूँगा, क्योंकि आपके पास कुछ है भी नहीं, जो छीना जा सके।

मेरी दृष्टि में तो आपके पास ऐसी कोई मूल्यवान चीज नहीं है, जो छीनी जा सके। आपके पास है, तो उसे सम्हाल कर आप रखें। मेरे जैसे लोगों के पास न आयें, क्योंकि ऐसे लोग आपको बदलने की कोशिश में ही लगे हुए हैं।

तीन महीने इस प्रयोग को करके देखें। तीन दिन के बाद आपको फर्क दिखायी पड़ने शुरू हो जायेंगे। और ऐसा नहीं कि एक मित्र ने ही पत्र लिखा है। पाँच-सात उन मित्रों के भी पत्र हैं, जिनको कल के प्रयोग से पहली दफे ही परिणाम

दिखायी पड़ना शुरू हुआ। वे बुद्धिमान लोग हैं। हालाँकि इन मित्रों ने लिखा है कि 'हम बुद्धिमानों को आप धोखा नहीं दे पायेंगे।' मगर बुद्धिमान वह है, जो प्रयोग करके कुछ कहता है। बुद्धिहीन वह है, जो बिना प्रयोग किये कुछ कहता है।

बिना प्रयोग किये आपकी बात का कोई मूल्य ही नहीं है।

पाँच-सात मित्रों ने लिखा है...। एक मित्र ने लिखा है कि 'मुझे इतनी शान्ति कभी अनुभव नहीं हुई। लेकिन बीस मिनट तक मुझसे आवाजें निकलती रहीं, जिनका मुझे ही भरोसा नहीं कि मेरे भीतर कहाँ से आयीं! क्योंकि इस तरह की आवाजें मैंने कभी नहीं कीं।'

आपने न की हों, लेकिन आप करना चाहते हैं। आपके भीतर वे दबी पड़ी। और आप कहीं भी कर नहीं सकते थे। कहीं भी करते, तो आप पागल समझे जाते हैं यहाँ आप कर रहे थे, तो आपको खयाल था कि आप ध्यान में जा रहे हैं, तो आपने अपने को खुला छोड़ दिया। इस खुले-भाव से जो भीतर दबा था, वह निकल गया। जैसे मवाद निकल गयी हो घाव से। और भीतर घाव हलका और भरने के लिये तैयार हो गया हो। उन मित्र ने लिखा है कि 'ऐसी शान्ति मुझे जीवन में कभी भी नहीं मिली।'

● एक मित्र ने लिखा है कि आश्चर्यचकित हूँ कि इस भाँति नाचने-कूदने से आनन्द का कैसे भाव आया?

जब आप नाचते-कूदते हैं हृदयपूर्वक—नकली नाचने-कूदते हों, तो कोई बहुत फर्क नहीं होगा, कवायद होगी, थोड़ा व्यायाम हो जायेगा––लेकिन अगर हृदयपूर्वक नाचते हों, तो आप पुनः बच्चे हो गये। आप फिर बचपन में लौट गये। आप फिर छोटे बच्चे की तरह सरल हो गये और बच्चे जिस आनन्द की झलक को देख पाते हैं, उसको आप भी देख पा रहे हैं।

सन्तों ने कहा है कि बुढ़ापे में जो पुनः बच्चों की भाँति हो जायँ, वे ही सन्त हैं। आप छोटे बच्चे की भाँति हो गये। इतने लोगों के सामने छोटा बच्चा भी शर्मायेगा नाचने में। और आप नाचे-कूदे। तो आपने भय छोड़ दिया। 'दूसरों के मन्तव्य का भय' छोड़ दिया। दूसरे क्या कहेंगे––यह भय छोड़ दिया।

बच्चे में यह भय नहीं होता। दूसरे क्या कहेंगे––उसे प्रयोजन नहीं है। उसके लिए जो आनन्दपूर्ण होता है, वह करता है। जैसे-जैसे बड़ा होता है, खुद के आनन्द की फिक्र छोड़ देता है, 'दूसरे क्या कहेंगे,' इसका चिन्तन करने लगता है। बस, यही बच्चे की विकृति है।

आप फिर बच्चे हो गये और आपने सारी फिक्र छोड़ दी। आप पुनः अकेले हो गये, समाज से मुक्त हो गये। जैसे ही आपने चिन्ता छोड़ी कि कोई क्या कहेगा,

उससे यह जो हलकापन भीतर आया, उस हलकेपन में आनन्द की झलक बिलकुल आसान है। और बच्चे की तरह जो फिर से हो जाय, वह परमात्मा को यहीं अनुभव करने लगेगा--अपने चारों ओर। लेकिन बुद्धिमान--अतिशय बुद्धिमान...।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन को एक लॉट्री मिल गयी। पाँच लाख रुपये जीत लिये। सारा गाँव चकित था। सारे गाँव के लोग इकट्ठे हो गये। और लोग मुल्ला से पूछने लगे कि 'तुमने यही नम्बर कैसे चुना!' गाँव का जो बुद्धिमान था, उससे सब ने कहा कि हमारी तरफ से तुम्हीं पूछ लो। तो गाँव का जो बुद्धिमान आदमी था उसने सब की तरफ से पूछा कि 'पूरा गाँव एक ही जिज्ञासा से भरा है कि यह उन्हत्तर, सिक्सटी नाइन नम्बर तुमने कैसे चुना? किस तरकीब से?'

तो मुल्ला ने कहा, 'तुम पूछते हो, तो मैं तुम्हें बता देता हूँ। एक स्वप्न में मुझे यह नम्बर प्रगट हुआ। एक स्वप्न मैंने देखा रात में कि मैं एक नाटक देख रहा हूँ और वहाँ मंच पर सात कतारें नर्तकियों की खड़ी हैं और हर कतार में सात नर्तकियाँ हैं। वे सब नाच रही हैं। तो सात सतैयाँ उन्हत्तर--ऐसा मैंने सोचा और सुबह मैंने उन्हत्तर नम्बर की टिकट खरीद ली।,

'पर', उस आदमी ने कहा, 'अरे, पागल, सात सतैयाँ उन्हत्तर होते ही नहीं। सात सतैयाँ तो होते हैं--उन्चास--फॉर्टी नाइन!'

तो मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, 'ओ. के., सो यू बी द मैथमैटीशियन। तो तुम गणितज्ञ हो जाओ, लेकिन लॉट्री मैंने जीती है।'

वह जो नाच रहा है, कूद रहा है, वह आपसे कहेगा : सो यू बी द वाइज मैन, यू बी द मैथमैटीशियन। वह आपकी फिक्र नहीं करेगा। न मीरा ने आपकी फिक्र की है, न चैतन्य ने आपकी फिक्र की है। वे नाच लिये हैं और वे आपसे कहते हैं, 'आप हो जाओ बुद्धिमान, हमें रहने दो पागल। क्योंकि हमें पागलपन में जो मिल रहा है, वह हमें नहीं दिखता कि तुम्हारी बुद्धिमानी में भी तुम्हें मिल रहा है।'

और एक ही सबूत है बुद्धिमानी का--क्या मिल रहा है?

बुद्धिमान कौन है? बुद्धिमानी का एक ही सबूत है कि क्या मिल रहा है जीवन में--कितना आनन्द, कितना रस, कितना सौन्दर्य, कितना सत्य, कितना परमात्मा। और कोई सबूत बुद्धिमानी का नहीं है।

तो मैं तो आपसे कहूँगा, जिनको बुद्धिमान रहना हो, मजे से बुद्धिमान रहें। लेकिन जिनको जीवन का रस जानना हो, उन्हें सस्ती बुद्धिमानी से बचना जरूरी है।

हाँ, मैं यह नहीं कहता कि आप मेरी बात मानकर नाचते-कूदते रहें। वह बुद्धिमानी नहीं है। मैं आपसे यह कहता हूँ कि मैं जो कह रहा हूँ, उसे करके देख लें और अगर लगता हो कि कुछ है, तो आगे बढ़ जायँ। और लगता है कि इसमें कुछ

नहीं है, तो छोड़ दें। कौन रोकता है आपको छोड़ने से? लेकिन छोड़ने के पहले परख लेना जरूरी है। और किसी भी चीज में 'कुछ नहीं है'--ऐसी धारणा बनाने के पहले प्रवेश करना जरूरी है। अनुभव के पहले जो निर्णय लेता है, वह अन्धा है।

● एक मित्र ने पूछा है कि प्रभु को पा लेने के बाद मान लिया कि मन को शान्ति मिल जायेगी और मान लिया कि आनन्द भी मिल जायेगा, लेकिन फिर हम करेंगे क्या?

आदमी की भी चिन्ताएँ बड़ी अद्भुत हैं। वैसे यह चिन्ता विचारणीय है। निश्चित ही करने को आपके लिये कुछ भी न बचेगा। मगर यह तो ऐसे ही है, जैसे कोई बीमार पूछे कि मान लिया कि टी. बी. ठीक हो जायेगी, कैंसर ठीक हो जायेगा, सब बीमारियाँ चली जायेंगी, फिर हम करेंगे क्या? क्योंकि बीमारी के लिये कुछ काम में लगे हैं। दवा लाते हैं; चिकित्सक के पास जाते हैं; अस्पताल में भरती होते हैं! और सब ठीक हो गया, तो फिर?--तो फिर हम करेंगे क्या? लेकिन करना क्या जरूरी है? और करने से मिलता क्या है?

न करने की अवस्था ही तो परम लक्ष्य है। ऐसी अवस्था पा लेना, जहाँ करने को कुछ भी न बचे, वही तो परम तृप्ति है। तृप्ति का अर्थ ही है कि उसके बाद करने को कुछ भी न बचे। अतृप्ति में करना बाकी रहता है, क्योंकि अतृप्ति धक्का देती है कि करो--ताकि मैं तृप्त हो सकूँ।

लेकिन जब कोई सच में ही तृप्त हो जाता है, करने को कुछ भी नहीं बचता।

अगर आप डरते हैं कि करने को कुछ भी न बचेगा और बिना किये रहने वाले आप नहीं हैं, तो परमात्मा को मत खोजें। तब तो परमात्मा से बचें और कहीं अगर मिल भी जाय अपने आप, तो भाग खड़े हों; लौटकर मत देखें।

लेकिन करने से क्या पा रहे हैं? और इसका यह अर्थ नहीं है कि जब बीमारियाँ नहीं रह जातीं, तो स्वास्थ्य कोई अभाव है। स्वास्थ्य की अपनी भाव दशा है। लेकिन करने की प्रक्रिया बदल जाती है।

बीमार आदमी कुछ पाने के लिये करता है। स्वस्थ आदमी कुछ है उसके भीतर, उस आनन्द, अहोभाव में करता है।

एक बच्चे को कुछ भी पाना नहीं है, लेकिन वह नाच रहा है--सूरज की रोशनी में। यह भी कृत्य है। लेकिन इस कृत्य में और एक नर्तक के जो कि स्टेज पर नाच रहा है, फर्क है। नर्तक नाच रहा है कि कुछ मिलेगा नाचने के बाद--पुरस्कार। बच्चा नाच रहा है, क्योंकि भीतर ऊर्जा है। ऊर्जा प्रगट होना चाहती है। बच्चा नाच रहा है आनन्द से--कुछ पाने के लिये नहीं। नाचना अपने आप में पर्याप्त है।

जैसे ही कोई व्यक्ति परमात्मा के निकट पहुँचने लगता है, फल की आकांक्षा से

कृत्य समाप्त हो जाता है। लेकिन कृत्य समाप्त नहीं हो जाता, क्योंकि बुद्ध भी चलते दिखायी पड़ते हैं--परमात्मा को पाने के बाद; बोलते दिखायी पड़ते हैं; उठते हैं, बैठते हैं। बहुत कुछ करते दिखायी पड़ते हैं। हालाँकि 'करने' का बुखार चला गया; फीवरिश नहीं है, अब कोई करना। जिस दिन बुद्ध मरते हैं, उस दिन वे छाती नहीं पीटते कि अब मैं मर जाऊँगा, तो मेरा किया हुआ अधूरा रह गया। कुछ अधूरा नहीं है, क्योंकि जो भी आनन्द से हो रहा था, वह हो रहा था। नहीं हो रहा था, तो नहीं हो रहा था।

कोई कृष्ण भी चुप नहीं बैठ जाते, कोई महावीर चुप नहीं बैठ जाते। कोई जीसस चुप नहीं बैठ जाते।

परमात्मा को पा लेने के बाद भी कृत्य जारी रहता है। कृत्य 'आपका' नहीं रह जाता; परमात्मा का हो जाता है। इसलिये दुःख आपका नहीं रह जाता, चिन्ता आपकी नहीं रह जाती; जैसे सब उसने सम्हाल लिया।

इसे ऐसा समझें कि हम उस तरह के लोग हैं...। नदी में दो तरह की नाव चल सकती है। एक नाव तो, जिसको हाथ की पतवार से चलाना पड़ता है। तो फिर पतवार हमें हाथ में पकड़कर श्रम उठाना पड़ता है। थकेंगे, और लड़ेंगे नदी से।

रामकृष्ण ने कहा है कि एक और तरह की नाव भी है, वह है--पाल वाली नाव। उसमें पतवार नहीं चलानी पड़ती, हवा का रुख देखकर नाव छोड़ देनी पड़ती है। फिर हवा उसे ले जाने लगती है।

सांसारिक आदमी पतवार वाली नाव जैसा है। आध्यात्मिक व्यक्ति पाल वाली नाव जैसा है। उसने परमात्मा की हवाओं पर छोड़ दिया, अब वह ले जाता है; अब उसे पतवार नहीं चलानी पड़ती।

हालाँकि पतवार चलाने का जो पागलपन किसी को सवार हो, वह जरूर पूछेगा कि 'अगर पाल लगा लें नाव में और हवाएँ ले जाने लगें, तो हम क्या करेंगे?' क्योंकि हम तो खेते हैं पतवार से। यही तो हमारा जीवन है। लेकिन उसे पता ही नहीं कि पाल वाली नाव का नाविक किस शांति से सो रहा है, या बाँसुरी बजा रहा है, या खुले आकाश को देख रहा है, या सूरज के साथ एक मौन चर्चा में संलग्न है।

काम का बोझ हट गया, तो अब जीवन का आनन्द सरल है। काम के बोझ से ही तो हम मरे जा रहे हैं, लेकिन मित्र पूछते हैं कि 'फिर हम क्या करेंगे?'

एक और बात ध्यान रखनी जरूरी है कि जब परमात्मा मिलेगा, तो आप होंगे ही नहीं। आप उसके पहले ही विदा हो गये होंगे। इसलिये इस चिन्ता में मत पड़ें कि आप क्या करेंगे। जब तक आप हैं, तब तक तो वह मिलेगा भी नहीं।

पर इससे भी उनके चित्त को राहत नहीं मिलती। इससे उनको और कष्ट होता है। आगे उन्होंने पूछा है: 'और फिर आप कहते हैं कि आदमी मिट जायेगा, तब परमात्मा मिलेगा! तो जब हमें मिलना ही नहीं है वह, तो मेहनत क्यों करें?' इसे कहते हैं--नकारात्मक चिन्तन की प्रक्रिया।

अगर कोई कहे कि ऐसी तृप्ति आपको मिल जायेगी—कि कुछ करने को न बचेगा, तो तृप्ति की फिक्र नहीं होती। आपको यह लगता है: फिर करने को नहीं बचेगा, तो हम क्या करेंगे?

अगर कोई कहता है कि आप मिट जाओगे, तब परमात्मा मिलेगा, तो परमात्मा की भी फिक्र छूट गयी। फिर तो हमें लगता है कि जब हम ही मिट जायेंगे, तो फिर सार भी क्या है--ऐसे परमात्मा से मिलने का।

लेकिन आपके होने में क्या सार है? और आपने होकर क्या पाया है? कभी भी आपके जीवन में कोई थोड़ी बहुत आनन्द की किरण मिली हो, वह भी तभी मिली है, जब आप मिट गये हैं। किसी के प्रेम में, किसी की मित्रता में या सुबह खिलते हुए फूल के सौन्दर्य को देखकर या कभी रात आकाश तारों से भरी हो और उसमें लीन हो कर। अगर आपको कभी थोड़ी-सी झलक मिली है सुख की, तो वह भी इसलिये मिली है कि आप उस क्षण में खो गये, आप नहीं थे।

जीवन में जो भी उतरता है महान, वह तभी उतरता है, जब आप नहीं होते। पर इसका यह मतलब नहीं है कि आप सच में ही नहीं होंगे।

अध्यात्म की भाषा समझने में कई बार तकलीफ होती है, क्योंकि वह भाषा शब्दों का बड़ा मौलिक प्रयोग करती है।

जब कहा जाता है कि आप नहीं होंगे, तो उसका मतलब है कि केवल आपका जो मिथ्या व्यक्तित्व है, जो फाल्स सेल्फ है, जो झूठा आवरण है, वह नहीं होगा। आपका जो गहरा केन्द्र है, वह तो होगा ही, क्योंकि वह तो परमात्मा ही है। यह ऐसा ही समझें।

मैंने सुना है कि ऐसा हुआ, एक जर्मन जासूस को इंगलैंड भेजा गया--दूसरे महायुद्ध के पहले। पाँच वर्ष पहले भेज दिया गया, ताकि पाँच वर्ष में वह इंगलैंड में रम जाय। ठीक अंग्रेजों जैसा जीने लगे--उठने लगे, बैठने लगे। अंग्रेजी ऐसी बोलने लगे, जैसे कि मातृभाषा हो। जर्मन प्रभाव बिलकुल समाप्त हो जाय--आवाज में, ध्वनि में, आँखों में, चलने में। क्योंकि जर्मन और ढंग से चलता है, अंग्रेज और ढंग से चलता है। हर जाति का अपना व्यक्तित्व है।

तो पाँच साल पहले उसे भेज दिया गया और पाँच साल में उसने सब तरह के प्रयोग किये और अपने को बिलकुल स्वाभाविक अंग्रेज बना लिया। फिर युद्ध समाप्त

हो गया और पूरे दस साल इंगलैंड में रहने के बाद वह जर्मनी वापस लौटा।

पैदा जर्मन हुआ था, लेकिन दस साल में अभ्यास से अंग्रेज हो गया। जब घर लौटा, तो बड़ी अड़चन शुरू हुई, क्योंकि यह जो अंग्रेजियत उसने सीख ली थी, अब यह वापस अपने जर्मन परिवार में बाधा बनने लगी। घर के लोग उससे कहते कि नकली को छोड़ क्यों नहीं देता? है तो तू जर्मन। तो फिर से बोल अपनी मातृभाषा, जैसी तू बोलता था। और वैसे ही उठ, वैसे ही बैठ, वैसा ही व्यवहार कर, जैसा तू करता था। जैसा हमने तुझे बचपन में जाना—उसकी माँ कहती। उसकी पत्नी कहती कि जैसा मैं तुम्हें जानती थी--जाने के पहले--ठीक वैसा। पर वह आदमी कहता कि 'जरा ठहरो। दस साल अभ्यास करके यह नकली भी स्वाभाविक हो गया है। इसे हटाऊँगा, पर थोड़ा वक्त लगेगा।'

आप जिसको अपना व्यक्तित्व समझ रहे हैं, आप समझ रहे हैं जिसको--मेरा होना, यह आपका होना नहीं है। वह केवल सिखावन है--आपका स्वभाव नहीं है।

आप एक घर में पैदा हुए। जब आप पैदा होते हैं, तो न तो आप हिन्दू होते हैं, न मुसलमान होते हैं, न ईसाई होते हैं, न जैन होते हैं। आप सिर्फ होते हैं। अगर आपको मुसलमान घर में बड़ा किया जाय, आप मुसलमान हो जायेंगे। और अगर हिन्दू घर में बड़ा किया जाय, तो हिन्दू हो जायेंगे। हिन्दू का अलग व्यक्तित्व है, मुसलमान का अलग व्यक्तित्व है। अगर जैन घर में बड़ा किया जाय, तो आप जैन हो जायेंगे। उसका अलग व्यक्तित्व है।

लेकिन जब आप पैदा हुए थे, तो आप बिना व्यक्तित्व के पैदा हुए थे। हिन्दू, मुसलमान ईसाइयत--ऊपर से सीखी गयी बातें हैं। फिर आप हिंदी सीखें, मराठी सीखें, अंग्रेजी सीखें। जो भाषा आप सीखेंगे, वह आपकी भाषा हो जायेगी। लेकिन जब आप पैदा हुए थे, तो मौन पैदा हुए थे। आपकी कोई भाषा न थी। फिर आप सीखते चले जायेंगे और आप जब पचास साल के होंगे, तो आपके चारों तरफ एक ढाँचा निर्मित हो जायेगा--भाषा का, व्यवहार का, व्यक्तित्व का, राष्ट्र का, जाति का, आचरण का, धर्म का एक ढाँचा खड़ा हो जायेगा। और इसी ढाँचे को आप समझेंगे--मैं हूँ। यही ढाँचा टूटता है, परमात्मा को पाने में, आप नहीं टूटते। वह जो आप लेकर पैदा हुए थे, वह नहीं टूटता। वह तो आप रहेंगे सदा। उसे तो छीनने का कोई उपाय नहीं है। उसे तो परमात्मा भी नहीं छीनेगा।

सच तो यह है कि आप जिसको अभी समझ रहे हैं--मेरा होना, इसी ने आपसे आपका असली व्यक्तित्व छीन लिया है। इस नकली को उतारने की प्रक्रिया है धर्म। जब यह उतर जाता है और जो स्वभाव है--सहज, जो जन्म के पहले भी आपके पास था और आप मर जायेंगे, तब भी आपके पास होगा, वह जब शुद्धतम आपके पास रह जाता है, तो आप परमात्मा से मिलते हैं।

जीसस ने कहा है : जो बचायेगा, वह खो देगा और जो खोने को राजी है, वही बचायेगा। उसका ही बच रहेगा। यह जो झूठा है, इसके खोने की बात है। आपके खोने की तो कोई बात ही नहीं है। लेकिन उस आपका आपको ही कोई पता नहीं है, जो नहीं खोयेगा। इसलिये घबड़ाहट होती है। इससे डर लगता है, इससे भय होता है।

यह तो हालत हमारी ऐसी है कि जैसे एक अन्धा आदमी आये और वह कहे कि मैं अपनी आँखें तो ठीक करवा लूँ, लेकिन तब जिस लकड़ी को मैं टेक कर चलता हूँ, उसका क्या होगा? और मेरी आँखें ठीक हो जायेंगी, तो चिकित्सक कहता है कि यह टेकने वाली लकड़ी तुझे छोड़ देनी पड़ेगी। तो इसको मैं कैसे छोड़ सकता हूँ! यही लकड़ी तो मेरा प्राण है। इसी के सहारे तो मैं चलता हूँ, जीता हूँ, उठता हूँ, रास्ता खोजता हूँ। तो उस अन्धे आदमी को पता नहीं कि जब आँखें ही मिल जायँ, तो लकड़ी को टेकने की जरूरत ही नहीं रह जाती और न लकड़ी से खोजने की जरूरत रह जाती है।

जिस दिन आपको परमात्मा मिल जाय, उस दिन आपके अन्धेपन में जो व्यक्तित्व काम देता था, उसकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। घबड़ायें मत, आपसे वही छीना जा सकता है, जो आपका नहीं है। जो आपका है, उसे छीना ही नहीं जा सकता।

इस सूत्र को, इस महासूत्र को स्मरण रखें सदा--कि आप वही खो सकते हैं, जो आपका है ही नहीं। जो आपका है, उसको छीनने का कोई उपाय नहीं है। स्वभाव का यही अर्थ होता है--जो आपसे छीना न जा सके। जो छीना जा सकता है, उसको आप चाहे पकड़े भी रहें, तो भी वह आपका नहीं है।

एक आदमी धन को पकड़े हुए है; सोचता है, धन छिन जायेगा। लेकिन धन छिनेगा ही, क्योंकि वह आप नहीं हैं। ज्ञानी इसीलिये शरीर को भी नहीं पकड़ते, क्योंकि वे कहते हैं : मौत उसे छीन लेगी। ज्ञानी मन को भी नहीं पकड़ते, क्योंकि ज्ञानी कहते हैं : ध्यान उसे भी छीन लेगा। ज्ञानी तो केवल उसको ही पकड़ते हैं, जो छीना नहीं जा सकता। न ध्यान छीन सकता है, न मृत्यु छीन सकती है, न समाधि छीन सकती है। वह कौन है आपके भीतर, जो कभी भी छीना नहीं जा सकता? वही आप हैं।

इसलिये भयभीत न हों। जो व्यर्थ है ऊपर-ऊपर है, उसे छोड़ने की तैयारी रखें, ताकि भीतर जो है--उसे पाया सके।

एक प्रश्न और।

● एक मित्र बार-बार पूछते हैं--आखिरी दिन तक मैं उनका सवाल टालता

रहा--पूछते हैं बार-बार कि एक मित्र, श्री सूर्योदय गौड़ आपके खिलाफ पर्चे छापते हैं। आप जवाब क्यों नहीं देते? और उनके खिलाफ कुछ किया क्यों नहीं जाता?

पहली बात, कि वे मेरा ही काम कर रहे हैं, इसलिये उनके खिलाफ कुछ किया नहीं जाना चाहिये। काम के बड़े अनूठे ढंग हैं और कई दफा मैं सोचता था कि अगर कोई मेरा विरोध न करता हो, तो अपने ही किसी मित्र को कहूँ कि तू विरोध कर। क्योंकि बहुत से लोगों को मैं अपने पास नहीं ला सकता हूँ। बहुत से लोग मेरे विरोध के जरिये ही मेरे पास आ सकते हैं।

कुछ लोग हैं, जो विरोध से ही पास आ सकते हैं। विरोध के कारण ही उनको उत्सुकता पैदा होती है। कोई विरोध करता है, तो ही उनको लगता है कि जाकर देखें, मामला क्या है! कई दफा वे देखने आते हैं और रुक जाते हैं और उनका जीवन भी बदल जाता है।

तो बहुत बार मैं सोचता था कि किसी मित्र से कहूँ कि मेरे खिलाफ कुछ लिखो, कुछ चर्चा चलाओ, ताकि वे जो सीधे नहीं आते, जिनकी आँखें तिरछी हैं, वे विरोध के जरिये आ जायँ। फिर अचानक सूर्योदय गौड़ ने वह काम करना शुरू कर दिया, तो मैं भीतर बड़ा प्रसन्न हुआ। मैंने कहा कि नाहक मैं किसी को कहता, तो मेरा मित्र कोई कितनी ही कोशिश भी करता, तो भी विरोध में वह जान न रहती। बेजान रहता, भीतर से झूठा-झूठा रहता। अब ठीक आदमी अपने आप हाजिर हो गया है। यह जगत् कुछ ऐसा है कि यहाँ जो भी चाहो, वह हाजिर हो जाता है। चाहने की देर है कि लोग मिल जाते हैं।

अब उन पर नाराज होने का कोई कारण नहीं। मैं प्रसन्न हूँ। दिन भर मेहनत करते हैं। गरीब आदमी मालूम पड़ते हैं। अपना धंधा--काम छोड़कर इसी काम में लग गये हैं। उनका जीवन मेरे लिये ही समर्पित हो गया है। तो इसलिये उनका कोई विरोध नहीं करता हूँ। और उनके विरोध से कुछ हानि नहीं होती।

सत्य की कोई हानि नहीं है। सत्य विरोध से और निखरता है, साफ होता है। और अगर सत्य को भय हो विरोध का, तो जानना चाहिये कि वह सत्य ही नहीं है।

एक मित्र और दो-तीन दिन पहले आये थे। उनका भी प्रश्न ऐसा ही है। इसी संदर्भ में, उनसे भी बात कहूँ। वह थोड़ा और जटिल है। उन्होंने मुझे आकर पूछा कि श्रीमती निर्मला देवी श्रीवास्तव के पास गया था, वह आपके खिलाफ बड़ी बातें कहती हैं। और वह तो आपके पास आती थीं, आपकी शिष्या थीं और आपके खिलाफ इतनी बातें कहती हैं!

तो मैं अब तक इस संदर्भ में चुप रहा हूँ, क्योंकि वह बड़ा काम कर रही है। वह दूसरे ढंग का काम है।

जैसा मैंने कहा कि कुछ ऐसे लोग है, जो मेरे विरोध के कारण मेरे पास आते हैं। कुछ ऐसे गलत लोग मेरे पास आ जाते हैं, जिनको दूर हटाने की भी जरूरत पड़ती है। कुछ अपात्र भी मेरे पास आ जाते हैं, जो समय खराब करेंगे और बहुत काम के--इस जन्म में तो नहीं हो सकते। उनको भी दूर करने की जरूरत पड़ती है। उनको मैं श्रीमती निर्मला श्रीवास्तव के पास भेजता हूँ। वह मुझे उनसे छुटकारा दिलाती रहती हैं। उनको पता नहीं है कि वह मेरा काम कर रही हैं। और अगर उनको यह पता चल जायेगा, जो मैं कह रहा हूँ, तो वह और जोर से मेरे विरोध में लग जायेंगी। वह मेरा काम है। उन्हें लग जाना चाहिये।

मेरी प्रक्रिया में दो बातें हैं। जो भी लोग जीवन-क्रांति के लिये उत्सुक हैं, मैं चाहता हूँ कि वे मेरे पास आयें--किसी भी बहाने, किसी भी कारण से। लेकिन जो लोग मेरे पास आ जाते हैं, उनमें अनेक लोग गलत कारणों से मेरे पास आ जाते हैं। उनको भी पता नहीं है; और जो मेरा समय भी व्यर्थ करते हैं, मेरी शक्ति भी खराब करते हैं; उनको मैं अपने से दूर भी करना चाहता हूँ। उनको मैं अनेक तरह से दूर करता हूँ। कभी किसी तरकीब से, कभी किसी तरकीब से उनको दूर कर देता हूँ।

मेरे पास जैनियों का एक जत्था इकट्ठा हो गया था। तो उससे मैं परेशान हो गया। परेशान इसलिये हो गया कि उन्हें कुछ भी करना नहीं, सिर्फ बातें करनी है। तो मैंने कोई एक वक्तव्य दे दिया, उससे वे लोग छँट कर गिर गये।

फिर मेरे पास गांधीवादियों का एक जत्था इकट्ठा हो गया। उनको सेवा करनी है, साधना नहीं करनी है। मेरी सेवा में उत्सुकता नहीं है, क्योंकि मैं मानता हूँ कि साधना में जो जाय, वही सेवक हो सकता है और जो साधना में न जाय, उसकी सेवा सब झूठी है और व्यर्थ है। तो मुझे गांधी की आलोचना कर देनी पड़ी। आलोचना करते से ही वे भाग गये। जमीन साफ कर दी; मेरे पास नयी जगह बन गयी; स्पेस पैदा हो गयी। उसमें मैं नये लोगों को बुला पाया।

फिर मेरे बोलने का जो ढंग है, उससे बड़ी गड़बड़ हो जाती है। मेरे बोलने के ढंग से लोगों को ऐसा लगता है कि मैं तार्किक हूँ। बोलने के ढंग से ऐसा लगता है कि मैं बुद्धिवादी है, रेशनलिस्ट हूँ। इसलिये कुछ तार्किक और बुद्धिवादी मेरे पास आ जाते हैं। मेरे बोलने का ढंग तार्किक है; लेकिन जो मैं कहना चाह रहा हूँ, वह तर्क के बिलकुल बाहर है। मेरी पहुँच का ढंग बुद्धिवादी है, लेकिन मुझसे ज्यादा अबुद्धिवादी खोजना मुश्किल है।

उन लोगों को हटाने की जरूरत पड़ी, क्योंकि ये सिर्फ समय खराब करते हैं--चर्चा--चर्चा--चर्चा। उन्हें करना कुछ भी नहीं है--केवल शब्द, शब्द और शब्द।

तो मैंने कहा चलो, कीर्तन शुरू कर दो। कीर्तन होते से ही वे भाग गये। वे अब मेरे पास नहीं आते।

ऐसा मुझे गलत लोगों से छुटकारा भी पाना पड़ता है और ठीक लोगों को बुलाना भी पड़ता है।

एक बात तय है कि सत्य जब भी कहीं हो, तो सभी चीजें उसका सहयोग करती हैं। आप कुछ भी करें--विरोध करें, इनकार करें, खिलाफ बोलें--आप कुछ भी करें, आपका हर करना सत्य के पक्ष में ही पड़ता है--तभी वह सत्य है। सत्य हर चीज का उपयोग कर लेता है--विपरीत का भी, विरोधी का भी।

इसलिये इन सब बातों में पड़ने को, और समय खराब करवाने की, इन सब का उत्तर देने की कोई भी जरूरत नहीं है। चीजें अपने आप रास्ता बनाती चली जाती है।

एक ही बात का ध्यान होना चाहिये कि हम जो कर रहे हैं, अगर वह सत्य है, तो सभी का उपयोग कर लेगा। और अन्तिम क्षण में मैंने आपको जो लाभ पहुँचाया है वह अकेला मेरा ही कृत्य नहीं होगा, उनमें उन विरोधियों का भी उतना ही साथ होगा, जिन्होंने विरोध किया। और अन्तिम क्षण में सभी चीजें संयुक्त हो जाती हैं—अगर सत्य है, तो। लक्ष्य पर पहुँचकर सभी चीजें सत्य हो जाती हैं। तब आप मुझे ही धन्यवाद नहीं देंगे, सूर्योदय गौड़ की भी देंगे, निर्मला देवी श्रीवास्तव को भी देंगे।

जिस दिन आपको सत्य का अनुभव होगा, उस दिन आप दोनों को धन्यवाद देंगे, क्योंकि उन्होंने भी काम किया। उन्होंने भी मेहनत ली।

अब हम सूत्र को लें।

'तथा जो निन्दा, स्तुति को समान समझने वाला और मननशील है, एवं जिस किस प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा ही संतुष्ट है और रहने के स्थान में ममता से रहित है, वह स्थिर बुद्धिवाला भक्तिमान पुरुष मेरे को प्रिय है। और जो मेरे परायण हुए श्रद्धायुक्त पुरुष इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृत को निष्काम भाव से सेवन करते हैं, वे भक्त मेरे को अतिशय प्रिय हैं।'

'निन्दा स्तुति को समान समझने वाला और मननशील है...।' निन्दा स्तुति को समान कब समझा जा सकता है? निन्दा दुःख क्यों देती है? स्तुति सुख क्यों देती है? जब कोई आपकी प्रशंसा करता है, तो भीतर फूल क्यों खिल जाते हैं? और जब कोई निन्दा करता है, तो भीतर सब उदास, मृत्यु जैसा क्यों हो जाता है? कारण खोजना जरूरी है, तो ही हम निन्दा स्तुति के पार हो सकेंगे।

जब कोई स्तुति करता है, तो आपके अहंकार को तृप्ति होती है। जब कोई

स्तुति करता है, तो असल में वह यह कह रहा है कि जैसा मैं अपने को समझता था, वैसा ही यह आदमी भी समझता है। आप समझते हैं कि आप बहुत सुन्दर हैं और जब कोई कह देता है कि धन्य हैं; आपके दर्शन से हृदय प्रफुल्लित हुआ; ऐसा सौन्दर्य कभी देखा नहीं, तो आप प्रसन्न होते हैं। क्यों? क्योंकि दर्पण के सामने खड़े होकर यही आपने अपने से कई बार कहा है। यह पहली दफा कोई दूसरा भी आपसे कह रहा है। और अपनी बात का भरोसा आपको नहीं होता। अपनी बात का भरोसा आपको क्या होगा, अपने पर ही भरोसा नहीं है। जब कोई दूसरा कहता है, तो भरोसा होता है ठीक है, बात सच है। वह जो दर्पण के सामने मुझे लगता था, बिलकुल सही है। यह आदमी भी कह रहा है। और यह क्यों कहेगा! अहंकार को तृप्ति मिलती है और आपकी सेल्फ इमेज, वह जो प्रतिमा है अपने मन में, वह परिपुष्ट होती है।

जब कोई निन्दा करता है और कह देता है कि क्या शक्ल पायी है! भगवान् कहीं और देख रहा था, जब आपको बनाया--कि सामान चुक गया था; कि देखकर ही विरक्ति पैदा होती है, संसार से भागने का मन होता है। तब आपको चोट पड़ती है। क्यों चोट पड़ती है? अहंकार को ठेस लगती है।

ऐसा कौन है, जो अपने को सुन्दर नहीं मानता है? कुरूप से कुरूप व्यक्ति भी अपने को सुन्दर मानता है। लेकिन अपनी मान्यता के लिये भी दूसरों का सहारा चाहिये। क्योंकि हमारी अपनी कोई आत्म-स्थिति तो नहीं है। सुन्दर भी हम मानते हैं दूसरों के सहारे, और अगर दूसरे कुरूप कहने लगें, तो फिर सुन्दर मानना मुश्किल हो जायेगा। इसलिये चोट लगती है। वे ईंटें खिसका रहे हैं। अगर हर कोई कहने लगे कि तुम कुरूप हो, तो फिर हमारी प्रतिमा डगमगाने लगती है और आत्म-विश्वास हिलने लगता है। और फिर हम दर्पण के सामने भी खड़े होकर हिम्मत नहीं कर सकते कि नहीं, मैं सुन्दर हूँ। क्योंकि यह भी तो दूसरों के मन्तव्य पर निर्भर है। तो जब दूसरे कुछ कहने लगते हैं, जो विपरीत पड़ता है, तो आपको अपनी प्रतिमा डगमगाती मालूम पड़ती है। घबड़ाहट पैदा होती है, बेचैनी पैदा होती है।

प्रशंसा में अच्छा लगता है, क्योंकि आपके अहंकार को फुसलाया जा रहा है। इसलिये प्रशंसा वही करता है, जो आपसे कुछ पाना चाहता है। वह पाने का रूप कुछ भी हो। प्रशंसा वही करता है, जो आपसे कुछ खींचना चाहता है। क्योंकि प्रशंसा पा कर आप बेहोश हो जाते हैं अहंकार में और आपसे कुछ करवाया जा सकता है।

मूढ़ से मूढ़ आदमी को बुद्धिमान कहो, तो वह भी राजी हो जाता है! अपनी

प्रशंसा को इनकार करना बड़ा मुश्किल है। और जब अपनी प्रशंसा को इनकार करना बड़ा मुश्किल है, तो अपनी निन्दा को स्वीकार करना बड़ा मुश्किल है।

तो जरूरी नहीं है कि जो निन्दक कह रहा हो, वह गलत ही हो; वह सही भी हो सकता है। और सच तो यह है कि जितना सही होता है, उतना ज्यादा खलता है। अगर वह बिलकुल गलत हो, तो परेशानी नहीं होती। अगर कोई आदमी, आपकी आँखें हैं, और वह कहता है––अन्धा है, तो आप ज्यादा परेशान नहीं होते, क्योंकि कौन सुनेगा इसे। आँखें आपके पास हैं। लेकिन आप अन्धे हैं, और वह आदमी अंधा कहता है, तो फिर ज्यादा चोट पड़ती है। क्योंकि आपको भी लगता तो है कि वह ठीक ही कहता है। और मन भी नहीं होता मानने का कि यह बात ठीक है।

तो जितने सच्चाई के करीब होती है निन्दा, उतना दुःख देती है। और स्तुति जितनी झूठ के करीब होती है, उतना सुख देती है। जितने असत्य के करीब होती है स्तुति, उतना सुख देती है। और निन्दा जितने सत्य के करीब होती है, उतना दुःख देती है। पर इन दोनों का केन्द्र क्या है?

इन दोनों का केन्द्र यह है कि दूसरे क्या कहते हैं, वह मूल्यवान है। क्यों मूल्यवान है? क्योंकि आपका जो अहंकार है, वह दूसरों के हाथ से निर्मित हुआ है, आपकी आत्मा नहीं है। आपकी आत्मा तो परमात्मा के हाथ से निर्मित हुई है। लेकिन आपका अहंकार दूसरों के हाथों से निर्मित हुआ है। अहंकार समाज का दान है। आत्मा परमात्मा की देन है। आत्मा को समाज नहीं छीन सकता। लेकिन अहंकार को समाज छीन सकता है। जिसको आज कहता है : तुम महापुरुष हो; कल पापी कह सकता है। और ऐसे महापुरुष हैं, जो कल पूजे जा रहे थे और दूसरे दिन उन पर जूते फेंके जा रहे हैं। वही समाज, वही लोग! जरूरी नहीं है कि समाज पहले सही था, या अब सही है। बात इतनी है केवल कि समाज दोनों काम कर सकता है। इसलिये जो आदमी अहंकार के साथ जीता है, आत्मा के साथ नहीं, वह हमेशा चिन्तित रहेगा कि कौन क्या कह रहा है। निन्दा कौन कर रहा है, स्तुति कौन कर रहा है? क्योंकि उसका सारा व्यक्तित्व इसी पर निर्भर है––दूसरों पर। दूसरे क्या कह रहे हैं ...!

लेकिन जो व्यक्ति भक्त है, साधक है, प्रभु की खोज में लगा है, आत्मा की तरफ चल रहा है, वह तो पहले कदम पर ही इसकी फिक्र छोड़ देता है कि दूसरे क्या कह रहे हैं। वह इसकी फिक्र करता है कि मैं क्या हूँ, वह उसकी फिक्र नहीं करता कि लोग क्या कह रहे हैं।

लोग कुछ भी कह रहे हों, मैं क्या हूँ, यह उसकी चिन्ता है। यह उसकी खोज

है कि मैं खोज लूँ, आविष्कृत कर लूँ कि मैं कौन हूँ। दूसरों के कहने से क्या होगा? क्या मूल्य है दूसरों के कहने का?

कृष्ण कहते हैं, 'निन्दा स्तुति को समान जो समझता है...।' वही समान समझ सकता है, जो दूसरों के मन्तव्य से अपने को दूर हटा रहा है। और जो इस बात की खोज में लगा है कि मैं कौन हूँ। लोगों की धारणा नहीं––मेरा अस्वित्व क्या है। वह सम हो जायेगा। वह अपने आप सम हो जायेगा। उसके लिये लोगों की स्तुति भी व्यर्थ है; उसके लिये उनकी निन्दा भी व्यर्थ है। वह तो बलिक चकित होगा कि लोग मुझमें इतने क्यों उत्सुक हैं! इतनी उत्सुकता वे अपने में लें, तो उनके जीवन में कुछ घटित हो जाय––जितनी उत्सुकता वे मुझमें ले रहे हैं।

आपको खयाल है कि आप दूसरों में कितनी उत्सुकता लेते हैं! इतनी उत्सुकता काश आपने अपने में ली होती, तो आज आप कहीं होते। आप कुछ होते। आपके जीवन में कोई नया द्वार खुल गया होता। इतनी ही उत्सुकता से तो आप प्रभु को पा सकते थे। लेकिन आपकी उत्सुकता तो दूसरों में लगी है।

सुबह उठकर गीता पर पहले ध्यान नहीं जाता; पहला ध्यान अखबार पर जाता है। दूसरों की फिक्र है; वे क्या कर रहे हैं, क्या सोच रहे हैं! पड़ोसी आपके बाबत क्या कह रहे हैं? कौन क्या कह रहा है आपके बाबत––इसको इकट्ठा करके क्या होगा? मरते वक्त सब हिसाब भी कर लिया और किबाब में सब लिख भी डाला कि कौन ने क्या कहा, फिर क्या होगा? मौत आपको जाँचेगी––आपके हिसाब किताब को नहीं।

सुना है मैंने एक यहूदी फकीर हिलेल मर रहा था। तो किसी ने हिलेल से कहा कि 'हिलेल, क्या सोच रहे हो मरते क्षण में?' तो हिलेल ने बड़ी कीमती बात कही, क्योंकि यहूदी मूसा को मानते हैं...। हिलेल ने कहा कि जिन्दगी भर मैं मूसा की फिक्र करता रहा कि मूसा ने क्या कहा है, क्या समझाया है। उसके वचन का क्या अर्थ है; और मैं मूसा जैसा कैसे से जाऊँ––यही मेरी चिंता, यही मेरी जीवन भर की धारा थी। मरते वक्त मुझे यह खयाल आ रहा है कि हिलेल, परमात्मा मुझसे यह नहीं पूछेगा कि तू मूसा क्यों नहीं हुआ। परमात्मा मुझसे पूछेगा कि तू हिलेल होने से क्यों चूक गया? मूसा के संबंध में मुझसे पूछेगा ही नहीं वह। वह पूछेगा मेरे संबंध में और मैं नाहक मूसा के संबंध में परेशान रहा। और परमात्मा यह भी नहीं पूछेगा कि लोग मेरे संबंध में क्या मानते थे। परमात्मा तो सीधा ही देख लेगा मेरी आत्मा में। वह कोई सर्टिफिकेट तो नहीं माँगेगा––कि 'प्रमाण-पत्र लाये हो चरित्र के। अच्छा आदमी मानते थे लोग, कि बुरा आदमी मानते थे तुम्हें? कुछ प्रमाण-पत्र ले आये हो जमीन से, वह नहीं पूछेगा, क्योंकि प्रमाण-पत्र तो अन्धों के

काम आते हैं। उसकी आँखें तो मेरी आत्मा में सीधा प्रवेश कर जायेंगी, और वे जान ही लेंगी कि मैं कौन हूँ। तो मैंने नाहक ही अपना जीवन गँवाया। अब जितने भी थोड़े क्षण मेरे पास बचे हैं, अब तुम हट जाओ यहाँ से', हिलेल ने लोगों से कहा, 'तुम जिन्दगी भर मुझे घेरे रहे। हट जाओ और मैं शान्त होकर उसको देख लेना चाहता हूँ, जो मैं हूँ; और मौन होकर उसमें उतर जाना चाहता हूँ : जो मेरा अस्तित्व है, जो मेरा व्यक्तित्व है। परमात्मा के सामने जब मैं खड़ा होऊँ, और वह मुझे सीधा देखे, तो मैं खड़ा हो सकूँ शान्ति से।' 'तुम हट जाओ,' हिलेल ने कहा, 'मेरे पास से भीड़ हट जाय; अब मुझे अकेला हो जाने दो। जिन्दगी भर मैं भीड़ से घिरा रहा--दूसरों से।'

निन्दा और स्तुति से वह व्यक्ति मुक्त हो सकेगा, जो दूसरों की चिन्ता छोड़ देता है। इसका यह मतलब नहीं है कि दूसरों के प्रति लापरवाह हो जाता है। इसका यह भी मतलब नहीं है कि स्वार्थी हो जाता है। सच तो यह है कि जो दूसरों के विचार की बहुत चिन्ता करता है, वह दूसरों की चिन्ता जरा भी नहीं करता। वह तो उनके विचार की चिन्ता करता है--कि ये मेरे बाबत क्या कह रहे हैं। वह अहंकारी है। उसका दूसरों से कोई लेना-देना नहीं। वह दूसरों के विचार की अपने अहंकार के लिए फिक्र करता है। लेकिन जो आदमी दूसरों की चिन्ता छोड़ देता है, उसका अहंकार गिर जाता है। अहंकार दूसरों के सहारे के बिना खड़ा नहीं हो सकता; उसके लिये दूसरों का सहारा चाहिये। वह एक झूठ है, जो दूसरों के सहारे खड़ा होता है। सब झूठ दूसरों के सहारे खड़े होते हैं; सत्य अपने सहारे खड़े होते हैं।

इसलिये धर्म अकेले भी हो सकता है, राजनीति अकेले नहीं हो सकती। राजनीति बड़ा से बड़ा झूठ है। उसको दूसरों के सहारे की जरूरत है। दूसरे का वोट, दूसरे का मत, दूसरे पर सारा खेल खड़ा है। राजनीति का बड़ा से बड़ा नेता भी दूसरों के सहारे खड़ा है। दूसरों की अंगुलियाँ उसको बड़ा किये हुए हैं। वे हाथ हटा लें, वह नीचे जमीन पर गिर जायेगा और उठने का उसे कोई मौका नहीं रहेगा।

लेकिन धार्मिक व्यक्तित्व किसी के सहारे खड़ा नहीं होता, अपने ही कारण खड़ा होता है। उसे कोई गिरा नहीं सकता, क्योंकि किसी ने उसे सम्हाला ही नहीं है।

कृष्ण कहते हैं कि 'जो निन्दा स्तुति को समान समझने लगा है, मननशील है एवं जिस किस प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा सन्तुष्ट है और परमात्मा जैसा रखे, वैसा ही होने को राजी है और परमात्मा जैसा रखे, उसमें भी विधायक खोज लेता है ।' मननशील का अर्थ है--विधायक को खोज लेने वाला।

हम नकारात्मक को खोज लेनेवाले लोग हैं। हमें काँटा दिखायी पड़ता है, फूल

दिखायी नहीं पड़ता। अगर एक आदमी के बाबत में कहूँ कि यह गजब का कलाकार है, उसकी बाँसुरी जैसी बाँसुरी कोई नहीं बजाता। तो आप फौरन कहेंगे, 'छोड़िये भी, वह क्या बाँसुरी बजायेगा? चरित्रहीन है।' यह नकारात्मक चिन्तन की प्रक्रिया है।

विधायक चिन्तन की प्रक्रिया होगी कि मैं आपसे कहूँ कि फलाँ आदमी चरित्रहीन है, उससे बचना। और आप कहें कि 'क्या! वह चरित्रहीन कैसे हो सकता है? उसकी बाँसुरी में ऐसे प्राण हैं; वह बाँसुरी ऐसी अद्भुत बजाता है; चरित्रहीन होगा कैसे? नहीं; मैं नहीं मान सकता हूँ कि वह चरित्रहीन है।' तो आप देख रहे हैं, उसको--जो फूल है। और जो फूलों को देखता है, उसे और ज्यादा फूल दिखायी पड़ने लगते हैं। और जो काँटे देखता है, उसे और ज्यादा काँटे दिखायी पड़ने लगते हैं।

जो आप खोजते हैं, वह आपको मिल जाता है। हर आदमी की योग्यता के अनुकूल उसे सब मिल जाता है। जो आदमी नकारात्मक को खोज रहा है, चारों तरफ उसके नरक खड़ा हो जाता है। सब जगह उसे गलत दिखायी पड़ने लगता है।

कृष्ण कहते हैं, 'जिस किस प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा संतुष्ट है...। कैसा भी परमात्मा रखे, वह उसमें भी...।

सुना है मैंने कि सूफी फकीर बायजीद एक कोठरी में सोता था। उसमें बड़ी चींटियाँ थीं। तो उसके शिष्यों ने कहा कि 'तुम परमात्मा के इतने प्यारे हो और वह इतना भी नहीं कर सकता कि इन चींटियों को हटा ले। और तुम्हें हमेशा काटती हैं और परेशान करती हैं और तुम उघाड़े यहाँ पड़े रहते हो!' तो बायजीद ने कहा कि 'तुम्हें मेरे परमात्मा का कुछ पता नहीं। यह चींटियों से मुझे कटवाता है, ताकि मैं उसकी याद रख सकूँ; भूलूँ न। और जब भी चींटी मुझे काटती है, मैं कहता हूँ, हे परमात्मा याद है; मत कटवा—याद है। चींटी से कटवाता है, ताकि मैं उसकी याद कर सकूँ, विस्मरण न हो जाय। और कभी-कभी मैं भूल जाता हूँ, तो ठीक ऐन वक्त पर चींटी काट देती है। उसकी बड़ी कृपा है। उसकी बड़ी कृपा है। इन चीटियों को मत हटा देना।'

यह जो भाव-दृष्टि है--कि वह जैसा रखे...। जरूर उसका कोई प्रयोजन होगा। अगर वह आग में डालता है, तो तपाता होगा। अगर वह काँटों में चलाता है, तो परखता होगा। कोई परीक्षा होगी। कोई बात होगी उसकी। उस पर छोड़ कर जीने वाला जो सन्तुष्ट व्यक्ति है, वही मननशील भी है।

'और रहने के स्थान में ममता से रहित है...' और जहाँ रखे, लेकिन कोई ममता खड़ी नहीं करता। जिस स्थिति में, जिस स्थान में...। फिर यह नहीं कहता कि यहीं रहूँगा। वह जहाँ हटा दे। वह जहाँ पहुँचा दे। वह जैसा करे। सभी

स्थान उसी के हैं। और सभी स्थितियाँ उसकी हैं। और सभी द्वारों से वह आदमी पर काम कर रहा है। इस भाव दशा में जो व्यक्ति है, वह ममता नहीं बाँधेगा।

च्वांगत्जू की पत्नी मर गयी, तो, तो वह गीत गा रहा था——अपनी खंजरी बजा कर। सम्राट् संवेदना प्रकट करने आया था, क्योंकि च्वांगत्जू जाहिर संत था। तो खुद सम्राट् आया कि पत्नी मर गयी है, तो मैं जाऊँ। लेकिन सम्राट् ने देखा कि वह गीत गा रहा है——खंजरी बजाकर! तो सम्राट् बड़ा मुश्किल में पड़ा। क्योंकि वह बेचारा तैयार कर के लाया था, जैसे आप किसी के घर कोई मर जाता है, तब तैयार करके जाते हैं कि क्या कहेंगे। बड़ा मुश्किल का मामला होता है, क्योंकि अगर कोई मर जाय तो क्या कहना; कैसे कहना——बड़ा परेशानी का काम होता है।

सम्राट् बिलकुल तैयार करके लाया था कि ये ये बातें कहूँगा; इस तरह संवेदना प्रकट करूँगा। आँख में आँसू भर लूँगा। सन्त को सांत्वना देकर लौट जाऊँगा। लेकिन वह संत बड़ा उलटा निकला। वह खंजरी बजा रहा था और गीत गा रहा था। तब शोक-संवेदना प्रकट करने का उपाय न रहा। लेकिन राजा को लगा बुरा। क्योंकि वह जिस काम से आया था, वह असफल हुआ। कहने यही आया था कि 'दुखी मत होओ। ऐसा तो होता ही रहता है।' लेकिन इस आदमी से क्या कहो! यह दुःखी हो ही नहीं रहा है, बल्कि प्रसन्न हो रहा है।

अपेक्षा पूरी न हो..। आपको पता है, दुःखद अपेक्षाएँ भी पूरी न हों, तो भी दुःख होता है। अगर आप सोच रहे हों कि बड़ी बीमारी है और डॉक्टर के पास जायें। वह कहे : कुछ नहीं, तो मन में बड़ी उदासी होती है कि बेकार आना हुआ। कुछ नहीं? आपको शक होता है कि यह डॉक्टर भी...। कहीं ऐसा तो नहीं कि भूल हो रही है। जरा और बड़े डॉक्टर को दिखा दें।

इसलिए जो चालाक डॉक्टर हैं, वे बड़े गंभीर हो जाते हैं आपको देखकर। और आपकी बीमारी को इस तरह से लेते हैं जैसे कि बस, ऐसी बीमारी किसी को भी कभी नहीं हुई। तब आपका दिल राजी होता है कि ठीक है। आप जैसे बड़े आदमी को छोटी बीमारी हो सकती है! बड़ी ही होनी चाहिए। यह आदमी समझा। अब जरा बात काम की है।

वह सम्राट् दुःखी हो गया। उसने कहा कि 'यह क्या कर रहे हो! मुझे कहना नहीं चाहिये। और मैं उपदेश देनेवाला कौन हूँ। लेकिन झूठ छिपाया भी नहीं जाता। सच कहना ही चाहिये। यह देखकर मुझे दुःख होता है। इतना ही काफी था कि तुम दुःख न मनाते। लेकिन गीत गाना, खंजरी बजाना, यह जरा जरूरत से ज्यादा है।'

लेकिन च्वांगत्जू ने कहा, 'क्या कह रहे हो! मेरी पत्नी मर गयी और मैं सुख भी न मनाऊँ।' राजा ने कहा, 'मतलब? तुम बड़ा उलटा वचन बोल रहे हो'! तो च्वांगत्जू ने कहा कि 'परमात्मा ने मेरे पास उसे भेजा——संसार को जानने; और परमात्मा ने उसे मुझसे छीन लिया—मोक्ष पहचानने को। वह मेरा संसार थी; उसके साथ मेरा संसार भी खो गया। परमात्मा की बड़ी कृपा है। उसने संसार दिखाया भी, उसने संसार छीन भी लिया। हम हर हालत में राजी हैं। अनेक मुझसे कहते कहते थे, पत्नी को छोड़कर भाग जाओ। छोड़ दो संसार। मैंने कहा, 'वह परमात्मा जब छुड़ाना चाहेगा छुड़ा लेगा, हम राजी हैं। हम ऐसे ही राजी हैं। आखिर मेरी बात सही निकली। परमात्मा ने उसे उठा लिया।'

'और फिर जिस पत्नी ने मुझे जीवन भर अनेक अनेक तरह के अनुभव दिये——सुख के और दुःख के, उसके लिये क्या इतना भी अनुग्रह न मानूँ——कि विदायी के क्षण में गीत गा कर विदा न दे सकूँ! जिसने अपना पूरा जीवन मेरे सुख-दुःख में लगाया, उसके लिये इतना धन्यवाद तो मन में होना ही चाहिये। तो मैं उसके धन्यवाद के लिये गा रहा हूँ और परमात्मा के धन्यवाद के लिये गा रहा हूँ कि मैं थोड़ा रुक गया; तेरी राह देखी, तो तूने खुद ही पत्नी छीन ली। हम छोड़कर भागते, तो यह मजा न होता।' यह बड़ी अद्‌भुत बात कही——कि 'हम छोड़कर भागते, तो यह मजा न होता। अधूरी रहती, कच्ची रहती। हमारा ही छोड़ना होता ना। हमारी समझ कितनी है? लेकिन तूने उठा लिया। अब सब कोरा आकाश हो गया। पत्नी के साथ पूरी गृहस्थी विलीन हो गयी है। यह तेरी अनुकम्पा है।'

कृष्ण कहते हैं, जिस हालत में, जिस स्थान में, जिस स्थिति में कोई ममता नहीं; विपरीत हो जाय, तो भी विपरीत में प्रवेश करने का उतना ही सहज भाव——बिना किसी आसक्ति के पीछे, ऐसा स्थिर बुद्धि वाला भक्तिमान पुरुष मुझे प्रिय है। 'और जो मेरे परायण हुए श्रद्धायुक्त पुरुष इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृत को निष्काम भाव से सेवन करते हैं, वे भक्त मेरे को अतिशय प्रिय हैं।'

आखिरी बात बहुत समझने जैसी है कि यह जो आनंद की प्रक्रिया है, यह जो प्रभु-प्रेम का मार्ग है, इसको ही कृष्ण कहते हैं, इस अमृत को भी जो निष्काम भाव से सेवन करते हैं। ऐसा मत करना कि आप सोचें कि अच्छा! यह यह करने से परमात्मा के प्रिय हो जायेंगे, तो हम भी यह यह करें। तो आपसे भूल हो जायेगी। तब तो आप परमात्मा पाने के लिये ऐसा कर रहे हैं। तो यह जो करना है, वासना से भरा है। इसमें वासना है। इसमें फल की इच्छा है। इसमें आप परमात्मा को पाने के लिये उत्सुक हैं, इसलिये ऐसा कर रहे हैं। आप परमात्मा को पाने के लिये कारण निर्मित कर रहे हैं।

इसका यह मतलब हुआ कि आप परमात्मा को पाने के लिये ठीक सौदा करने की स्थिति में आ रहे हैं कि कह सकें है कि हाँ, अब मुझ में यह यह गुण हैं, अब मिल जाओ।

तो कृष्ण आखिरी शर्त बड़ी गहरी जोड़ देते हैं। और वह यह कि ये सारे लक्षण निष्काम भाव से हों। यह परमात्मा को पाने की दृष्टि से नहीं; बल्कि इन प्रत्येक लक्षण का अपना ही आनंद है, इसी दृष्टि से। इनसे परमात्मा मिलेगा जरूर, लेकिन मिलने की वासना अगर रही, तो बाधा पड़ जायेगी।

एक मित्र मेरे पास आये। उन्होंने मुझसे कहा कि 'ब्रह्मचर्य मुझे उपलब्ध करना है। काम-वासना से छूटना है। इससे छुटकारा दिलाइये। इस शत्रु का कैसे नाश हो? इस जहर से कैसे बचूं?' तो मैंने उनसे कहा, 'आप गलत आदमी के पास आ गये। जिनने जहर कहा है, आप उन्हीं के पास जाइये। मैं इसको जहर कहता नहीं। मैं तो इसे एक शक्ति कहता हूँ। तो मैं आपको कहता हूँ कि इसे ठीक से जानिये, पहचानिये; इसके अनुभव में उतरिये, आप मुक्त हो जायेंगे। लेकिन मुक्त होना परिणाम होगा, फल नहीं।' उन्होंने कहा 'अच्छी बात है। दो तीन महिने बाद मेरे पास आये और कहने लगे, 'अभी तक मुक्त नहीं हुआ?'

तो मैंने उनसे कहा, 'मुक्ति का खयाल अगर साथ में रखकर ही चल रहे हैं, तो अनुभव पूरा नहीं हो पायेगा। क्योंकि आप पूरे वक्त सोच रहे हैं: कैसे मुक्त हो जाऊँ; कैसे भाग जाऊँ; कैसे अलग हो जाऊँ; कैसे ऊपर उठ जाऊँ; तो आप गहरे कैसे उतरियेगा? अगर छूटने की बात पहले ही तय कर रखी है और छूटने के लिये ही गहरे उतरने का प्रयोग कर रहे हैं, तो गहरा उतरना नहीं हो पायेगा। और गहरा उतरना नहीं होगा, तो छूटना भी नहीं होगा।' तो मैंने कहा, 'छूटने की बात तो आप भूल जाइये। आप तो सिर्फ गहरे उतरिये: छूटना घटित होगा। आपको उसकी चिन्ता करने की जरूरत नहीं है।'

परमात्मा पाया जाता है, लेकिन परमात्मा कोई सौदा नहीं है कि हम कहें कि 'ये ये लक्षण मेरे पास हैं। अभी तक नहीं मिले? अब मिलो। मैं सब तरह तैयार हूँ।' तो आप कभी भी न पा सकेंगे, क्योंकि वह तो अहंकार का ही आधार हुआ।

परमात्मा पाया जाता है तब, जब आप अपने को इतना भूल गये होते हैं--इन लक्षणों में, इतना लीन हो गये होते हैं कि आपको खयाल ही नहीं होता कि अभी परमात्मा भी पाने को शेष है। जिस क्षण आप इतने शांत और निष्काम होते हैं, सिर्फ होते हैं...। इतनी भी वासना मन में नहीं रहती, इतनी भी लहर नहीं होती कि 'परमात्मा को पाना है', उसी क्षण अचानक आप पाते हैं कि परमात्मा पा लिया गया है।

इसलिये कृष्ण कहते हैं, यह सब बातें ही निष्काम हों, इनमें पीछे कोई काम-वासना न हो। 'धर्ममय अमृत को निष्काम भाव से सेवन करते हैं, वे भक्त मेरे को अतिशय प्रिय हैं।'

भक्ति-योग नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त। भक्ति-योग की चर्चा समाप्त। उससे आप यह मन समझना कि आपका अध्याय समाप्त। किताब का अध्याय समाप्त। आपका सिर्फ शुरू भी हो जाय, तो बहुत है; प्रारंभ भी हो जाय, तो बहुत है। यह किताब का अध्याय समाप्त हुआ। आपके जीवन में भक्ति का अध्याय शुरू हो तो काफी है।

तीन बातें अन्त में आपको स्मरण करने को कह दूँ। एक, भक्ति का अर्थ है: सत्य को बुद्धि से नहीं—हृदय से पाया जा सकता है। विचार से नहीं, भाव से पाया जा सकता है। चिन्तन से नहीं, प्रेम से पाया जा सकता है। पहली बात।

दूसरी बात, भक्ति को पाना हो तो आक्रमक चित्त बाधा है--ग्राहक चित्त। पुरुष का चित्त बाधा है--स्त्रैण चित्त। एक प्रेयसी की तरह प्रभु को पाया जा सकता है।

तीसरी बात, प्रभु को पाना हो, तो प्रभु को पाने की त्वरा, ज्वर, फीवर, बुखार नहीं चाहिए। प्रभु को पाना हो तो अत्यंत शांत, निष्काम भाव दशा चाहिये। उसको पाने के लिये उसको भी भूल जाना जरूरी है। खूब याद करें उसे, लेकिन अन्तिम क्षण में उसे भी भूल जाना जरूरी है, ताकि वह आ जाये। और अब हम बिलकुल विस्मृत हो गये होते हैं; न अपना पता रहता, न उसका पता रहता। न यह खयाल रहता कि किसको खोज रहा है, बस, उसी क्षण घटना घट जाती है, और उस अमृत की उपलब्धि हो जाती है।

पाँच मिनट रुकेंगे। संन्यासी कीर्तन करेंगे। आपसे आशा है: आप भी अपने दोनों हाथ ऊपर उठा कर ताली बजायें, ताकि मैं खयाल ले सकूँ कि किन-किन के मन भक्ति के मार्ग पर जाने के लिये तैयार हैं। झूठा कोई हाथ न उठाये। हाथ ऊपर उठा लें, साथ में तालियाँ बजायें। कीर्तन में सम्मिलित हों।